आचार्य तुलसी साहित्य : एक पर्यवेक्षण

समणी कुसुमप्रज्ञा

आचार्य तुलसी साहित्य : एक पर्यवेक्षण

समणी कुसुमप्रज्ञा

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

ISB No 81-7195-032-9

श्रीमती झमकू देवी भंसाली मेमोरियल ट्रस्ट, सुजानगढ़—कलकत्ता
C/o फतेहचन्द चैनरूप भंसाली,
8 B, लाल बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता-700001
के सौजन्य से

प्रथम संस्करण : सन् १९९४

पृष्ठ · ७००

मूल्य : १८०.०० रुपये

मुद्रक :
जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं

राष्ट्रपति
भारत गणतंत्र
PRESIDENT
REPUBLIC OF INDIA

संदेश

आचार्य तुलसी का अणुव्रत आंदोलन व्यक्ति की नैतिक शक्ति को सुदृढ़ करके उसकी सृजनात्मक क्षमता के विकास का आंदोलन है । इस आंदोलन में व्यक्ति और राष्ट्र दोनों का हित निहित है ।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि समणी कुसुमप्रज्ञा ने आचार्य तुलसी के विचारों को सूचीबद्ध किया है । इससे उनके साहित्य पर शोध का सरल मार्ग प्रशस्त हो सकेगा ।

इस कार्य के लिए मेरी शुभकामनाएं ।

(शंकर दयाल शर्मा)

नई दिल्ली
24 फरवरी, 1994

सत्यम्

साहित्य एक ऐसी विधा है, जिस पर जितना श्रम किया जाए उतना ही लाभ है। स्वयं का ही नही, दूसरों का लाभ इसमें ज्यादा निहित है, पर श्रम करना कितना कठिन है! वह भी पूरे मनोयोग से करना और भी कठिन है। मैंने अपना साहित्य लिखा या लिखाया, उस समय ऐसी कोई कल्पना नहीं की थी कि इस साहित्य का इतना मंथन किया जाएगा, पर नियति है कि इस साहित्य पर इतना मंथन हुआ है।

समणी कुसुमप्रज्ञा दुबली-पतली है, पर बड़ी श्रमशील है। वह श्रम करती अघाती ही नहीं, करती ही चली जाती है। उसने कुछ ऐसे अपूर्व ग्रन्थ तैयार कर दिए है, जो युग-युगान्तर तक लाखो-लाखों लोगों के लिए लाभकारी एवं उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे। 'एक बूंद : एक सागर' (पांच खंडों में) एक ऐसा ही सूक्ति-संग्रह है, जिसकी मिशाल मिलना मुश्किल है। यह दूसरा ग्रन्थ तो और भी अधिक श्रमसाध्य है। इसमें समूचे साहित्य का अवगाहन कर उसको विषयवार वर्गीकृत कर दिया गया है। इसके माध्यम से सैकड़ों शोध-विद्यार्थी आसानी से रिसर्च कर सकते है।

समणी कुसुमप्रज्ञा श्रम के इस क्रम को चालू रखे। केवल यही नही, अध्यात्म के क्षेत्र में जितनी गहराई में उतर सके, उतरने का प्रयत्न करे। हमारे धर्मसघ की सेवा का जो अपूर्व अवसर मिला है, उससे वह स्वयं लाभान्वित हो तथा दूसरों को भी लाभान्वित करे। समणी उभयथा स्वस्थ रहे, यही शुभाशंसा है।

जयपुर
२५-३-९४ शुक्रवार

अणुव्रत अनुशास्ता गणाधिपति तुलसी

शिवम्

'अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी' यह नाम किसी व्यक्ति का वाचक नहीं, व्यापक धर्म की अवधारणा का प्रतिनिधि है। अणुव्रत अनुशास्ता ने धर्म को व्यापक बनाकर उसे सत्य के सिंहासन पर आसीन किया है।

'वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी' यह नाम विशाल ज्ञान-राशि का प्रतिनिधि है। जो कहा, वह श्रुत बन गया। जो लिखा, वह वाङ्मय बन गया।

दृष्ट, श्रुत और अनुभूति की संयोजना का एक दीर्घकालिक इतिहास है। समणी कुसुमप्रज्ञा ने विशाल ज्ञानराशि की संकेत पदावलि को प्रस्तुत पुस्तक में संदर्शित करने का प्रयास किया है। इससे पाठक को उस विशाल श्रुत से परिचित होने का अवसर मिलेगा। समणी कुसुमप्रज्ञा का प्रयास अपने आप में अर्थवान् है।

वनीपार्क, जयपुर
१९-३-९४

आचार्य महाप्रज्ञ

सुन्दरम्

गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य रूप में जितने प्रख्यात हुए हैं, 'अणुव्रत अनुशास्ता' के रूप में उससे भी अधिक प्रसिद्धि आपने अर्जित की है। आपका कर्तृत्व अमाप्य है। उसे मापने का कोई पैमाना दृष्टिगोचर नही हो रहा है। आपके कर्तृत्व का एक घटक है—आपका साहित्य। हिन्दी, राजस्थानी और संस्कृत में आप द्वारा लिखे गए गद्यात्मक और पद्यात्मक ग्रंथ साहित्य-भंडार की अमूल्य धरोहर हैं।

हिन्दी भाषा में आपके प्रवचनों और निबन्धों की बहुत पुस्तकें है। विषयों की दृष्टि से वे बहुआयामी है। उनका अनुशीलन किया जाए तो बहुत ज्ञान हो सकता है। अहिंसा, आचार, धर्म, अणुव्रत आदि सैकड़ों विषयों में आपके अनुभव और चिन्तन ने विचारों के नए क्षितिज उन्मुक्त किए हैं। कोई शोधार्थी किसी एक विषय पर काम करना चाहे तो विकीर्ण सामग्री को व्यवस्थित करना बहुत श्रमसाध्य प्रतीत होता है। समणी कुसुमप्रज्ञा ने इस क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया है। निष्ठा और पुरुषार्थ को एक साथ संयोजित कर उसने आचार्य तुलसी के साहित्य का एक व्यवस्थित पर्यवेक्षण किया है और प्रायः सभी पुस्तकों के लेखों एवं प्रवचनों को विषयवार प्रस्तुति देने का कठिन काम किया है। इसके साथ कुछ परिशिष्ट जोड़कर शोध का मार्ग सुगम बना दिया है। उसके द्वारा की गई साहित्य की मीमांसा भी पठनीय है। समणी कुसुमप्रज्ञा का श्रम पाठकों और शोध विद्यार्थियों के श्रम को हलका करेगा, ऐसी आशा है।

जयपुर
२४-३-९४

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

प्रकाशकीय

गणाधिपति तुलसी वहुआयामी साहित्य के सृजनकार है। अणुव्रत आदोलन के प्रवर्त्तक तुलसीजी एक महान् साधक एवम् आध्यात्मिक युगपुरुष भी है। अपने साहित्य के माध्यम से वे मानवीय मूल्यो के प्रति जन-चेतना का सृजन अनेक वर्षो से अपनी लेखनी एवम् व्यवहार द्वारा कर रहे है। यहां तक कि उनका डायरी-लेखन भी उनके आत्मवादी विचार-दर्शन का सागोपाग अभिलेख है।

उनके व्यापक साहित्य का पर्यवेक्षण करना कोई सहज कार्य नहीं है, वल्कि अत्यन्त दुष्कर भी है। आदरणीया समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने गणाधिपति तुलसीजी के साहित्य का पर्यवेक्षण कर एक वड़ी उपलब्धि प्राप्त की है। उनकी इस प्रस्तुति से अध्यात्म एवं साहित्यजगत् समग्र रूप से उपकृत होगा, इसमें कोई सन्देह नही है। जैन विश्व भारती इस कृति का प्रकाशन कर गौरव की अनुभूति कर रही है।

लाडनू (राजस्थान)
दि० ५-४-१९९४

श्रीचन्द बैंगानी
अध्यक्ष
जैन विश्व भारती

सृजनशीलता का निदर्शन

आचार्य तुलसी एक तपस्वी और साधक पुरुष हैं। इस शताब्दी मे जो बहुत बडे-बडे साधक और आचार्य हुए हैं, आचार्य तुलसी का नाम उनमे लिया जाएगा।

आचार्य तुलसी के अनेक रूप मैने देखे है। वे एक ओर जहा श्रमण-परपरा मे जैन धर्म का प्रचार और प्रसार करते है, वही दूसरी ओर अपने प्रवचनो मे जीवन को सार्थक और संयमित बनाने का उनका प्रयास रहता है। उनके व्यक्तित्व का तीसरा आकर्षण है—सृजनशीलता। वे एक सृजनशील लेखक है। उनकी कहानियां, लेख, कविताएं, पत्र और आत्मकथ्य इत्यादि में इसकी पहचान सहज ही की जा सकती है। आचार्यजी प्रतिदिन डायरी लिखते हैं। 'डायरी-लेखन' विश्व साहित्य मे एक महान् उपादेय रचना समझी जाती है, क्योकि दिन भर जो कुछ बीतता है, उसे ईमानदारी से उसी दिन लिख देना, साहित्य की किसी विधा में आता हो या न आता हो, अपने आसपास के परिवेश और परिचय को पहचानने के लिए वह एक प्रामाणिक दस्तावेज है। यह प्रमाणित दस्तावेज उद्बोधकता के साथ-साथ भौगोलिक और ऐतिहासिक परिस्थितियो को भी उजागर करता है।

मैंने आचार्य तुलसी को बहुत निकटता से देखा है, उनसे कई बार चर्चाएं की हैं। उनके व्यस्त जीवन को देखने और परखने का सुअवसर मुझे मिला है। प्रात:काल से लेकर सायंकाल तक निरतर क्रियाशील बने रहना आचार्यजी की प्रतिभा और क्षमता का जीवंत इतिहास है। इतनी अधिक आयु मे पहुचने के उपरांत शायद ही कोई व्यक्ति चिर युवा बना रहे और अपनी श्रमशीलता तथा क्षमता को जीवंत और प्राणवान बनाए रखे। आचार्यजी दिन भर व्यस्त रहते हैं—श्रमण-श्रमणियों को उपदेश देने मे, आगंतुकों और अतिथियो से मिलने मे, विशिष्ट व्यक्तियो से वार्तालाप करने में और समाज के बहुत बड़े वर्ग को उद्बोधन देने मे। ऐसे व्यक्ति को स्वयं लिखने का समय कहा से मिलेगा? लेकिन जो उद्बोधन आचार्य तुलसी देते है, उन्हें नियमित रूप से रिकार्ड किया जाता है और फिर उनका पुस्तकों के रूप में प्रकाशन होता है। उनके ये सारे उद्बोधन किसी सृजनशील लेखन से कम नही है। उनकी भाषा-शैली जितनी सहज और सरल

है, उतनी ही सरलता से वह बड़े-से-बड़े दार्शनिक पक्ष को उजागर करने मे सफल होती है।

यदि मै कहू कि आचार्यजी ध्रुव तारे की तरह केद्र विंदु है तो यह अनुचित नही होगा। आज भी श्रमण-परपरा का पालन करते हुए वे केवल पदयात्रा ही करते है। यह अपने आपमे इतिहास रहेगा कि इतनी आयु मे एक महापुरुष हर थकान के बावजूद एक पडाव से दूसरे पडाव तक पैदल चलकर ही पहुंचता हो। आचार्यजी ने हाल ही मे समय की विशेषता को समझते हुए कुछ ऐसी समणियों की नियुक्ति की है, जिन्हे उन्होने विमान और कार द्वारा यात्रा करने की अनुमति दी है। यह सचमुच आचार्यजी की वास्तविक समझ और बीसवी शताब्दी के बढते हुए सचार-माध्यमो के साथ अपने आप को मिलाये रखने का प्रयास है।

आचार्य तुलसी के नाम से लगभग सौ से भी अधिक पुस्तके प्रकाशित हुई है। इन पुस्तको मे उनके प्रवचन है, उद्बोधन है, निजी विचार है और उनका अपना दर्शन है। दर्शन के क्षेत्र मे आचार्यजी का विवेक एकदम अलग है। यह आवश्यक नही है कि उससे सहमत हुआ जाय लेकिन महापुरुषो की विशेषता इसी में है कि वे सहमति और असहमति के द्वार निरंतर खुले रखते है ताकि प्रत्येक दूसरा चिंतनशील व्यक्ति अपने आपको उनमें खोज सके या उनसे अलग जा सके। ज्ञान का मूल विचार-विंदु यह है कि एक सृजनशील व्यक्ति दूसरे से भिन्न हो। यदि विचारो के मूल तंत्र मे यह गुण नही होगा तो वह मात्र श्रोताओ तक ही सीमित रह जाएगा।

समणी कुसुमप्रज्ञा ने 'आचार्य तुलसी साहित्य : एक पर्यवेक्षण' शीर्षक से लगभग चार सौ पृष्ठो की एक निर्देशिका तैयार की है। इस निर्देशिका मे आचार्य तुलसी द्वारा विभिन्न स्थानो पर दिये गये प्रवचनो और उद्बोधनो की जानकारी है। ये प्रवचन किस तिथि को और किस स्थान पर दिये गये, इसका उल्लेख भी है। इस पुस्तक मे यह भी दरसाया गया है कि प्रवचन की विषय-वस्तु क्या है, उसका शीर्षक क्या है और आचार्यजी की किस पुस्तक के कौन से पृष्ठ पर इसे प्राप्त किया जा सकता है। चार सौ पृष्ठो के समग्र ग्रथ मे ये सारे संकेत है। इसके साथ ही जब आचार्य तुलसी के साहित्य और प्रवचनो के लिए चार सौ पृष्ठो का मात्र निर्देशन खंड हो तो इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका समूचा साहित्य कितना विशाल और विस्तृत होगा। समणी कुसुमप्रज्ञा से मुझे ज्ञात हुआ कि इसमें एक विस्तृत भूमिका भी रहेगी, जिसमे उनके गद्य साहित्य का पर्यालोचन और मूल्याकन रहेगा। वह भूमिका भी लगभग २०० पृष्ठो की होगी। निर्देशिका को शुरू से अंत तक देखने के बाद कुसुमप्रज्ञा के धैर्य और कार्यक्षमता से मै बहुत प्रभावित हुआ। इतनी सामग्री विभिन्न

अप्रतिम कार्य

पूज्यपाद आचार्य श्री तुलसीजी ने समग्र भारतवर्ष में प्रचार करके लोगो को जो उपदेश दिया, वह इतना विशाल है कि एक संदर्भ ग्रथ में पूरा छप नही सकता। समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने उनके विस्तृत साहित्य से चुन-चुनकर विविध विषयो की सूक्तियो का अनुपम संग्रह 'एक बूद : एक सागर' पांच खंडो में तैयार कर दिया है, वह छप भी चुका है। अब उनका प्रस्तुत प्रयत्न पूज्यश्री के समग्र साहित्य का परिचय देकर अहिंसा, समाज, अध्यात्म, संस्कृति, नीति, राजनीति आदि से सम्बन्धित लेखो की सूची बनाकर, वे विपय कहा, किस पुस्तक मे आए है, इसकी निर्देशिका तैयार करना है।

जब मै 'लेख' शब्द का प्रयोग करता हू, तब पूज्य आचार्यश्री के प्रवचनो एवं लिखित लेखो से अभिप्राय है। अब तो टेपरिकार्डर का साधन भी उपस्थित हो गया है। उनके व्याख्यान को टेप करके कोई लेख तैयार कर दे तो वह भी लेख मे शामिल है।

आचार्य तुलसी केवल नाम के आचार्य नही है। शास्त्रों मे आचार्य के जो लक्षण दिए हैं, उनमे अनुशासन एक है। आचार्यश्री अपने संघ के अनुशासन के विपय में सदा जागरूक रहे है। साधक की आचार-विचार की जो मर्यादाए है, उनकी सुरक्षा करना उनका कर्त्तव्य है और इस कर्त्तव्य को आचार्यश्री ने बखूबी निभाया है।

आज के जमाने मे आचार्य कहलाने वाले तो बहुत है किंतु अपने सघ के अनुशासन की सुरक्षा तो कुछ ही कर सकते है। उनमें से एक आचार्य श्री तुलसी है। आचार्यश्री के लेखो मे न केवल धार्मिक चर्चाए है बल्कि समाजधर्म, राजधर्म, नीतिधर्म आदि सब मानवधर्मो की चर्चा उनके लेखो मे होती है। वे तथाकथित धर्माचरण की चर्चा कही नही करते।

प्रस्तुत पुस्तक मे आए लेखों के विषयमात्र पढ़ने से प्रतीत हो जाएगा कि वे किसी साप्रदायिक धर्म की व्याख्या नही करते किंतु मानवधर्म को समग्र भाव से नजर के सम्मुख रखकर व्रतों की चर्चा करते हैं।

जैनो के आचार्य होकर भी राजनैतिक सूझबूझ जितनी आचार्य तुलसी मे है, अन्यत्र दुर्लभ है। राजनीति में जब अणुबम की विशद चर्चा होने लगी

और सभी देश अणुवम बनाने की होड करने लगे तब आचार्यश्री ने आदेश दिया कि अणुवम नही; किंतु अणुव्रत आवश्यक है। यह उनकी राजनैतिक सूझ है, जो अपने आदोलन मे साम्प्रत राजनीति से लाभ कैसे उठाया जाए, इस बात की पूरी प्रतीति कराती है।

पूज्य आचार्यश्री के लेखो का वर्गीकरण करके समणी कुसुमप्रज्ञा ने अप्रतिम कार्य किया है। वाचको एव शोध-विद्यार्थियों के लिए यह सामग्री अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, इसमे सदेह नही है। इस ग्रंथ से पूज्य आचार्य श्री के साहित्य का सामान्य परिचय तो मिलेगा ही, उपरांत उनके विराट् साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचय भी प्रस्तुत पुस्तक से होगा। इसके लिए समणी कुसुमप्रज्ञा वधाई की पात्र हैं, वंदनीय है। किंतु एक बात मैं उनसे कहना चाहता हू कि गाधीजी के लेखो का जिस प्रकार संग्रह हुआ है, वैसा सग्रह करना भी आवश्यक कार्य है। आशा करता हू कि समणीजी इस कार्य को पूरा करके इस महत् कार्य मे लग जाएंगी।

अहमदाबाद

—दलसुख मालवणिया

स्वकीयम्

भारतीय संस्कृति की साहित्यिक परम्परा में संत-साहित्य का अपना विशिष्ट स्थान है। संत-साहित्य का महत्त्व केवल वर्तमान में ही नही, भविष्य के लिए भी होता है, क्योंकि इस साहित्य ने कभी भोग के हाथों योग को नही वेचा, धन के वदले आत्मा की आवाज को नहीं वदला तथा शक्ति और पुरुषार्थ के स्थान पर कभी अक्षमता और अकर्मण्यता को नहीं अपनाया। ऐसा इसलिए संभव हुआ क्योंकि संत अध्यात्म की सुदृढ परम्परा के संवाहक होते हैं।

आचार्य तुलसी वीसवीं सदी की संत परम्परा के महान् साहित्य स्रष्टा युगपुरुष हैं। उनका साहित्य परिमाण की दृष्टि से ही विशाल नही, अपितु गुणवत्ता एवं जीवन-मूल्यों को लोकजीवन में संचारित करने की दृष्टि से भी इसका विशिष्ट स्थान है। गिरते सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा का संकल्प इस साहित्य में पंक्ति-पंक्ति पर देखा जा सकता है। आचार्य तुलसी ने सत्यं, शिवं और सौन्दर्य की युगपत् उपासना की है, इसलिए उनका साहित्य मनोरंजन एवं व्यावसायिकता से ऊपर सृजनात्मकता को पैदा करने वाला है। उनके लेखन या वक्तव्य का उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति, प्रशंसा या किसी को प्रभावित करना नहीं, अपितु स्वान्तः सुखाय एवं स्व-परकल्याण की भावना है। इसी कारण उनके विचार सीमा को लाघकर असीम की ओर गति करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उनका साहित्य हृदयग्राही एव प्रेरक हैं, क्योकि वह सहज है। वह भाषा-शैली का मोहताज नही, अपितु उसमे हृदय एव अनुभव की वाणी है, जो किसी भी सहृदय को झकझोरने एवं आनंद-विभोर करने मे सक्षम हैं।

आचार्य तुलसी के साहित्यिक व्यक्तित्व की दो विशेषताओ ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया है—

- मौलिक विचारों की प्रस्तुति के वाद भी उन्होंने यह गर्वोक्ति क नही की कि वे किसी मौलिक तत्त्व का प्रतिपादन कर रहे है।
- प्रतिदिन हजारों की भीड मे घिरे रहकर, लाखो पर ... करते हुए भी उन्होने निर्वाध गति से साहित्य-सृजन किया है। मूड या ... हो, तव लिखा या सरजा जाए, इस वात को वे जानते ही नही। जव ... कागज पर विचार अंकित हो गए। जो भी विषय सामने

वाणी मुखर हो गयी।

वीसवी सदी के भाल पर अपने कर्तृत्व की जो अमिट रेखाएं उन्होने खीची है, वे इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे अंकित रहेगी। साहित्यस्रष्टा के साथ-साथ वे धर्मक्राति एव समाजक्राति के सूत्रधार भी कहे जा सकते है। जैन विश्व-भारती संस्थान के कुलपति डा. रामजीसिंह कहते है—"आचार्य तुलसी ने धर्मक्रान्ति को जन्म दिया है, उसका नेतृत्व किया है। वे उसके पर्याय बन चुके है। इसलिए आगे आने वाली सदी को समाज आचार्य तुलसी की सदी के रूप मे जाने-माने तो कोई आश्चर्य नही होना चाहिए।"

आचार्य तुलसी के विराट् व्यक्तित्व को किसी उपमा से उपमित करना उनके व्यक्तित्व को ससीम बनाना है। उनके लिए तो इतना ही कहा जा सकता है कि वे अनिर्वचनीय हैं। आचार्य मानतुग के शब्दो मे यह कहना पर्याप्त होगा—**'यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति'।**

वालवय मे संन्यास के पथ पर प्रस्थित होकर क्रमशः आचार्य, अणुव्रत अनुशास्ता, राष्ट्रसंत एवं मानव-कल्याण के पुरोधा के रूप मे वे विख्यात हुए हैं। काल के अनंत प्रवाह मे ८० वर्षो का मूल्य बहुत नगण्य होता है, पर आचार्य तुलसी ने उद्देश्यपूर्ण जीवन जीकर जो ऊंचाइया और उपलब्धिया हासिल की है, वे किसी कल्पना की उडान से भी अधिक हैं। अपने जीवन के सार्थक प्रयत्नो से उन्होने इस बात को सिद्ध किया है कि साधारण पुरुप वातावरण से बनते हैं, किन्तु महामानव वातावरण बनाते हैं। समय और परिस्थितिया उनका निर्माण नही करती, वे स्वयं समय और परिस्थितियो का निर्माण करते है। साधारण पुरुप जहा अवसर को खोजते रहते है, वहां महापुरुप नगण्य अवसरो को भी अपने कर्तृत्व की छेनी से तराश कर उसे महान् बना देते हैं।

उम्र के जिस मोड पर व्यक्ति पूर्ण विश्राम की बात सोचता है, उस स्थिति मे वे नव-सृजन करने एव दूसरों को प्रेरणा देने मे अहर्निश लगे रहते है। विरोध को समभाव से सहकर वे जिस प्रकार उसे विनोद के रूप मे बदलते रहे हैं, वह इतिहास का एक प्रेरक पृष्ठ है। उनके व्यक्तित्व के इस कोण को कवि की निम्न पक्तियो मे प्रस्तुत किया जा सकता है—

अविकृत वदन निरंतर तुमने, पियां अमृत सम विष जो।
हुआ नहीं निःशेष अभी वह, तुम्हीं पिओगे इसको॥

उनके विराट् व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण पहलू साहित्य-सृजन है। जब वे तेरापन्थ के आचार्य रूप मे प्रतिष्ठित हुए, तब हिंदी मे लिखना तो दूर, बोलना भी कठिन था। पर उनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से आज सैकड़ो साहित्यिक प्रतिभाए उभर रही है। तेरापथ संघ मे साहित्य की अनेक विधाए प्रस्फुटित हुई है, फिर भी उन्हें संतोष नही है। वे इस क्षेत्र मे और

अधिक विकास देखना चाहते है। इसीलिए इस विकास यात्रा के हर पडाव पर वे अपनी साहित्यिक प्रतिभाओं को अग्रिम सफलता के लिए प्रेरणा देते रहते है। अपने अनुयायी वर्ग को अपने मन की वात कहते हुए वे कहते हैं— "अनेक विधाओ मे साहित्य का निर्माण हुआ है, हो रहा है और विद्वज्जगत् मे उसका उचित समादर भी हो रहा है, पर मेरी स्वप्न-यात्रा का आखिरी पडाव यही नही है। मै बहुत दूर तक देख रहा हूं और अपने धर्मसंघ को वहा तक पहुंचाना चाहता हूं। क्योकि अव तक जितना साहित्य सामने आया है, उसमे मौलिकता अधिक नही है।" पर आचार्यश्री की अभीप्सा के अनुरूप मौलिक साहित्य का सृजन सहज कहां ? इस वात को स्वीकार करने में कोई सकोच नही कि 'आचार्य तुलसी साहित्य : एक पर्यवेक्षण' कोई मौलिक कृति नही है, मात्र सयोजन है।

वर्गीकरण की प्रक्रिया

किसी भी लेखक के लेखो का विषय-वर्गीकरण कठिन कार्य है। उसमे भी समाज-सुधारक धर्मनेता के प्रवचनो का विषय-वर्गीकरण तो और भी अधिक दुष्कर कार्य है। क्योकि इस कोटि का कोई भी व्यक्ति देश, काल, परिषद् एव परिस्थिति के अनुकूल अपना प्रवचन देता है। उनमे क्रमवद्धता एव एकसूत्रता की कल्पना ही नही की जा सकती। इस परिप्रेक्ष्य से आचार्य तुलसी के प्रवचन काफी विषयवद्ध एवं क्रमवद्ध कहे जा सकते हैं।

विषय-वर्गीकरण : एक अनुचिंतन

विषय-वर्गीकरण के समय मैने किन-किन वातो को अपनी दृष्टि के मध्य मे रखा, उनका सक्षिप्त आकलन यहां प्रस्तुत कर रही है, जिससे पाठको को कही विसंगति प्रतीत न हो।

वर्गीकरण मे मैंने लेखो को वहुत ज्यादा विपयो मे नही वाटा है। और ऐसा मैने सलक्ष्य किया है। यदि पर्यायवाची या उनके निकट के विषयों का अलग-अलग विभाजन होता तो विपय विखर जाते और शोधार्थी को भी असुविधा रहती। अत. मुख्य शीर्पक २१ ही रखे है। उनके अन्तर्गत कुछ उपशीर्षक भी है। जैसे संग्रह और विसर्जन से सवधित लेखो को अपरिग्रह मे ही अन्तर्गभित कर दिया है। परिग्रह का मूल सग्रह वृत्ति है तथा अपरिग्रह का मूल विसर्जन, क्योकि अपरिग्रह का विकास हुए विना न संग्रह छूट सकता है और न विसर्जन की भावना का विकास हो सकता है।

० 'अनुभव के स्वर' वर्गीकरण के अन्तर्गत आचार्य तुलसी की व्यक्तिगत साधना, नेतृत्व तथा यात्रा आदि से संवधित अनुभवपरक लेखो एव प्रवचनों का समाहार किया गया है। इसके अतिरिक्त उनके जीवन से संवंधित विशेप अवसर जैसे पट्टोत्सव (आचार्य पदारोहण दिवस),

जन्मोत्सव (जन्मदिन) आदि पर प्रदत्त प्रवचनों का भी समावेश है। विशेष व्यक्तियों से हुई वार्ताएं तथा संस्मरण आदि भी इसी में समाविष्ट हैं। जैसे लोंगोवालजी, विनोबाजी के मिलन-प्रसग आदि। उत्तराधिकारी के मनोनयन एवं साध्वीप्रमुखाजी के चयन के संबंध मे जो विशेप लेख हैं, वे अनुभूति-प्रधान एवं उनके व्यक्तिगत जीवन के वहुत वडे निर्णय होने से 'अनुभव के स्वर' मे रखे हैं। जहा आचार्य तुलसी ने अपने जीवन से संबंधित इतिहास को स्वयं मुखर किया है, उनका समाहार भी इसी में किया गया है।

○ 'अध्यात्म' और 'योगसाधना' दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं पर मैंने इनको सलक्ष्य अलग-अलग किया है। 'अध्यात्म' मे आत्मदर्शन या आत्मोन्मुख होने की प्रेरणा देने वाले प्रवचनो का समावेश है तथा 'योगसाधना' में ध्यान एवं प्रेक्षाध्यान के विविध रूपो को स्पष्ट करने वाले लेखो, प्रवचनों एवं वार्ताओ का समावेश है। फिर भी अध्यात्म के विपय मे जानने वाले पाठक 'योगसाधना' तथा योगसाधना के वारे में जानकारी प्राप्त करने वाले पाठक 'अध्यात्म' मे आए लेखो को देखना नही भूलेंगे।

○ 'आगम' वर्गीकरण मे आगम से संबंधित लेखो का सकलन है। साथ ही आगम-सूक्तो या आगम अध्यायों की व्याख्या करने वाले प्रवचनों का भी समावेश किया गया है। आगमसूत्र की व्याख्या होने पर भी विपय-गत व्याख्या करने वाले प्रवचनों को तद् तद् विपयों के अन्तर्गत भी रखा है। जैसे योगक्षेमवर्ष के प्रवचन लगभग आगम पर आधारित हैं। पर वे विषयवद्ध अधिक है, अतः उनको 'आगम' में न रखकर प्रतिपाद्य विपय के आधार पर अन्य शीर्षकों मे भी रखा है।

टिप्पण मे आगमस्थल एवं पद्य का निर्देश करना आवश्यक था पर विस्तारभय के कारण ऐसा नही हो सका।

○ नैतिकता और अणुव्रत एक दूसरे के पर्याय हैं। अतः अभिन्नता के आधार पर इन दोनों विपयों से संबंधित प्रवचनों एव लेखों को संयुक्त कर दिया है। मानवता एवं नैतिकता मे भी चोली-दामन का सम्बन्ध है अत. मानवता से सवधित शीर्षकों को भी 'नैतिकता और अणुव्रत' में समाविष्ट किया है।

○ 'मर्यादा महोत्सव' के अवसर पर प्रदत्त लेखों एवं प्रवचनों में मर्यादा और अनुशासन का वैशिष्ट्य उजागर हुआ है, अत. इसके कुछ लेखो को अनुशासन के अन्तर्गत रखा जा सकता था, पर 'मर्यादा महोत्सव' तेरापंथ का विशिष्ट उत्सव है अत. उन्हे 'तेरापथ' के उपशीर्पक 'मर्यादा महोत्सव' में ही रखा है। इसके पीछे दृष्टि यही थी कि तेरापंथ पर शोध करने वाले विद्यार्थी को सारी सामग्री एक ही स्थान पर मिल जाए। इसी दृष्टि के कारण इस उपशीर्पक को समाज के अन्तर्गत 'पर्व और त्योहार' में भी नही रखा।

० शिक्षा और स्वाध्याय में शाब्दिक ही नहीं, अर्थगत भेद भी अतः मैने स्वाध्याय से संबंधित लेखो एवं प्रवचनों को 'शिक्षा और ...' वर्गीकरण के अन्तर्गत न रखकर 'विविध' वर्गीकरण मे रखा है। किंतु क कही इसमें व्युत्क्रम भी किया है। जैसे आचार के उपशीर्षक 'ज्ञानाचार' मे संकलित अनेक प्रवचन ज्ञान के सैद्धान्तिक एव दार्शनिक स्वरूप का विश्लेषण करने वाले है पर उनको 'जैनदर्शन' में न रखकर 'ज्ञानाचार' मे ही रखा है, जिससे विद्यार्थी को ज्ञानसवधी सारी सामग्री एक ही स्थान पर मिल जाए।

० अणुव्रत आदोलन को गति देने एव उसे जनव्यापी वनाने हेतु आचार्य तुलसी के प्रारम्भिक प्रवचनो मे अणुव्रत की चर्चा प्राय. सभी प्रवचनो मे मिलती है। पर जहा मुख्यता किसी दूसरे विपय की है, उन प्रवचनो एवं निबन्धो को अणुव्रत के अन्तर्गत न रखकर तद्-तद् विपयो मे समाहार किया है।

० कही-कही ऐसा भी हुआ है कि जिस प्रवचन या निबन्ध मे दो मुख्य विपयो की व्याख्या हुई है, यदि वही प्रवचन दो पुस्तको मे है तो मैंने उन दोनो को एक ही शीर्षक मे न रखकर सलक्ष्य अलग-अलग शीर्षकों मे रखा है, जिससे पाठक को दोनो विषयो के बारे मे आचार्यश्री के विचारो को जानने की सुविधा हो सके। जैसे—'लोकतत्र और नैतिकता' यह आलेख अमृत सदेश तथा मजिल की ओर, भाग-१ दोनो पुस्तको मे है। इनमे एक को 'नैतिकता और अणुव्रत' तथा दूसरे को राष्ट्र-चितन के अन्तर्गत लोकतंत्र मे रखा है। इसी प्रकार 'मानव स्वभाव की विविधता, प्रवचन को आगम एव मनोविज्ञान दोनो में रखा है।

० 'नयी पीढी : नए सकेत' पुस्तक मे ७ प्रवचन है, जो दिल्ली मे समायोजित 'युवक प्रशिक्षण शिविर' मे प्रदत्त है। यद्यपि सातों प्रवचन युवकों को सबोधित करके दिए गए है लेकिन विविध विषयो से संबधित होने के कारण तद् तद् विषयक वर्गीकरण मे उनका समावेश कर दिया है। जैसे 'जैन दर्शन में ईश्वर' को 'जैन दर्शन' के उपशीर्षक 'ईश्वर' के अन्तर्गत रखा है।

० 'प्रवचन डायरी' के नए सस्करण 'भोर भई' 'सभल सयाने !' 'सूरज ढल ना जाए' 'घर का रास्ता' आदि पुस्तको में कुछ प्रवचन अत्यन्त सक्षिप्त है, पर उनका समावेश भी मैने इस वर्गीकरण मे किया है। ऐसे छोटे प्रवचनो को मै 'उद्‌वोधन' शीर्षक के अन्तर्गत रखना चाहती थी, पर इससे विपय की स्पष्टता एवं वर्गीकरण नही हो पाता।

० 'नैतिकता के नए चरण' पुस्तिका में पृष्ठ संख्या ...

इसके लेखो को वर्गीकरण मे सम्मिलित तो किया है किंतु पृष्ठ संख्या नही दी है।

० आचार्य तुलसी की कुछ पुस्तके वार्ता रूप मे हैं। इसी प्रकार कुछ निबंधो की पुस्तको मे भी वार्ताओ का समावेश हुआ है। मै उन सबका संकेत करना चाहती थी पर विस्तारभय से ऐसा सभव नही हुआ। पर स्थूल रूप से साहित्य-परिचय मे इसका संकेत दे दिया है।

आचार्य तुलसी की सन्निधि मे अब तक सैकडो अधिवेशन-कार्यक्रमों का समायोजन हो चुका है। उनमे अणुव्रत अधिवेशन, महिला अधिवेशन एवं युवक अधिवेशन से सबंधित समायोजन विशेप उल्लेखनीय हैं। पर खेद की बात यह है कि उन कार्यक्रमो में प्रदत्त प्रवचनो की ऐतिहासिक दृष्टि से सुरक्षा नही हो सकी। फिर भी जितनी कुछ सुरक्षा हो सकी है और जो कुछ जानकारी मिल सकी है, उसे मैंने स्थान एवं दिनांक के उल्लेख के रूप मे ऐतिहासिक क्रम से रखने का प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न के कारण अधिवेशन के प्रवचनो को विपयवार वर्गीकृत नही किया गया है। साथ ही इस बात का ध्यान भी रखा है कि इन अधिवेशनो से संबधित प्रवचनों मे यदि मुख्यता दूसरे विपय की है तो भी उसे अधिवेशन के क्रम मे रखा है। यह स्पष्टीकरण इसलिए है कि पाठक को विरोधाभास प्रतीत न हो।

शीर्षक वर्गीकरण : एक अनुचिंतन

यद्यपि यह सत्य है कि शीर्पक किसी भी लेख का दर्पण होता है पर आचार्य तुलसी के साहित्य मे प्रवचन अधिक हैं। प्रवचनकार को सभा के अनुरूप विपय को अनेक धाराओ मे मोड़ना होता है, अतः हमने विपय-वर्गीकरण केवल शीर्पक के आधार पर नही, बल्कि प्रतिपाद्य विपय-वस्तु के आधार पर किया है। जैसे 'समाधान का मार्ग हिंसा नही' तथा 'अध्यात्म : भारतीय संस्कृति का मौलिक आधार' इन दोनो शीर्षको को 'अहिंसा एवं 'अध्यात्म' के अन्तर्गत न रखकर 'अनुभव के स्वर' मे रखा है, क्योकि प्रथम मे सन्त लोंगोवालजी के साथ हुई अन्तरंग वार्ता के सस्मरण है और दूसरे मे जन्मदिन पर प्रदत्त उनका विशिष्ट प्रवचन है। इस प्रकार और भी अनेक स्थलो पर पाठक को शीर्षक पढ़कर भ्रम हो सकता है।

१. कही-कही शीर्षक इतने रहस्यमय एव साहित्यिक है कि उनके आधार पर प्रतिपाद्य का ज्ञान नही हो सकता। वहां भी हमने विषय-वस्तु के आधार पर ही वर्गीकरण किया है, जैसे 'कागज के फूल', 'सबसे बड़ी त्रासदी', 'कालिमा धोने का प्रयास' आदि।

२. कही-कही वर्गीकरण के समय द्वन्द्व की स्थिति से भी सामना करना पड़ा क्योकि एक ही प्रवचन, लेख या वार्ता को अनेक विषयो मे

अन्तर्गभित किया जा सकता था। पर अतत: हमने प्रतिपाद्य की प्रमुखता के आधार पर उनका विषय-वर्गीकरण किया है। जैसे—'अहिंसा और श्रावक की भूमिका' तथा 'अहिंसा का सिद्धात : श्रावक की भूमिका' ये दोनो अहिंसा के महत्त्वपूर्ण पहलुओ को उद्घाटित करते है पर श्रावक के आचार से संबंधित होने के कारण इन्हें 'आचार' के अन्तर्गत 'श्रावकाचार' मे रखा है। और भी अनेक स्थलो पर ऐसा हुआ है। जैसे —'श्रावक के मनोरथ' 'श्रावक के विश्राम' आदि को 'आगम' के अन्तर्गत भी रखा जा सकता था पर 'श्रावकाचार' मे रखा है।

० 'धर्म : एक कसौटी, एक रेखा' पुस्तक मे कुछ शीर्षक स्थान से सम्बन्धित है, जैसे– पालघाट-केरल, बेंगलोर आदि। इन शीर्षको मे प्रतिपाद्य बहुत सक्षिप्त किन्तु मार्मिक है, इसलिए इन्हे विषय के आधार पर वर्गीकृत किया है। जैसे —'पालघाट-केरल' 'जातिवाद' से तथा 'त्रिवेन्द्रम्-केरल' 'धर्म और जीवन व्यवहार' से सम्बन्धित है, इसी पुस्तक के 'नैतिक सन्दर्भ' खण्ड में एक, दो से लेकर पाच तक शीर्षक है। प्रेरक विचार होने से इन शीर्षको को भी इसमे विषय के आधार पर समाविष्ट किया है।

० 'प्रेक्षा : अनुप्रेक्षा' पुस्तक के विवेचक एव व्याख्याता यद्यपि युवाचार्य महाप्रज्ञ है पर यह कार्य आचार्य तुलसी की पावन सन्निधि मे हुआ है अत. इसे उन्ही की कृति मानकर इसके शीर्षको को इसमे समाविष्ट किया है।

० 'तुलसी-वाणी' मुनि दुलीचदजी 'दिनकर' की सकलित कृति है। यद्यपि पूरी पुस्तक अनेक शीर्षको मे विभक्त है पर इसमे प्रवचनांशो के उद्धरण है अत इस पुस्तक के शीर्षको को इसमे समाविष्ट नही किया है।

'नवनिर्माण की पुकार' पुस्तक यद्यपि आचार्य तुलसी के नाम से प्रकाशित है, पर इसमे प्रारम्भ मे लगभग १२८ पृष्ठों तक कार्यक्रमो की रिपोर्ट के साथ प्रासगिक रूप मे आचार्य तुलसी के विचारो को सकलित किया गया है, अत: स्वतन्त्र प्रवचन या लेख न होने से उसके शीर्षको को हमने वर्गीकरण मे सम्मिलित नही किया है।

० 'प्रश्न और समाधान' कृति यद्यपि कृतिकार मुनि सुखलालजी के नाम से प्रकाशित है, पर इसमे समाधायक आचार्य तुलसी है, अत. इसके शीर्षको को हमने इस वर्गीकरण मे सम्मिलित किया है। यो 'अणुव्रत अनुशास्ता के साथ' पुस्तक भी ऐसी ही वार्तारूप कृति है, पर उसके शीर्षक वर्गीकरण के अनुकूल नही है इसलिए उन्हे इसमे सम्मिलित नही किया है।

० 'भगवान् महावीर' यद्यपि जीवनीग्रन्थ है, पर इसमे महावीर के विचारों एवं सिद्धातो की बहुत सरल एवं सरस प्रस्तुति है। इस आधार पर इसके अनेक शीर्षको को इस वर्गीकरण में समाविष्ट किया है।

० 'धर्म : एक कसौटी, एक रेखा' पुस्तक में 'पत्र प्रतिनिधि' तथा 'मत-अभिमत' इन दो खण्डों के शीर्पको को इसमें समाविष्ट नही किया है। क्योंकि इनमे साहित्यिक विचार न होकर विशेप अवसरो, संस्थानो आदि से संबंधित सन्देशों का संकलन है।

० प्रवचन डायरी के तीन भाग सन् १९६० में प्रकाशित हुए थे। उनका जैन विश्वभारती प्रकाशन से नाम-परिवर्तन के साथ परिवर्धित एवं परिष्कृत संस्करण के रूप मे पुनर्मुद्रण हो चुका है। यद्यपि हमने पुनर्मुद्रण की लगभग सभी पुस्तको के शीर्पको को इस पुस्तक मे समाविष्ट किया है, पर इन प्रवचन डायरियो मे सैकड़ों प्रवचन हैं, यदि उन सवका भी समावेश किया जाता तो इस ग्रन्थ का कलेवर और अधिक वढ़ जाता। अतः हमने प्रवचन डायरी के प्रवचनो की सूची को विपय वर्गीकृत कर लेने पर भी सलक्ष्य इस संकलन मे समाविष्ट नही किया है।

'व्यक्ति और विचार' के अन्तर्गत 'विशिष्ट व्यक्तित्व' उपशीर्पक मे अनेक स्थलो पर शीर्पक से यह स्पष्ट नही है कि किस व्यक्ति के वारे मे विचार व्यक्त किए गए हैं। वहां हमने पाठको की सुविधा के लिए ब्रेकेट मे उस व्यक्ति का नाम दे दिया है। जैसे—

१. स्वतन्त्र चेतना का प्रहरी (लोकमान्य तिलक)
२. सूक्ष्म दृष्टि वाला व्यक्तित्व (जैनेन्द्र कुमार जैन)
३. एक सुधारवादी व्यक्तित्व (रामेश्वर टांटिया)

कही-कही 'जिज्ञासा के झरोखे से' या 'समाधान के स्वर' शीर्पक मे विविध प्रश्नोत्तर हैं। वार्ता में जिस विपय से सम्वन्धित प्रश्न अधिक है, उसको उसी विपय के अन्तर्गत रख दिया है।

कही-कही विपय को प्रमुखता न देकर शीर्पक को प्रमुखता देकर भी वर्गीकरण किया है। जैसे—'अणुव्रत : एक सार्वजनिक मच' इसमे मुख्यतः अस्पृश्यता और जातिवाद पर प्रहार हुआ है पर हमने इसे 'नैतिकता और अणुव्रत' वर्गीकरण के अन्तर्गत रखा है। इसी प्रकार 'पच्चीससौवां निर्वाण महोत्सव कैसे मनाए?' तथा 'निर्वाण शताब्दी के सन्दर्भ मे' इन दोनो लेखो मे भगवान महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के सन्दर्भ मे समाज के समक्ष भावी योजनाओ का प्रारूप रखा गया है। इनमें विशेष रूप में महावीर के जीवन एवं दर्शन की चर्चा नही है, पर महावीर के निर्वाण-दिन से सम्वन्धित होने के कारण तथा शीर्षक की प्रधानता से इन्हे 'व्यक्ति और विचार' के उपशीर्पक 'महावीर : जीवन-दर्शन' मे रखा है।

कही-कही शीर्पक व्यापक होने के कारण अनेक वार पुनरावृत्त है, पर उनमे निहित विपय-वस्तु भिन्न है, अत. सभी स्थानो पर पाठक एक ही शीर्पक को देखकर लेख या प्रवचन को पुनरावृत्त न मान ले। जैसे अनेकांत,

अहिंसा, अक्षय तृतीया, मानवधर्म आदि। कही-कही असावधानी से भी एक ही पुस्तक मे शीर्षक की पुनरावृत्ति हो गई है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट किसी भी ग्रन्थ मे पूरक का कार्य करते है। इस पुस्तक मे चार परिशिष्ट जोड़े गए है। प्रथम परिशिष्ट मे पुस्तको मे आए लेखो की अनुक्रमणिका है। इससे किसी भी लेख को ढूढने मे पाठक को सुविधा हो सकेगी।

दूसरे परिशिष्ट मे पत्र-पत्रिकाओ के लेखो की सूची है। यद्यपि इन लेखो एव प्रवचनो का भी विषय-वर्गीकरण अनिवार्य था, पर विस्तार-भय से ऐसा सम्भव नही हो सका। इसके अतिरिक्त आचार्यश्री के सैकडो लेख राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते है। उन सबका निर्देश करना भी महत्त्वपूर्ण कार्य है। पर सारी सामग्री एक स्थान पर सुलभ न होने से यह कार्य नही हो सका। उस कमी का अहसास वार-वार होता रहा है। द्वितीय परिशिष्ट मे हमने केवल सघीय पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित लेखो एवं प्रवचनो की सूची ही इस ग्रन्थ मे दी है। उसमे भी सन् १९८४ तक की पत्र-पत्रिकाओ के लेख ही इसमे सकेतित हैं, क्योकि वाद के वर्षों की पत्रिकाओं में छपे लगभग लेख पुस्तको मे प्रकाशित हो चुके है अत: पुनरुक्ति से वचने के लिए उनका समावेश नही किया है। सन् ८४ से पूर्व की पत्रिकाओ मे छपे लेख या प्रवचन यदि पुस्तको मे है तो उनको हमने पत्र-पत्रिकाओ की सूची मे नही दिया है, पर अनेक स्थलो पर पत्र-पत्रिकाओ के लेख शीर्षक-परिवर्तन के साथ पुस्तको मे प्रकाशित है, अतः वहा पुनरुक्ति होना सहज है। जैसे—जैन भारती (१३ जून ५४) में जो लेख 'अहिंसा' शीर्षक से प्रकाशित है, वही 'प्रवचन डायरी' मे 'अहिंसा की शाश्वत मान्यता' इस शीर्षक से है। जैन भारती मे (५ सित० ५४) मे जो लेख 'समन्वय की दिशा अनेकान्तवाद' से है वही 'भोर भई' मे 'अनेकांत' शीर्षक से है।

'युवादृष्टि' के अनेक लेख पुस्तको मे शीर्षक-परिवर्तन के साथ सकलित है। जहा मुझे ज्ञात हुआ कि यह लेख या प्रवचन शीर्षक-परिवर्तन के साथ पुस्तक मे प्रकाशित है उसे मैंने पत्र-पत्रिका की सूची में सलग्न नही किया है। जैसे, अणुव्रत मे 'भारतीय आचार विज्ञान . एक पर्यवेक्षण' इस शीर्षक से शृखलावद्ध लगभग ३६ से अधिक वार्ताए छपी है। वे सब 'अनैतिकता की धूप . अणुव्रत की छतरी' पुस्तक में शीर्षक-परिवर्तन के साथ प्रकाशित है अत. हमने उनका इस परिशिष्ट में उल्लेख नही किया है।

'जैन भारती' में अनेक स्थलो पर 'आचार्य तुलसी का मंगल प्रवचन'

तथा 'आचार्य तुलसी का ओजस्वी प्रवचन' शीर्षक से भी कुछ प्रवचन प्रकाशित है। उनको हमने इस संकेत-सूची मे सम्मिलित नही किया है, क्योंकि इनमे विषयगत स्पष्टता नही है।

तीसरा परिशिष्ट ऐतिहासिक एव भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमे प्रवचन-स्थलो के नामो की सूची, विशेष प्रवचनों के संकेत तथा विशिष्ट व्यक्तियों के साथ हुई वार्ताओ के स्थान एव समय का सकेत है। यदि आचार्य तुलसी के प्रवचनो का सारा इतिहास सुरक्षित रहता तो यह परिशिष्ट ही इतना विशाल होता कि उसे प्रकट करने के लिए एक अलग सन्दर्भ-ग्रन्थ की आवश्यकता रहती।

चौथे परिशिष्ट मे 'सन्दर्भ ग्रन्थ सूची' तथा 'पुस्तक सकेत सूची' का उल्लेख किया गया है। इसे दो भागो मे बाटने का मुख्य कारण यह है कि भूमिका मे पुस्तक का नाम या सकेत न देकर पाठक की सुविधा के लिए पूरा नाम दिया है, पर विषय-वर्गीकरण मे पुस्तको के सकेत की पुनरुक्ति होने से उनका पूरा नाम न देकर मात्र संकेत दे दिया है। शोध-विद्यार्थी आचार्य तुलसी के विचार-विकास के क्रम को जान सके, इसलिए ऐतिहासिक क्रम से पुस्तको की सूची भी दे दी गयी है।

यद्यपि विषय वर्गीकरण मे ही लेखो एवं प्रवचनो को ऐतिहासिक क्रम से देना ज्यादा अच्छा रहता पर सव प्रवचनो एवं लेखो की दिनाक सुरक्षित न रहने से हमने परिशिष्ट मे ही पुस्तको के ऐतिहासिक क्रम की सूची दे दी है। अत मे आचार्य तुलसी द्वारा लिखी काव्य-कृतियो एव संस्कृत भाषा मे निवद्ध ग्रन्थो का नामोल्लेख भी किया गया है।

गद्य साहित्य : पर्यालोचन और मूल्यांकन

भूमिका मे उनके गद्य साहित्य का संक्षिप्त पर्यालोचन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इसमे चार मुख्य विषयो—अहिसा, धर्म, राष्ट्र और समाज पर आचार्य तुलसी के विशेष चिन्तन को प्रस्तुत किया है, जिससे भविष्य मे कोई भी पाठक या शोध-विद्यार्थी उनके विचारो को जानकर अपने शोध-विषय के निर्धारण मे रुचि जागृत कर सके। यद्यपि उन चारो विषयो पर उन्होने व्यापक चिंतन प्रस्तुत किया है। पर इस पुस्तक मे तो मात्र कुछ विचार ही पाठक के समक्ष प्रस्तुत हो सके है। इसी प्रकार अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण विषयो पर भी उन्होने मौलिक विचार प्रस्तुत किए है, पर उन सवका आकलन प्रस्तुत ग्रंथ मे संभव नही था।

आचार्यश्री के गद्य साहित्य की सक्षिप्त जानकारी के साथ अन्य लेखको द्वारा उनके बारे मे लिखी पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया है, जिससे शोधार्थी को उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को जानने के स्रोतो का ज्ञान हो सके।

प्रयास इतना ही है कि आचार्य तुलसी के विचारो पर शोध करने वाले विद्यार्थी उनके इन विचारो को पढकर उनमे अन्तर्निहित रहस्यो को आत्मसात् कर उनको जनभोग्य बनाने का प्रयत्न करे।

पुनरुक्ति एवं पुनर्मुद्रण

आचार्यश्री के वाङ्मय मे अनेक स्थलो पर पुनरुक्ति हुई है। एक ही लेख या प्रवचन शीर्षक-परिवर्तन के साथ दो पुस्तको में भी प्रकाशित हो गया है। जैसे—'धर्म : एक कसौटी, एक रेखा' मे जो वार्ता 'सेठ गोविददासजी के प्रश्न : आचार्य तुलसी के उत्तर' नाम से है वही 'अतीत का विसर्जन : अनागत का स्वागत' पुस्तक मे 'जिज्ञासा के झरोखे से' शीर्षक से है। 'शांति के पथ पर' पुस्तक मे जो प्रवचन 'नियम का अतिक्रम क्यो ?' शीर्षक से है, वही कुछ परिवर्तन के साथ प्रवचन पाथेय भाग-९ मे 'क्या भारत स्वतन्त्र है ?' शीर्षक से है, यद्यपि यह पुनरुक्ति सलक्ष्य नही हुई है, पुस्तक की सख्या का व्यामोह भी नही है, पर अनेक सपादको के होने से ऐसा होना अस्वाभाविक नही था। क्योकि पत्र-पत्रिकाओ से अलग-अलग व्यक्तियों ने लेखों एवं प्रवचनो का सकलन कर उनका अपने ढग से सम्पादन किया है।

यद्यपि शोधार्थियो की सुविधा एव ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसी पुन-रुक्तियो का उल्लेख करना आवश्यक था, पर इतने विशाल वाङ्मय पर यह कार्य करना समयसापेक्ष ही नही, स्मृतिसापेक्ष और श्रमसाध्य भी है अत ऐसा सम्भव नही हो सका। पर मुख्य रूप से पुनर्मुद्रण मे नाम-परिवर्तन के साथ निकली पुस्तको की सूची तथा कुछ पुनरुक्त लेखो के पुस्तको की सूची नीचे प्रस्तुत की जा रही है।

आचार्यश्री की कुछ पुस्तके पुनर्मुद्रण मे नाम-परिवर्तन या सशोधन एवं परिवर्धन के साथ प्रकाशित हुई है। उनकी मुख्य सूची इस प्रकार है—

पुराना संस्करण	नया संस्करण
१. मुक्तिपथ	गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का
२. अमृत संदेश	सफर : आधी शताब्दी का
३. उद्बोधन	समता की आख : चरित्र की पाख
४ अणुव्रत के संदर्भ मे[1]	अणुव्रत : गति-प्रगति

१. 'अणुव्रत के सन्दर्भ मे' पुस्तक के अनेक लेख शीर्षक-परिवर्तन के साथ अणुव्रत . गति-प्रगति मे समाविष्ट हैं। जैसे—'अणुव्रत के सन्दर्भ मे' पुस्तक मे जो शीर्षक "पर्यटको को भारतीय सस्कृति से परिचित कराया जाए" तथा "राजनीति के मच पर उलझा राष्ट्रभाषा का प्रश्न और दक्षिण भारत" से है, वे ही अणुव्रत : गति प्रगति मे "पर्यटको का आकर्पण · अध्यात्म" तथा "राष्ट्रभाषा का प्रश्न और दक्षिण भारत" के नाम से है।

५ प्रगति की पगडंडिया — आचार्य तुलसी के अमर संदेश

६. विचारदीर्घा,
विचार वीथी — राजपथ की खोज

७ मुक्ति इसी क्षण मे — मजिल की ओर भाग-२

इसके अतिरिक्त 'दोनो हाथ : एक साथ' संकलित कृति है, पर इसमे कुछ नए लेख भी समाविष्ट है।

'नैतिक संजीवन', 'शांति के पथ पर' (दूसरी मजिल) के कुछ प्रवचन कुछ अन्तर के साथ 'संभल सयाने !' तथा प्रवचन पाथेय भाग-९ मे समाविष्ट है।

'राजधानी मे आचार्य तुलसी के सदेश' पुस्तक के कुछ प्रवचन 'आचार्य तुलसी के अमर सन्देश' से मेल खाते है।

आचार्य तुलसी के कुछ महत्त्वपूर्ण लेख स्वतन्त्र रूप से पुस्तिका के रूप मे भी छपे हैं। जैसे—'अशात विश्व को शाति का सन्देश', 'भ्रष्टाचार की आधारशिलाए' आदि। यद्यपि ये लेख पुस्तको मे प्रकाशित हैं, पर महत्त्वपूर्ण होने के कारण उनका अलग से परिचय भी दिया गया है।

'अनैतिकता की धूप . अणुव्रत की छतरी', 'धर्म : एक कसौटी, एक रेखा' तथा 'दायित्व का दर्पण : आस्था का प्रतिबिम्ब' इन तीन पुस्तकों के लेखो का विषयवद्ध एवं व्यवस्थित रूप से नया संस्करण 'अतीत का विसर्जन अनागत का स्वागत' है। यह मात्र स्थूल जानकारी मैंने पाठको के समक्ष रखी है, जिससे उनको पुनरुक्ति की भ्राति न हो।

पुनर्मुद्रण मे नाम परिवर्तन वाली पुस्तको के लेखो एव आपस मे पुनरुक्त लेखो को भी इस पुस्तक मे अन्तर्गभित करने के निम्न उद्देश्य थे—

१. इतिहास की सुरक्षा।

२ एक पुस्तक न मिलने पर शोध विद्यार्थी दूसरी पुस्तक से अपना कार्य सम्पन्न कर सके।

३ कही-कही एक ही लेख जो दो भिन्न-भिन्न पुस्तको मे प्रकाशित है यदि उनमे दो मुख्य विषयो का विवेचन है तो उनको अलग-अलग विषय मे रख दिया गया है।

सम्पादन

आचार्य तुलसी एक विशाल धर्मसघ के अनुशास्ता है। समाज एव राष्ट्र का नेतृत्व करने मे भी उन्होने अपनी शक्ति एवं कर्तृत्व का उपयोग किया है, इसलिए स्वतन्त्र रूप से लिखने का समय उन्हे वहुत कम मिल पाता है। अत. उनके विचारो के सकलन एवं सम्पादन मे अनेक हाथो का श्रम लगा है। इन वर्षो मे मुख्यतया उनके साहित्य का सम्पादन महाश्रमणी

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी कर रही है। इतने विशाल साध्वी स
नेतृत्व करते हुए भी कई दर्जन पुस्तकों का सम्पादन आश्चर्य का वि
प्रवचन-साहित्य का संपादन मुनिश्री धर्मरुचिजी निष्ठापूर्वक कर र
इसके अतिरिक्त मुनिश्री मधुकरजी, मुनिश्री गुलावचदजी 'न
साध्वीश्री जिनप्रभाजी तथा श्रीचदजी रामपुरिया आदि ने भी उनके
एवं लेखो का सम्पादन किया है।

प्रस्तुत कार्य की प्रेरणा

सन् १९८५ की बात है। मै लाडनूं मे आगमकार्य मे सलग्न
व्यवहार भाष्य के संशोधन का कार्य चल रहा था। चातुर्मास के दौरान
शोधविद्यार्थी, जो भारतीय नीति दर्शन पर पी.एच.डी का कार्य कर
था, मार्ग-दर्शन प्राप्त करने लाडनू पहुचा। वह शोध विद्यार्थी आच
तुलसी के अणुव्रत दर्शन के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता था।
मैंने उस भाई को वर्द्धमान ग्रन्थागार मे आचार्य तुलसी की अनेक ...
सुझाई। पर मेरे मन को सतोष नही हुआ, क्योकि सामग्री विकीर्ण थी
शोधविद्यार्थी होने के नाते तत्काल मेरे मन मे विकल्प उठा कि आचार्य तुलस
की वाणी एक द्रष्टा की वाणी है। उनकी तप:पूत साधना से निःसृत व
अनेक धाराओं तथा अनेक विषयो मे प्रवाहित हुई है। अतः उनकी ... या
मे आये विषयों का यदि वर्गीकरण कर दिया जाए और एक स्थान पर ही
निदेश कर दिया जाए तो अनेक शोध-विद्यार्थियो को आचार्य तुलसी पर
पी.एच.डी करने मे सुविधा हो सकती है। इस श्रमसाध्य कार्य को करने के
पीछे एक दृष्टिकोण यह भी था कि आचार्य तुलसी का अनुशास्ता रूप जितना
उभर कर सामने आया है, उतना साहित्यकार का रूप नही, जबकि
उन्होने एक नही, अनेक कालजयी कृतियो से साहित्य भडार को समृद्ध
किया है। शोध विद्यार्थी तो मात्र निमित्त बना। मुनिश्री दुलहराजजी
का सकारात्मक समर्थन एव गुरुदेव के मगल आशीर्वाद से मेरी चेतना मे
हल्का-सा साहित्यिक स्पदन हुआ। पूज्यपाद गुरुदेव का नाम स्मरण कर
कार्य प्रारम्भ किया और सन् १९८६ मे 'अमृत महोत्सव' के अवसर पर
विषय-वर्गीकरण का कार्य सम्पन्न कर हस्तलिखित पत्रिका 'वातायन' के रूप
मे यह कार्य गुरु-चरणो मे उपहृत किया। कार्य करते समय इसके प्रकाशन
की तो स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी, बस स्वान्त सुखाय और समय
का सही नियोजन इन उद्देश्यों के साथ यह कार्य किया। पर प्रकाशन इसकी
नियति थी।

जब प्रकाशन की बात चली, तब पहले किया हुआ कार्य इतना
उपयोगी सिद्ध नही हुआ, क्योकि अनेक नई पुस्तके भी प्रकाश में आ गई थी

तथा कई पुस्तकों के नए संस्करण भी निकल चुके थे, अतः पुनः १९९३ के जून मारा में यह कार्य प्रारम्भ किया और आज सम्पन्न है।

शोध विद्यार्थी होने के कारण कार्य करते समय अनेक बार यह विकल्प उठा कि आचार्यश्री के साहित्यिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विचारों का महावीर, बुद्ध, कृष्ण, गांधी, विवेकानंद, अरविंद, टालस्टाय, रस्किन तथा अन्य अनेक प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानो के साथ तुलनात्मक अध्ययन क्यों न किया जाए। क्योंकि अनुभूति के स्तर पर निकली हुई वाणी किसी भी काल या देश मे प्रस्फुटित हो, उसमे सामंजस्य एवं समानता मिल ही जाती है। किन्तु समस्या यह थी कि आचार्यश्री द्वारा सर्जित विशाल श्रुतराशि का अवगाहन श्रम एवं स्मृतिसापेक्ष ही नही, समयसापेक्ष भी था, अतः चाहकर भी ऐसा सम्भव नही हो सका। दूसरी कठिनाई यह थी यह ग्रंथ अपने-आप में इतना वडा हो गया कि तुलनात्मक अध्ययन का अवकाश ही नही रहा। पर इस दिशा मे भविष्य में बहुत काम हो सकता है, यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है।

एक साल का लम्बा समय लगने पर भी ऐसा वार-वार प्रतीत हो रहा है कि यह मात्र प्रारम्भिक प्रयास है। यह दावा करना तो निरा अहंकार प्रदर्शन ही होगा कि यह वर्गीकरण विल्कुल सही हुआ है। लेकिन यह सामान्य प्रयास भी अनेक शोधार्थियो की विचार-यात्रा में सहयोगी वनेगा, ऐसा विश्वास है।

पाठक आचार्य तुलसी को एक सम्प्रदाय-विशेप के आचार्य के रूप मे नही, अपितु मानवता के मसीहा या सास्कृतिक नेता के रूप मे पढने का प्रयत्न करेगे तो उन्हें अवश्य नया आलोक मिलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

एक वात पर पाठक विशेप ध्यान देंगे कि आचार्य तुलसी वर्तमान में गणाधिपति अणुव्रत अनुशास्ता तुलसी के रूप में प्रसिद्ध है। क्योंकि उन्होने आचार्य पद का विसर्जन कर युवाचार्य महाप्रज्ञ को आचार्य बना दिया है। चूंकि यह घटना सुजानगढ १९९४ के फरवरी मास में घटित हुई और तव तक इस पुस्तक का काफी अंश प्रकाशित हो चुका था, अतः मैने एकरूपता वनाए रखने की दृष्टि से आचार्य तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञ शव्द का ही प्रयोग किया है।

आचार्य तुलसी के प्रति अनन्त आस्था होने पर भी मैने तटस्थ समालोचक की दृष्टि से इस वात की पूरी सतर्कता रखी है कि कही उन्हें तेरापन्थ के आचार्य के रूप मे प्रतिष्ठित कर उनके व्यक्तित्व को सीमित न कर दू। इस पुस्तक में मुख्यतः उनके इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व का एक ही पहलू उजागर हुआ है। वह है—सृजनशील साहित्यकार।

आचार्य तुलसी के सम्पूर्ण वाङ्मय को केवल भक्तहृदय से नही,

अपितु तटस्थ समालोचक की दृष्टि से पढा है। उनके साहित्य के बारे अपनी अनुभूति गांधीजी के इन शब्दों में प्रकट करना चाहूंगी—'... अच्छी मित्र है। जितना ही मै इन पुस्तको का अध्ययन करता गया, ... ही अधिक मुझे उनकी विशेषताएं/उपयोगिताएं मालूम होती गयीं।"

भूमिका लेखनकाल मे मेरे कानो में आचार्य तुलसी की ये '... सदैव गूंजती रही—'मै अपनी समालोचना सुनना पसद करता हू, प्रश... नही। मैने अपने अनुयायियो को यह भी कह दिया है कि मेरे सम्वन्ध में ... साहित्य लिखा जाए, वह भी समालोचनात्मक हो, ताकि उससे मुझे कुछ प्रेरणा मिले और मै अपने को देख सकू।'

मेरी अग्रिम साहित्यिक यात्रा अभी गुरुदेव के इंगित की प्रतीक्षा मे है। उनके द्वारा सौपे गए निर्युक्ति एव भाष्य के सपादन के कार्य मे मुझे लगना है और इस प्राचीनतम श्रुतराशि को व्यवस्थित रूप से सुसंपादित कर श्रुत की सेवा के व्याज विद्वद्वर्ग को उस श्रुतनिधि का परिचय देना है। वह विशाल श्रुतराशि अभी भी अप्रकाशित पडी है पर इतना निश्चित संकल्प है कि अवकाश-प्राप्त क्षणो में आचार्यवर के गद्य साहित्य की भांति पद्य साहित्य का विवेचन, विश्लेषण एव समालोचन भी पाठको के समक्ष प्रस्तुत करना है। यह कहना कोई अत्युक्ति नही होगी कि गद्य की अपेक्षा उनका पद्य अधिक सहज, सरल, सशक्त, प्रभावी, मार्मिक एव हृदयग्राही है।

आचार्य तुलसी सृजन के देवता है। उन्होने मेरे जीवन-पथ पर प्रेरणा के दीपे जलाए है। उनका चितन था कि निर्युक्ति और भाष्य साहित्य जल्दी प्रकाश मे आये। इस दृष्टि से वे नही चाहते थे कि मै अपनी शक्ति इस कार्य मे नियोजित करू। पर नियति का योग है कि यह कार्य पहले सपन्न हुआ है।

प्रस्तुत कार्य के सपादन मे मैने पूज्य गुरुदेव को सदैव अपने निकट पाया है, यह वात अनुभूतिगम्य है। वे मेरी हर प्रवृत्ति मे ऊर्जा के स्रोत रहे है, अत: उनके प्रति अहोभाव ज्ञापित करने के लिए मेरे पास कोई शब्द नही है। पूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी, महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी एव महाश्रमण मुनि मुदितकुमारजी का मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद भी इस कार्य मे योगभूत वना है।

अस्वस्थ होते हुए भी साध्वीश्री सिद्धप्रज्ञाजी ने आद्योपान्त प्रूफ रीडिंग एव अनेक सुझाव प्रदान कर इस पुस्तक को रमणीयता प्रदान की है। समणी सहजप्रज्ञाजी एवं मुमुक्षु प्रेम (वर्तमान साध्वी परिमलप्रभाजी) का प्रेस-कापी तैयार करने मे अल्पकालिक सहयोग भी वहुत मूल्यवान् रहा है। मुनिश्री श्रीचंदजी 'कमल' ने इसके प्रथम परिशिष्ट की अनुक्रमणिका का निरीक्षण कर मेरे कार्य को हल्का किया है।

इस विचारयात्रा में मुनिश्री मधुकरजी, श्री कन्हैयालालजी फूलफगर तथा डॉ० आनन्द प्रकाश त्रिपाठी आदि के अमूल्य सुझाव भी मेरे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहे हैं। नियोजिका समणी मधुरप्रज्ञाजी, सहयोगी समणीवृंद एवं समस्त समणी परिवार के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं।

महामहिम राष्ट्रपति 'शंकरदयाल शर्मा' ने अपना संदेश प्रेषित करके इस ग्रंथ की मूल्यवत्ता स्थापित की है। हिन्दी जगत् के ख्यातनामा साहित्यकार एवं संपादक डा० राजेन्द्र अवस्थी ने बहुत कम समय में इस पुस्तक पर पूर्व पीठिका लिखने का महनीय कार्य किया है। मैं उनके प्रति हृदय से मंगल कामना करती हूं।

अंत में गुरुदेव का कर्तृत्व उन्हीं के कर-कमलों में अर्पित करते हुए मुझे असीम प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है।

समणी कुसुमप्रज्ञा

अनुक्रम

गद्य साहित्य : पर्यालोचन और मूल्यांकन

विषय-वर्गीकरण

वर्गीकृत विषयों की अनुक्रमणिका

गद्य साहित्य : पर्यालोचन और मूल्यांकन

साहित्य का स्वरूप

साहित्य मानव की अनुभूतियो, भावनाओ और कलाओं का साकार रूप है। इसमें भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति होती है इसीलिए मैथ्यू आर्नोल्ड आदि पाश्चात्य विद्वानों ने साहित्य को जीवन की व्याख्या एवं आलोचना माना है। जहा तक जीवन की पहुच है, वहां तक साहित्य का क्षेत्र है। जीवन-निरपेक्ष साहित्य अपना महत्त्व खो देता है अतः विद्वानों ने सत्साहित्य की यही कसौटी वताई है कि वह जीवन से उत्पन्न होकर सीधे मानव जीवन को प्रभावित करता है। दो और दो चार होते है, यह चिर सत्य है पर साहित्य नही है क्योंकि जो मनोवेग तरगित नही करता, परिवर्तन एवं कुछ कर गुजरने की शक्ति नही देता, वह साहित्य नही हो सकता अत. अभिव्यक्ति जहा आनद का स्रोत वन जाए, वही वह साहित्य बनता है।

प्रेमचद अपने समय के ही नही, इस शताब्दी के प्रख्यात कथाकारो मे से एक रहे है। उन्होने साहित्य का जो स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है उसे एक अंश मे पूर्ण कहा जा सकता है। वे कहते हैं—"जिस साहित्य से हमारी सुरुचि नही जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममे शक्ति व गति पैदा न हो, हमारा सौदर्यप्रेम और स्वाधीनता का भाव जागृत न हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश उपलब्ध न हो, जो हममे सच्चा संकल्प और कठिनाइयो पर विजय पाने की सच्ची दृढता उत्पन्न न करे, वह हमारे लिए अर्थपूर्ण नही है, उसे साहित्य की कोटि मे परिगणित नही किया जा सकता।"[1] उन्होने साहित्य को समाज रूपी शरीर के मस्तिष्क के रूप मे स्वीकार किया है।

साहित्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भर्तृहरि ने नीतिशतक मे किया है। साहित्य को हमारे प्राचीन मनीषियों ने सुकुमार वस्तु कहा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर साहित्य के स्वरूप को दार्शनिक परिधान देते हुए कहते है—"भाव का भाषा से, प्रकृति का पुरुष से, अतीत का वर्तमान से, दूर का निकट से तथा मस्तिष्क का हृदय से जो अतरग मिलन है, वही साहित्य है।" हजारी प्रसाद द्विवेदी का मतव्य है—मनुष्य की सवसे सूक्ष्म और महनीय

---

१. प्रेमचद के कुछ विचार, पृ० २५

साधना का प्रकाश साहित्य है। अतः साहित्य का मर्म वही समझ सकता है, जो साधना और तपस्या का मूल्य समझे।[1] ऐसा साहित्य कभी पुराना नहीं हो सकता क्योंकि विज्ञान, समाज तथा सांस्कृतिक तत्त्व समय की गति के अनुसार बदलते हैं, पर साहित्य हृदय की वस्तु है। जो साहित्य नामधारी वस्तु लोभ और घृणा पर आधारित है, वह साहित्य कहलाने के योग्य नहीं है, वह हमे विशुद्ध आनंद नहीं दे सकता।

प्रसिद्ध समालोचक बाबू गुलाबराय कहते हैं—"जहा हित और मनोहरता की युति है, वही सत्साहित्य की सृष्टि होती है। "हित मनोहारि च दुर्लभ वच"—साहित्य इसी दुर्लभ को सुलभ बनाता है।"[2]

साहित्य की कसौटी

"जो साहित्य मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, हृदय को परदु:खकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है"—हजारीप्रसाद द्विवेदी की ये पंक्तियां साहित्य की कसौटियों को समग्र रूप से हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। ये साहित्य के भावतत्त्व को प्रकट करने वाली हैं पर बाह्य रूप से टालस्टॉय ने तीन प्रकार के नकारात्मक साहित्य का उल्लेख किया है—

1 Borrowed—कहीं से उधार लिया हुआ।

2 Imitated—कहीं से नकल किया हुआ।

3. Countefiet खोटा साहित्य।

इन तीनों प्रकार के साहित्य में मौलिकता एवं प्रभावोत्पादकता नहीं होती अत उन्हें साहित्य की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। प्रसिद्ध साहित्यकार नवीनजी का कहना है कि मेरे समक्ष सत्साहित्य का एक ही मापदण्ड है वह यह कि किस सीमा तक कोई साहित्यिक कृति मानव को उच्चतर, सुन्दरतम, अधिक परिष्कृत एवं समर्थ बनाती है।"

वही साहित्य प्रभविष्णु हो सकता है, जिसमे निम्न चार तत्त्वो का समावेश हो—१. जीवंत सत्य, २. स्वतंत्रता, ३ यथार्थ ४. क्रांति।

आचार्य तुलसी का साहित्य इन सभी विशेषताओं को अपने भीतर समेटे हुए है।

जीवंत सत्य

उन्होंने साहित्य की सामग्री एवं विषय रेक मे रखी पुस्तको से नहीं

---

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भा० ७, पृ० १३३,१६०

२. वही, पृ० १६९

अपितु उन जीवित व्यक्तियो से ली है जो प्रतिदिन हजारों की संख्या में उनके चरणो मे उपस्थित होते हैं। यही कारण है कि उनके साहित्य मे जीवंत सत्य का दर्शन होता है। यह सत्य कभी-कभी उनकी स्वयं की अनुभूति में भी प्रकट हो जाता है—

- मैने अपने छोटे मे जीवन मे गुस्सैल व्यक्ति बहुत देखे हैं पर उत्कृष्ट कोटि के क्षमाशील कम देखे हैं। गर्वित व्यक्तियो से मेरा आमना-सामना बहुत हुआ है पर विनम्र व्यक्ति कम देखे है। लोगो को फसाने के लिए व्यूह रचना करने वाले मायावी व्यक्ति बहुत मिले पर ऋजुता की विशेष साधना करने वाले कितने होते है ? लोभ के शिखर पर आरोहण करने वाले अनेक व्यक्तियो से मिला हूं पर सतोष की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए व्यक्ति कम देखे है। इसी प्रकार पढ़े-लिखे लोगो से मेरा सम्पर्क आए दिन होता है पर बहुश्रुत व्यक्तियों से साक्षात्कार करने का प्रसग कभी-कभी ही मिल पाता है।[1]
- स्याद्वाद से मैं यह सीख पाया हू कि सत्य उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है जिसके मन मे अपनी मान्यताओ का आग्रह नही होता।
- मै आचार की समता लेकर चलता हू अत दो विरोधी विचार भी मेरे सामने एक घाट पानी पी सकते है।
- अति हर्ष और विषाद, अति श्रम और विश्राम आदि अतियो से बचे रहने के कारण मैं आज भी अपने आपको तारुण्य की दहलीज पर खडा अनुभव कर रहा हू।
- विरोधो से डरने वालो को मै उचित परामर्श देना चाहता हू कि वे एक तटस्थद्रष्टा की भाति उसे देखते रहे और आगे बढ़ते रहे, भविष्य उन्हे स्वत बतला देगा कि बढे हुए ये कदम प्रगति को किस प्रकार अपने मे समेटे हुए चलेगे।

जीवन के ये अनुभूत सत्य हर किसी को प्रेरणा देने मे पर्याप्त है।

स्वतंत्रता

साहित्य के परिवेश में स्वतत्रता का अर्थ है—मौलिकता। आचार्य तुलसी के साहित्य की मौलिकता इस बात से नापी जा सकती है कि उन्होने समाज के उन अनछुए पहलुओ का स्पर्श किया है जिसकी ओर आम साहित्यकार का ध्यान ही नही जाता। उन्होने अनेक शब्दो को नया अर्थ भी प्रदान किया है। स्वतत्रता का अर्थ प्राय: विदेशी सत्ता से मुक्ति या नियम की पराधीनताओ से मुक्ति माना जाता है पर उन्होने उसे एक मौलिक अर्थवत्ता प्रदान की है—

---

१. एक बूद : एक सागर, पृ० १६९१

"यदि व्यक्ति स्वतंत्र है तो किसी क्रिया की प्रतिक्रिया नही करेगा। वह एक क्षण में प्रसन्न और एक क्षण मे नाराज नही होगा, एक क्षण में विरक्त और एक क्षण मे वासना का दास नहीं बनेगा।[1]

पदार्थवादी दृष्टिकोण ने व्यक्ति को इतना भौतिक और यांत्रिक बना दिया है कि उसके सामने जीवन का मूल्य नगण्य हो गया है। वे वैज्ञानिक प्रगति के विरोधी नही पर विज्ञान व्यक्ति पर हावी हो जाए, इसके घोर विरोधी है तथा इसमे भयंकर दुष्परिणाम देखते है। विज्ञान पर व्यग्य करता हुआ उनका निम्न वक्तव्य अनेक लोगो की मौलिक सोच को जागृत करने वाला है—"१० अगस्त १९८२ का धर्मयुग देखा। उसके तीसरे पृष्ठ पर एक विज्ञापन छपा है नोविनो सेल का। विज्ञापन के ऊपर के भाग मे एक आदमी का रेखाचित्र है और उसके निकट ही रखा हुआ है एक कैल्क्युलेटर। कैल्क्युलेटर सेल से काम करता है। उस रेखाचित्र के नीचे दो वाक्य लिखे हुए है— कैल्क्युलेटर लगातार काम करेगा इसका आश्वासन तो हम दे सकते है पर ये महाशय भी ऐसे ही काम करेंगे, इसका आश्वासन भला हम कैसे दे सकते हैं? एक आदमी का आदमी के प्रति कितना तीखा व्यग्य है? कहा विद्युतघट के रूप मे काम करने वाला सेल और कहा ऊर्जा का अखूट केंद्र आदमी?, सेल का निर्माता आदमी है वही आदमी अपने सजातीय का ऐसा क्रूर उपहास करे, कितनी बडी विडम्बना है।"[2] युगधारा को पहचानने के कारण इस प्रकार के अनेक मौलिक चिन्तन उनके साहित्य मे यत्र-तत्र मिल जाएगे। यह वेधकता और मौलिकता उनके साहित्य की अपनी निजता है।

यथार्थ

हिंदी साहित्य मे आदर्श और यथार्थ के सघर्ष की एक लम्बी परम्परा रही है। इसी आधार पर साहित्य के दो वाद प्रतिष्ठित है—आदर्शवाद और यथार्थवाद। यथार्थवादी जीवन की साधारणता का चित्रण करता है जबकि आदर्शवादी जीवन के असाधारण व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देता है। आदर्श केवल गुणो का चित्रण उपस्थित करता है जबकि यथार्थ गुण और अवगुण दोनों को अपने अचल मे समेट लेता है। आदर्श कही-कही अवगुण को भी गुण मे परिवर्तित कर देता है। आचार्य तुलसी मे आदर्शवाद और यथार्थवाद की समन्वित छाया परिलक्षित होती है इसलिए उनके साहित्य को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का प्रतीक कहा जा सकता है। वे इस तथ्य को मानकर चलते है कि यथार्थ को उपेक्षित करने वाला आदर्श केवल उपदेश या कल्पना हो सकती है, ठोस के धरातल पर उतरने की क्षमता उसमे नही होती।

१. जैन भारती, २६ जून, ५५
२. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० ३७

आदर्श के बारे मे उनकी अवधारणा यथार्थ के निकट है पर सतुलित है—"आदर्श वह नही होता, जिसके अनुसार कोई व्यक्ति चल ही नही सके और आदर्श वह भी नही होता जिसके अनुसार हर कोई आसानी से चल सके। आदर्श वह होता है जो व्यक्ति को साधारण स्तर से ऊपर उठाकर ऊचाई के उस विंदु तक पहुंचा दे जहां सकल्प की उच्चता और पुरुषार्थ की प्रवलता से पहुचा जा सकता है।

आदर्श और यथार्थ की अन्विति होने से उनका साहित्य अधिक जनभोग्य, प्रेरक तथा आकर्षक हो गया है। जीवन के हर क्षेत्र मे यहा तक कि प्रशासनिक अनुभवो मे भी यथार्थ और आदर्श के समन्वय की पुट देखी जा सकती है। उनका कहना है—"अनुशासन एक कला है। इसका शिल्पी यह जानता है कि कब कहा जाए और कहां सहा जाए। सर्वत्र कहा हीजाए तो धागा टूट जाता है और सर्वत्र सहा ही जाए तो वह हाथ से छूट जाता है।"

क्रांति

नेपोलियन बोनापार्ट कहते थे—क्राति अति हानिकारक कूडे के ढेर के सदृश है, जिसमे अति उत्तम वानस्पतिक पैदावार होती है। आचार्य तुलसी क्राति को उच्छृखलता, उद्दडता और अशाति नही मानते। उनकी दृष्टि मे इन तत्त्वो से जुडी क्राति, क्राति नही, भ्राति है। वे क्रांति का अर्थ करते है—"सामाजिक धारणाओ, व्यवस्थाओ और व्यवहारो का पुनर्जन्म। इसका सूत्र-पात वही कर सकता है जो स्वयं विपपान कर दूसरो को अमृत पिलाता है।" उनके साहित्य का हर पृष्ठ वोलता है कि उनकी विचारधारा एक अहिंसक क्रातिकारी की विचारधारा है। वे स्वय अपनी अनुभूति को लिखते हुए कहते है—"यदि मैंने समय के साथ चलने की समाज को सूझ नही दी तो मै अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाऊंगा। इसलिए समाज की आलोचना का पात्र बनकर भी मैंने समय-समय पर प्रदर्शनमूलक प्रवृत्तियो, धार्मिक अधपरपराओ और अधानुकरण की वृत्ति पर प्रहार करके समाज मे क्राति घटित करने का प्रयत्न किया है।"[1]

उनके साहित्य मे मुख्यत. सामाजिक एव धार्मिक क्राति के विंदु मिलते है। सामाजिक क्रांति के रूप मे उन्होने समाज की आडम्वरप्रधान विकृत प्रवृत्तियो को वदलने के लिए रचनात्मक उपाय निर्दिष्ट किए है।

दहेज प्रथा के विरोध में युवापीढ़ी मे अभिनव जोश भरते हुए तथा उसके प्रतिकार का मार्ग सुझाते हुए उनकी क्रांतवाणी पठनीय ही नही, मननीय भी है—अपनी पीढी की तेजस्विता और यशस्विता के पहरुए वनकर एक साथ सैकड़ो-हजारो युवक-युवतियां जिस दिन वुलदी के साथ दहेज के विरुद्ध

१. एक बूद . एक सागर, पृ० १७२७

आवाज उठाएगे, अहिंसात्मक तरीके से समाज की इन घिनौनी प्रवृत्ति पर अंगुलिनिर्देश करेंगे तो दहेज की परम्परा चरमराकर टूट पड़ेगी।[1]

समाज मे क्राति पैदा करने का उनका दृढ सकल्प समय-समय पर मुखरित होता रहता है—"समाज के जिस हिस्से मे शोषण है, झूठ है, अधिकारो का दमन है, उसे मैं बदलना चाहता हूं और उसके स्थान पर नैतिकता एवं पवित्रता से अनुप्राणित समाज को देखना चाहता हूं। इसलिए मैं जीवन भर शोषण और अमानवीय व्यवहार के विरोध मे आवाज उठाता रहूंगा।"

धर्मक्राति का स्वरूप उनके शब्दो में इस प्रकार है—"धर्मक्रांति का स्वरूप है—जो न धर्मग्रंथो मे उलझे, न धर्मस्थानो में। जो न स्वर्ग के प्रलोभन से हो और न नरक के भय से। जिसका उद्देश्य हो जीवन की सहजता और मानवीय आचारसहिता का ध्रुवीकरण।

धर्मक्राति द्वारा उन्होने धर्म को मदिर-मस्जिद के कटघरे से निकाल कर आचरण के साथ जोडने का प्रयत्न किया है।

उन्होने धर्मक्रांति के पांच सूत्र दिए है—

१. धर्म को अन्धविश्वास की कारा मे मुक्त कर प्रबुद्ध लोक-चेतना के साथ जोडना।
२. रूढ उपासना से जुड़े हुए धर्म को प्रायोगिक रूप देना।
३. परलोक सुधारने के प्रलोभन से ऊपर उठाकर धर्म को वर्तमान जीवन की शुद्धि मे सहायक बनाना।
४. युगीन समस्याओ के सदर्भ मे धर्म को समाधान के रूप मे प्रस्तुत करना।
५. धर्म के नाम पर होने वाली लड़ाइयो को आपसी वार्तालाप के द्वारा निपटाकर सब धर्मो के प्रति सद्भावना का वातावरण निर्मित करना।[2]

तथाकथित धार्मिको के जीवन पर व्यंग्य करती उनकी ये पंक्तियां कितनी क्रातिकारी बन पडी है—

पानी को भी छानकर पीने वाले, चीटियो की हिंसा से भी कांपने वाले, प्रतिदिन धर्मस्थान मे जाकर पूजा-पाठ करने वाले, प्रत्येक प्राणी मे समान आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करने वाले धार्मिको को जब तुच्छ स्वार्थ में फसकर मानवता के साथ खिलवाड़ करते देखता हूं, धन के पीछे पागल होकर इन्सानियत का गला घोटते देखता हूं तो मेरा अन्तःकरण बेचैन हो जाता है।[3]

---

१. अनैतिकता की धूप . अणुव्रत की छतरी, पृ० १७८
२. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० १४६
३. एक बूद : एक सागर, पृ० १७०१

यह क्रांतवाणी उनके क्रांत व्यक्तित्व की द्योतक ही नहीं, वरन् धार्मिक, सामाजिक विकृतियो एवं अंधरूढियो पर तीव्र कटाक्ष एवं परिवर्तन की प्रेरणा भी है। इस सदर्भ मे नरेन्द्र कोहली की निम्न पक्तिया उद्धरणीय एवं मननीय है—"मदिरा की भाति केवल मनोरंजन करने वाला साहित्य मानसिक समस्याओ को भुलाने मे सहायता देकर मानसिक राहत दे सकता है पर इसमें उनके निराकरण के प्रयत्न की उपेक्षा होने से समस्या समाप्त नही होती, वरन् भुला दी जाती है। ...... किसी की पीड़ा का उपचार इजेक्शन देकर सुला देना नही है अतः किसी राष्ट्र मे समस्याओ की चुनौती स्वीकार करने के लिए जो क्षमता होती है—इस प्रकार के साहित्य से वह क्षीण होकर क्रमश· नष्ट हो जाती है। सक्रियता का लोप राष्ट्र मे असहायता का भाव उत्पन्न करता है, जो अंतत राष्ट्र के पतन का कारण होता है। जो साहित्य किसी राष्ट्र को महान् नही बनाता, वह महान् साहित्य कैसे माना जा सकता है?[1]

इस प्रकार जीवत सत्य, स्वतन्त्रता, यथार्थ एव क्राति इन चारों कसौटियो पर आचार्य तुलसी का साहित्य स्वर्ण की भाति खरा उतरता है।

साहित्य का उद्देश्य

जीवन मे सत्य, शिव और सुन्दर की स्थापना के लिए साहित्य की आवश्यकता रहती है। यद्यपि यह सत्य है कि साहित्य का उद्देश्य या सप्रेषण भिन्न-भिन्न लेखको का भिन्न-भिन्न होता है किंतु जव-जब साहित्य अपने मूल उद्देश्य से हटकर केवल व्यावसायिक या मनोरजन का साधन बन जाता है, तव-तव उसका सौन्दर्यपूरित शरीर क्षत-विक्षत हो जाता है। साहित्य मानसिक खाद्य होता है अत वह सोद्देश्य होना चाहिए। महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य के उद्देश्य को इन शब्दो मे अकित करते हैं—'साहित्य ऐसा होना चाहिए, जिसके आकलन से दूरदर्शिता बढे, बुद्धि को तीव्रता प्राप्त हो, हृदय मे एक प्रकाश की, सजीवनी शक्ति की धारा बहने लगे, मनोवेग परिष्कृत हो जाए और आत्म गौरव की उद्भावना तीव्र होकर पराकाष्ठा तक पहुच जाए।'

कथा मनीषी जैनेन्द्र आत्माभिव्यक्ति को साहित्य का प्रयोजन मानते है। उनके अनुसार विश्वहित के साथ एकाकार हो जाना अर्थात् बाह्य जीवन से अतर् जीवन का सामजस्य स्थापित करना ही साहित्य का परम लक्ष्य है। आचार्य शुक्ल साहित्य का उद्देश्य एकता मानते हुए लिखते हैं—'लोक-जीवन मे जहा भिन्नताए हैं, असमानताएं है, दीवारे है, साहित्य वहा जीवन की एकरूपता स्थापित करता है।"

---

१. प्रेमचंद, पृ० १०-११

राष्ट्रपति डॉ० शकरदयाल शर्मा केवल विषय प्रतिपादन या तथ्यों के प्रस्तुतीकरण को ही साहित्य का उद्देश्य मानने को तैयार नहीं हैं। वे तो लिखने की सार्थकता तभी स्वीकारते है जब लिखे तथ्य को कोई याद रखे, तिलमिलाए, सोचने को बाध्य हो जाए, गुनगुनाता रहे तथा ऊभ-चूभ करने को विवश हो जाए। अत. साहित्य का उद्देश्य यही होना चाहिए कि यथार्थ को इतने प्रभावशाली और हृदयस्पर्शी ढग से व्यक्त किया जाए कि पाठक उस सोच को क्रियान्वित करने की दिशा मे प्रयाण कर दे। अतः साहित्य समाज का दर्पण या एक्सरे ही नही, कुशल मार्गदर्शक भी होता है। लोक-प्रवाह मे बहकर कुछ भी लिख देना साहित्य की महत्ता को संदिग्ध बना देना है। सक्षेप में लेखन के उद्देश्य को निम्न बिंदुओं में प्रकट किया जा सकता है—

- अंधकार से प्रकाश की ओर चलने और दूसरों को ले चलने के लिए लिखा जाए।
- जडता, अधविश्वास और अज्ञान से मुक्ति पाने के लिए लिखा जाए।
- शोषण और अन्याय के विरुद्ध तनकर खड़ा होने की प्रेरणा देने के लिए लिखा जाए।
- व्यक्ति और समाज को बदलने और दायित्वबोध जगाने के लिए लिखा जाए।
- अपनी वेदना को दूसरों की वेदना से जोड़ने के लिए लिखा जाए।
- पाशविक वृत्तियो से देवत्व की ओर गति करने के लिए लिखा जाए।

आचार्य तुलसी के साहित्य मे इन सब उद्देश्यो की पूर्ति एक साथ दृष्टिगोचर होती है क्योंकि उन्होने कलम एवं वाणी की शक्ति का उपयोग सही दिशा मे किया है। उनका लेखन एव वक्तव्य लोकहित के साथ आत्महित से भी जुडा हुआ है। वे अनेक बार इस बात की अभिव्यक्ति देते हुए कहते है— "आत्मभाव का तिरस्कार कर यदि साहित्य का सृजन या प्रकाशन होता है तो वह मुझे प्रिय नहीं होगा।"[१] इन पक्तियो से स्पष्ट है कि साहित्यकार कहलवाने के लिए कोई कलात्मक चमत्कार प्रस्तुत करना उन्हे अभीष्ट नही है। यही कारण है कि उनके साहित्य मे सत्य का अनुगुजन है, मानवीय सवेदना को जागृत करने की कला है, तथा युग की अनेक ज्वलत समस्याओं के समाधान का मार्ग है। उनका साहित्य सामाजिक विसगतियों के विरुद्ध आवाज ही

---

१. जैन भारती, २६ जनवरी, १९६४।

नही उठाता बल्कि उनका समाधान तथा नया विकल्प भी प्रस्तुत करता है, जिससे पाठक सहजतया मानवीय मूल्यो को अपने जीवन मे स्थान दे सके। बुराई को देखकर वे कही भी निर्लिप्त द्रष्टा नही बने प्रत्युत् हर त्रुटि के प्रति अंगुलिनिर्देश करके समाज का ध्यान आकृष्ट किया है। उनका साहित्य संघर्ष करते मानव मे शाति तथा न्याय के प्रति अदम्य उत्साह और उल्लास पैदा करता है। संक्षेप मे आचार्य तुलसी के साहित्य के उद्देश्यो को निम्न बिंदुओ में समेटा जा सकता है—

- कांता सम्मत उपदेश द्वारा व्यक्ति-व्यक्ति का सुधार
- मन मे कल्याणकारी भावो की जागृति
- जीवन के सही लक्ष्य की पहचान तथा मानवीय आदर्शो की प्रतिष्ठा।
- भावचित्र द्वारा पाठक के मन मे सरसता पैदा करना।
- किसी विचार या सिद्धांत का प्रतिपादन।
- पुराने साहित्य को नवीन शैली मे युगानुरूप प्रस्तुत करना जिससे साहित्य की मौलिकता नष्ट न हो, नई पीढी का मार्गदर्शन हो सके तथा स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी बढे।
- समाज मे गति एव सक्रियता पैदा करना।
- भौतिकवाद के विरुद्ध अध्यात्म एव नैतिक शक्ति की प्रतिष्ठा।

निष्कर्षत: उनके साहित्य का मूल उद्देश्य यही है कि जन-जीवन को चरित्रनिष्ठा, पवित्रता, मानवता, सदभावना और जीवनकला का सक्रिय प्रशिक्षण मिले।

साहित्यकार

साहित्यकार किसी भी देश या समाज का अग्रेगावा होता है। वह समाज और देश को वैचारिक पृष्ठभूमि देता है, जिसके आधार पर नया दर्शन विकसित होता है। वह शब्द शिल्पी ही साहित्यकार कहलाने का गौरव प्राप्त करता है, जिसके शब्द मानवजाति के हृदय को स्पंदित करते रहते हैं। साहित्यकार के स्वरूप का विश्लेषण स्वय आचार्यश्री तुलसी के शब्दो मे यो उतरता है—"साहित्यकार सत्ता के सिहासन पर आसीन नही होता, फिर भी उसकी महत्ता किसी सम्राट् या प्रशासक से कम नहीं होती। शासक के पास दड होता है, कानून होता है, जबकि साहित्यकार के पास लेखनी होती है और होता है मौलिक चिंतन एव पैनी दृष्टि। कहा जा सकता है कि साहित्यकार के शब्द समाज की विसगतियो एवं विकृतियो के विरुद्ध वह क्रांति पैदा कर सकते हैं, जो बडे से बड़ा कुबेरपति या सत्ताधीश भी नही कर सकता। विनोबाभावे साहित्यकार को देवर्षि के रूप मे स्वीकार करते हैं, जिसके

दिल मे समष्टिमात्र के प्रति प्रेम और मंगलभाव भरा हुआ होता है।

पाश्चात्य विद्वान् साहित्यकार को सामान्य मनुष्य से कुछ भिन्न कोटि का प्राणी मानते हैं। वे सच्चे साहित्यकार में अलौकिक गुण स्वीकार करते हैं, जिससे वह स्वयं को विस्मृत कर मस्तिष्क मे बुने गये ताने-बाने को कागज पर अंकित कर देता है। युगीन चेतना की जितनी गहरी एवं व्यापक अनुभूति साहित्यकार को होती है, उतनी अन्य किसी को नही होती। अतः अनुभूति एवं संवेदना साहित्यकार की तीसरी आंख होती है। इसके अभाव में कोई भी व्यक्ति साहित्य-सृजन मे प्रवृत्त नही हो सकता क्योंकि केवल कल्पना के बल पर की गयी रचना सत्य से दूर होने के कारण पाठक पर उतना प्रभाव नही डाल सकती। प्रेमचंद भी अपनी इसी अनुभूति को साहित्यकारो तक संप्रेपित करते हुए कहते है—"जो कुछ लिखो, एकचित्त होकर लिखो। वही लिखो, जो तुम सोचते हो। वही कहो, जो तुम्हारे मन को लगता है। अपने हृदय के सामंजस्य को अपनी रचना मे दर्शाओ, तभी प्राणवान् साहित्य लिखा जा सकता है"[1] आर्याप्रसाद त्रिपाठी इस बात को निम्न शब्दो में प्रकट करते है- साहित्यकार अपने समय और समाज का प्रतिनिधि होता है। उसका यह दायित्व है कि समाज और देश की नाडी को परखे, उसकी धड़कन को समझे और फिर सृजन करे। सृजन की वेदना को स्वयं झेले पर समाज को मुस्कान के फूल अर्पित करे[2]। विद्वानो द्वारा दी गई साहित्यकार की कुछ कसौटिया निम्न बिंदुओ मे व्यक्त की जा सकती है—

साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नही हैं। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई भी नही है। बल्कि उनसे भी आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है।

प्रेमचंद

सच्चे साहित्यकार का यही लक्षण है कि उसके भावों मे व्यापकता होती है। वह विश्वात्मा से ऐसी हारमनी प्राप्त कर लेता है कि उसके भाव प्रत्येक प्राणी को अपने ही भाव मालूम देने लगते है इसलिए साहित्यकार स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।... ... ...दुनिया के दुःख दर्द से आंख मूंदने वाला महान् साहित्यकार नही हो सकता।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्यकार की सबसे बड़ी कसौटी है कि वह अपने प्रति सच्चा रहे। जो अपने प्रति सच्चा रहकर साहित्य सृजन करता है, उसका साहित्य स्वतः

---

१. साहित्य का उद्देश्य, पृ० १४२

२. कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५

ही लोकमंगल की भावना से संलग्न हो जाता है।

जैनेन्द्र

जो अपने पथ की सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बाधाओ को चुनौती देता हुआ सभी आघातों को हृदय पर झेलता हुआ लक्ष्य तक पहुचता है, उसी को युग-स्रष्टा साहित्यकार कह सकते हैं।

महादेवी वर्मा

"लेखकों की मसि शहीदो की रक्त बिन्दुओ से अधिक पवित्र है"—हजरत मुहम्मद की ये पंक्तिया ऐसे ही प्रेरक एव सजीव साहित्यकारों के लिए लिखी गयी हैं।

डॉ० प्रभुदयाल डी० वैश्य ने समाज की दृष्टि से साहित्यकार को तीन वर्गों मे बांटा है—१. प्रतिक्रियावादी २ सुधारवादी ३ क्रान्तिकारी।

प्रथम वर्ग का साहित्यकार समाज की सम्पूर्ण मान्यताओ एवं व्यवस्थाओ को ज्यो की त्यों स्वीकार कर लेता है। सामाजिक त्रुटि को देख कर भी उसकी उपेक्षा करना हितकर समझता है। दूसरे वर्ग के अतर्गत वे साहित्यकार आते है जो सामाजिक त्रुटियो को देखते/अनुभव करते हैं पर उन्हे विनष्ट न करके सुधार का प्रयत्न करते है। सुधार मे उनकी समझौता-वादी वृत्ति होती है। तीसरे वर्ग के अन्तर्गत वे साहित्यकार है जो कातद्रष्टा तथा परिवर्तनवादी है। वे न केवल सामाजिक विषमताओ एव त्रुटियो की तीव्र आलोचना करते है, अपितु उन्हे मिटाने का भी भरसक प्रयत्न करते हैं। ऐसे व्यक्तियो का सदा समाज द्वारा विरोध होता है[1]।

आचार्य तुलसी को तीसरी कोटि के साहित्यकारो मे परिगणित किया जा सकता है। उन्होने अपनी लेखनी से समाज मे फैले विघटन, टूटन, अनास्था एव अविश्वास के स्थान पर नया सगठन, एकता, आस्था और आत्मविश्वास भरने का प्रयत्न किया है। समाज की विकृतियो एव परम्परा पोषित अधरूढियो को केवल दर्शाया ही नही, उसे मांजकर, निखारकर परिष्कृत एवं व्यवस्थित रूप देने का सार्थक प्रयत्न किया है। इस क्रातिकारी परिवर्तन के पुरोधा होने से उन्हें स्वत. युगप्रवर्त्तक का खिताब मिल जाता है।

उन्होंने सामाजिक जीवन के उस पक्ष को प्रकट करने की कोशिश की है, जो नही है पर जिसे होना चाहिए। वे इस बात को मानकर चलते है कि साहित्यकार मात्र छायाकार या अनुकृतिकार नही होता है वरन् स्रष्टा होता है। स्रष्टा होने के कारण अनेक सघर्षों को झेलना भी उसकी नियति होती है। उनकी निम्न पंक्तियां इसी सचाई को उजागर करने वाली है—

१. साहित्य : समाज शास्त्रीय सदर्भ, पृ० १४५-१४६

"साहित्य-सृजन का मार्ग सरल नहीं, कांटों का मार्ग है। आलोचना और निन्दा की परवाह न करते हुए साहित्यकार को जीवन शुद्धि के राजमार्ग पर जनता को ले जाना होता है, स्वार्थपरता, भोगलिप्सा और आडम्बर के विषैले वातावरण से आकुल लोक-जीवन में नि.स्वार्थता, त्याग और सादगी का अमृत ढालना होता है, तभी उसका कर्तृत्व, साधना और सृजन सफल है।"

आ० तुलसी की लेखनी यथार्थ का पुनर्सृजन करती हैं अतः वे क्रांतद्रष्टा साहित्यकार तो है ही पर अध्यात्म-योगी एवं अप्रतिबद्धविहारी होने के कारण साहित्यकार से पूर्व अध्यात्म के साधक भी हैं। इसी कारण उनके साहित्य को बहुत व्यापक परिवेश मिल गया है। आचार्य तुलसी जैसे साहित्यकार आज कम हैं जिनके साहित्य से भी अधिक भव्य, विशाल, आकर्षक एव तेजस्वी उनका वास्तविक रूप है तथा जो केवल अध्यात्म के परिप्रेक्ष्य मे ही सारी चर्चाए करते है और अध्यात्म को मध्यबिंदु रखकर ही सारा ताना-बाना बुनते है। जीवन के प्रति प्रबल आत्मविश्वास, सत्य के प्रति अटूट आस्था और निरन्तर अध्यात्म में रहने का अभ्यास— जीवन की ये विशेषताए उनके साहित्य मे जुडने के कारण वे पठनीय एवं सक्षम साहित्यकार बन गए है। प्रसिद्ध उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली का मतव्य है कि पठनीयता के लिए लेखक की सरलता, सहजता एवं ऋजुता एक अनिवार्य गुण है। यदि लेखक के मन मे ग्रथिया नही है, कही दुराव-छिपाव नही है, कही अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न नही है, तो निश्चित रूप से वह लेखक सहज और ऋजु होता है। पाठक उसकी योग्यता तथा ईमानदारी पर विश्वास करता है, शका बीच मे रह नही पाती अत वह उसे पढ़ता चला जाता है।[1] आचार्य तुलसी सहजता और ऋजुता के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। साहित्य सृजन उनके लिए न जीविकोपार्जन का साधन है न व्यसन बल्कि वह उसे अपनी साधना का ही एक अग मानते है। इसी कारण उनका साहित्य सहजता एव ऋजुता से पूरी तरह ओतप्रोत है।

वे स्वय न केवल सफल साहित्यस्रष्टा है बल्कि उन्होंने अनेको को इस मार्ग मे प्रस्थित करके प्रेरक एव प्रभावी साहित्यकारो की एक पूरी शृखला खड़ी की है। जैसे पाश्चात्य जगत् मे होमर साहित्य के आदिस्रष्टा माने जाते है। वैसे ही तेरापंथ धर्मसघ मे आचार्य तुलसी को हिन्दी साहित्य सृजन का आदि प्रेरक कहा जा सकता है। उनकी प्रेरणा ने साहित्य की जो अविरल धार बहाई है, वह किसी भी समाज के लिए आश्चर्य एव प्रेरणा की वस्तु हो सकती है। आज से ४० साल पहले उठने वाला प्रश्न कि 'क्या पढे' अब 'क्या-क्या पढे' मे रूपायित हो

---

१. प्रेमचद पृ. ३९

गया है । वे अपनी साहित्य सृजन की अनुभूति को इस भाषा मे प्रकट करते हैं– "साहित्य सृजन की प्रेरणा देने मे मुझे जितना आत्मतोष होता है, उतना ही आत्मतोष नया सृजन करते समय होता है ।" अपने शिष्य समुदाय को साहित्य के क्षेत्र मे नयी परम्परा स्थापित करने की प्रेरणा-मदाकिनी उनके मुखारविंद से समय-समय पर प्रवाहित होती रहती है—"आज समाज की चेतना को झकझोरने वाला साहित्य नही के बराबर है । इस अभाव को भरा हुआ देखने के लिए अथवा साहित्य और सस्कृति के क्षेत्र मे जो शुचितापूर्ण परम्पराएं चली आ रही है, उनमे उन्मेषो के नए स्वस्तिक उकेरे हुए देखने के लिए मै बेचैन हू । मेरे धर्मसघ के सुधी साधु-साध्वियां इस दृष्टि से सचेतन प्रयास करें और कुछ नई संभावनाओ को जन्म दें, यह अपेक्षा है ।"

इसी सदर्भ मे उनकी दूसरी प्रेरणा भी मननीय है - "साहित्य वही तो है जो यथार्थ को अभिव्यक्ति दे । वह कृत्रिम बनकर अभिव्यक्त हो तो उसमे मौलिकता सुरक्षित नही रहती । मै अपने शिष्यो से यह अपेक्षा रखता हू कि वे इस गुरुतर दायित्व को जिम्मेवारी से निभायेगे ।[1]"

आचार्य तुलसी एक बृहद् धार्मिक समुदाय के आध्यात्मिक नेता है । उनके वटवृक्षीय व्यक्तित्व के निर्देशन मे अनेको प्रवृत्तिया चालू है अत वे साहित्य सृजन मे अधिक समय नही निकाल पाते किन्तु उनके मुख से जो भी वाक्य नि.सृत होता है, वह अमूल्य पाथेय बन जाता है । आचार्य तुलसी के साहित्यिक व्यक्तित्व का आकलन उनके साहित्य की कुशल सपादिका महा-श्रमणी साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी इन शब्दो मे करती है—"उनका कवित्व हर क्षण जागृत रहता है, फिर भी वे काव्य का सृजन कभी-कभी करते है। उनका लेखन हर क्षण जागरूक रहता है, किन्तु कलम की नोक से कागज पर अकन यदा कदा ही हो पाता है । इसका कारण कि वे कवि और लेखक होने के साथ-साथ प्रशासक भी है, आचार्य भी है ।" फिर भी उन्होने सरस्वती के अक्षय भडार को शताधिक ग्रथो से सुशोभित किया है ।

प्रसिद्ध साहित्यकार सोल्जेनोत्सिन साहित्यकार के दायित्व का उल्लेख करते हुए कहते है—मानव-मन, आत्मा की आतरिक आवाज, जीवन-मृत्यु के बीच सघर्प, आध्यात्मिक पहलुओ की व्याख्या, नश्वर ससार मे मानवता का बोलबाला जैसे अनादि सार्वभौम प्रश्नो से जुडा है साहित्यकार का दायित्व । यह दायित्व अनन्त काल से है और जब तक सूर्य का प्रकाश और मानव का अस्तित्व रहेगा, साहित्यकार का दायित्व भी इन प्रश्नो से जुडा रहेगा ।'

आचार्य तुलसी के साहित्यिक दायित्व का मूल्याकन भी इन कसौटियो पर किया जाए तो उपर्युक्त सभी प्रश्नो के उत्तर हमे प्राप्त हो जाते

---

१. जैन भारती, १७ सित० १९६१

है। आतरिक आवाज वही प्रकट कर सकता है जो दृढ मनोवली और आत्म-विजेता हो। उनकी निम्न अनुभूति हजारों-हजारों के लिए प्रेरणा का कार्य करेगी—"मेरे सयमी जीवन का सर्वाधिक सहयोगी और प्रेरक साथी कोई रहा है तो वह है—संघर्ष। मेरा विश्वास है कि मेरे जीवन मे इतने संघर्ष न आते तो शायद मैं इतना मजबूत नही बन पाता। सघर्ष से मैंने बहुत कुछ सीखा है, पाया है। सघर्ष मेरे लिए अभिशाप नहीं, वरदान साबित हुए हैं।[1] इसी प्रसग मे उनका एक दूसरा वक्तव्य भी हृदय मे आध्यात्मिक जोश भरने वाला है—"मैं कहूंगा कि मैं राम नही, कृष्ण नहीं, बुद्ध नही, महावीर नही, मिट्टी के दीए की भांति छोटा दीया हूं। मैं जलूंगा और अधकार को मिटाने का प्रयास करूगा।"[2]

आचार्य तुलसी ने भौतिक वातावरण मे अध्यात्म की लौ जलाकर उसे तेजस्वी बनाने का भगीरथ प्रयत्न किया है। उनकी दृष्टि में अपने लिए अपने द्वारा अपना नियन्त्रण अध्यात्म है। वे अध्यात्म साधना को परलोक से न जोडकर वर्तमान जीवन से जोड़ने की बात कहते हैं। अध्यात्म का फलित उनके शब्दो मे यों उद्गीर्ण है—अध्यात्म केवल मुक्ति का पथ ही नही, वह शाति का मार्ग है, जीवन जीने की कला है, जागरण की दिशा है और रूपातरण की सजीव प्रक्रिया है।

कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी ऐसे सृजनधर्मा साहित्यकार है जिन्होने प्राचीन मूल्यो को नए परिधान मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उन्होने साहित्य सृजन के लिए लेखनी उस काल मे उठायी जब मानवीय मूल्यो का विघटन एव बिखराव हो रहा था। भारतीय समाज पर पश्चिमी मूल्य हावी हो रहे थे। उस समय मे प्रतिनिधि भारतीय सन्त लेखक के दायित्व का निर्वाह करके उन्होने भारतीय संस्कृति के मूल्यो को जीवित रखने एवं स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

वे केवल अपने अनुयायियों को ही नही, सम्पूर्ण साहित्य जगत् को भी समय-समय पर सम्बोधित करते रहते हैं। आज के साहित्यकारो की त्रुटिपूर्ण मनोवृत्ति पर अगुलि-निर्देश करते हुए वे कहते है—"आज के लेखक की आस्था शृंगार रस प्रधान साहित्य के सृजन में है क्योकि उसकी दृष्टि मे सौन्दर्य ही साहित्य का प्रधान अंग है। लेकिन मैं मानता हूं कि सौन्दर्य से भी पहले सत्य की सुरक्षा होनी चाहिये। सत्य के बिना सौन्दर्य का मूल्य नही हो सकता।

प्रेमचद्र ने सत्य को साहित्य के अनिवार्य अंग के रूप में ग्रहण किया

---

१. एक बूंद . एक सागर, पृ० १७३०
२. एक बूद : एक सागर, पृ० १७१२

है। उनकी दृष्टि मे यदि लेखक मे सत्यजन्य पीड़ा नही है तो वह सत्साहित्य की रचना नही कर सकता। आचार्य तुलसी ने भी साहित्य की गुरुता का अकन करते हुये अपने साहित्य मे सत्य और सौन्दर्य का सामजस्य स्थापित किया है। उनकी यह प्रेरणा एव साहित्यिक आदर्श साहित्यकारो की चेतना को झकृत कर उन्हे युगनिर्माण की दिशा में प्रेरित करते रहेगे।

साहित्य का वैशिष्ट्य

राष्ट्र, समाज तथा मनुष्य को प्रभावित करने वाले किसी भी दर्शन और विज्ञान की प्रस्तुति का आधार तत्त्व है—साहित्य। सत्साहित्य मे तोप, टैंक और एटम से भी कई गुना अधिक ताकत होती है। अणुअस्त्र की शक्ति का उपयोग निर्माणात्मक एव ध्वंसात्मक दोनो रूपो मे हो सकता है, पर अनुभवी साहित्यकार की रचना मानव-मूल्यो मे आस्था पैदा करके स्वस्थ समाज की सरचना करती है। साहित्य द्वारा समाज मे जो परिवर्तन होता है; वह सत्ता या कानून से होने वाले परिवर्तन से अधिक स्थायी होता है। अतः दुनिया को बदलने मे सत्साहित्य की निर्णायक भूमिका रही है। हजारीप्रसाद द्विवेदी तो यहा तक कह देते है कि साहित्य वह जादू की छडी है, जो पशुओ मे, ईट-पत्थरो मे और पेड-पौधो मे भी विश्व की आत्मा का दर्शन करा देती है।"

सत्साहित्य की महत्ता को लोकमान्य गगाधर तिलक की इस आत्मानुभूति मे पढा जा सकता है—"यदि कोई मुझे सम्राट् बनने के लिए कहे और साथ ही यह शर्त रखे कि तुम पुस्तके नही पढ़ सकोगे तो मैं राज्य को तिलाञ्जलि दे दूगा और गरीब रहकर भी साहित्य पढूगा।" यह पुस्तकीय सत्य नही, किन्तु अनुभूति का सत्य है। अत. साहित्य के महत्त्व को वही आंक सकता है, जो उसका पारायण करता है। फिर वह साहित्य पढ़े बिना वैसी ही दुर्बलता एव मानसिक कमजोरी की अनुभूति करता है, जैसे बिना भोजन किए हमारा शरीर।

साहित्य ही वह माध्यम है, जो हमारी सस्कृति की सुरक्षा कर उसे पीढी दर पीढ़ी सक्रात करता है। महावीर, बुद्ध, व्यास और वाल्मीकि ने साहित्य के माध्यम से जिन आदर्शों की सृष्टि की, वे आज भी भारतीय सस्कृति के गौरव को अभिव्यक्त करने मे पर्याप्त हैं। जहां साहित्य नही, वहा जीवन सरस एव रम्य नही हो सकता। जीवन मे जो भी आनन्दबोध, सौंदर्यबोध और सुखबोध है, उसकी अनुभूति साहित्य द्वारा ही संभव है। साहित्य द्वारा प्राप्त आनद की अनुभूति द्विवेदीजी के साहित्यिक शब्दो मे पढ़ी जा सकती है—"साहित्य वस्तुतः एक ऐसा आनद है जो अतर मे अंटाए नही अंट सकता। परिपक्व दाड़िम फल की भाति वह अपने रंग और रस को

अपने भीतर बंद नही रख पाता। मानव का अतर भी जब रस और आनंद से आप्लावित हो जाता है तो वह गा उठता है, काव्य करने बैठता है, प्रवचन देता है तथा तथ्यात्मक जगत् से सामग्री एकत्रित करके छदों मे, स्वरो मे, अनुच्छेदो मे, परिच्छेदो मे, सर्गो मे, अको मे अपना उच्छलित आनंद भर देता है और श्रोता तथा पाठक को भी उस आनन्द मे सराबोर कर देता है।" हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा अनुभूत यह आनंद आचार्य तुलसी के साहित्य मे पदे-पदे पाया जाता है। उनका काव्य साहित्य तो मानो आनंद का सागर ही है जिसमे निमज्जन करते-करते पाठक अलौकिक अनुभूति से अनुप्रीणित हो जाता है।

आचार्य तुलसी ने अपने साहित्य मे ऐसे चिरन्तन सत्यों को उकेरा है, जिसके समक्ष देश और काल का आवरण किसी भी प्रकार का व्यवधान उपस्थित करने मे अक्षम और असफल रहा है। उन्होंने मानव-मन और बाह्य जीवन मे बिखरे संघर्षों का चित्रण इतनी कुशलता से किया है कि वह साहित्य सार्वजनिक एव सार्वकालिक बन गया है। विजयेन्द्र स्नातक उनके साहित्य के बारे मे अपनी टिप्पणी व्यक्त करते हुए कहते है—'मैं निःसंकोच भाव से कह सकता हू कि आचार्य श्री की वाणी सदैव किसी महत्त्वपूर्ण अर्थ का अनुगमन करती है।"[1] उनका साहित्य इसलिए महत्त्वपूर्ण नही कि वह विपुल परिमाण मे है बल्कि इसलिए उसका महत्त्व है कि मनुष्य को सच्चरित्र बनाने का बहुत बडा लक्ष्य उसके साथ जुडा हुआ है। वे ऐसे सृजन-धर्मा साहित्यस्रष्टा हे, जिनके अत करण मे करुणा का स्रोत कभी सूखता नही। समाज को बदलकर उसे नए साचे मे ढालने की प्रेरणा उनके सास-सास मे रमी हुई है। समाज की विसगतियो की इतनी सशक्त अभिव्यक्ति शायद ही किसी दूसरे लेखक ने की हो। वे इस बात मे आस्था रखते है कि यदि समाज की बुराइयो और विकृत परम्पराओं मे परिवर्तन नही आता है तो उसमे साहित्यकार भी कम जिम्मेवार नही है।

आचार्य तुलसी ने केवल उन्ही तथ्यों या समस्याओ को प्रस्तुति नही दी है, जिसे समाज पहले ही स्वीकृति दे चुका हो। उन्होने अनेक विषयो मे समाज को नया चितन एव दिशादर्शन दिया है अतः बार-बार पढने पर भी उनका साहित्य नवीन एव मौलिक प्रतीत होता है। कही-कही तो समाज की विकृतियो को देखकर वे अपनी पीड़ा को इस भाति व्यक्त करते हैं कि पाठक उसे अपनी पीड़ा मानने को विवश हो जाता है—मैं बहुत बार देखता हू कि मुझे थोड़ा-सा जुखाम हो जाता है, ज्वर हो जाता है, श्वास भारी हो जाता है, पूरे समाज मे चिंता की लहर दौड़

---

१ एक बूद . एक सागर, भा० १, भूमिका पृ० १८

जाती है। मेरी थोडी सी वेदना से पूरा समाज प्रभावित होता है। किंतु मेरे मन मे कितनी पीड़ाएं हैं क्या इसकी किसी को चिन्ता है ?"[1]

वे उसी साहित्य के वैशिष्ट्य को स्वीकारते है जो साम्प्रदायिकता, पक्षपात एव अश्लीलता आदि दोषों से विहीन हो। यही कारण है कि सम्प्रदाय के घेरे मे रहने पर भी उनका चितन कही भी साम्प्रदायिक नही हो पाया है। लोग जब उन्हे एक सम्प्रदाय के कटघरे मे बांधकर केवल तेरापंथ के आचार्य के रूप मे देखते हैं तो उनकी पीडा अनेक बार इन शब्दो में उभरती है—"लोग जब मुझे संकीर्ण साम्प्रदायिक नजरिए से देखते है तो मेरी अतर आत्मा अत्यंत व्यथित होती है। उस समय मै आत्मालोचन मे खो जाता हूं—अवश्य मेरी साधना मे कही कोई कमी है, तभी तो मैं लोगों के दिलो में विश्वास पैदा नही कर सका।"[2]

उनकी लेखनी एवं वाणी धर्म और संस्कृति के सही स्वरूप को प्रकट करने के लिए चली है। उनके सार्थक शब्द मृतप्राय: नैतिकता को पुनरुज्जीवित करने के लिए निकले हैं। उनका साहित्य समाज मे समरसता, समन्वय और एकता लाने के लिए जूझता है। सस्ती लोकप्रियता, मनोरंजन एव व्यवसायवुद्धि से हटकर उन्होने वह आदर्श साहित्य-संसार को दिया है, जो कभी धूमिल नही हो सकता।

उनके साहित्य में प्रौढता एवं गहनता का कारण है—गंभीर ग्रथो का स्वाध्याय। वे स्वयं अपनी अनुभूति बताते हुए कहते है—"मेरा अपना अनुभव यह है कि जिसको एक बार गंभीर विषयो के आनद का स्वाद आ जाए वह छिछले, विलासी एवं भावुकतापूर्ण साहित्य मे कभी अवगाहित नही हो सकता।"

काल की दृष्टि से उनके साहित्य का वैशिष्ट्य है—त्रैकालिकता। युग समस्या को उपेक्षित करने वाला, उसकी मांग न समझने वाला साहित्य अनुपादेय होता है। केवल वर्तमान को सम्मुख रखकर रचा जाने वाला साहित्य युग-साहित्य होने पर भी अपना शाश्वत मूल्य खो देता है। वह जितने वेग से प्रसिद्धि पाता है उतने ही वेग से मूल्यहीन हो जाता है। इसी दृष्टि को ध्यान मे रखकर उन्होने अपने साहित्य मे युगसत्य और चिरन्तन सत्य का समन्वय करके अतीत के प्रति तीव्र अनुराग, वर्तमान के उत्थान की प्रवल भावना, भविष्य के प्रतिविम्ब तथा उसको सफल बनाने हेतु करणीय कार्यों की सूची प्रस्तुत की है। जैसे इक्कीसवी सदी का जीवन (बैसाखियां ......पृ० १५) इक्कीसवी सदी के निर्माण मे युवको की भूमिका (सफर ...१६१) आदि

---

१. आह्वान पृ० सं० २२
२. एक बूंद · एक सागर पृ० १७३०

लेख भावी जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि ५० साल पूर्व का साहित्य भी उतना ही प्रासगिक एवं मननीय है जितना वर्तमान का। निष्कर्ष की भाषा में कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी ने विनाश के स्थान पर निर्माण, विषमता के स्थान पर समता, अव्यवस्था के स्थान पर व्यवस्था, अनैक्य के स्थान पर ऐक्य, घृणा के स्थान पर प्रेम तथा भौतिकता के स्थान पर अध्यात्म के पुनरुत्थान की चर्चा की है। अतः उनके साहित्य को हर युग के लिए प्रेरणापुंज कहा जाए तो अतिशयोक्ति नही होगी।

साहित्य के भेद

काल की दृष्टि से साहित्य के दो भेद किए जा सकते है—सामयिक और शाश्वत। सामयिक साहित्य मे वार्तमानिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक आदि अनेक युगीन समस्याओ का चिन्तन होता है पर शाश्वत साहित्य मे जीवन की मूल वृत्तियो तथा शाश्वत मूल्यों का विवेचन होता है, जो त्रैकालिक होते हैं।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विषय की दृष्टि से साहित्य के तीन भेद किये हैं[1] : १. सूचनात्मक साहित्य २. विवेचनात्मक साहित्य ३. रचनात्मक साहित्य।

१. कुछ पुस्तकें हमारी जानकारी वढ़ाती है। उनको पढ़ने से हमें अनेक नई सूचनाए मिलती हैं। लेकिन ऐसे साहित्य से व्यक्ति की वौद्धिक चेतना उत्तेजित नही होती।

२. विवेचनात्मक साहित्य हमारी जानकारी वढ़ाने के साथ-साथ वोधन शक्ति को भी जागरूक एव सचेष्ट वनाये रखता है। जैसे दर्शन, विज्ञान आदि।

३ रचनात्मक साहित्य की पुस्तकें हमे सुख-दु:ख, व्यक्तिगत स्वार्थ एवं संघर्ष से ऊपर ले जाती है। यह साहित्य पाठक की दृष्टि को इस तरह कोमल एव सवेदनशील वनाता है कि व्यक्ति अपने क्षुद्र स्वार्थ एव व्यक्तिगत सुख-दु.ख को भूलकर प्राणिमात्र के प्रति तादात्म्य स्थापित कर लेता है तथा सारी दुनिया के साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगता है। इस साहित्य को ब्रह्मानन्द सहोदर की संज्ञा दी जा सकती है क्योकि यह साहित्य हमारे अनुभव के ताने-वाने से एक नये रसलोक की रचना करता है। इसे ही मौलिक साहित्य की कोटि मे रखा जा सकता है।

आचार्य तुलसी का अधिकांश साहित्य रचनात्मक साहित्य में परिगणित किया जा सकता है। क्योकि उनकी सत्यचेतना परिपक्व एवं संस्कृत है। उन्होने जो कुछ कहा या लिखा है वह सांसारिक क्षुद्र स्वार्थो से ऊपर

---

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली भाग-७ पृ० १६३-६४

होकर लिखा है अत: उनका साहित्य निर्मलता एवं प्रेरणा का स्रोत वहाता है। उन्होने भारतीय सास्कृतिक विरासत की सुरक्षा की है साथ ही प्रगतिशील विचारो का समावेश भी किया है।

साहित्यिक विधाएं

साहित्यकार के मन मे जो भाव या सवेग उत्पन्न होते है, उनकी अभिव्यक्ति नाना विधाओ मे होती है। जैसे भीतर के हर्ष को विविध अवसरो पर कभी गाकर, कभी गुनगुनाकर तथा कभी अश्रुमोचन द्वारा प्रकट किया जाता है वैसे ही भावो और मन.स्थितियों को व्यक्त करने के लिये साहित्य की विविध विधाओ का आविष्कार तथा प्रयोग किया जाता है।

हिन्दी साहित्य में मुख्यत· निम्न विधाएं प्रसिद्ध है—(१) निवन्ध (२) रेखाचित्र (३) सस्मरण (४) रिपोर्ताज (५) डायरी (६) साक्षात्कार (भेंट वार्ता) (७) गद्यकाव्य (८) जीवनी (९) आत्मकथा (१०) यात्रा-वृत्त (११) एकांकी (१२) कहानी (१३) उपन्यास (१४) पत्र आदि।

आचार्य तुलसी का साहित्य मुख्यत· निवंध, संस्मरण, डायरी, साक्षात्कार, गद्यकाव्य, जीवनी, कहानी, पत्र, आत्मकथा आदि विधाओ मे मिलता है फिर भी उनके साहित्य मे प्रवचन की गंगा, निवन्धो की यमुना और काव्य की सरस्वती—यह त्रिवेणी ही अधिक प्रवाहित हुई है। आचार्य तुलसी ने अपनी प्रत्येक साहित्यिक विधा मे सत्य और शिव के साथ सौन्दर्य को समाहित करने का प्रयत्न किया है। उनका साहित्य श्रोता एव पाठक को कुछ सोचने एव करने को वाध्य करता है क्योकि उनकी अभिव्यक्ति तीखी, धारदार एवं प्रभावी है। उनकी साहित्यक विधाओ मे मानव के अन्तर्मन मे होने वाली हलचल को अभिव्यक्ति मिली है, समाज की विद्रूपता को उद्घाटित करने का सार्थक प्रयास हुआ है, परिस्थिति एवं घटना को कथ्य का माध्यम वनाया गया है तथा प्राचीन के साथ युगीन मूल्यो की प्रस्तुति हुई है। यही कारण है कि उनका विशाल साहित्य त्रैकालिक होते हुये भी उपयोगी और सामयिक वन पडा है। यह साहित्य सामयिक समस्याओ को छिन्न-भिन्न करने, उनको तरासने तथा व्यक्ति-व्यक्ति मे अनाकुल रहकर उनको सहन करने की क्षमता पैदा करता है। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ साहित्यिक विधाओ का परिचय नीचे दिया जा रहा है—

निबंध

हिंदी गद्य साहित्य मे निबंध का अपना एक विशिष्ट स्थान है। आधुनिक निवंध के जन्मदाता पाश्चात्य विद्वान् मौनतेन का मतव्य है कि निबंध विचारो, उद्धरणो एव कथाओ का मिश्रण है। वावू गुलाबराय के शब्दो मे "निबंध वह गद्यात्मक अभिव्यक्ति है जिसमे एक सीमित आकार के भीतर

किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन किसी विशेष निजीपन, सौष्ठव, सजीवता, रोचकता तथा अपेक्षित सगति एव संवद्धता से किया जाता है।" इस विधा मे प्रतिभा निर्दिष्ट रूप से विषय के साथ बंधकर अपने विचार एवं भाव प्रकट करती है अत: विशेष रूप से बधी हुई गद्य रचना निबध के रूप में जानी जाती है। परन्तु पाश्चात्य विद्वान् जानसन के विचार इससे भिन्न हैं। वे कहते हैं—"मुक्त मन की मौज, अनियमित, अपक्व और अव्यवस्थित रचना निबध है। इसी प्रकार केवल ने भी इसे सस्ती एव हल्की रचना के रूप में स्वीकार किया है। किन्तु ये विचार सर्वमान्य नही हैं क्योकि निबंध को गद्य की कसौटी माना गया है। प्रसिद्ध साहित्यकार विजयेन्द्र स्नातक का अनुभव है कि भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबध मे ही सबसे अधिक संभव है।[1] आचार्यश्री तुलसी के लगभग सभी निबंधो के विचार सुसंबद्ध तथा प्रभावकता के साथ प्रस्तुत हुए है।

निबध मे लेखक के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य उजागर होता है अत: उसमें आत्माभिव्यजना आवश्यक है। जीवन की अवहेलना का दूसरा नाम निबधकार की मृत्यु है।[2] आचार्य तुलसी के प्राय: सभी निबध जीवन्त एव प्रेरक हैं इसी कारण उनमे भावो को तरंगित कर व्यक्तित्व-रूपान्तरण की क्षमता उत्पन्न हो गई है। उनके निबध एक नई सोच के साथ प्रस्तुत है अत: आदमी के भीतर एक नया आदमी पैदा करने की उनमे क्षमता है। उनके निबध मौलिक विचारों, नवीन निष्कर्षों एवं सूक्ष्म तार्किकता से सवलित है अत' वे पाठक के हृदय को गुदगुदाते हैं, आंदोलित करते हैं। अधिकाश निबधो मे सर्वेक्षण की सूक्ष्मता और विश्लेषण की गभीरता के गुण समाविष्ट हैं। इन निबधों में गभीरता के साथ सरसता, प्राचीनता के साथ नवीनता एवं विज्ञान के साथ अध्यात्म का भी अद्भुत समावेश हुआ है।

मानव मन की मनोवृत्तियाँ एव सामाजिक बुराइयो का विश्लेषण बहुत मनोवैज्ञानिक ढंग से उनके निबधो में उजागर है। आश्चर्य होता है कि वे अपने निबधो मे एक साथ मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री, धार्मिक नेता, अर्थ-शास्त्री और इनसे ऊपर साहित्यकार के रूप में समान रूप से प्रतिबिम्बित हो गए है। इन सबसे ऊपर उनके निबधों का यह वैशिष्ट्य है कि प्राय: निबंधों का प्रारम्भ इतनी रोचक शैली मे है कि उसे पढ़ने वालों की उत्सुकता बढती जाती है और पाठक उसे पूरा पढने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। वे पाठकों से उदासीन नही हैं। अपने दिल की बात पाठक के दिल तक पहुंचकर करते हैं

---

१ समीक्षात्मक निबध पृ० ३२

२. आधुनिक निबध पृ० ३

अतः पाठक के साथ उनका सीधा तादात्म्य स्थापित हो जाता है। सादगी, सयम एव त्याग से मडित उनका व्यक्तित्व इन निबधो मे सर्वत्र उपस्थित है, अतः ये उच्च कोटि के निबध कहे जा सकते हैं। डा० जानसन या क्रेवल के सामने यदि ये निबध रहते तो सभव है उन्हे निबध के बारे में अपनी परिभाषा बदलनी पडती। उनके निबधो की आलोचना इस रूप मे की जा सकती है कि उनमे पुनरुक्ति बहुत हुई है पर ऐसा होना अनिवार्य था क्योकि किसी भी धर्मनेता को समाज मे परिवर्तन लाने के लिए बार बार अपनी बात को कहना पड़ता है और तब तक कहना होता है जब तक कि पत्थर पर लकीर न खिच जाए, पानी बर्फ के रूप मे न जम जाए या यो कहे कि व्यक्ति या समाज बदलने की भूमिका तक न पहुच जाए।

निबंध की विकास-यात्रा

निबंध की विकास-यात्रा को विद्वानो ने चार युगों मे बांटा है--(१) भारतेन्दु युग (२) द्विवेदी युग (३) प्रसाद युग (४) प्रगतिवादी युग। कुछ विद्वान् अतिम दो को क्रमश. शुक्ल युग एव शुक्लोत्तर युग के नाम से भी अभिहित करते है। भारतेन्दु युग भारतीय समाज के जागरण का काल है। उन्होने अपने निबधो मे धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओ को उजागर किया है। महावीरप्रसाद द्विवेदी के निबध विचार प्रधान है। साथ ही उन्होने निबध मे भाषा-सस्कार पर भी अपेक्षित ध्यान दिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबध नए विचार, नयी अनुभूति एव नवीन शैली के साथ पाठको के समक्ष उपस्थित हुए हैं अत. उनके युग में विचारप्रधान, समीक्षात्मक एव भावात्मक निबधो का चरम विकास हुआ।

शुक्लोत्तर युग मे हजारीप्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्रकुमार, डा० नगेन्द्र, अमृतराय नागर, महादेवी वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आचार्य तुलसी के निबंध विचारो की दृष्टि से इन विद्वानों की तुलना मे कही कम नही उतरते हैं।

मेरे अपने विचार से तो निबध का अगला अर्थात् पाचवा युग आचार्य तुलसी का कहा जा सकता है, जिन्होने साहित्य मे व्यक्तित्व रूपान्तरण की चर्चा करके भारतीय संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया है। तथा वेहिचक आज की दिशाहीन राजनीति, धर्मनीति, एव समाजनीति की दुर्बलताओ की ओर इगित करते हुए उन्हे परिष्कार के लिए नया दिशादर्शन दिया है। आचार्यश्री के निबंध मे रूक्षता एवं शुष्कता के स्थान पर रोचकता एवं सहृदयता का गुम्फन प्रभावी है।

निबंध के भेद

यद्यपि विषय की दृष्टि से विद्वानों ने निबंध के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक

सामाजिक आदि अनेक भेद किए है पर शैली की दृष्टि से उसके मुख्यतः चार भेद है :—

१. भावात्मक
२. विचारात्मक
३. वर्णनात्मक या विवरणात्मक
४. आख्यानात्मक या कथात्मक

भावनात्मक निबन्ध

इसमें लेखक का हृदय बोलता है। इन निबंधो में निजी अनुभूति की गहनता एवं सघनता इस रूप मे अभिव्यक्त होती है कि कोई भी विचार लेखक की भावना के रंग में रंगकर बाहर निकलता है। इनमे तर्क-वितर्क को उतना महत्व नही होता जितना भावो के आवेग को दिया जाता है।

आचार्य तुलसी की अनेक रचनाओ को इस कोटि में रखा जा सकता है। 'अमृत संदेश', 'दोनों हाथ : एक साथ', 'सफर आधी शताब्दी का' 'मनहसा मोती चुगे', 'जब जागे तभी सवेरा' आदि पुस्तकों के निबंधो को इस कोटि मे रखा जा सकता है।

विचारात्मक निबंध

इन निबधों मे किसी सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक समस्या का अथवा किसी नवीन तथ्य का प्रतिपादन या विश्लेषण होता है। ये निबंध बौद्धिकता प्रधान होते हैं। इनमें तर्क, चिन्तन, दर्शन आदि का भी यथास्थल समावेश होता है पर विषय गाभीर्य बना रहता है। इन निबंधो में भाषा कसी रहती है।

'क्या धर्म बुद्धिगम्य है' ?'कुहासे में उगता सूरज,' 'वैसाखियां विश्वास की' आदि पुस्तकों के निबधों/प्रवचनों को इस कोटि में रखा जा सकता है।

विचारात्मक निबंधों मे विचार भाव के आगे आगे चलता है पर भावात्मक निबध मे भाव विचार के आगे चलता है। अतः इन दोनों को ज्यादा भिन्न नहीं किया जा सकता। क्योकि साहित्य में भावशून्य विचार बौद्धिक व्यायाम है साथ ही विचारशून्य भाव प्रलापमात्र है।

वर्णनात्मक या विवरणात्मक

इनमें किसी स्थिर दृश्य या घटना का चित्रण होता है तथा विस्तार से किसी बात का स्पष्टीकरण होता है। कुछ विद्वान वर्णनात्मक एव विवरणात्मक को भिन्न-भिन्न भी मानते हैं। आचार्य तुलसी के प्रवचन बहुलता से इसी कोटि में रखे जा सकते है।

आख्यानात्मक या कथात्मक

इस कोटि के निबंधों में कथा को माध्यम बनाकर विचाराभिव्यक्ति की

जाती है। 'बूंद-बूद से घट भरे' 'मजिल की ओर' तथा 'प्रवचन पाथेय' आदि पुस्तको के प्रवचनो को इस कोटि मे रखा जा सकता है।

निबंधों में प्रयुक्त शैली

निवंध व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। हर व्यक्ति की अपनी अलग शैली होती है। रामप्रसाद किचलू कहते हैं कि किसी निवधकार की शैली सागर सी गभीर, किसी की उच्छल तरगो सी गतिशील एव किसी की धुआधार यौवन सी रगीली एव सलोनी सुरभि बिखेरकर सुबक-सुबक खो जाने वाली होती है।[1] निवध मे मुख्यतः पाच शैलियो का प्रयोग होता है—१. समास २. व्यास ३. धारा ४. तरग ५. विक्षेप।

आचार्य तुलसी के निबधो मे स्फुट रूप से पाचो शैलियो के दर्शन होते है। कही वे समास शैली मे अभिव्यक्ति देते है तो कही व्यास शैली मे पर इन दोनो शैलियो मे भी उनकी सारग्राही प्रतिभा का दर्शन पाठक को प्राय. मिल जाता है। जहा भाव प्रधान निबंध हैं, वहां धारा, तरग एवं विक्षेप शैली का निदर्शन भी उनके साहित्य मे मिलता है।

आचार्यश्री की शैली मे वैयक्तिकता, भावनात्मकता, सरसता, सरलता, सहजता एव रोचकता के गुण प्रभूत मात्रा मे विद्यमान हैं। कही-कही व्यग्य का पुट भी दर्शनीय है। कहा जा सकता है कि उनके व्यक्तित्व की सजीवता एवं जीवटता उनके निबन्धो मे भी समाविष्ट हो गई है अत: उनकी शैली उनके व्यक्तित्व की छाप से अकित है। यही कारण है दीप्ति, काति, भव्यता एवं विशदता आदि गुण सर्वत्र दृग्गोचर होते है।

निबंधों के शीर्षक

शीर्षक किसी भी निबंध का आईना होता है, जिसमे से निबंध की विषय वस्तु को देखा जा सकता है। प्राय. शीर्षक पढकर ही पाठक के मन मे निबंध/लेख पढने की लालसा उत्पन्न होती है अत: पाठक की उत्कठा उत्पन्न करने में शीर्षक का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

आचार्य तुलसी के निवधो और लेखो के प्राय: शीर्षक इतने जीवन्त, आकर्षक और रोचक हैं कि शीर्पक पढ़ते ही उस निवध को पूरा पढ लेने की सहज ही इच्छा होती है। जैसे—१. "एक मर्मान्तक पीडा . दहेज" २. "धार्मिक समस्याए : एक अनुचिंतन" ३ "संतान का कोई लिंग नही होता" आदि। उनका साहित्य अनेक हाथो से संपादित होने के कारण उसमे शीर्षक, भापा आदि दृष्टियो से वैविध्य होना बहुत स्वाभाविक है। कही कही एक ही लेख भिन्न भिन्न सपादकों द्वारा सपादित पुस्तक मे भिन्न-भिन्न शीर्पक से आय‍ है।

१. आधुनिक निबंध पृ० ११

जैसे 'प्रवचन डायरी' के अनेक प्रवचन 'नैतिक संजीवन' मे शीर्षक परिवर्तन के साथ प्रस्तुत है।

कही-कही एक ही शीर्पक भिन्न-भिन्न सामग्री के साथ भी आया है। जैसे "अहिंसा" तथा "अक्षय तृतीया,' आदि शीर्षक अनेक वार पुनरुक्त हुए हैं, पर सामग्री भिन्न है।

कुछ शीर्पकों ने सहज ही सूक्ति वाक्यो का रूप भी धारण कर लिया है। जैसे :—

१. जो चोटो को नहीं सह सकता, वह प्रतिमा नही वन सकता।

२. जहां विरोध है, वहा प्रगति है।

३. सतीप्रथा आत्महत्या है।

४. युद्ध किसी समस्या का समाधान नहीं है।

अनेक शीर्पक लोकोक्ति, कहावत एवं विशिष्ट घोषों के साथ जुड़े हुए भी हैं.—

१. सवहु सयाने एकमत २. पराधीन सपनेहुं सुख नाही ३. जितनी सादगी : उतना सुख ४. वीति ताहि विसारि दे ५. निंदक नियरे राखिए।

अनेक शीर्पक आगमसूक्त तथा विशिष्ट धर्मग्रंथो के प्रेरक वाक्यों से संवंधित है। जैसे :—१. णो हीणे णो अइरित्ते, २. तमसो मा ज्योतिर्गमय ३. पढम णाण तओ दया ४. जो एगं जाणई सो सव्वं जाणइ ॥

कुछ शीर्षक अपने भीतर रहस्य एवं कुतूहल को समेटे हुए है, जिनको पढते ही मन कौतूहल और उत्सुकता से भर जाता है—

१. जो सव कुछ सह लेता है २. ऐसी प्यास, जो पानी से न बुझे ३. जव सत्य को झुठलाया जाता है, ४. जहां उत्तराधिकार लिया नहीं, दिया जाता है।

अनेक शीर्पक साहित्यिक एव वौद्धिक है। साथ ही आनुप्रासिक एवं औपमिक छटा से सपृक्त हैं :—

१. समस्या के वीज : हिंसा की मिट्टी

२. निज पर शासन : फिर अनुशासन

३. संसद खडी है जनता के सामने

४. पूजा पाठ कितना सार्थक : कितना निरर्थक।

कुछ प्रवचनो के शीर्षक वर्ग विशेप को संवोधित करते हुए भी है जैसे—१ महिलाओं से, २. व्यापारियों से, (युवको से) ३. कार्यकर्त्ताओ से, शातिवादी राष्ट्रो से, ४. विद्यार्थियो से।

अनेक शीर्षक औपदेशिक है, जो वर्ग विशेष को उद्वोधन देते हुए प्रतीत होते है :—

१. युवापीढी स्वस्थ परम्पराए कायम करे २. महिलाएं स्वयं जागे

३. न स्वयं व्यथित बनो, न दूसरों को व्यथित करो।

कई शीर्षक प्रश्नवाचक है, जो पाठक को सोच की गहराई मे उतरने को विवश कर देते हैं, जिससे पाठक अपने परिपार्श्व का ही नही, दूरदराज की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य मे भी समाधान प्राप्त करता है—

- कैसे मिटेगी अशाति और अराजकता ?
- कौन करता है कल का भरोसा ?
- क्या आदतें बदली जा सकती है ?
- क्या है लोकतंत्र का विकल्प ?

इस प्रकार प्रायः शीर्षक विषय से सबद्ध तथा रोचक है।

कथा

साहित्य की सबसे सरस एवं मनोरजक विधा है—कथा। बहुत विवेचन एवं विश्लेषण के बाद भी जो अकथ्य रह जाता है, उसे कथा बहुत मार्मिकता से प्रकट कर देती है अतः प्राचीन काल से ही कथा के माध्यम से गूढतम रहस्य को प्रकट करने का प्रयत्न होता रहा है। वेद, उपनिषद्, महाभारत तथा आगमो में आई कथाए इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। बाण ने कथा को तुलना नववधू से की है, जो साहित्य-रसिको के मन मे अनुराग उत्पन्न करती है। कादम्बरी मे वे कहते है—

"स्फुरत् कलालापविलासकोमला, करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्या स्वयमभ्युपागता, कथा जनस्याभिनवा वधूरिव॥

प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रजी का मानना है कि साहित्य के माध्यम से डाले जाने वाले जितने प्रभाव हो सकते है, वे कथा विधा मे अच्छी तरह उपस्थित किये जा सकते है। चाहे सिद्धान्त प्रतिपादन अभिप्रेत हो, चाहे चरित्र चित्रण की सुदरता इष्ट हो, चाहे किसी घटना का महत्व निरूपण करना हो अथवा किसी वातावरण की सजीवता का उद्घाटन ही लक्ष्य हो या क्रिया का वेग अंकित करना हो या मानसिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण करना हो—सभी की अभिव्यक्ति इस विधा द्वारा सभव है। कहानी की कला इसी बात में प्रकट होती है कि सक्षेप में सीधी एवं सरल बात कहकर अपने कथ्य को पाठक तक पहुचा दिया जाए। एडगर एलेन आदि पाश्चात्य विद्वानों का मानना है कि कथा ऐसी गद्यकला है जिसको घटने मे आधा घंटा से दो घटे तक के समय की आवश्यकता रहती है। प्रेमचद का मानना है कि वह ध्रुपद की तान है, जिसमे गायक महफिल शुरू होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिखा देता है। एक क्षण मे चित्र को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देता है कि जितना रात भर गाना सुनने से भी नही हो सकता।[1]

1. साहित्य का उद्देश्य पृ० ३७-३८

आज कथा साहित्य ने कुछ विकृत रूप धारण कर लिया है क्योकि उसमे कुठा, विकृति, संत्रास तथा आवेगों को उत्तेजित करने के ही स्वर अधिक मिलते है, प्रसन्न अभिव्यक्ति के नही। साथ ही उनमे सांस्कृतिक मूल्यो का विघटन, जीवन की विश्रृखलता एव विसगतिया भी उभरी हैं किंतु आचार्य तुलसी ने जो कथाएं लिखी है या उपदेशो मे कही हैं, वे एक विशिष्ट प्रभाव को उत्पन्न करने वाली है क्योकि उनमें समग्र जीवन के अनेक पहलुओं की अभिव्यक्ति है।

उन्होने केवल मनोरजन के लिए कथा का सहारा नही लिया वल्कि जटिल से जटिल विषय को कथा के माध्यम से सरल करके पाठक के सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त कथाओ मे चिन्तन एव मनन से प्राप्त दार्शनिक एव सामाजिक तथ्यों की प्रस्तुति के साथ ही साथ प्रत्यक्ष जीवन से नि:सृत तथ्यों का प्रगटीकरण भी हुआ है। यही कारण है कि जब वे अपने प्रवचन मे कथा का उपयोग करते है तो उसका प्रभाव वक्ता के हृदय तक पहुंचता है। यहा उनके द्वारा प्रयुक्त एक कथा प्रस्तुत की जा रही है जिसके द्वारा उन्होंने राजनेताओ को मार्मिक ढंग से प्रतिबोधित किया है—

एक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न था, पर था कजूस। अपना और अपने परिवार का पेट काटकर उसने करोड़ों रुपये एकत्रित किये। उन सब रुपयों को उसने हीरों-पन्नो मे बदल लिया। सारे जवाहरात एक पेटी मे रखकर उसने ताला लगा दिया। उसे अपने बाल-बच्चो का भी भरोसा नही था। इसलिए पेटी की चाबी वह अपने सिरहाने रखकर सोने लगा। एक बार की बात है। रात्रि के समय उसके घर में चोर घुस गए। उन्होने तिजोरी तोड़ी और जवाहरात की पेटी निकाली। उसी समय घर के लोग जाग गए। चोर पेटी लेकर भाग गए। लड़कों ने पिता को संबोधित कर कहा—'पिताजी ! आपके जीवन भर की इकट्ठी की गई सम्पत्ति चोर ले जा रहे है।' पिता निश्चिन्तता से बोला—'पुत्रो ! तुम चिन्ता मत करो। ये चोर मूर्ख है। पेटी ले जा रहे है, पर चावी तो मेरे पास है। बिना चाबी पेटी कैसे खोलेगे और कैसे जवाहरात निकालेंगे ?

आज के हमारे राजनेता भी सोचते है कि जब सत्ता की चाबी हमारे पास है तो हमारे चरित्र के आभूषणों की पेटी कोई चुराकर ले भी जाए तो क्या अन्तर पड़ेगा ? पर वे नही जानते कि पेटी का ताला टूट जाएगा। तब चाबी का क्या उपयोग होगा ? जब किसी व्यक्ति के चरित्र की धज्जियां उड़ जाती है, तब उसके पास सत्ता की चाबिया भी कौन रहने देगा ?[1]

'बूद भी : लहर' भी पुस्तक उनका कथा संकलन है। यद्यपि उनकी

१. समता की आख : चरित्र की पांख पृ० ९

कथाओं मे साहित्यिक शैली नही है पर दिल तक पहुचकर बात कहने की शक्ति है इसलिए ये जनभोग्य है। आज की सस्ती कथाओं के सामने आचार्य तुलसी ने इन कथाओ के माध्यम से एक आदर्श प्रस्तुत किया है।

इतना अवश्य है कि उन्होने गद्य मे स्वतंत्र कथा-लेखन कम किया है। प्रवचनों में विषय को स्पष्ट करने के लिए ही कथाओं का आश्रय लिया है। कही कही विपय की गंभीरता एव जटिलता को सरस बनाने हेतु कथाओ का उपयोग हुआ है। काव्य साहित्य में उन्होंने अनेक कथाओ को अपनी रचना का आधार बनाया है तथा उन कथाओ को अपनी कल्पना के रंग मे रगकर कमनीय एवं पठनीय बना दिया है। जैन कथाओ को काव्य के माध्यम से प्रस्तुति देकर आचार्य तुलसी ने उन कथानको को प्राणवान् बनाया है। 'चदन की चुटकी भली' काव्यकृति मे १८ आख्यानो का संकलन है। सक्षेप मे उनकी कथा मे प्रेमचन्द की सहजता, प्रसाद की भावुकता, जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिकता एव अज्ञेय की समाज-सुधार दृष्टि का सुन्दर समन्वय हुआ है।

संस्मरण

साहित्य की सबसे अधिक जीवन्त, रोचक और मधुर विधा है—सस्मरण। क्योकि न इसमें भाषा की दुरूहता होती है और न अति कल्पना लोक में विचरण। घटना प्रधान आकलन होने से यह साहित्य की सरस विधा मानी जाती है, जो पाठक पर सीधा प्रभाव डालती है। डा० त्रिगुणायत इसे परिभाषित करते हुए कहते है—"भावुक कलाकर जब अतीत की अनंत स्मृतियो मे से कुछ रमणीय अनुभूतियो को अपनी कोमल कल्पना से अनुरजित कर व्यञ्जनामूलक शैली मे अपने व्यक्तित्व की विशेपताओं से विशिष्ट वनाकर रोचक ढग से यथार्थ रूप मे व्यक्त करता है, तब उसे सस्मरण कहा जाता है।"

संस्मरण गद्य की आत्मनिष्ठ विधा है पर उसमे सचाई की सौरभ होती है। आचार्य तुलसी समय-समय पर अपने सस्मरणों को अभिव्यक्ति देते रहते है पर पिछले डेढ साल से वे इस विधा मे अनवरत लिख रहे है। बचपन से लेकर आचार्यपदारोहण तक के संस्मरणो का सुंदर आकलन किया जा चुका है। वे संस्मरण साप्ताहिक केन्द्रीय विज्ञप्ति के माध्यम से प्रकाशित हो चुके है। इन संस्मरणों मे भाषा का जाल नही, अपितु आत्माभिव्यक्ति है। अतः ये सहज, सरल, सुबोध और आकर्षक हो गए है। इन संस्मरणो को पढ़कर पाठक यह अनुभव करता है कि आचार्य तुलसी बीते क्षणो को पुनः जीने का सशक्त उपक्रम कर रहे है तथा पाठक को भी अतीत के प्रेरक क्षणों से साक्षात्कार करने का अवसर मिल रहा है। यहा हम उनके मुनि जीवन में गुरु के अपार वात्सल्य का एक संस्मरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

"मै जब कभी अस्वस्थ होता, पूज्य गुरुदेव की कृपा इतनी अधिक

स्फुरित होती कि बार-बार बीमार होने की इच्छा जाग जाती। बीमारी के क्षणो मे गुरुदेव इतना वात्सल्य उडेलते कि उसमें सराबोर होकर मैं सब कुछ भूल जाता। उस समय आप मुझे अपने निकट बुलाते, नब्ज देखते, स्थिति की जानकारी करते, औषधि एवं पथ्य के बारे मे निर्देश देते और कई बार दिन मे भी अपने पास ही सुलाते। कभी दूसरे कमरे में होता तो बार-बार साधुओ को भेजकर स्वास्थ्य के बारे मे पूछते। कहा एक बाल मुनि और कहां संघ के शिखर पुरुष आचार्य! कहां जुखाम, बुखार जैसी साधारण घटनाएं और कहां पूरे धमसघ का प्रशासन। पर गुरुदेव का वह अमृत-सा मीठा वात्सल्य एक बार तो रोग जनित पीड़ा का नाम-निशान ही मिटा देता।

एक बार मुझे ज्वर हो गया। ज्वर के कारण रात को बेचैनी बढ़ी, मैं जितना बेचैन था, गुरुदेव की बेचैनी उससे भी अधिक थी। उस रात आप नीद नही ले सके। आपने मेरा हाल चाल जानने के लिए कई बार साधुओं को मेरे पास भेजा। गुरुदेव के इस अनुग्रह से साधु-साध्वियों पर अतिरिक्त प्रभाव हुआ। इस प्रसंग को मैं जब भी याद करता हूं, अभिभूत हुए बिना नही रहता।"

जीवनी

जीवनी वह गद्यविधा है जिसमे लेखक किसी अन्य व्यक्ति का वस्तुनिष्ठ जीवन वृत्त प्रस्तुत करता है। उसमे किसी महान् व्यक्ति की जीवन घटनाओं का उल्लेख होता है। पाश्चात्य विद्वान लिटन स्ट्रैची ने जीवनी लेखन की कला को सबसे सुकोमल एवं सहानुभूतिपूर्ण कहा है। इस विधा का समाज-निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि एक महापुरुष की बिखरी हुई प्रेरक घटनाओ को इसमे एकसूत्रता प्रदान की जाती है। इस विधा में कोरा तथ्य निरूपण या कोरी कल्पना नही होती बल्कि किसी व्यक्ति का आंतरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व उजागर किया जाता है। आचार्य तुलसी ने इस विधा मे तीन चार ग्रन्थ लिखे है। 'भगवान् महावीर', 'प्रज्ञापुरुष जयाचार्य' 'महामनस्वी कालूगणी का जीवनवृत्त' आदि पुस्तके जीवनी साहित्य के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। इनमें क्रमश: भगवान् महावीर, तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य जीत-मलजी तथा अष्टमाचार्य कालूगणी के व्यक्तित्व को सजीव अभिव्यक्ति दी है। सस्मरणात्मक जीवन लेखन से ये जीवनी ग्रन्थ बहुत रोचक एवं जनसामान्य के लिए हृदयग्राह्य बन गए हैं। भाषा की सरलता एव वर्णन क्षमता की उच्चता इन जीवनी ग्रन्थो मे सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है। साथ ही व्यक्ति के विशेष विचारो एवं सिद्धान्तो का समावेश करने से ये वैचारिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो गये है।

---

१. विज्ञप्ति संख्या ११४३

पत्र

पत्र लेखन की परम्परा बहुत प्राचीन है पर इसे साहित्यिक रूप आधुनिक युग (भारतेन्दु युग) मे दिया गया है। पत्र केवल प्रगाढ़ आत्मीय सबंधो की सरस अभिव्यक्ति ही नही होते, अनौपचारिक शिक्षा का जो सजीव चित्र इनमे उभर पाता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। डा. शिवमंगल सिंह सुमन कहते हैं कि 'कागज पे रख दिया है कलेजा निकाल के" उक्ति इस विधा पर पूर्णतया घटित होती है। दिनकर इस विधा को कला के लिए कला का साक्षात प्रमाण मानते थे। उनका कहना था कि निबंधो की शैली मे लेखक के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य उजागर होता है, परन्तु पत्र लेखन में तो लेखक का स्वभाव, चिंतन-मनन, उत्पीड़न, उल्लास, उन्माद और अन्तर्द्वन्द्व सभी नितान्त सहज भाव से मुखर हो उठते है।[1]

जैसे पंडित नेहरू के 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' तथा गांधीजी के अनेक पत्र साहित्यिक एवं राजनैतिक दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं वैसे ही आचार्य तुलसी के अनेक पत्र ऐतिहासिक महत्त्व रखते है। उन्होने साधु-साध्वियो को संबोधित करके हजारो पत्र लिखे हैं, जो अध्यात्म जगत् की अमूल्य थाती है। राजस्थानी भाषा मे मां वदनाजी एवं मत्री मुनि मगनलालजी को लिखे गए पत्रों में सवेदना का ऐसा निर्झर प्रवाहित है; जिसकी कल-कल ध्वनि आज भी पाठक को बांधने में सक्षम हैं। अपने हाथ से दीक्षित मां वदनाजी को लिखे पत्र की कुछ पक्तियां यहा उद्धृत हैं—"यह पत्र स्वान्तः सुखाय' या 'त्वच्चेतः प्रसत्तये' लिख रहा हूं। आपके शान्त, सरल एव निष्काम जीवन के साथ किसी भी साधक के मन में स्पर्धा हो सकती है। मितभापिता, मधुर मुस्कान, स्वाध्याय तल्लीनता, सहृदयता, बाह्याभ्यन्तर एकता, सबके प्रति समानता, ये सब ऐसी विशेषताएं है जो बरवस किसी को आकृष्ट किए बिना नही रहती।

मैं अपने आपको धन्य मानता हूं सहज भोली-भाली सूरत में अपनी माता को संयम-साधना मे तल्लीन देखकर।[2]

आचार्य तुलसी के पत्र सादगी, संयम और सृजन के संदेश है। पत्रो के माध्यम मे उन्होने हजारो व्यक्तित्वो को प्रेरणाए दी है। तथा उनके जीवन में नव उत्साह का संचार किया है। उनके पत्र केवल समाचारों के वाहक ही नही होते उनमें संयम को परिपुष्ट करने, कपायो को शांत करने तथा अध्यात्म पथ पर आरोहण के लिए आवश्यक उपायों के निर्देश भी प्राप्त होते हैं। पत्रों की भाषा और भावाभिव्यक्ति इतनी सरल और सशक्त है

१. दिनकर के पत्र भूमिका पृ० ११
२. मा वदना पृ० ८७

कि पढ़ने वाला उन भावों में उन्मज्जन निमज्जन किए विना नही रह सकता।

डायरी

इस विधा मे लेखक अपने अनुभवों को लिखता है। अत: यह नितान्त वैयक्तिक सम्पत्ति होती है किन्तु प्रकाश मे आने के वाद यह सार्वजनिक हो जाती है। यथार्थता और स्वाभाविकता ये दो गुण इसके आधार होते है।

हर्ष, विषाद, उल्लास, निराशा आदि भावनाओं को उत्पन्न करने वाली घटनाएं प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे रोज ही घटित होती हैं, किन्तु सामान्य व्यक्ति उन्हे भूल जाता है जवकि साहित्यकार या साधक व्यक्ति के सवेदनशील हृदय मे उनके प्रति अपनी प्रतिक्रिया या मानसिक स्थिति को व्यक्त करने की आतुरता जाग जाती है, उद्वेलन के इन्ही क्षणो में डायरी लिखी जाती है।

आचार्य तुलसी प्राय: प्रतिदिन डायरी लिखते है पर अभी तक डायरी के पन्ने प्रकाशित नही हुए है। उनकी अप्रकाशित डायरी की निम्न पंक्तियां उनके समत्व साधक का रूप प्रस्तुत करती है—"आज के युग के मकान साधु-संतो के अनुकूल कम पडते है। सव कुछ कृत्रिम हो गया है। अतएव प्रकृति मे चलने वालो के लिए कठिनाइया आती है फिर भी हम जैसे-तैसे सामंजस्य विठा लेते है। संतुलन नही खोते है, यह अच्छी वात है।"[1]

'खोये सो पाए' पुस्तक के कुछ लेखो मे डायरी विधा के दर्शन होते है क्योंकि उसमे हिसार मे २१ दिन के एकान्तवास मे चैतन्य की अनुभूति के क्षणों मे प्रतिदिन के विचारो को लिपिवद्ध किया गया है। इन विचारो को पढ़कर लगता है कि वे साहित्यकार के समनन्तर साधक हैं। आचार्य तुलसी की डायरी कितनी स्पष्ट, सरल व सहज है, यह इन लेखों को पढ़ने से अनुभव हो सकता है। इसी पुस्तक का एक अंश उनके साधनात्मक अनुभव की अभिव्यक्ति देता हुआ सामान्य जन को भी प्रेरणा देता है—"हमारा वर्तमान का अनुभव वताता है कि इन्द्रियों और मन की मांग को समाप्त किया जा सकता है। अपने जीवन में पहली वार एक प्रयोग कर रहा हूं। इस समय इन्द्रिया निश्चित है और मन शांत है। खान, पान, जागरण, देखना, बोलना, किसी भी प्रवृत्ति के लिए मन पर वाध्यता नही है।"

संदेश

शब्दो में प्रवाहित भाव और विचार कमजोरों को ताकत देने, दुष्टो को दुष्टता से मुक्त करने, मूर्खो को प्रतिवोध देने और मानव मे मानवता का संचार करने का सामर्थ्य रखते है, इसलिए शब्द ही टिकता है, न सिंहासन, न कुर्सी, न मुकुट, न बैंक-वैलेंस और न धनमाल। शब्द जब किसी आत्मवली

---

१ अप्रकाशित डायरी, २६ जून १९९०, पाली

साधक के मुख से निःसृत होते है तब वे और अधिक शक्तिशाली बन जाते हैं। आचार्य तुलसी का प्रत्येक शब्द सार्थकता लिए हुए है, अतः प्रेरक है।

धर्मनेता होने के कारण अनेको अवसरों पर वे अपने संदेश प्रेषित करते रहते है। कभी पत्रिका मे आशीर्वचन के रूप मे तो कभी किसी कार्यक्रम के उद्घाटन मे, कभी मृत्युशय्या पर लेटे किसी व्यक्ति का आत्मविश्वास जगाने तो कभी किसी शोक संतप्त परिवार को सांत्वना देने, कभी राष्ट्रीय एकता परिषद् को उद्बोधित करने तो कभी-कभी सामाजिक सघर्ष का निपटारा करने। सैकड़ो परिस्थितियों से जुडे हजारों संदेश उनके मुखारविंद से निःसृत हुए हैं, जिनसे समाज को नई दिशा मिली है। उन सबको यदि प्रकाशित किया जाय तो कई खंड प्रकाशित हो सकते है। इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार' की घोषणा होने पर अपने एक विशेष संदेश में वे कहते है—

"मै केवल आत्मनिष्ठा और अहिंसा की साधना की दृष्टि से काम कर रहा हू। न कोई आकांक्षा और न कोई स्पर्द्धा। मेरे कार्य का कोई मूल्याकन करता है या नही, इसकी भी कोई चिन्ता नही। मैने विरोधों मे कभी हीन-भावना का अनुभव नही किया और प्रशस्तियो में कभी अहकार को पुष्ट नही किया दोनो स्थितियो में सम रहने की साधना ही मेरी अहिंसा है?"[1]

उनके सदेश व्यक्ति, संस्था, समाज या उत्सव से संबंधित होते हुए भी पूरी तरह से सार्वजनीन है, इसीलिए आम व्यक्ति को उन्हें पढने में कही अरुचि प्रतीत नही होती अपितु उसे अपनी समस्या का समाधान नितरता हुआ प्रतीत होता है। उनके सदेशो का वैशिष्ट्य यह है कि उनमे व्यक्ति, समाज या संस्था की विशेषताओ का अंकन है तो साथ ही साथ विसंगतियों का उल्लेख कर उन्हे मिटाने का उपाय भी निर्दिष्ट है। इन सदेशो मे प्रेरणा सूत्र, आलंबन सूत्र तथा अध्यात्म-विकास के सूत्र उपलब्ध होते है, जिन्हे सुन-पढ़कर व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन मे अनेक उपलब्धियां प्राप्त कर समाज और सस्थानो को भी लाभ पहुंचा सकता है।

गद्यकाव्य

हिन्दी मे भावात्मक निबन्ध गद्यकाव्य कहलाते हैं। डा० भगवतीप्रसाद मिश्र का मंतव्य है कि किसी कथानक, चरित्र या विचार की कल्पना और अनुभूति के माध्यम से गद्य मे सरस, रोचक और स्मरणीय अभिव्यक्ति गद्यकाव्य है। यह सामान्य गद्य की अपेक्षा अधिक अलंकृत, प्रवाहपूर्ण, तरल एव माधुर्य-मडित रचना होती है। इस विधा मे दर्शन की गहराई को जिस चातुर्य के साथ प्रस्तुत किया जाता है, वह पठनीय होता है। 'अतीत का विसर्जन:

---

१. २५ अक्टूबर, १९९३, राजलदेसर

अनागत का स्वागत' पुस्तक में 'युवापीढी का उत्तरदायित्व' लेख को गद्यकाव्य का उत्कृष्ट नमूना कहा जा सकता है। इसमें कसी मंजी शैली में रूपक के माध्यम से इतनी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है कि हर युवक एक बार स्पंदित हो जाए।

यद्यपि आचार्य तुलसी ने सलक्ष्य इस कोटि के निबन्धो की रचना बहुत कम की है। पर 'समता की आंख चरित्र की पांख' जैसी कृतियो को गद्यकाव्य की कोटि मे रखा जा सकता है।

भेंट-वार्ता

यह हिन्दी गद्य की सर्वथा नवीन विधा है। साहित्य, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र की महान् विभूति से मिलकर किसी समस्या एवं प्रश्नों के संदर्भ में उनके विचार या दृष्टिकोण को जानने या उन्ही की भाषा-शैली तथा भाव-भंगिमा मे व्यक्त करने की साहित्यिक रचना भेंट-वार्ता है। भेंट-वार्ता महान् और लघु के बीच ही शोभा देती है। लघु के हृदय की श्रद्धाभावना देखकर महान् के हृदय मे सब कुछ समाहित करने की भावना जाग उठती है। पर कभी-कभी दो भिन्न क्षेत्रो की विभूतियों के मध्य वार्तालाप भी इस विधा के अतर्गत आता है। कभी-कभी काल्पनिक इन्टरव्यू भी इस विधा मे समाविष्ट होते है। इसमें अपनी कल्पना से किसी साहित्यकार को अवतीर्ण कर उनसे स्वय ही प्रश्न पूछकर उत्तर देना बड़ा ही रोचक होता है।

यद्यपि आचार्य तुलसी ने किसी व्यक्ति का इन्टरव्यू नही लिया पर उनके साथ हुए विशिष्ट व्यक्तियो के साक्षात्कार उनके साहित्य में प्रचुर मात्रा मे है। लगभग सभी राष्ट्रनेताओ एव बुद्धिजीवियो के साथ उनकी वार्ताएं हुई हैं, कुछ प्रकाशित है तथा कुछ अभी भी अप्रकाशित है।

'जैन भारती' में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तियो के बीच हुई लगभग ५० वार्ताए प्रकाशित है। पर वे अभी पुस्तक के रूप मे प्रकाशित नहीं हुई है।

यात्रा-वृत्त

यात्रा का अर्थ है—एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। यात्रा वृत्तात मे यात्रा के दौरान अनुभूत प्राकृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक तथ्यो का चित्रण किया जाता है। यात्रावृत्त की दृष्टि से कुछ ग्रंथ काफी प्रसिद्ध है। जैसे राहुल साकृत्यायन का 'मेरी तिब्बत यात्रा', डा० भगवतीशरण उपाध्याय का 'सागर की लहरो पर', धर्मवीर भारती का 'ढेले पर हिमालय' तथा नेहरू का 'आखो देखा रूस' और रामेश्वर टाटिया का 'विश्व यात्रा के संस्मरण' आदि।

आचार्य तुलसी महान् यायावर है। वे कहते है—"यात्रा में मेरी अभिरुचि इतनी है कि एक स्थान पर रहकर भी मै यात्रायित होता रहता हू।" उन्होने देश के लगभग सभी प्रातो की यात्राएं की हैं पर स्वयं कोई स्वतत्र यात्रा ग्रंथ नही लिखा है फिर भी उनके कुछ लेख जैसे 'मेरी यात्रा' 'मैं क्यो घूम रहा हू' आदि यात्रावृत्त के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। इसके साथ उनके प्रवचन साहित्य मे यात्रा के संस्मरणो का उल्लेख भी स्थान-स्थान पर हुआ है। उन्होने अपने काव्य ग्रन्थो मे स्फुट रूप से यात्रा का वर्णन किया है पर उसे यात्रावृत्त नही कहा जा सकता।

आचार्य तुलसी की यात्राओ का रोचक एव मार्मिक चित्रण महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने किया है। अब तक उनकी यात्राओ के छह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है—

(१) दक्षिण के अंचल मे (दक्षिण यात्रा) (२) पाव पाव चलने वाला सूरज (पजाब यात्रा) (३) बहता पानी निरमला (गुजरात यात्रा) (४) जब महक उठी मरुधर माटी (मारवाड़ यात्रा) (५) अमृत बरसा अरावली में (मेवाड यात्रा) (६) परस पाव मुसकाई घाटी (मेवाड यात्रा)।

इन यात्रा ग्रन्थो मे तथ्यपरकता, भौगोलिकता, रोचकता, सरसता तथा सहजता आदि यात्रावृत्त के सभी गुण समाविष्ट है। ये ग्रन्थ इतनी सरस शैली मे यात्रा का इतिहास प्रस्तुत करते है कि पाठक को ऐसा लगता है मानो वह आचार्य तुलसी के साथ ही यात्रायित हो रहा हो। इन यात्रा ग्रन्थो को पढकर ही प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रजी ने लेखिका साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा जी को कहा 'लिखना तो हमे आपसे सीखना पडेगा'। इस एक वाक्य से इन यात्रा ग्रथो की गरिमा अभिव्यक्त हो जाती है।

(विद्वानो ने प्रवचन साहित्य को साहित्यिक विधा के अतर्गत नही माना है पर आचार्य तुलसी ने इस विधा मे नए प्रयोग किए है तथा विपुल परिमाण मे इस विधा मे अभिव्यक्ति दी है। अत. स्वतत्र रूप से उनके प्रवचन साहित्य के वैशिष्ट्य को यहा उजागर किया जा रहा है।)

प्रवचन साहित्य

भारतीय परम्परा में आत्मद्रष्टा ऋषियों एवं धर्मगुरुओं के प्रवचनों का विशेष महत्त्व है क्योकि शब्दों का अचिन्त्य प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर पडता है। 'मा भैः' उपनिषद् की इस वाणी ने अनेको को निर्भय बना दिया।

'खणं जाणाहि' महावीर के इस उद्‌बोधन ने लाखो को अप्रमत्त जीवन जीने का दिशा बोध दे दिया तथा 'अप्पदीवो भव' बुद्ध की इस अनुभवपूत वाणी ने हजारो के तमस्मय जीवन को आलोक से भर दिया। आचार्य तुलसी की वाणी आत्मिक अनुभूति की वाणी है। उनके शब्दो मे अध्यात्म की वह तेजस्वी शक्ति है, जो क्रूर से क्रूर व्यक्ति का हृदयपरिवर्तन करने मे सक्षम है। उन्होने अपने ७० साल के संयमी जीवन मे हजारो बार प्रवचन किया है। लम्बी पदयात्राओ मे युवावस्था के दौरान तो उन्होने दिन में चार-चार या पाच-पाच बार भी जनता को उद्‌बोधित किया है। एक ही तत्त्व को अलग-अलग व्यक्तियो को बार-बार समझाने पर भी उनका मन और शरीर कभी थकान की अनुभूति नही करता।

उनके प्रवचन करने का उद्देश्य आत्मविकास एवं स्वानंद है। वे प्रवचन करके किसी पर अनुग्रह का भार नही लादते वरन् उसे साधना का ही एक अग मानते है। इस बात की अभिव्यक्ति वे अनेको बार देते हैं कि मेरे उपदेश और प्रवचन को यदि एक भी व्यक्ति ग्रहण नही करता है तो मुझे किंचित् भी हानि या निराशा नही होती क्योंकि उपदेश देना मेरा पेशा नही वरन् साधना है, वह अपने आप मे सफल है।[1] उनकी प्रवचन साधना मात्र वस्तुस्थिति की व्याख्या नही अपितु साधना एवं दर्शन से व्यक्ति और समाज को परिवर्तित कर देने की चेष्टा है। इसी कारण अन्यान्य अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यो मे व्यस्त रहने पर भी उनका प्रतिदिन प्रवचन का क्रम नही टूटता। एक सत के मन में निहित समष्टि-कल्याण की भावना का निदर्शन निम्न वाक्यो में पाया जा सकता है—"मैं चाहता हूं जन-जन मे सद्‌गुण भर जाए, पापो से घुटती हुई दुनिया को प्रकाश मिले। मुझे जो जागृति मिली है, वह औरो को भी दे सकू ऐसी मेरी हार्दिक इच्छा है। इसके लिए मै सतत प्रयत्नशील हूं।'[2]

वे केवल अपने श्रद्धालुओ के लिए ही प्रवचन नही करते, मानव मात्र की मगल भावना मे आतप्रोत होकर ही उनके प्रवचनो की मदाकिनी प्रवाहित होती है। वे बार-बार इन विचारो की अभिव्यक्ति देते हैं कि केवल जैन या केवल ओसवालों मे बोलकर मैं इतना खुश नही होता, जितना सर्वसाधारण मे बोलकर होता हूं।"[3]

एक बार उनकी प्रवचन सभा मे कुछ हरिजन भाई भी अग्रिम पक्ति मे आकर बैठने लगे। परिपार्श्व मे बैठे महाजनो ने उन्हे संकेत से दूर बैठकर सुनने की बात कही। आचार्य तुलसी का करुणा प्रधान मानस उस भेद को

---

१. जैन भारती, १४ अक्टू० १९६२
२. जैन भारती, १९ नवम्बर १९५३
३. एक बूंद : एक सागर, पृ० १४९२

सह नही सका। तत्काल उस कृत्य की तीखी आलोचना करते हुए उन्होने कहा—"धर्मस्थान हर व्यक्ति के लिए खुला रहना चाहिए। जाति और रंग के आधार पर किसी को अस्पृश्य मानना, उन्हे मानवीय अधिकारो से वंचित रखना मानवता का अपराध है। धर्म के क्षेत्र मे जातिजन्य उच्चता नहीं, कर्मजन्य उच्चता होती है। धार्मिक उच्चता हरिजन या महाजन सापेक्ष नही है। मेरे प्रवचनस्थान पर किसी भी जाति के लोगो को प्रवचन सुनने का निषेध नही हो सकता। यदि कोई अनुयायी हरिजन को प्रवचन सुनने का निषेध करता है, इसका अर्थ यह है कि वह मुझे प्रवचन करने का निपेध करता है। मैं तो देश के हर वर्ग, जाति और सम्प्रदाय के लोगो से इसानियत और भाईचारे के नाते मिलकर उन्हे जीवन का लक्ष्य परिचित कराना चाहता हूं।[1]

इस प्रकार वर्गभेद, जातिभेद, रगभेद और सम्प्रदायभेद के बढ़ते उन्माद को रोककर भावात्मक एकता की स्थापना भी उनके प्रवचन का मुख्य उद्देश्य रहा है।

उन्होने अपने प्रवचन मे समाज सेवा और राष्ट्र की विपम स्थितियो एव विसंगतियो पर दु:ख प्रकट किया है पर कही भी निराशा का स्वर नही है। इस सदर्भ मे उनकी निम्न उक्ति अत्यन्त मार्मिक है—"कई लोग ससार को स्वर्ग बनाना चाहते है किंतु वह बनना नहीं। मै ऐसी कल्पना नही करता यही कारण है कि मुझे निराशा नही होती। मै चाहता हू कि मनुष्य लोक कही राक्षसलोक या दैत्यलोक न बन जाए। उसे यदि प्रवचन द्वारा मनुष्यलोक की मर्यादा मे रखने मे सफल हो गए तो मानना चाहिए हमने बहुत कुछ कर लिया।" उनके इस सतुलित दृष्टिकोण के कारण यह प्रवचन साहित्य जीवन के साथ ताजा सम्बन्ध स्थापित करता है।

वे हर तथ्य का प्रतिपादन इतनी मनोवैज्ञानिकता के साथ करते है कि उसे पढने और सुनने पर लगता है कि वह पाठक व श्रोता की अपनी ही अनुभूति है।

प्रवचन की विषयवस्तु

उनके प्रवचनो के विपय न तो इतने गहन गंभीर है कि उन्हे समझने के लिए किसी दूसरे की सहायता लेनी पडे और न इतने उथले हैं कि उनमें बच्चो का बचकानापन झलके। चाहे धर्म हो या दर्शन, मनोविज्ञान हो या इतिहास, राजनीति हो या सिद्धान्त, अध्यात्म हो या विज्ञान लगभग सभी विषयों पर कलात्मक प्रस्तुति उनके प्रवचनो मे हुई है। अतः उनके प्रवचनों मे विपय की विविधता है। वे नदी की धारा की भांत प्रवहमान

---

१. जैन भारती, ३० अप्रैल १९६१

और नवीनता लिए हुए है। उनके प्रवचनो को ऐसी दीपशिखाए कहा जा सकता है जो युग-युग तक पीडित एवं शोषित जनता का पथदर्शन कर सकती है।

प्रवचन का वैशिष्ट्य

किसी भी प्रवचनकार की सबसे बडी विशेषता उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता है। यद्यपि यह क्षमता एक राजनेता मे भी होती है पर नेता जहा ऊपर से चोट करता है, वहा आत्मसाधक प्रवचनकार का लक्ष्य अन्तर्मानस पर चोट करना होता है। आचार्य तुलसी के प्रवचन राजनेता की भाति कोरी भावुकता नही बल्कि विवेक को जागृत करते है। उनकी दृष्टि नेता की भाति केवल स्वार्थ पर नही बल्कि परमार्थ पर रहती है।

आचार्य तुलसी सत्य शिवं सुन्दर के प्रतीक हैं। यही कारण है कि उनके प्रवचनो मे केवल सत्य का उद्घाटन या सौन्दर्य की सृष्टि ही नही हुई है अपितु शिवत्व का अवतरण भी उनमे सहजतया हो गया है। उनके प्रवचनो के सार्वभौम वैशिष्ट्य को कुछ बिन्दुओ मे व्यक्त किया जा सकता है।

व्यावहारिक प्रस्तुति

उनके प्रवचन की सर्वभौमिकता का सबसे बड़ा कारण है कि वे गहरे विचारक होते हुए भी किसी विचार से बधे हुए नही है। उनका आग्रहमुक्त/निर्द्वन्द्व मानस कही से भी अच्छाई और प्रेरणा ग्रहण कर लेता है। उनकी प्रत्युत्पन्न मेधा हर सामान्य प्रसग को भी पैनी दृष्टि से पकड़ने मे सक्षम है। वे घटना को श्रोता के समक्ष इस रूप में प्रस्तुत करते है कि वे उससे स्वत: उत्प्रेरित हो जाते है। सामान्य घटना के पीछे रहे गहरे दर्शन को वे बातो ही बातों मे बहुत सहजता से चित्रित कर देते हैं।

विशेष क्षणो में उपजा हुआ चिन्तन बडे-बडे विचारको के लिए भी चिन्तन की एक खुराक दे जाता है। इस तथ्य का स्वयभू साक्ष्य है—बगला देश के शरणार्थियो के सदर्भ मे की गयी आचार्य तुलसी की निम्न टिप्पणी—

"आप अपने को शरणार्थी मानते है पर मेरी दृष्टि मे आधुनिक युग का सबसे बडा शरणार्थी सत्य है। वह नि सहाय है उसे कही सहारा नही मिल रहा है। जब तक सत्य शरणार्थी रहेगा, तब तक मनुष्य को सुख-शाति कैसे मिल सकती है?"

कर्मवाद का दार्शनिक तथ्य उनकी प्रतिभा के पारस से छूकर किस प्रकार सामान्य घटना के माध्यम से उद्गीर्ण हुआ है, यह द्रष्टव्य है—

पजाब यात्रा का प्रसग है। एक ट्रक ढकेला जा रहा था। आचार्य तुलसी ने उसे देखकर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए कहा—"किसी भी व्यक्ति के दिन सदा समान नही होते। सबको सहयोग देकर चलाने वाला

व्यक्ति भी भाग्य ठडा हो जाने पर दूसरो के सहयोग का मुंहताज बन जाता है। ट्रक का इजन प्रतिदिन कितने लोगो को अपने गतव्य तक पहुंचा देता है, कितने भारी भरकम सामान को कहा से कहां पहुचा देता है पर ठडा होने पर उसे ढकेलना पडता है। वह परापेक्षी हो जाता है।

प्रस्तुत प्रसग की स्पष्टता के लिए एक प्रवचनांश को उद्धृत करना भी अप्रासगिक नही होगा। 'आत्मा' गाव मे पदार्पण करने पर अपने प्रवचन का प्रारम्भ करते हुए आचार्य तुलसी ने कहा—"आज हम आत्मा मे आए हैं। आज क्या आये हैं हम तो पहले से ही यही थे। आज तो वे लोग भी यहा पहुच गये है जो सामान्यत बाहर घूमते है। बाहर घूमने वाले लोग भटक जाए यह बात समझ मे आती है पर जो वर्षों से 'आत्मा' मे वास करते है, वे क्यो भटके ?[1]

अनेक घटनाओ एव कथाओ के प्रयोग से उनके प्रवचन मे सजीवता एव रोचकता आ गयी है। इस कारण से उनके प्रवचन बाल, वृद्ध एव प्रौढ सबके लिये ग्रहणीय बन गये है। इसके साथ आगम, गीता, महाभारत, उपनिषद्, पचतत्र आदि के उद्धरण भी वे अपने प्रवचनो मे देते रहते है। वार्तमानिक खोज एव नयी सूचनाओ के उल्लेख उनके गम्भीर एव बहुमुखी ज्ञान की अभिव्यक्ति देते है।

उनके प्रवचन साहित्य की अनेक पुस्तके आगम सूक्तो एव अध्यायो की व्याख्या रूप भी हैं। उन प्रवचनो को पढने से ऐसा लगता है कि महावीर वाणी को आधुनिक सदर्भ मे नई प्रस्तुति देने का सशक्त उपक्रम किया गया है।

महावीर वाणी के माध्यम से आज की समस्याओ का समाधान होने से इस साहित्य मे दृढ चरित्रो को उत्पन्न करने की क्षमता पैदा हो गयी है तथा बुराइयो को कुचलकर अच्छाई की ओर बढने की प्रेरणा भी निहित है। 'बूद-बूद से घट भरे' 'मजिल की ओर' आदि पुस्तके आगमिक व्याख्या रूप ही है।

निर्भीकता

आचार्य तुलसी के प्रवचनो मे क्राति के स्फुलिग उछलते रहते है। उनकी क्रातिकारिता इस अर्थ मे अधिक सार्थक है कि वे अपनी बात को निर्भीक रूप से कहते हैं। वर्ग विशेष की बुराई के प्रति कभी-कभी वे बहुत प्रचड एव तीखी आलोचना करने से भी नही चूकते। वे इस बात से कभी भयभीत नही होते कि उनकी बात सुनकर कोई नाराज हो जायेगा। उनका स्पष्ट कथन है—"मै किसी पर व्यक्तिगत रूप से प्रहार करना नही चाहता पर सामूहिक रूप मे बुराई पर प्रहार करना मेरा कर्त्तव्य है। वह चाहे व्यापारी वर्ग मे हो, राजकर्मचारी मे हो या किसी दूसरे वर्ग मे।[2] राजनेताओ की

---

१. पाव पाव चलने वाला सूरज, पृ० ३४९
२. जैन भारती, ७ सित० १९७९

सत्तालोलुप दृष्टि पर कडा प्रहार करते हुए उनका कहना है—"जिस समय मत के साथ प्रलोभन और भय जुड जाये, वह खरीदफरोख्ती की वस्तु बन जाये, उसके साथ मार-पीट, लूट-खसोट और छीना-झपटी के किस्से बन जाए, उससे भी बडे हादसे घटित हो जाये। यह सब क्या है? क्या आजादी की सुरक्षा ऐसे कारनामो से होगी?.......ऐसे घिनौने तरीकों से विजय पाना और फिर विजय की दुन्दुभि बजाना, क्या यह लोकतत्र की विजय है? ऐसी विजय से तो हार भी क्या बुरी है?[1]"

केवल विज्ञान पर आश्रित रहकर यात्रिक एव निष्क्रिय जीवन जीने वाले देशवासियो को प्रतिबोधित करते हुये उनका कहना है—"जिस देश के घर-घर मे कम्प्यूटर और रोबोट उतर आये, रेडियो और टी० वी० का प्रभाव छा जाए, मनुष्य का हर काम स्वचालित यन्त्रो से होने लगे, मनुष्य यन्त्र की भाति निष्क्रिय होकर बैठ जाए, क्या वह देश विकसित या विकासशील बन सकता है?

केवल बुराईयो के प्रति अगुलिनिर्देश ही नही, वर्ग-विशेप की विशेषताओ को सहलाया भी गया है अत: उनके प्रवचनो मे संतुलन बना हुआ है। सदियो से शोषित एव पिछडी महिला जाति के गुणो को प्रोत्साहन देते हुए वे कहते है—"मैं देखता हू आजकल बहिनो का साहस बढा है, आत्मविश्वास जागृत हुआ है, चिंतन की क्षमता भी विकसित हुई है और उनमे जातीय गौरव की भावना प्रज्वलित हुई है।"[2]

वेधकता

आचार्य तुलसी के प्रवचन इतने वेधक होते है कि अनायास ही अन्तर मे झाकने को विवश कर देते हैं। सम्भवत: दर्शन और अध्यात्म के सैकडो ग्रथ पढने के बाद भी व्यक्ति के मस्तिष्क मे वह विचार किरण फूटे या न फूटे जो आचार्यश्री के प्रवचन की कुछ पक्तियो मे स्फुरित हो जाती है। उनकी निम्न पंक्तिया कितनी अन्तर्भेदिनी बन गयी है—

० "मैं पूछना चाहता हू कौन नही है दास? कोई मन का दास है, कोई इद्रियो का दास है, कोईं वासना का दास है, कोई वृत्तियों का दास है तो कोई सत्ता का दास है। पहले तो क्रीत होने के बाद दास माना जाता था पर आज तो अधिकाश लोग बिना खरीदे दास है।"

० "एक शेर या दैत्य पर नियन्त्रण करना सरल है, पर उत्तेजना के क्षणो मे अपने आप पर नियन्त्रण कर पाना बहुत बड़ी उपलब्धि है।"[3]

---

१. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० ८८
२. दोनो हाथ : एक साथ; पृ० २८
३ एक बूद : एक सागर, पृ० ३२१

यही कारण है कि उनके प्रवचनो मे शब्दो का आडम्बर नही, अपितु हृदय को झकझोरने वाली प्रदीप्त सामग्री होती है।

प्रायोगिकता

प्रवचन मे केवल सैद्धातिक पक्ष की प्रस्तुति ही उन्हे अभीष्ट नही है वे उसे प्रयोग से बराबर जुडा रखना चाहते है। वे बात-बात मे ऐसा प्रशिक्षण दे देते है, जिसे श्रोता या द्रष्टा जीवन भर नही भूल सकता।

लाडनू का प्रसग है। प्रवचन के बाद एक युवक ने सूचना देते हुए कहा—'एक घडी (समय सूचक यन्त्र) की प्राप्ति हुई है। जिस किसी भाई की हो वह आकर ले जाए।' इतना सुनते ही आचार्यश्री ने स्मित हास्य बिखेरते हुए कहा—'एक घडी[1] मैंने भी आप लोगो के बीच खोई है। देखता हू कौन-कौन लाकर देता है ? सारा वातावरण हास्य से मुखरित ही नही हुआ वरन् अभिनव प्रेरणा से ओतप्रोत हो उठा। श्रोताओ को यह प्रशिक्षण मिल गया कि जो सुना है उसको आत्मसात् करके ही हम गुरुचरणो मे सच्ची दक्षिणा समर्पित कर सकते है।

संस्मरणो की मिठास

उनके प्रवचनो मे अध्यात्म एव नीतिदर्शन का गूढ विश्लेषण ही नहीं होता, सस्मरणो एव अनुभवो का माधुर्य भी होता है, जो कथ्य को इस भाति संप्रेषित करता है कि वर्षो तक के लिए वह घटना स्मृति-पटल पर अमिट बन जाती है।

रायपुर के भयंकर अग्नि-परीक्षा-काड के विरोध के पश्चात् चूरू चातुर्मास मे स्वागत समारोह के अवसर पर वे कहते है—"लोग कहते है कि अन्तरिक्ष मे जाने पर चद्रयात्री भारहीनता का अनुभव करते है पर हम तो पृथ्वी पर ही भारहीन जीवन जी रहे है।" इतने विशाल सघ के नेता की यह प्रसन्न अभिव्यक्ति निश्चित रूप से उन लोगो के लिए प्रेरक है, जो अपने परिवार के कुछ सदस्यो का नेतृत्व करने मे ही खेदखिन्न एवं तनावयुक्त हो जाते है।

उन्ही की भाषा मे प्रस्तुत उनके जीवन का निम्न सस्मरण छोटी सी बात पर प्रतिक्रिया करके आपा खो देने वालो को प्रेरणा देने मे पर्याप्त होगा—"सन् १९७२ की बात है। हमने रतनगढ से प्रस्थान किया। जून-जुलाई की तपती दोपहरी थी। विरोधी वातावरण के कारण स्थान नही मिला। हमारे विरोध मे भ्रातिपूर्ण बाते कही गयी, अत. विरोध भड़क उठा। पर हमें आचार्य भिक्षु के जीवन से सीख मिली थी—"जो हमारा हो विरोध, हम उसे समझे विनोद।" रतनगढ गाव की सीमा पर

---

[1] जैन दर्शन मे घडी समय के एक विभाग/४८ मिनिट को कहते है।

गोशाला के सामने बडे-बडे वृक्ष थे। हमने उन्ही की छाया मे पडाव डाल दिया। लगभग दो तीन घटे हम वहा रहे। वहा बैठकर आगम का काम किया, साहित्य की चर्चा की और भी आवश्यक काम किए। हमारी इस घटना के साक्षी थे—प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रजी। उन्हे महत आश्चर्य हुआ कि इस प्रतिकूल वातावरण मे भी हम पूरी निश्चिन्तता से काम कैसे कर सके ?"[1]

अनुभूत सत्यो की अभिव्यक्ति

उनके प्रवचनो की सरसता का हेतु सस्मरणो की पुट तो है ही, साथ ही वे समय-समय पर अपने जीवन के अनुभूत सत्यो को भी प्रकट करते रहते है जिससे यह साहित्य जीवन्त एव जीवट हो गया है। बर्ट्रेड रसेल अपने जीवन के अनुभवो को इस भाषा मे प्रस्तुत करते है—"अपने लम्बे जीवन मे मैने कुछ ध्रुव सत्य देखे है—पहला यह कि घृणा, द्वेष और मोह को पल-पल मरना पड़ता है। दूसरा यह कि सहिष्णुता से बडी कोई प्रेम-प्रीति नही होती। तीसरा यह कि ज्ञान के साथ-साथ विवेक को भी पुष्ट करते चलो, भविष्य की हर सीढी निरामय होगी"। आचार्य तुलसी ने ऐसे अनेक मार्मिक अनुभूत सत्यो को समय-समय पर अभिव्यक्त किया है। आचार्य काल के २५ वर्ष पूरे होने पर वे अपने अन्तर्मन को खोलते हुए कहते है—मैंने अपने जीवन मे कुछ सत्य पाए है, उन्हे मै प्रयोग को कसौटी पर कसकर जनता के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हू—

- विश्व केवल परिवर्तनशील या केवल स्थितिशील नही है। यह परिवर्तन और स्थिति का अविकल योग है।
- परिस्थिति-परिवर्तन व हृदय-परिवर्तन का योग किए विना समस्या का समाधान नही हो सकता।
- केवल सामाजिकता और केवल वैयक्तिकता को मान्यता देने से समस्याओ का समाधान नही हो सकता।
- वर्तमान और भविष्य—दोनो मे से एक भी उपेक्षणीय नही है।
- भौतिकता मनुष्य को विभक्त करती है। उसकी एकता अध्यात्म के क्षेत्र मे ही सुरक्षित है।
- कोई भी धर्म-सस्थान राजनीति और परिग्रह से निर्लिप्त रहकर ही अपना अस्तित्व कायम रख सकता है।
- आध्यात्मिक एकता का विकास होने पर ही सह-अस्तित्व का सिद्धात क्रियान्वित हो सकता है तथा जातिवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद, प्रातवाद और राष्ट्रवाद की सीमाए टूट सकती है।[2]

---

१. दीया जले अगम का, पृ० १८-१९

२. अतीत का विसर्जन : अनागत का स्वागत, पृ० १४१-४३

आचार्यकाल के पचास वर्ष पूर्ण होने पर वे सगठन मूलक १३ सूत्रो को जनता के समक्ष प्रस्तुत करते है। उनमे से कुछ अनुभव-सूत्र इस प्रकार है—

१. वही सगठन अधिक कार्य कर सकता है, जो अनुशासन, ज्ञान और चरित्र से सम्पन्न होता है।
२. व्यापक क्षेत्र मे कार्य करने के लिए दृष्टिकोण को उदार बनाना जरूरी है। संकीर्ण दृष्टि वाला कोई बडा कार्य नही कर सकता।
३ प्रगति के लिए प्राचीन परम्पराओ को बदलना आवश्यक है। किंतु विवेक उसकी पूर्व पृष्ठभूमि है।
४. प्रगति और परिवर्तन के साथ सघर्ष भी आता है। उसे झेलने के लिए मानसिक संतुलन आवश्यक है। असतुलित व्यक्ति सघर्ष मे विजयी नही हो सकता।
५. सगठन की दृष्टि से सस्था का मूल्य निश्चित है। पर उससे भी अधिक मूल्य है गुणात्मकता का। मैने प्रारंभ से ही व्यक्ति-निर्माण पर ध्यान दिया। उसमे मुझे कुछ सफलता मिली। इसका मुझे सतोष है।
६. केवल विद्या के क्षेत्र मे आगे बढने वाला सघ चरित्र की शक्ति के बिना चिरजीवी नही हो सकता, तो केवल चरित्र को मूल्य देने वाला जनता के लिए उपयोगी नही बन सकता।
७. सुविधावादी दृष्टिकोण मनुष्य को कर्तव्यविमुख, सिद्धातविमुख और दायित्वविमुख बनाता है।[1]

ये अनुभव उनके जीवन की समग्रता एव आनद को अभिव्यक्त करते है। इस प्रकार के अनुभूत सत्यो का सकलन यदि उनके साहित्य से किया जाए तो एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज बन सकता है। ये अनुभव सम्पूर्ण मानव जाति का दिशादर्शन करने मे समर्थ है।

पुरुषार्थ की परिक्रमा

आचार्य तुलसी पुरुषार्थ की जलती मशाल है। उनके व्यक्तित्व को एक शब्द मे बन्द करना चाहे तो वह है—पौरुष। उनके पुरुषार्थी जीवन ने अनेक विरोधियो को भी उनका प्रशसक बना दिया है। इसके एक उदाहरण हैं—ख्यातिप्राप्त विद्वान् प० दलसुखभाई मालवणिया। वे आचार्यश्री के पुरुषार्थी व्यक्तित्व का शब्दाकन करते हुए कहते है—

"प्रमाद के प्रवेश के लिए जीवन मे असख्य भाग है। उन सबकी चौकसी रखनी होती है और निरन्तर अप्रमत्त बने रहना होता है। आचार्य तुलसी मे मैने इस पुरुषार्थ की झाकी पाई है। वह न चैन लेते है और न लेने देते है।" उनका प्रवचन साहित्य श्रम की सस्कृति को

---

1. सफर : आधी शताब्दी का, पृ० ५०-५३।

उज्जीवित करने का महत् प्रयत्न है। पुरुषार्थहीन एवं अकर्मण्य जीवन के वे घोर विरोधी हैं। उनकी दृष्टि मे तलहटी से शिखर तक पहुंचने का उपाय पुरुषार्थ है। पुरुषार्थी के द्वार पर सफलता दस्तक देती है, वह हारी बाजी को जीत मे बदल देता है। इसके विपरीत अकर्मण्य व्यक्ति की क्षमताओं में जंग लग जाता है और वह कुछ न करने के कारण उम्र से पहले ही बूढा हो जाता है। समाज की अकर्मण्यता को झकझोरती हुई उनकी यह उक्ति कितनी वेधक है—"यह एक प्रकार की दुर्बलता है कि व्यक्ति खेती के लिए श्रम तो नही करता पर अच्छी फसल चाहता है। दही मथने का श्रम नही करता, पर मक्खन पाना चाहता है। व्यवसाय मे पुरुषार्थ का नियोजन नही करता, पर धनपति बनना चाहता है। पढ़ने मे समय लगाकर मेहनत नही करता, पर परीक्षा मे अच्छे अको मे उत्तीर्ण होना चाहता है। ध्यान-साधना का अभ्यास नही करता, पर योगी बनना चाहता है।"[1]

इसी सन्दर्भ मे उनकी निम्न अनुभूति भी प्रेरक है—"मेरे मन मे अनेक बार विकल्प उठता है कि सूरज आता है, प्रकाश होता है। उसके अस्त होते ही फिर अंधकार छा जाता है। प्रकाश और अन्धकार की यात्रा का यह शाश्वत क्रम है। ये काम करते-करते नही अघाते तो फिर हम क्यो अघाए ?"[2]

शताब्दियो मे दासता के कारण जर्जर देश की अकर्मण्यता को झकझोरने मे उनका प्रवचन साहित्य अहम् भूमिका रखता है। उनकी हार्दिक अभीप्सा है कि पूरा समाज पुरुषार्थ के वाहन पर सवार होकर यात्रा करे और जीवन के सीधे सपाट रास्ते मे सृजन का एक नया मोड़ दे। 'चरैवेति, चरैवेति' का आर्षवाक्य उनके कण-कण मे रमा हुआ है अत: अकर्मण्यता और सुविधावाद पर जितना प्रहार उनके साहित्य मे मिलता है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

अडोल आत्मविश्वास

उनका प्रवचन साहित्य हमारे भीतर यह आत्मविश्वास जागृत करता है कि समस्या से घबराना कायरता है। समस्याए मनुष्य की पुत्रिया हैं अत: वे हर युग मे रहती है, केवल उनका स्वरूप बदलता है। उनका कहना है कि "समस्या न आए तो दिमाग निकम्मा हो जाएगा। मै चाहता हू कि समस्याएं आए और हम हंसते-हसते समाधान करते रहे। मनुष्य द्वारा उत्पादित समस्याओ का समाधान करने के लिए आकाश से कोई देवता नही आएगा,

१. एक बूंद : एक सागर, पृ० १३६३
२. वही, पृ० १६९३

पृथ्वी पर ही किसी को भगवान् बनना पडेगा।"[1] वे इस बात को अपने प्रवचनो में बार-बार दोहराते रहते है कि किसी भी समस्या या प्रश्न को इसलिए नही छोडा जा सकता कि वह जटिल है। विवेक इस बात मे है कि हर जटिल पहेली को सुलझाने का प्रयत्न किया जाए। इसी अडोल आत्म-विश्वास के कारण उन्होने अपने साहित्य मे हर कठिन समस्या को समाधान तक पहुंचाने का तीव्र प्रयत्न किया है। वे अनेक बार यह प्रतिबोध देते है—"संसार की कोई ऐसी समस्या नही है, जिसका समाधान न किया जा सके। आवश्यकता है अपने आपको देखने की और किसी भी परिस्थिति मे स्वय समस्या न बनने की।" उनके साहित्य मे देश, समाज, परिवार एव व्यक्ति की हजारों समस्याओ का समाधान है। उनके कदमो मे कही लडखडाहट, शका, थकावट या बेचैनी नही है। यही कारण है कि उनके हर कदम, हर श्वास, हर वाक्य तथा हर मोड मे नया आत्म-विश्वास झलकता है।

मनोवैज्ञानिकता

आचार्य तुलसी महान् मनोवैज्ञानिक है। वे हजारो मानसिकताओ से परिचित है इसलिए उनके प्रवचन मे सहज रूप से अनेको मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रकट हो गए है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी का मानना है कि जो साहित्यकार मानव मन को मथित और चलित करने वाली परिस्थितियो की उद्भावना नही कर सकता तथा मानवीय सुख-दु ख को पाठक के समक्ष हस्तामलक नही बना देता, वह बडी सृष्टि नही कर सकता।[2]

वे कितने बडे मनोवैज्ञानिक है इसका अकन निम्न घटना से गम्य है—एक बार पदयात्रा के दौरान रूपनगढ गाव मे सेवानिवृत्त एक सेना के अफसर से आचार्यश्री वार्तालाप कर रहे थे। इतने मे एक जैन भाई वहा आया और कान मे धीरे से बोला—यह आदमी शराब पीता है अत आपके साथ बात करने लायक नही है। पर आचार्यश्री उस अफसर से बात करते रहे। आचार्यश्री की प्रेरणा से उस भाई ने दस मिनिट मे शराब छोड दी। थोडी देर बाद आचार्यश्री उस जैन भाई की ओर उन्मुख होकर पूछने लगे। 'आप व्यापार तो करते होगे ?' वह बोला—'यहा मेरी दुकान है। मै घी-तेल का व्यापार करता हू।' यह बात सुन मैने पूछा—'आप तो जैन है। घी-तेल मे मिलावट तो नही करते है ?' वह बोला—'महाराज ! हम गृहस्थ हैं।' मेरा दूसरा प्रश्न था—'तोल-माप मे कमी-बेशी तो नही करते ?' वह बोला—'महाराज ! आप जानते है। व्यापार मे यह सब तो चलता है।' मैंने

---

१. एक बूंद : एक सागर, पृ० १४९१-९२

२. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रथावली, भाग ७, पृ० १७७

कहा—'भाई ! मिलावट पाप है, तोल-माप मे कमी-वेशी करना ग्राहको को धोखा देना है। एक धार्मिक व्यक्ति यह सब करे, उसका क्या प्रभाव होता होगा ?' वह बोला—'आपका कहना सही है। पर क्या करू ? गृहस्थ को सब कुछ करना पडता है।' मैने उस भाई को समझाने के लिए सारी शक्ति लगा दी। पर वह टस से मस नही हुआ। न उसने मिलावट छोडी न और कुछ।

मैने उस भाई को स्पष्टता मे कहा—'आपके गुरु किसी शराबी व्यक्ति से बात करते है तो आपको खराबी का अन्देशा रहता है, जबकि उस व्यक्ति ने पूरी शराब छोड दी। आप जैसे व्यक्तियो के साथ बात करने मे हमारी गरिमा कैसे बढ़ेगी ? आप जैन होकर भी अपने व्यवसाय मे ईमानदार नही है। शराब पीने वाला तो केवल अपना नुकसान करता है, जबकि व्यापार मे की जाने वाली हेराफेरी से तो हजारो का नुकसान होता है। आप अपने गुरुओ पर तो अंकुश लगाना चाहते है, पर स्वय पर कोई अकुश नही है। ऐसी धार्मिकता से किसका कल्याण होगा ?' मेरी बात सुन उस भाई को अपनी भूल का अहसास हो गया।[1]

आचार्य तुलसी ने जनसामान्य के मन मे उठने वाले सदेहो, सकल्पो-विकल्पो एव मानसिक दुर्बलताओ को उठाकर उसका सटीक समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। विषय के प्रतिपक्ष मे उठने वाले तर्क उठाकर उसे समाहित करने से उनकी वर्णन शैली मे एक चमत्कार उत्पन्न हो गया है तथा विषय की स्पष्टता भी भलीभाति हो गई है। इस प्रसग मे निम्न उदाहरण को रखा जा सकता है—

"कुछ व्यक्ति कहा करते है हम त्याग तो करले लेकिन भविष्य का क्या पता ? कभी वह टूट जाए तो ? यह तो ऐसी बात हुई कि कोई भोजन करने से पहले ही यह कहे कि मै तो भोजन इसलिए नही करूगा कि कही अजीर्ण हो जाए तो ? क्या उस अप्रकट अजीर्ण के डर से भोजन छोडा जा सकता है ? इसी प्रकार व्रत लेने से पहले ही टूटने की आशका करना व्यर्थ है।"

नवीनता और प्राचीनता का संगम

उनके प्रवचन साहित्य को नवीनता और प्राचीनता का सगम कहा जा सकता है। उनका चिन्तन है कि "पुराणमित्येव न साधु सर्व" यह सत्य है तो "नवीनमित्येव न साधु सर्व" यह भी सत्य है। अत दोनो का समन्वय अपेक्षित है। इस सन्दर्भ मे वे अपनी अनुभूति इस भाषा मे प्रस्तुत करते है—"मै अतीत और वर्तमान दोनो के सम्पर्क मे रहा हू। पुरानी स्थिति का मैने

१ मनहसा मोती चुगे, पृ० ९०-९१

अनुभव किया है और नई स्थिति मे रह रहा हू । मैंने दोनो को साथ लेकर चलने का प्रयत्न किया है। इसलिए मै रूढिवाद और अति आधुनिकता इन दोनो अतियो से बचकर चलने मे समर्थ हो सका हूं ।''

प्राचीन को अपनाते समय भी उनका विवेक एव मौलिक चिंतन सदैव जागृत रहा है। वे अनेक बार लोगो की सुप्त चेतना को झकझोरते हुए कहते है—''तीर्थंकरो ने कितना ही कुछ खोज लिया हो, आपकी खोज बाकी है। आपके सामने तो अभी भी सघन तिमिर है। आप प्रयत्न करे, किसी के खोजे हुए सत्य पर रुके नही, क्योकि वह आपके काम नही आएगा।''[1] आचार्य तुलसी डा० राधाकृष्णन् के इस अभिमत से कुछ अंशो मे सहमत है कि ''आज यदि हम अपनी प्रत्येक गतिविधि मे मनु द्वारा निर्दिष्ट जीवन पद्धति को ही अपनाए तो अच्छा था कि मनु उत्पन्न ही नही हुए होते।'' एक सगोष्ठी मे लोगो की विचार चेतना को जागृत करते हुए वे कहते है—''महावीर ने जो कुछ कहा वही अन्तिम है, उससे आगे कुछ है ही नही—इस अवधारणा ने एक रेखा खीच दी है। अब इस रेखा को छोटा करने या मिटाने का साहस कौन करे ?''[2]

उनके साहित्य को पढते समय ऐसा महसूस होता है कि प्राचीन संस्कारो एव परम्पराओ से बधे रहने पर भी युग को देखते हुए उसमे परिवर्तन लाने एव नवीनता को स्वीकारने मे वे कही पीछे नही हटे है। उनका स्पष्ट कथन है कि ''प्राचीनता मे अनुभव, उपयोगिता, दृढता और धैर्य का एक लबा इतिहास छिपा है तो नवीनता मे उत्साह, आकाक्षा, क्रियाशक्ति और प्रगति की प्रचुरता है अत अनावश्यक प्राचीनता को समेटते हुए आवश्यक नवीनता को पचाते जाना विकास का मार्ग है।''[3] एक को खडित करके दूसरे को प्रस्तुत करना सत्य के प्रति अन्याय है।

उन्होने नवीन और प्राचीन के सन्धिस्थल पर खडे होकर दोनो को इस रूप में प्रस्तुति दी है कि नवीन प्राचीन का परिवर्तित रूप प्रतीत हो न कि ऊपर से लपेटी या थोपी वस्तु। यही कारण है कि उनके प्रवचनो मे प्रतिपादित तथ्य न रूढ़ है और न अति आधुनिक बल्कि अतीत और वर्तमान दोनो का समन्वय है। इसी कारण उन्हे केवल प्रवचनकार ही नही अपितु युग-व्याख्याता भी कहा जा सकता है।

आस्था और तर्क का समन्वय

प्रवचनकार के साथ आचार्य तुलसी एक महान् दार्शनिक भी है।

---

१. बीती ताहि विसारि दे, पृ० ७८
२. बहता पानी निरमला, पृ० ९३
३. एक बूद : एक सागर, पृ० ७८५

आस्था और तर्क के सम्बन्ध मे उनकी मौलिक विचारणा इस विषय का एक निदर्शन है। वे कहते है—'उत्तम तर्क वही होता है, जो श्रद्धा के प्रकर्ष मे फूटता है।'[1] उनके चिंतन मे सत्य दृष्टि यही है कि जहा तर्क काम करे, वहा तर्क से काम लो और जहां तर्क काम नही करे, वहा श्रद्धा से काम लो, क्योकि आस्था मे गतिशीलता है पर देखने-विचारने की क्षमता नही है। तर्क शक्ति हर तथ्य को सूक्ष्मता से देखती है पर चलने की सामर्थ्य नही रखती।[2]

वे अपने जीवन का अनुभव बताते हुए एक प्रवचन मे कहते है—'यदि हम कोरे आस्थावादी होते तो पुराणपन्थी बन जाते। यदि हम कोरे तार्किक होते तो अपने पथ से दूर चले जाते। हमने यथास्थान दोनो का सहारा लिया, इसलिए हम अपने पूर्वजो द्वारा खीची हुई लकीरो पर चलकर भी कुछ नई लकीरे खीचने मे सफल हुए है।'

धर्म की व्यावहारिक प्रस्तुति

आचार्य तुलसी आध्यात्मिक जगत् के विश्रुत धर्मनेता हैं। उनके प्रवचनो मे धर्म और अध्यात्म की चर्चा होना बहुत स्वाभाविक है। पर उन्होने जिस पैनेपन के साथ धर्म को वर्तमान युग के समक्ष रखा है, वह सचमुच मननीय है। जीवन की अनेक समस्याओ को उन्होने धर्म के साथ जोड़कर उसे समाहित करने का प्रयत्न किया है। ईश्वर, जीव, जगत् पुनर्जन्म आदि आध्यात्मिक चिन्तन बिन्दुओं पर उन्होने व्यावहारिक प्रस्तुति देकर उसे जनभोग्य बनाने का प्रयत्न किया है। धर्म की रूढ़ परम्पराओ एव धारणाओ का जो विरोध उनके साहित्य मे प्रकट हुआ है, उसने केवल बौद्धिक समाज को ही आकृष्ट नही किया वरन् प्रधानमन्त्री से लेकर मजदूर तक सभी वर्गो का ध्यान अपनी ओर खीचा है। कहा जा सकता है कि उनका प्रवचन साहित्य धर्म के व्यापक एव असाम्प्रदायिक स्वरूप को प्रकट करने मे सफल रहा है।

वे अपनी यात्रा के तीन उद्देश्य बताते हैं—१. मानवता या चरित्र का निर्माण। २ धर्म समन्वय। ३ धर्मक्रांति। यही कारण है कि उन्होने केवल धर्म को व्याख्यायित करके ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नही मानी बल्कि धार्मिक को सही धार्मिक बनाने मे भी उनके चरण गतिशील रहे हैं। क्योकि उनका मानना है "धर्म को जितनी हानि तथाकथित धार्मिको ने पहुंचाई है उतनी तो अधार्मिको ने भी नही पहुचाई।"

२१ अक्टू० १९४९ को डा० राजेन्द्रप्रसाद आचार्यश्री से मिले। उनके ओजस्वी विचार सुनकर वे अत्यन्त प्रभावित हुए। राष्ट्रपतिजी ने पत्र द्वारा अपनी प्रतिक्रिया इस भाषा मे प्रेषित की—"उस दिन आपके दर्शन पाकर मैं

१. एक बूद : एक सागर, पृ० १३५९
२. वही, पृ० ४११

बहुत अनुगृहीत हुआ। ... जिस सुलभ रीति से आप धर्म के गूढ तत्त्वो का प्रचार कर रहे है उन्हे सुनकर मैं बहुत प्रभावित हुआ और आशा करता हूं कि इस तरह का शुभ अवसर मुझे फिर मिलेगा।"

आचार्यश्री तुलसी अपने प्रवचनो मे अनेक बार इस बात को दोहराते हैं कि धर्म सादगी और संयम का सदेश देता है। वहा भी यदि आडम्बर, दिखावा एव विलासिता का प्रदर्शन होता है तो फिर सयम की सस्कृति को सुरक्षित कौन रखेगा ? धर्म की स्थिति का विश्लेपण उनकी दृष्टि मे इस प्रकार है—"धर्म का क्रातिकारी स्वरूप जनता के समक्ष तभी आएगा, जब वह जनमानस को भोग से त्याग की ओर अग्रसर करे किन्तु आज त्याग भोग के लिए अग्रसर हो रहा है। यह वह कीटाणु है जो धर्म के स्वरूप को विकृत बना रहा है।"[1]

उनका स्पष्ट कथन है कि धर्म कहने, सुनने और समझाने का तत्त्व नही, अपितु अनुभव करने और जीने का तत्त्व है। वे तो निर्भीकतापूर्वक यहा तक कह देते है—"आज के चन्द्रयान व राकेट के युग मे केवल मन्दिरो, मस्जिदो एव धर्मस्थानो की शोभा बढाने वाला धर्म अब बहुत दिनो तक चलने वाला नही है।"[2] यदि धर्म और अध्यात्म को प्रयोगात्मक नही बनाया तो एक दिन वह अमान्य हो जाएगा।[3] धर्म के क्षेत्र मे उनकी यह दृष्टि कितनी वैज्ञानिक और व्यावहारिक है।

धर्म और विज्ञान का समन्वय

एक सम्प्रदाय के गुरु एव धर्मनेता होते हुए भी उनके प्रवचन केवल धर्म की व्याख्या ही नही करते वरन् विज्ञान का समावेश भी उनमे है। व्यवहार मे दोनों की दिशाए भिन्न-भिन्न है क्योकि साहित्य मे भावनाओ और सवेगो को प्राथमिकता दी जाती है जबकि विज्ञान के लिए ये काल्पनिक है। उनकी पैनी दृष्टि ने दोनो के बीच पूरकता को देखा ही नही उसे समझने का भी प्रयत्न किया है। उनकी दृष्टि मे कोरा विज्ञान विध्वसक तथा कोरा अध्यात्म रूढ़ है, अत "आध्यात्मिक-वैज्ञानिक-व्यक्तित्व" की कल्पना ही नही की उसे प्रयोग की धरती पर उतार कर इतिहास मे एक नए अध्याय का सृजन भी किया है। धर्मशास्त्र के विरुद्ध विज्ञान की नयी खोज का प्रसग उपस्थित होने पर भी उनका बौद्धिक, उदार एव अनाग्रही मानस वैज्ञानिक सत्य को स्वीकारने मे हिचकिचाता नही और न ही धर्मशास्त्र के प्रति अनास्था व्यक्त करता है। चन्द्रयात्रियो ने चाद का जो स्वरूप व्यक्त किया उसे सुनकर आचार्य तुलसी ने

---

१. जैन भारती, २४ जुलाई १९६६
२. जैन भारती, १० अक्टू० १९७१
३. जैन भारती, जन० १९६८

अपनी सन्तुलित एवं सटीक टिप्पणी व्यक्त करते हुए कहा—"यह अच्छा ही हुआ, जिस सत्य से हम आज तक अनजान थे वह आज अनावृत हो गया। हो सकता है, सत्य का यह अनावरण हमारी परम्पराओं पर चोट करने वाला हो, हमारे लिए प्रिय नही हो, फिर भी वे लोग बधाई के पात्र हैं, जिन्होने अथक परिश्रम से एक महान् तथ्य का उद्घाटन किया है। हम न तो प्रत्यक्ष तथ्यों को असत्य या अप्रामाणिक बनाने की चेष्टा करे और न ही अध्यात्म के प्रति अपनी आस्था को शिथिल करे।" दो विरोधी तथ्यो मे तराजू के पलडे की भाति निष्पक्ष मध्यस्थता करने वाला व्यक्ति ही महान् हो सकता है, सत्यद्रष्टा हो सकता है। उनकी यह उदार टिप्पणी निश्चित ही रूढ धर्माचार्यो के लिए एक चुनौती है।

आचार्यश्री तुलसी के चिन्तन एव कर्तृत्व ने डा० वी० डी० वैश्य की निम्न पक्तियो को सार्थक किया है—"भारत की जीनियस (प्रतिभा) के सच्चे प्रतिनिधि वैज्ञानिक नही, अपितु सन्त हैं।[1]

जीवन-मूल्यो का विवेचन

आचार्य तुलसी की अवधारणा है कि इस धरती का सबसे महत्त्वपूर्ण प्राणी मानव है। यदि उसका सही निर्माण नही होगा तो निर्माण की अन्य योजनाएं निरर्थक हो जाएगी। सामाजिक दृष्टि से भी इकाई को पृथक् रख कर निर्माण की बात करना असम्भव है। निर्माण की प्रक्रिया मे आचार्य तुलसी व्यक्ति-सुधार से समाज-सुधार की बात कहते है। वे अपने विश्वास को इस भाषा मे दोहराते है—"जब तक व्यक्ति-निर्माण की ओर ध्यान नही दिया जाएगा तब तक समष्टि निर्माण की बात का महत्त्व दिवास्वप्न से ज्यादा नही होगा।"[2] वे मानते है मैत्री, प्रमोद, करुणा और अहिंसा की पौध से मनुष्य के मन और मस्तिष्क को हरा-भरा बनाया जाए, तभी इस धरती की हरियाली अधिक उपयोगी बनेगी।[3]

जीवन-निर्माण के सूत्रो का सहज, सरल भाषा मे जितना उल्लेख आचार्य तुलसी ने अपने प्रवचन साहित्य मे किया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी भाषा मे जीवन-कला का व्यावहारिक सूत्र सन्तुलन है—"जो व्यक्ति थोडी-सी खुशी मे फूल जाता है, और थोड़े से दु.ख मे संतुलन खो देता है, आपा भूल जाता है, वह जीवन-कला मे निपुण नही हो सकता।" उनके विचार मे जीवन के सम्यक् निर्माण के लिए आवश्यक है कि मानव को जीवन के उद्देश्य से परिचित कराया जाए। उनकी दृष्टि में जीवन का

१. साहित्य और समाज, पृ० ३०
१. जैन भारती, ३० नव० १९६९
२. तेरापंथ दिग्दर्शन, पृ० १३५

उद्देश्य भौतिक धरातल पर नही, आध्यात्मिक स्तर पर निर्धारित करना आवश्यक है। जीवन के उद्देश्य से परिचित कराने वाली उनकी निम्न उक्ति अत्यन्त प्रेरक है—"जीवन का उद्देश्य इतना ही नही है कि सुख-सुविधापूर्वक जीवन व्यतीत किया जाए, शोपण और अन्याय से धन पैदा किया जाए, वडी-वडी भव्य अट्टालिकाएं वनायी जाए और भौतिक साधनो का यथेष्ट उपयोग किया जाए। उसका उद्देश्य है—उज्ज्वल आचरण, सात्त्विक वृत्ति और प्रतिक्षण आनंद का अनुभव।"

सामयिक सत्यों की प्रस्तुति

एक धर्माचार्य द्वारा सामयिक सदर्भो से जुडकर युग की समस्याओ को समाहित करने का प्रयत्न इतिहास की दुर्लभ घटना है। पर्यावरण प्रदूषण आज की ज्वलंत समस्या है। मानव के यान्त्रिकीकरण और प्रकृति से दूर जाने की वात देखकर वे लोगो को चेतावनी देते हुए कहते है—"आदमी जितना प्रवुद्ध और सम्पन्न होता जा रहा है, प्रकृति से वह उतना ही दूर होता जा रहा है। न वह प्राकृतिक हवा में सोता है, न प्राकृतिक ईंधन से वना खाना खाता है और न प्रकृति के साथ क्रीड़ा करता है। शायद इसी कारण प्रकृति अपने तेवर वदल रही है और मनुष्य को प्राकृतिक आपदाओ का सामना करना पड रहा है।"[1]

प्रचुर मात्रा में प्रकृति का दोहन असतुलन की समस्या को भयावह वना रहा है। प्रकृति के अनावश्यक दोहन एवं उपयोग के वारे मे वे मानव जाति का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहते है—"सूखी धरती को भिगोने की क्षमता मनुष्य मे हो या न हो, वह पानी का दुरुपयोग क्यो करे ? पाच किलो पानी से जो काम हो सके, उसमे सावर खोलकर पचास किलो पानी नालियो मे वहा देना पानी के सकट को वढाने की वात नही है क्या ?" वे तो वैज्ञानिको को यहा तक चेतावनी दे चुके है—'जव से मनुष्य ने पदार्थ की ऊर्जा मे हस्तक्षेप शुरू किया, उसी दिन से मनुष्य का अस्तित्व विनाश के कगार पर खड़ा है।'[3]

वर्तमान क्षण के सुख मे डूवा मनुष्य भविष्य की कठिनाइयों की ओर से आख मूद रहा है। उनकी यह अभिप्रेरणा अनेक प्रसंगो मे मुखर होती है। वे जन-साधारण को सयम का सदेश देते हुए कहते है—"जव तक मानव सयम की ओर नही मुडेगा, पिशाचिनी की तरह मुह वाए खडी विषम समस्याए उसका पीछा नही छोडेंगी।"[4]

१-२. अणुव्रत, १६ अप्रेल ९०

३ कुहासे मे उगता सूरज, पृ. ३८

४. ऐक वूद एक सागर, पृ. १४०९

संस्कृति के स्वर

संतता सस्कृति की वाहक होती है अत' सत ही अधिक प्रामाणिक तरीके से सांस्कृतिक तत्त्वो की सुरक्षा कर सकते हैं। आचार्य तुलसी के प्रवचन साहित्य मे भारतीय सस्कृति का आलोक सर्वत्र विखरा मिलेगा। भारतीय चिंतनधारा में उनकी विचारणा एक नया द्वार उद्घाटित करने वाली है। उनकी दृष्टि में सस्कृति कोई अनगढ़ पाषाण का नाम नही अपितु चिंतन, अनुभव और लगन की छैनियो से तराशी गयी सुघड प्रतिमा संस्कृति है। उनके विचारों मे संस्कृति पहाड़ो, तीर्थक्षेत्रो और विशाल भवनो मे नही अपितु जन-जीवन मे होती है।[१] इसी सूक्ष्म एवं विशाल दृष्टि के कारण उनके प्रवचनो मे लोकसंस्कृति को उन्नत एवं समृद्ध वनाने के अनेक तत्त्व निहित हैं। भारतीय सस्कृति मे पनपी जडता को उन्होने प्रवचनो के माध्यम से तोडने का भरसक प्रयत्न किया है।

उनका स्पष्ट चिंतन है कि पाश्चात्त्य सस्कृति की नकल करके हम न तो उन्नत वन सकते हैं और न ही अपने अस्तित्व की रक्षा करने मे समर्थ हो सकते हैं। वे अनेक बार अपने प्रवचनो मे इस खतरे को प्रकट कर चुके हैं कि भारतीय सस्कृति को विदेशी लोगो से उतना खतरा नहीं, अपितु इस सस्कृति मे जीने वालो से है क्योकि वे अपनी संस्कृति को महत्त्व न देकर दूसरो को महत्त्व प्रदान कर रहे है। भारतीय संस्कृति को समृद्ध वनाने के सूत्र वे समय-समय पर अपने प्रवचनो में प्रदान करते रहते हैं—"अणुव्रतो के द्वारा अणुवमो की भयकरता का विनाश हो, अभय के द्वारा भय का विनाश हो, त्याग के द्वारा संग्रह का ह्रास हो, ये घोष सभ्यता, संस्कृति और कला के प्रतीक बने तभी जीवन की दिशा वदल सकती है।"

संस्कृति के संदर्भ मे सकीर्णता की मनोवृत्ति उन्हे कभी मान्य नही रही है। वे हिन्दू संस्कृति को बहुत व्यापक परिवेश में देखते हैं। हिन्दू शब्द की जो नवीन व्याख्या आचार्यश्री ने दी है, वह देश की एकता और अखडता को वनाए रखने मे पर्याप्त है। वे कहते है—'यदि हिंदू शब्द की गरिमा वढानी है तो उसे वैदिक विचारो के संकीर्ण घेरे से निकालना होगा। हिंदुत्व के सिंहासन पर जव तक वैदिक विचार छाया रहेगा, तव तक जैन, वौद्ध और अन्य धर्म उनके निकट कैसे जा सकेंगे ? अत. हिन्दू शब्द को धर्म विशेष के साथ जोडना उसे साम्प्रदायिक और सकीर्ण बनाना है।"[२]

संस्कृति को व्याख्यायित करती उनकी निम्न पक्तिया कितनी वेधक वन पड़ी है—"हिंदू होने का अर्थ यदि मुसलमान के विरोध मे खडा होना हो

---

१. एक वूद . एक सागर, पृ० १४२०

२. अतीत का विसर्जन . अनागत का स्वागत, पृ० ८०,८१

तो मै उसे सस्कृति की संज्ञा नही दे सकता। मुसलमान होने का अर्थ यदि हिंदू के विरोध मे खडा होना हो तो उसे भी मैं सस्कृति की सज्ञा देना नही चाहूंगा।[1]" उनकी दृष्टि मे सस्कृति की श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता ही किसी संस्कृति का मूल्य-मानक है। इससे हटकर साम्प्रदायिकता, जातीयता आदि के वटखरो से उसे तोलना यथार्थ से परे होना है।

आचार्य तुलसी शिक्षा को संस्कृति के पूरक तत्त्व के रूप मे ग्रहण करते है। उनकी दृष्टि मे शिक्षा संस्कृति को परिष्कृत करने का एक अंग है। इस क्षेत्र में उनका स्पष्ट कथन है कि शिक्षा का सम्बन्ध आचरण के परिष्कार के साथ होना चाहिए। यदि आचरण परिष्कृत नही है तो शिक्षित और अशिक्षित में कोई अतर नही हो सकता है। शिक्षा के संदर्भ मे उनकी महत्त्वपूर्ण टिप्पणी है—"शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास या डिग्री पाना ही हो, यह दृष्टिकोण की सकीर्णता है। क्योकि शिक्षा का सम्बन्ध शरीर, मन, बुद्धि और भाव सबके साथ है। एकागी विकास की तुलना शरीर की उस स्थिति के साथ की जा सकती है, जिसमे सिर बडा हो जाए और हाथ पाव दुबले-पतले रहे। शरीर की भाति व्यक्तित्व का असंतुलित विकास उसके भौडेपन को प्रदर्शित करता है।"[2] वे शिक्षा के साथ नैतिक विकास का होना अत्यन्त आवश्यक मानते है। यदि शिक्षा का आधार नैतिक बोध नही हुआ तो वह अशिक्षा से भी अधिक भयकर हो जाएगी। वे मानते हैं जिस शिक्षा के साथ अनुशासन, धैर्य, सहअस्तित्व, जागरूकता आदि जीवन-मूल्यो का विकास नही होता, उस शिक्षा की जीवत दृष्टि के आगे प्रश्नचिह्न उभर आता है। अत शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है, जीवन मूल्यो को समझना, यथार्थ को जानना तथा उसे पाने की योग्यता हासिल करना।[3]

आज की यात्रिक एव निष्प्राण शिक्षापद्धति मे जीवन विज्ञान के माध्यम से उन्होने नव प्राणप्रतिष्ठा की है तथा इसके अभिनव प्रयोगो से शिक्षा द्वारा अखड व्यक्तित्व निर्माण की योजना प्रस्तुत की है।

जीवन विज्ञान के साथ-साथ वे शिक्षा मे क्राति लाने हेतु त्रिआयामी चर्चा प्रस्तुत करते है। वे मानते है शिक्षा तभी प्रभावी बनेगी जब विद्यार्थी, शिक्षक और अभिभावक तीनो को प्रशिक्षित और जागरूक बनाया जाए। शिक्षा सस्थान मे पवित्रता बनाए रखने के लिए वे तीन बातें आवश्यक मानते है—

१. साम्प्रदायिकता से मुक्ति

---

१ एक बूद : एक सागर, पृ० १४२२
२. क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?, पृ० १३७
३. जैन भारती, २२ जून ८६

२. दलगत राजनीति से मुक्ति

३ अनैतिकता से मुक्ति ।[1]

उन्होने अपने साहित्य मे शिक्षा के इतने पहलुओ को छुआ है कि उन सबका समाकलन किया जाए तो अनायास ही पूरा शोधप्रबन्ध लिखा जा सकता है ।

भविष्य की चेतावनी

आचार्य तुलसी ऐसे व्यक्तित्व का नाम है, जो वर्तमान मे जीते है और भविष्य पर अपनी गहरी नजरे टिकाए रखते है । यही कारण है कि उनकी पारदर्शी दृष्टि आने वाले कल को युगो पूर्व पहचान लेती है । अपने प्रवचनो मे वे भविष्य मे आने वाले खतरो एव बाधाओ मे आगाह करते हुए उससे बचने का सदेश भी समाज को बराबर देते रहते है ।

सन् १९५०, दिल्ली के टाउन हाल में प्रबुद्ध एव पूजीपति लोगों को भविष्य की चेतावनी देते हुए उन्होने कहा—"एक समय था जबकि हिंदुस्तान के बहुत बडे भाग मे राजाओ का एक छत्र शासन था किन्तु समय के अनुकूल न चलने के कारण जनता ने उन्हें पछाड दिया । राजाओं के बाद धनिको पर भी युग का नेत्र बिंदु टिक सकता है और उसका सम्भावित परिणाम भी स्पष्ट है । ऐसी स्थिति मे उन्हे सोचना चाहिए कि जो बडप्पन और आत्मगौरव स्वेच्छापूर्वक त्याग मे है, डडे के बल से छोडने में नही है ।"[2] आज आसाम और बगाल की विषम स्थितियां तथा धनिकों को दी जाने वाली चेतावनिया उनकी ४३ साल पूर्व कही बात को सत्य साबित कर रही हैं ।

आज राजनीतिज्ञ लोग निःशस्त्रीकरण और अहिंसा के विकास की बात सोच रहे हैं पर आचार्य तुलसी ने सन् १९५० मे दिल्ली की विशाल सभा मे अहिंसा के भविष्य की उदघोषणा करते हुए कहा—"वह दिन आने वाला है, जब पशुबल से उकताई दुनिया भारतीय जीवन से अहिंसा और शाति की भीख मागेगी ।[3]

प्रवचन की भाषा शैली

आचार्य तुलसी की प्रवचन साधना किसी एक वर्ग तक सीमित नही है। उन्होने समाज के लगभग सभी वर्गों को सम्बोधित किया है, इसलिए पात्र-भेद के अनुसार सप्रेषणीयता की दृष्टि से उनके प्रवचनो की भाषा-शैली मे अन्तर आना स्वाभाविक है, साथ ही समय की गति के अनुसार भी उन्होंने अपनी भाषा मे परिवर्तन किया है । वे स्वय इस बात को स्वीकार करते हैं

---

१ एक बूद : एक सागर, पृ० १३४६

२ १९५०, टाउन हाल, दिल्ली

३. सन १९५०, दिल्ली

—"जब जैसी जनता सामने होती है, मै अपने प्रवचन का विषय, भाषा और शैली बदल लेता हू ।' आचार्यकाल के प्रारम्भिक वर्षो मे उनके प्रवचन प्राय राजस्थानी भाषा मे होते थे किन्तु आज वे सुरक्षित नही है । बाद मे जन-जन तक अपनी ऋात वाणी को पहुचाने के लिए उन्होने राष्ट्र-भाषा हिन्दी को प्रवचन का माध्यम बनाया । हिन्दी प्रवचनो की उनकी पचासो पुस्तके प्रकाश मे आ चुकी है तथा अनेक पुस्तके प्रकाशनाधीन है ।

उनकी विद्वत्ता भाषा मे उलझकर जटिल एव बोझिल नही, अपितु अनुभूति की उष्णता से तरल बन गयी है । आस्तिक हो या नास्तिक, विद्वान् हो या अनपढ, धनी हो या गरीब, स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या वृद्ध सभी एक रस, एकतान होकर उनकी वाणी के जादू से बध जाते है । उनकी वाणी मे वह आकर्षण है कि जो प्रभाव रोटरी क्लब और वकील ऐसोसिएशन के सदस्यो के बीच पड़ता है, वही प्रभाव सस्कृत और दर्शन के प्रकाण्ड पण्डितो के मध्य पड़ता है । पूरे प्रवचन साहित्य मे भाषागत यही आदर्श दिखलाई पडता है कि वे अधिक से अधिक लोगो तक अपनी बात पहुचाना चाहते हैं । अत: उनके प्रवचन साहित्य मे कठिन से कठिन दार्शनिक विषय भी व्यावहारिक, सहज, सरस, सजीव, सुबोध एव अर्थ-पूर्ण भाषा मे व्यक्त हुए है । लाग फेलो की निम्न उक्ति उनके प्रवचन की भाषा-शैली मे पूर्णतया खरी उतरती है—"व्यवहार मे, शैली मे और अपने तौर तरीको मे सरलता ही सबसे बडा गुण है । नरेन्द्र कोहली कहते है — 'पाठक सब कुछ क्षमा कर सकता है, पर लेखक मे बनावट, दिखावा, लालसा को क्षमा नही कर सकता ।'[1] अनुभूति की सचाई अभिव्यक्त होने के कारण उनके प्रवचन साहित्य की भाषा साहित्यक न होने पर भी सरल और प्रवाह-मयी है । उसमे आत्मबल और सयम का तेज जुड़ने से वह प्रभावी बन गयी है । यही कारण है कि वे अपनी वाणी के प्रभाव म कही भी सदिग्ध नही हैं—

"मैं जानता हू, मेरे पास न रेडियो है, न अखबार हैं और न आज के प्रचार योग्य वैज्ञानिक साधन है । ··· "लेकिन मेरी वाणी मे आत्मबल है, आत्मा की तीव्र शक्ति है और मुझे अपने सदेश के प्रति आत्मविश्वास है फिर कोई कारण नही, मेरी यह आवाज जनता के कानो से नही टकराए ।"[2]

प्रवचन शैली के बारे मे अपना अभिमत व्यक्त करते हुए वे कहते है—"प्रवचन शैली का जहा तक प्रश्न है, मैं नही जानता उसमे कोई विशिष्टता है । न मैं दार्शनिक लहजे मे बोलता हूं और न मेरी भाषा पर कोई साहित्यिक प्रभाव ही होता है । मैं तो अपनी मातृभाषा (राजस्थानी) अथवा

---

१. प्रेमचन्द्र, पृ० १९३

२. १५ अगस्त १९४७, प्रथम स्वाधीनता दिवस पर प्रदत्त

राष्ट्रभाषा में अपने मन की बात जनता के सामने रख देता हूं। इससे यदि जनता आकृष्ट होती है तो यह उसकी गुणग्राहकता है। मैं तो मात्र निमित्त हूं।"[१]

उनकी प्रवचन शैली का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य चित्रात्मकता है। प्रवचन के मध्य जब वे किसी कथा को कहते हैं तो ऐसा लगता है मानो वह घटना सामने घट रही है। स्वरों का उतार-चढ़ाव तथा शरीर के हाव-भाव सभी उस घटना को सचित्र एवं सजीव करने में लग जाते हैं।

उनकी प्रवचन शैली में चमत्कार आने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि वे सभा के अनुरूप अपने को ढाल लेते हैं। डाक्टरों की एक विशाल सभा को संबोधित करते हुए वे कहते हैं—

"आज मैं डाक्टरों की सभा में आया हूं तो स्वयं डाक्टर बनकर आया हूं। जो व्यक्ति जहां जाये उसे वहीं का हो जाना चाहिए। आप डाक्टर हैं तो मैं भी एक डाक्टर हूं। आप देह की चिकित्सा करते हैं, तो मैं आत्मा की चिकित्सा करता हूं। आप विभिन्न उपकरणों से रोग का निदान करते हैं तो मैं मनुष्यों के हृदय को टटोलकर उसकी चिकित्सा करता हूं। आप प्रतिदिन नये-नये प्रयोग करते रहते हैं तो मैं भी अपनी अध्यात्म प्रचार पद्धति में परिवर्तन करता रहता हूं।[२]

आचार्य तुलसी ने अपने प्रवचनों में अनेकांत शैली का प्रयोग किया है। अनेक स्थानों पर तो वे जीवन के अनुभवों को भी अनेकांत शैली में प्रस्तुत करते हैं। अनेकांत शैली का एक अनुभव निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है—"मैं अकिंचन हूं। गरीब मानें तो सबसे बड़ा गरीब हूं और अमीर मानें तो सबसे बड़ा अमीर हूं। गरीब इसलिए हूं क्योंकि पूंजी के नाम पर मेरे पास एक नया पैसा भी नहीं है और अमीर इसलिए हूं क्योंकि कोई चाह नहीं है।"

उनकी प्रवचन शैली का वैशिष्ट्य है कि वे समय के अनुसार अपनी बात को नया मोड़ दे देते हैं। उनके प्रवचनों की प्रासंगिकता का सबसे बड़ा कारण यही है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव सबको देखते हुए वे अपनी बात कहते हैं। होली के पर्व पर लोगों की धार्मिक चेतना को झकझोरते हुए वे कहते हैं—

"आज होली का पर्व है। लोग विभिन्न रंग घोलते हैं, तो क्या मैं कह दूं कि आज का मानव दुरंगा है। क्योंकि उसके पास दो पिचकारियां हैं। दीखने में कुछ और है और कहने में कुछ और। वह बातों में इतना चिंतनशील लगता है मानो उससे अधिक धार्मिक कोई और है या नहीं। मन्दिर में जब

---

१. बहता पानी निरमला, पृ० १२०

२. जैन भारती, २८ अक्टू० १९६५

वह पूजन करता है तब लगता है मानो उसमे दैवत्व का निवास है, किन्तु बाजार मे वह यमराज बन जाता है। पाठ पूजा करते समय वह प्रह्लाद को भी मात करता है, पर जब उसे अधिकार की कुर्सी पर देखो तो शायद हिरणांकुश वही है। ''''उस मानव को दुरंगा नही कहू तो क्या कहू।''[1]

विद्यार्थियो को सम्बोधित करते हुए उनकी वाणी कितनी हृदयस्पर्शी एव सामयिक बन पडी है—''विद्यार्थियो ! मैं स्वयं विद्यार्थी हू और जीवन भर विद्यार्थी बने रहना चाहता हूं।''''' विद्यार्थी रहने वाला जीवन भर नया आलोक पाता है, विद्वान् बन जाने के बाद प्राप्ति का मार्ग रुक जाता है।

प्रवचन साहित्य : एक समीक्षा

उनके विशाल प्रवचन साहित्य मे विषय की गम्भीरता, अनुभवो की ठोसता एव व्यावहारिक ज्ञान की झांकी स्पष्ट देखी जा सकती है। फिर भी इस साहित्य की समालोचना निम्न बिन्दुओ मे की जा सकती है—

जनभोग्य होने के कारण इसमें नया शिल्पन एव साहित्यिक भाषा के प्रयोग कम हुए है पर जीवन की सचाइयो से यह साहित्य पूरी तरह सपृक्त है। उनके इस साहित्य का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि यह निराशा मे आशा की ज्योति प्रज्वलित करता है तथा जन-जन मे नैतिकता की अलख जगाता है। वे मानते है कि यदि मैं अपने प्रवचन मे नैतिकता की बात नही कहूगा तो मेरे प्रवचन की सार्थकता ही क्या है ?

एक ही प्रवचन मे पाठक को विषयान्तर की प्रवृत्ति मिल सकती है। अनेक स्थलो पर भावों की पुनरावृत्ति भी हुई है पर जिन मूल्यो की वे चर्चा कर रहे है, उन्हे जन-जन मे आत्मसात करवाने के लिए ऐसा होना बहुत आवश्यक है। उनकी विशाल प्रवचन सभा मे भिन्न-भिन्न रुचि एव भिन्न वर्गों के लोग उपस्थित रहते है। अत: उन सबको मानसिक खुराक मिल सके यह ध्यान रखना प्रवचनकर्त्ता के लिए आवश्यक हो जाता है। इसीलिए अनेक स्थलो पर अवान्तर विषयो का समावेश मूल विचार मे आघात करने के स्थान पर उसके अनेक पहलुओ को ही स्पष्ट करता है।

साहित्य का सत्य देश, काल और परिस्थिति के अनुसार बदलता है अत. इस साहित्य मे भी कही-कही परस्पर विरोधी बातें मिलती है पर यह विरोधाभास उनके जीवन के विभिन्न अनुभवो का जीवन्त रूप है तथा आग्रह मुक्त मानस का परिचायक है।

सहजता, सरलता, प्रभावोत्पादकता, भावप्रवणता एव व्यावहारिकता से सश्लिष्ट उनका प्रवचन साहित्य युगों-युगो तक विश्व चेतना पर अपनी अमिट छाप छोड़ता रहेगा।

---

१. जैन भारती, १८ मार्च १९६१

भाषा शैली

सत्य की अभिव्यजना तथा अन्तर्जगत् को प्रकट करने का एकमात्र साधन भाषा है। यदि उसके बिना भी हम अपने भावों को एक-दूसरे तक पहुंचा सके तो इसकी कोई आवश्यकता नही रहती पर यह हमारे भावों का अनुवाद दूसरों तक पहुचाती है अत मनुष्य के हर प्रयत्न के अध्ययन में भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भाषा के बारे मे आचार्य तुलसी का अभिमत है- "भाषा के मूल्य से भी अधिक महत्त्व उसमें निबद्ध ज्ञान राशि का है, जो मानवीय विचार धारा में एक अभिनव चेतना और स्फूर्ति प्रदान करती है। भाषा अभिव्यक्ति का साधन है, साध्य नही।"

भाषा के बारे में जैनेन्द्रजी का मंतव्य बहुत स्पष्ट एव मननीय है— "मेरी मान्यता है कि भाषा स्वयं कुछ रहे ही नही, केवल भावों की अभिव्यक्ति के लिए हो। भाव के साथ वह इतनी तद्गत हो कि तनिक भी न कहा जा सके कि भाव उसके आश्रित है। अर्थात् भाव उसमें से पाठक को ऐसा सीधा मिले कि बीच में लेने के लिए कहीं भाषा का अस्तित्व रहा है, यह अनुभव न हो।"[1] अत. भाषा की सफलता बनाव शृगार मे नहीं, अपितु भावानुरूप अर्थाभिव्यक्ति में है।

आचार्य तुलसी की भाषा इस निकष पर खरी उतरती है। वे जनता के लिए बोलते या लिखते हैं अत हर स्थिति मे उनकी भाषा सहज, सरल, व्यापक, हार्दिक, सुबोध एवं सशक्त है। भाषा की बोधगम्यता के पीछे उनकी साधना की शक्ति बोलती है—निर्ग्रन्थ व्यक्तित्व मुखर होता है। उनकी भाषा आत्मा से निकलती है और दूसरों को भी आत्मदर्शन की ताकत देती है। इस बात की पुष्टि हजारीप्रसाद द्विवेदी भी करते है—"गहन साधना के बिना भाषा सहज नही हो सकती। यह सहज भाषा व्याकरण और भाषाशास्त्र के अध्ययन से भी प्राप्त नहीं की जा सकती, कोशो मे प्रयुक्त शब्दो के अनुपात मे इसे नही गढा जा सकता।" कबीर, रहीम, राजिया और आचार्य भिक्षु आदि को यह भाषा मिली और इसी परंपरा में आचार्य तुलसी का नाम भी स्वत: जुड़ जाता है।

उनकी भाषा आकर्षक एवं प्रसाद गुण-सम्पन्न है। इसका कारण है। कि जो उनके भीतर है, वहीं बाहर आता है। मैथिलीशरण गुप्त इस मत की

१. साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० १४७

पुष्टि यों करते है—'मन यदि उलझनों से भरा है तो भाषा की गति अत्यन्त धीमी, दुर्बोध और चकरीली हो जाती है।' आचार्य तुलसी का मन तनाव और उलझनो से कोसो दूर रहता है अत. उनकी भाषा मे विसंगति का प्रसग ही नही आता। साधना की आच मे तपा हुआ उनका मानस कभी कथनी और करणी में द्वैत नही डालता।

"जिस दिन मानव को वस्तु की अभिव्यक्ति मे विलक्षणता लाने की गति मति जागी, उसी दिन से शैली का विवेचन तथा विचार प्रारम्भ हुआ।[1]" आचार्य क्षेमचद्र सुमन की यह अभिव्यक्ति शैली के प्रारभ की कथा कहती है पर जब से आदमी ने किसी विषय मे सोचना या लिखना प्रारभ किया तभी शैली का प्रादुर्भाव हो गया क्योकि शब्दो की कलात्मक योजना ही शैली है। "शैली भाषा की अभिव्यजना शक्ति की परिचायक है।[2] अग्रेजी कवि पोप शैली को व्यक्ति के विचारो की पोशाक मानते है किन्तु शैली विचारक मरे इससे भी आगे बढकर कहते है कि शैली लेखक के विचारो की पोशाक नही, अपितु जीव है, जिसके अन्दर मास, हड्डी और खून है।"[3] शैली के परिप्रेक्ष्य मे ही उनका एक अन्य उद्धरण भी मननीय है—'शैली भाषा का वह गुण है, जो लाघव से रचयिता के मनोभावो, विचारो अथवा प्रणाली का संवहन करती है।'[4] शैली किसी से उधार मागी या दी नही जाती क्योकि वह किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व का अभिन्न अग होती है। यही कारण है कि किसी भी रचना को पढते ही यह ज्ञान किया जा सकता है कि यह अमुक व्यक्ति की रचना है।

शैली साहित्य की उच्चतम निधि है। पाश्चात्त्य एव प्राच्य विद्वानो की सैकडो परिभाषाए शैली के बारे मे मिलती है पर प्रसिद्ध समालोचक बाबू गुलाबराय ने दोनो मतो का समन्वय करके इसे मध्यम मार्ग के रूप मे ग्रहण किया है। वे शैली को न नितान्त व्यक्तिपरक मानते है और न वस्तुपरक ही। उनका मानना है कि शैली मे न तो इतना निजीपन हो कि वह सनक की हद तक पहुच जाए और न इतनी सामान्यता हो कि नीरस और निर्जीव हो जाए। शैली अभिव्यक्ति के उन गुणो को कहते हैं, जिन्हे लेखक या कवि अपने मन के प्रभाव को समान रूप से दूसरो तक पहुचाने के लिए अपनाता है।[5]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार उपयुक्त शब्दो का चुनाव, स्वर और व्यंजनो की मधुर योजना वाक्यो का सही विन्यास तथा विचारों

१. साहित्य विवेचन, पृ०
२. आधुनिक गद्य एवं
३-४. M. Murra, Pro , पृ० ७१,१३६
५. सिद्धात और अध्ययन

का विकास शैली के मौलिक तत्व है। यही कारण है कि कोई भी साहित्यकार केवल सुन्दर भावो से युक्त होने पर ही अच्छा साहित्यकार नही हो सकता, उसमे प्रतिपादन शैली का सौष्ठव होना भी अनिवार्य है। यदि शैली सुघड है तो वक्तव्य वस्तु मे सार कम होने पर भी वह ग्रहणीय बन जाती है।

पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार अच्छी शैली के लिए लेखक के व्यक्तित्व मे विचार, ज्ञान, अनुभव तथा तर्क इत्यादि गुणों की अपेक्षा होती है। जो व्यक्तित्व जितना सप्राण, विशाल, सवेदनशील और ग्रहणशील होगा, उसकी शैली उतनी ही विशिष्ट होगी क्योकि शैली को व्यक्तित्व का प्रतिरूप कहा जाता है (स्टाइल इज द मैन इटसेल्फ)। समर्थ व्यक्तित्व अपनी प्रत्येक रचना मे अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ प्रतिबिम्बित रहता है। लेखक का प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक पद, प्रत्येक शब्द उसके नाम का जयघोष करता सुनाई देता है।

यद्यपि शैली व्यक्तित्व से प्रभावित होती है फिर भी कुछ ऐसे तत्त्व है, जो उसे विशिष्ट बनाते है—

१. देश और काल की स्थितिया शैली को सबसे ज्यादा प्रभावित करती हैं। अगर तुलसी, सूर, बिहारी या आचार्य भिक्षु इस युग मे आते तो उनके कहने या लिखने का तरीका बिलकुल भिन्न होता।
२. वक्तव्य विषय को हृदयगम कराने हेतु विविध रूपको, कथाओ, दोहो एवं सोरठो का प्रयोग।
३. विविध शास्त्रीय तत्त्वो का उचित सामजस्य।
४. विषय और विचार मे तादात्म्य।
५. सत्यस्पर्शी कल्पना।
६. लेखक के मन और आत्मा, बुद्धि और भावना तथा हृदय और मस्तिष्क का सामजस्य एव सतुलन।
७. व्यजना ऐसी हो, जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म स्थिति मे ले जाने के लिए पाठक को चुनौती दे, जिसे पढ़े बिना पाठक प्रसग छोड़ने मे असमर्थ हो जाए।
८. वाक्य विन्यास जटिल न होकर सरल हो, जिसको पढ़कर हर वर्ग के पाठक को वही आनन्द हो जो किसी कठिनाई पर विजय पाने वाले को होता है।

आचार्य तुलसी की लेखनशैली की अपनी विशेषताए है। उन्होने अपने हर मनोगत भावो की अभिव्यक्ति इतने रमणीय, आकर्षक और प्रभावोत्पादक ढग से दी है कि उनकी रचना पढते ही पाठक के भीतर अभिनव हर्ष एवं शक्ति का संचार होने लगता है। शैलीगत नवीनता उनको प्रिय है इसलिए वे अपने भावो को व्यक्त करते हुए कहते हैं—"नए रूप, नयी विधा

और नए शिल्पन से मेरा व्यामोह है, यह बात तो नही है फिर भी नवीनता मुझे प्रिय है क्योकि मेरा यह अभिमत है कि शैलीगत नव्यता भी विचार सप्रेषण का एक सशक्त माध्यम है। सृजन की अनाहत धारा स्रष्टा और द्रष्टा दोनो को ही भीतर तक इतना भिगो देती है कि लौकिक शब्दो मे लोकोत्तर अर्थ की आत्मा निखरने लगती है।"

शैली लेखक के सोचने और देखने का अपना तरीका है अत. प्रत्येक साहित्यकार की शैली के कुछ विशिष्ट गुण होते है। आचार्य तुलसी की भाषा-शैली की कुछ निजी विशेषताओ का अकन निम्न बिन्दुओ मे किया जा सकता है—

प्राचीन जीवन-मूल्यों की सीधी-साधी भाषा मे प्रस्तुति किसी सोए मानस को झकझोर कर नही जगा सकती। उन्होने प्राचीन मूल्यो को आधुनिक भाषा का परिधान पहनाकर उसकी इतनी सरस और नवीन प्रस्तुति दी है कि उसे पढकर कोई भी आकृष्ट हुए बिना नही रह सकता। पाच महाव्रत के स्वरूप को अनुभूति के साथ जोडते हुए वे कहते है—"मै शाति-पूर्ण जीवन जीना चाहता हूं क्या अहिंसा इससे भिन्न है ? मै यथार्थ जीवन जीना चाहता हू, क्या सत्य इससे भिन्न है ? मैं प्रामाणिक जीवन जीना चाहता हू, क्या अस्तेय इससे पृथक् चीज है ? मैं शक्ति-सम्पन्न और वीर्यवान् जीवन जीना चाहता हू, क्या ब्रह्मचर्य इससे भिन्न है ? मै सयमी जीवन जीना चाहता हू क्या अपरिग्रह इससे भिन्न है ?[1]"

काव्य की भाति उनके गद्यसाहित्य मे भी कही-कही ऐसी भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमे कलात्मकता एकदम मुखर हो उठी है तथा उसमे आल-कारिता की छवि भी निखर आयी है। प्रस्तुत वाक्यो मे यमक एव श्लेष का चमत्कार दर्शनीय है—

१. 'हमने तो टप्पे[2] को टाल दिया था किन्तु टप्पे वालो की भावना इतनी तीव्र थी कि टप्पा लेना ही पड़ा।'

२. 'आज इतवार है पर एतबार है क्या ?'[1]

३. 'यदि जीवन पाक नही है तो पाकिस्तान बनाने से क्या होने वाला है ?'

गद्य साहित्य मे भी उनका उपमा वैचित्र्य अनुपम है। अनेक नई उपमाओ का प्रयोग उनके साहित्य मे मिलता है। निम्न उदाहरण उनके उपमा प्रयोग के सफल नमूने कहे जा सकते है—

० 'बच्चे-बच्चे के मुख पर झूठ और कपट ऐसे है मानो वह ग्रीष्म ऋतु की लू है। जो कही भी जाइए, सब जगह व्याप्त मिलेगी।'[3]

---

१. एक बूद : एक सागर, पृ० १७०६

२. राजस्थान मे 'टप्पा' चक्कर खाने को कहते है।

३. जैन भारती, २१ मई ५३ पृ० २७४

० 'बीच मे भौतिकता का विशालकाय समुद्र पड़ा है अब आपको बुराई रूपी रावण की हत्या कर अशांति युक्त शत्रु सेना को मारकर शांति सीता को लाना है।'

लोकोक्तियो को सामाजिक जीवन का नीतिशास्त्र कहा जा सकता है क्योकि वे लोकजीवन के समीप होती हैं। मुहावरों एवं लोकोक्तियो के प्रयोग से उनकी भाषा व्यजक एव सजीव बन गई है। अनेक अप्रचलित लोकोक्तियो को भी उन्होने अपने साहित्य में स्थान दिया है। राजस्थानी लोकोक्तियों का तो उन्होने खुलकर प्रयोग किया है, जिससे उनके साहित्य मे अर्थगत चमत्कार का समावेश हो गया है—

१. जहा चाह, वहा राह

१ जाओ लाख, रहो साख

२. पेडो भलो न कोस को, बेटी भली न एक

३. तीजे लोक पतीजे।

साहित्यिक मुहावरे नही अपितु जन-जीवन एवं ग्राम्य जीवन के बोलचाल मे आने वाले मुहावरों का प्रयोग उनकी भाषा मे अधिक मिलता है। क्योकि उनका लक्ष्य भाषा को अलकृत करना नही अपितु सही तथ्य को जनता के गले उतारना है। भारतीय ही नही विदेशी कहावतो का प्रयोग भी उनके साहित्य मे यत्र-तत्र हुआ है।

'अरबी कहावत है कि गधा दूसरी बार उसी गड्ढे मे नही गिरता—गधे की यह समझ मनुष्य मे आ जाए तो अनेक हादसो को टाला जा सकता है।'[1]

लोकोक्तियो के अतिरिक्त शास्त्रीय उद्धरण एव महापुरुषो के सूक्ति-वाक्यो के प्रयोग उनकी बहुश्रुतता का दिग्दर्शन कराते हैं—

१ मरणसम नत्थि भय।

२. नो हरिसे, नो कुज्झे।

३ इयाणि णो जमहं पुव्वमकासी पमाएण।

४. न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

कबीर, राजिया, रहीम, आचार्य भिक्षु आदि के सैकड़ों दोहे तो उनको अपने नाम की भाति मुखस्थ है अत: समय-समय पर उनके माध्यम से भी वे जन-चेतना को उद्बोधित करते रहते हैं, जिससे उनकी भाषा में चित्रात्मकता, सरसता एवं सरलता आ गई है।

प्राच्य के साथ साथ पाश्चात्त्य विद्वानो के विचार एव घटना-प्रसंग भी प्रचुर मात्रा मे उनके साहित्य मे देखे जा सकते है—

० लेनिन का अभिमत रहा है कि प्रथम श्रेणी के व्यक्तियो को चुनाव

---

१. बैसाखिया विश्वास की, पृ० ६७

में नही जाना चाहिए।

० गांधीजी ने कहा था—'वह दुर्भाग्य का दिन होगा, जिस दिन राष्ट्र में संत नही होंगे।'

० नेपोलियन कहा करता था—'मैं जिस मार्ग से आगे बढ़ना चाहता हूं, वहा बीच मे पहाड आ जाए तो एक बार हटकर मुझे रास्ता दे देते है।'

वे भाषा को गतिशील धारा के रूप मे स्वीकार करते है। यही कारण है कि उन्होने अपने साहित्य मे अन्य भाषा के शब्दों का भी यथोचित समावेश किया है। हिन्दी मे प्रचलित अरबी, उर्दू, फारसी, अग्रेजी, गुजराती, बगाली आदि भाषाओ के अनेक शब्दो को उन्होंने अपनी भाषा का अग बना लिया है जैसे—

मजहब, बरकरार, बेगुनाह, फुरसत, चंगा, जमाना, बुनियाद, तूफान, गुजाइश, बियाबान, टेशन, टाईम, यग, करेक्टर, मेन, गुड, प्रोग्रेस, रिजर्व एकला आदि।

राजस्थानी मातृभाषा होने के कारण हिंदी साहित्य मे भी अनेक विशुद्ध राजस्थानी शब्दो का प्रयोग उनके साहित्य मे मिलता है—ठिकाना[1] (स्थान) सीयालो (शीतकाल) जाणबाजोग (जाननेयोग्य) टाबर आदि।

कही-कही प्रसग वश अग्रेजी के वाक्यों का प्रयोग भी उनके साहित्य में हुआ है—

"लोग स्टेण्डर्ड ऑफ लिविंग को गौण मानकर स्टेण्डर्ड ऑफ लाइफ को ऊचा उठाए।"

संस्कृत कोश एव व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण हिन्दी मे सधियुक्त एव समस्त पदो का प्रयोग भी बहुलता से उनके साहित्य मे मिलता है—हर्षोत्फुल्ल, समाकलन, अभिव्याप्त, चिंताप्रधान, फलश्रुति तीर्थेश आभिजात्य, दुरभिसंधि आदि।

कहा जा सकता है कि उनकी भाषा मे तत्सम, तद्भव, देशी एव विदेशी इन चारो शब्दो का प्रयोग यथायोग्य हुआ है।

उन्होने अपनी भाषा मे युग्म शब्दो का भी भरपूर प्रयोग किया है। इससे भाषा मे बोलचाल की पुट आ गई है—

मार-काट, अक-बक, लूट-खसौट, नौकर-चाकर, ठाट-बाठ, कर्ता-धर्ता, साज-बाज, टेढा-मेढा, उथल-पुथल, आदि।

शब्दो के चालू अर्थ के अतिरिक्त उनमें नया अर्थ खोज लेना उनकी प्रतिभा का अपना वैशिष्ट्य है। भाषागत इस वैशिष्ट्य के हमें अनेक उदाहरण मिल सकते है। उदाहरण के लिए यहां एक प्रसंग प्रस्तुत किया जा

---

१. अणुव्रत : गति प्रगति, पृ० १५१।

सकता है—

पत्रकारों की एक विशेष गोष्ठी में एक पत्रकार ने आचार्य तुलसी के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुए कहा—'आचार्यजी ! आपने समाज के हर वर्ग के उत्थान की बात कही है। आप कायस्थों के लिए भी कुछ कर रहे हैं क्या ?'

आचार्य तुलसी ने कायस्थ शब्द की दार्शनिक व्याख्या करते हुए कहा —"हम कायस्थो के लिए सदा से करते आ रहे है। क्योकि आपकी तरह मैं भी कायस्थ हू। कायस्थ अर्थात् शरीर मे स्थित रहने वाला। संसार का कौन प्राणी कायस्थ नही है ?"

हिन्दी मे प्राय क्रिया वाक्यान्त मे लगती है पर भाषा मे प्रभावकता लाने के लिए उनके साहित्य मे अनेक स्थलो पर इस क्रम मे व्यत्यय भी मिलता है—

"कैसे हो सकती है वहा अहिंसा जहां व्यक्ति प्राणों के व्यामोह मे अपनी जान बचाए फिरता है ?"

आचार्य तुलसी शब्द को केवल उसके प्रचलित अर्थ मे ही ग्रहण नही करते। प्रसगानुसार कुछ परिवर्तन के साथ उसे नवीन सदर्भ भी प्रदान कर देते है। इस संदर्भ मे निम्न वार्तालाप द्रष्टव्य है—

एक बार एक राष्ट्रनेता ने निवेदन किया—'आचार्यजी ! यदि आपको अणुव्रत का कार्य आगे बढाना है तो प्लेन खोल दीजिए। आचार्यश्री ने स्मित हास्य बिखेरते हुए कहा—'आप प्लेन की बात करते हैं, हमारे प्लान (योजना) को तो देखो।' इस घटना से उनकी प्रत्युत्पन्न मेधा ही नही, शब्दो की गहरी पकड की शक्ति भी पहचानी जा सकती है।

इसी प्रकार प्रसंगानुसार एक शब्द के समकक्ष या प्रतिपक्ष में दूसरे सानुप्रासिक शब्द को प्रस्तुत करके प्रेरणा देने की कला मे तो उनका कोई दूसरा विकल्प नही खोजा जा सकता। वे कहते है—

- प्रशस्ति नही, प्रस्तुति करो, व्यथा नही, व्यवस्था करो, चिंता नहीं चिंतन करो।
- मुझे दीनता, हीनता नही, नवीनता पसंद है।

लाडनू विदाई समारोह मे विश्वविद्यालय के सदस्यो को प्रेरणा देते हुए वे कहते है—"जीवन मे सतुलन रहना चाहिए। न अहं न हीनता, न आवेश न दीनता, न आलस्य और न अतिक्रमण।"

सूक्तियो मे जीवन के अनुभवो का सार इस भाति अभिव्यक्त होता है कि मानव का सुपुप्त मन जग जाए और वह उसे चेतावनी के रूप मे ग्रहण कर सके। उनके साहित्य मे गागर मे सागर भरने वाले हजारो सूक्त्यात्मक वाक्य है, जिनसे उनकी भाषा चुम्बकीय एव चामत्कारिक बन गयी है—

- अनुशासन का अस्वीकार जीवन की पहली हार है।
- हम सहन करे, हमारा जीवन एक लयात्मक संगीत बन जाएगा।
- स्वतत्रता का अर्थ होता है—अपने अनुशासन द्वारा सचालित जीवन यात्रा।
- अविश्वास की चिनगारी सुलगते ही सत्ता से गरिमा के साथ हट जाना लोकतंत्र का आदर्श है।
- वह हर प्राणी शस्त्र है, जो दूसरे के अस्तित्व पर प्रहार करता है।
- साम्प्रदायिक उन्माद इसान को भी शैतान बना देता है।
- जो व्यक्ति काटो की चुभन से घबराकर पीछे हट जाता है, वह फूलों की सौरभ नही पा सकता।

भाषा मे प्रवाह लाने के लिए या कथ्य पर जोर देने के लिए वे कभी-कभी शब्दो की पुनरावृत्ति भी कर देते है। युवापीढी को रूपक के माध्यम से प्रेरणा देते हुए वे कहते हैं—

○ "तुम्हारा हर चिन्तन, तुम्हारी हर प्रवृत्ति, तुम्हारी हर प्रतिभा, तुम्हारी योग्यता, तुम्हारी शक्ति, सामर्थ्य और तुम्हारी हर सास इस भुवन को सीचने के लिए, सुरक्षा के लिए सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे।"[1]

○ 'युद्ध बरबादी है, अशाति है, अस्थिरता है और जानमाल की भारी तबाही है।'[2] इस वाक्य को यदि यो कहा जाता कि युद्ध बरबादी, अशाति, अस्थिरता और जानमाल की तबाही है तो वाक्य प्रभावक नही बनता।'

उन्होने लगभग छोटे-छोटे बोधगम्य वाक्यो का प्रयोग किया है। कही-कही काफी लम्बे वाक्य भी प्रयुक्त है पर शृंखलाबद्धता के कारण उनमे कही भी शैथिल्य नही आया है। उनके साहित्य मे भाषा की द्विरूपता के दा कारण है—

१. अनेक सम्पादको का होना।

२ लेखन और वक्तव्य की भाषा मे बहुत बड़ा अन्तर होता है आचार्यश्री इन दोनो भूमिकाओ से गुजरे हैं इसलिए कही-कही इनमे सम्मिश्रण भी हो गया है।

छायावादी एवं रहस्यवादी शैली प्राय काव्य मे चमत्कार उत्पन्न करने हेतु अपनायी जाती है। पर आचार्य तुलसी ने गद्य साहित्य मे भी इस शैली का प्रयोग किया है। ससद को मानवाकार रूप में प्रस्तुत कर उसकी पीडा को उसी के मुख से कहलवाने मे वे कितने सिद्धहस्त बन पडे है—

---

१ अतीत का विसर्जन : अनागत का स्वागत, पृ० ५२-५३

२ अणुव्रत · गति प्रगति, पृ० १५१

"संसद जनता के द्वार पर दस्तक देकर पुकार रही है—प्रजाजनो। आपने अच्छे-अच्छे लोगो का चयन कर मेरे पास भेजा। पर न जाने क्यों ये सब मेरी इज्जत लेने पर उतारू हो रहे है। इस समय मैं घोर संकट में हूं। मुझे बचाओ। मेरी रक्षा करो।...... 'तीन प्रकार के व्यक्तियों को मुझसे दूर रखो। एक वे व्यक्ति जो केवल विरोध के लिए विरोध करते है। दूसरे वे जो गलत तरीको से वोट पाकर सत्ता के गलियारे तक पहुचते है और तीसरे वे व्यक्ति, जो असंयमी है। ऐसे लोग न तो अपनी वाणी पर संयम रख सकते है और न अपने व्यवहार मे सन्तुलन रख पाते है। इन लोगो का असंयत आचरण देखकर मेरा सिर शर्म मे नीचा हो जाता है। इसलिए आप दया करो और ऐसे लोगो को मुझ तक पहुचने से रोको।'"[1]

आचार्य तुलसी की शैली का यह वैशिष्ट्य है कि वे किसी भी विषय का स्पष्टीकरण प्राय. स्वयं ही गम्भीर प्रश्न उठाकर करते है। श्रोता या पाठक को ऐसा लगता है मानो वे भी उसमे भाग ले रहे हो। तत्पश्चात् समाधान की ओर विषय को मोड़ते है, उससे विषय प्रतिपादन के साथ पाठक का तादात्म्य हो जाता है। तर्कपूर्ण एव वैज्ञानिक शैली मे की गयी उनकी इक्कीसवी सदी की चर्चा कितनी हृदयस्पर्शी बन गयी है—

"कैसा होगा इक्कीसवी सदी का जीवन ? यह एक प्रश्न है। इसके गर्भ मे कुछ नई सम्भावनाए अगडाई ले रही हैं तो कुछ आशंकाएं भी सिर उठा रही है। एक ओर सुविधाभोगी संस्कृति को पाव जमाने के लिए नई जमीन उपलब्ध करवाई जा रही है तो दूसरी ओर पुरुषार्थजीवी संस्कृति को दफनाने के लिए नई कब्रगाह की व्यवस्था सोची जा रही है। कुछ नया करने और पाने की मीठी गुदगुदी के साथ कुछ न करने का दंश भी इसी सदी को भोगना होगा।[2]" इसमें इतनी बारीकी से सत्य अभिव्यक्त हुआ है कि विषय वस्तु का आरपार संक्षेप में एक साथ प्रकाशित हो उठा है।

कही-कही उनके प्रश्न समाज की विसंगति पर तीखा व्यंग्य भी करते है। ये व्यंग्यात्मक प्रश्न किसी भी व्यक्ति के हृदय को तरंगित एव झंकृत करने मे समर्थ हैं। सतीप्रथा पर व्यंग्य करती उनकी निम्न उक्ति विचारणीय है—

"दाम्पत्य सम्बन्ध तो द्विष्ठ है। स्त्री के लिए पतिव्रता होना और पति के साथ जलना गौरव की बात है तो पुरुष के लिए पत्नीव्रत का आदर्श कहा चला जाता है ? उसके मन मे पत्नी के साथ जलने की भावना क्यों नही जागती ? पति की मृत्यु के बाद स्त्री विधवा होती है तो क्या पत्नी की मृत्यु के बाद पुरुष विधुर नही होता ? स्त्री के लिए पति परमेश्वर है तो पुरुष

---

१. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० ७६-७७
२. एक बूद . एक सागर, पृ० १७३६

के लिए पत्नी को परमेश्वर मानने में कौन-सी बाधा है ?[१]"

आज के मनुष्य की जीवन-शैली पर व्यग्य करते ये प्रश्न किसी भी सचेतन प्राणी को झकझोरने मे समर्थ है—

"आज मनुष्य की जीवन-शैली कैसी है ? वह उसे किधर ले जा रही है ? वह किसी के लिए नीड़ बुनता है या बुने हुए नीडों को उजाडता है ? वह किसी को जीवन देता है या जीने वाले की सांसो को छीनता है ? वह किसी को जोडता है या पीढ़ियों से जुडे हुए रिश्तों में दरार डालता है ? वह किसी के आंसू पोंछता है या बिना ही उद्देश्य चिकोटी काटकर रुलाता है ? वह जीवन को संवारने के लिए धर्म की शरण मे जाता है या उसकी वैसाखियो के सहारे लडाई के मैदान में उतरता है ? वह किसी की बात सुनता है या अपनी ही बात मनवाने का आग्रह करता है ? इन सवालो के चौराहो पर फैलते जा रहे गुमनाम अंधेरो को रास्ता कौन दिखाएगा ? समाधान की ज्योति कौन जलाएगा ?[२]

जहां उन्हे किसी बात पर जोर डालना होता है तब भी वे इसी शैली को अपनाते है क्योंकि निषेध के साथ जुडे उनके प्रश्नो में भी एक बुनियादी सन्देश ध्वनित होता है। उदाहरण के लिए देश के समक्ष प्रस्तुत किए गये निम्न प्रश्नों को देखा जा सकता है—

"यदि इस देश के लोग गरीब है तो वे श्रम से विमुख क्यो हो रहे है ? यदि देश की जनता को भर पेट रोटी भी नही मिलती तो करोडो रुपये प्रसाधन-सामग्री मे क्यो बहाए जाते हैं ? देश मे सूखे की इतनी समस्या है तो विलासिता का प्रदर्शन किस बुनियाद पर किया जा रहा है ? यदि भारतीय लोगों मे कर्त्तव्यनिष्ठा है तो राष्ट्रीय, सामाजिक एवं पारिवारिक दायित्वो से आंखमिचौनी क्यो हो रही है ? यदि उनमे ईमानदारी है तो ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार क्यो छा रहा है ? यदि उन्हे स्वच्छता का आकर्षण है तो गन्दगी क्यो फैल रही है ?"

कभी-कभी प्रश्न उपस्थित करके ही वे अपने वक्तव्य को पाठक तक संप्रेषित करना चाहते हैं। उनके ये प्रश्न इतने मार्मिक, वेधक और सटीक होते है कि पाठक के मन मे हलचल उत्पन्न किए बिना नहीं रहते। युवापीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत किए गए प्रश्नचिह्नों की कुछ पक्तिया मननीय है—

"क्या हमारी प्रबुद्ध युवापीढी शून्य को भरने की स्थिति मे है ? क्या वह किसी बडे दायित्व को ओढ़ने के लिए तैयार है ? क्या वह परिवार से भी पहला स्थान समाज को देने की मानसिकता बना सकती है ?"

---

१. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० ६२
२. चुनाव के सदर्भ मे प्रदत्त एक विशेष सदेश

भाषा-शैली का यह वैशिष्ट्य आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के बाद आचार्य तुलसी के साहित्य मे ही प्रचुर मात्रा मे देखा जा सकता है। इस शैली मे व्यक्त तथ्य को पाठक पढ़ता ही नहीं, अपितु मन-ही-मन उसका उत्तर भी सोचता है। प्रश्नो के माध्यम से मानव-मन के अन्तर्द्वन्द्वो को प्रस्तुत करने से पाठक और लेखक के बीच संवाद-शैली जैसी जीवन्तता बनी रहती है। पाठक केवल मूक ही नही बना रहता।

निषेध मे विधेय को व्यक्त करने की उनकी अपनी शैलीगत विशेषता है—

"मैं नही मानता कि सयम और समर्पण दो वस्तु है।"

आचार्य तुलसी धर्माचार्य होते हुए भी एक महान् तार्किक है। वे अपनी बात को सहेतुक प्रस्तुत करते हैं। अतः उनकी भाषा मे प्रायः कारण एवं कार्य की लम्बी शृखला रहती है। उदाहरण के लिए भगवान् महावीर के व्यक्तित्व को प्रस्तुति देने वाली निम्न पक्तियो को देखा जा सकता है—

"वे यथार्थवादी थे, इसलिए अति कल्पना की चौखट में उनकी आस्था फिट नही बैठती थी। वे अनेकातवादी थे, इसलिए किसी भी तत्त्व के प्रति उनके मन मे कोई पूर्वाग्रह नही था। वे सत्य के साक्षात् द्रष्टा थे, इसलिए उनकी अवधारणाओ का आधार आनुमानिक नही था। वे भरे हुए अमृतघट थे, इसलिए किसी उपयुक्त पात्र की प्रतीक्षा करते रहते थे।"[1]

उनके साहित्य में केवल कारण एवं कार्य की ही चर्चा नहीं रहती, परिणाम का स्पष्टीकरण भी रहता है। उनका शैलीगत चातुर्य निम्न पंक्तियो में देखा जा सकता है, जहां कारण, कार्य एवं परिणाम—तीनो को एक ही वाक्य मे समेट दिया गया है—

"आर्थिक क्रांति हुई, अर्थ-व्यवस्था बदली पर अर्थ के प्रति व्यामोह कम नही हुआ। सैनिक क्रांति हुई, शासन बदला पर जनता सुखी नही हुई। सामाजिक क्राति हुई, समाज को बदलने का प्रयत्न हुआ, जातीय बहिष्कार जैसी घटनाए भी घटी पर स्वस्थ समाज की संरचना नही हुई।"[2]

किसी भी तथ्य के निरूपण मे वे ऐकान्तिक हेतु प्रस्तुत नही करते। यद्यपि सुख की धारणा के बारे मे पाश्चात्य एवं प्राच्य अनेक चितकों ने पर्याप्त चितन किया है, पर इस बिन्दु पर आचार्य तुलसी का चितन संतुलित होने की प्रतीति देता है—

"सुख का हेतु अभाव भी नही है और अतिभाव भी नही है, क्योंकि अतिभाव में विलासिता का उन्माद बढता है, जिसके पीछे संरक्षण का रौद्र भाव रहता है तथा अभाव मे अन्य अपराध बढते हैं क्योकि उसके पीछे प्राप्ति

१. बीती ताहि विसारि दे, पृ० ४९
२. नैतिक संजीवन, पृ० ५०

की आर्त्तवेदना है। अतः सुख का हेतु स्वभाव है। इसी प्रसग मे धर्म के सदर्भ में उनकी निम्न पंक्तियां भी पठनीय हैं—

"किसी ने धर्म को अमृत बताया और किसी ने अफीम की गोली। ये दो विरोधी तथ्य हैं। पर इन दोनो ही तथ्यो में सत्यांश हो सकता है। प्रेम और मैत्री की बुनियाद पर खड़ा हुआ धर्म अमृत है तो साम्प्रदायिक उन्माद से ग्रस्त धर्म अफीम का काम करने लग जाता है।"[1]

इसी शैली में उनका निम्न वक्तव्य भी उद्धरणीय है—

"मेरा अभिमत है कि बाहर भी देखो और भीतर भी। अन्तर्जगत् से उपेक्षित रहना अपने विकास को नकारना है। बाह्य जगत् के प्रति उपेक्षा करना, जो कुछ हम जी रहे है, उसे अस्वीकार करना है। जितनी अपेक्षा है, उतना बाहर देखो। जितनी अपेक्षा है, उतना आत्मदर्शन करो।"

प्रवचनकार होने के कारण वे प्रसगवश एक साथ जुडी हुई अनेक बातो को धाराप्रवाह कह देते हैं। इस कारण कही-कही उनकी भाषा और शैली बहुत दुरूह हो गयी है। इस परिप्रेक्ष्य में निम्न उद्धरण द्रष्टव्य है—

"जब तक व्यक्ति व्यक्ति रहता है, तब तक उसके सामने महत्त्वाकांक्षा, महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति के लिए परिग्रह या संग्रह, परिग्रह या संग्रह के लिए शोषण या अपहरण, शोषण के लिए बौद्धिक या कायिक शक्ति का विकास, बौद्धिक और दैहिक शक्ति-सग्रह के लिए विद्या की दुरभिसधि, स्पर्धा आदि-आदि समस्याएं नही होती।"

उनके अनुभूतिप्रधान एव व्यक्तिप्रधान निबंधो मे प्रथम पुरुष का प्रयोग हुआ है। 'मैं' सर्वनाम का प्रयोग करके उन्होंने अपनी अनुभूतियो एव अभिमतो को उपन्यस्त किया है। जैसे—'ऐसे मिला मुझे अहिंसा का प्रशिक्षण', 'मेरी यात्रा' आदि। अनुभूत घटनाएं या संवेदनाए उन्होने आत्माभिव्यंजन के प्रयोजन से नही, बल्कि पाठक के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए लिखी हैं। व्यक्तिवादी शैली मे निबद्ध निम्न वाक्य तनावग्रस्त एव गमगीन व्यक्तियो को अभिनव प्रेरणा देने वाला है—

"मैं कल जितना खुश था, उतना ही आज हू। मेरे लिए सभी दिन उत्सव के है, सभी दिन स्वतंत्रता के हैं।"

० मेरा स्वागत ही स्वागत होता तो शायद अहंभाव बढ़ जाता। मुझे पग-पग पर विरोध ही विरोध झेलना पडता तो हीनता का भाव भर जाता। मै इन दोनो स्थितियो के बीच रहा। न अह, न हीनता। इसलिए मैं बहुत बार अपने विरोधियो को बधाई देता हूं।" हिन्दी साहित्य मे इस शैली का दर्शन रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों मे मिलता है।

---

१. विज्ञप्ति संख्या ८०७

किसी भी साहित्यकार के सामर्थ्य की परीक्षा इससे होती है कि वह अपने अनुभव को सही भाषा मे व्यक्त कर पाया या नही। आचार्य तुलसी की सृजनात्मक क्षमता इतनी जागृत है कि अनुभूति और अभिव्यक्ति मे अन्तराल नही है। भाषा पर उनका इतना अधिकार है कि अपने हर भाव को वे सही रूप मे अभिव्यक्त करने मे सक्षम हैं। यही कारण है कि लेखन मे ही नही, वक्तृत्व मे भी उन्होंने अक्षरमैत्री का विशेष ध्यान रखा है।

वैसे तो आचार्य तुलसी बहुत सीधी-साधी भाषा में अपनी बात पाठक तक संप्रेषित कर देते हैं, पर जहां उन्हे सामाजिक, राजनैतिक एव धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार करना होता है, वहा वे व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं, जिससे उनका कथ्य तीखा और प्रभावी होकर लोगो को कुछ सोचने, भीतर झाकने एव बदलने को मजबूर कर देता है। धार्मिकों की रूढ़ एवं परिणामशून्य उपासना पद्धति पर किए गये व्यंग्य-बाणो की बौछार की एक छटा दर्शनीय है—

'सत्तर वर्ष तक धर्म किया, माला फेरते-फेरते अगुलिया घिस गई पर मन का मैल नही उतरा। चढ़ते-चढ़ते मदिर की सीढ़िया घिस गई पर जीवन नहीं बदला। सतों के पास जाते-जाते पांव घिस गए पर व्यवहार मे बदलाव नही आया। क्या लाभ हुआ धार्मिको को ऐसे धर्म से ?'

दान देकर अपने अह का पोषण करने वाले लोगो के शोषण को शोषित वर्ग के मुख से कितनी मार्मिक एव व्यग्यात्मक शैली मे कहलवाया है—

"हमारा शोषण और उनका अहं पोषण, इसमें पुण्य कैसा ? वे दानी बने और हम दीन, यह क्यो ? वे हमारा रक्त चूसे और हमे ही एक कण डालकर पुण्य कमाएं, यह कैसी विडम्बना"[1]।

धर्म के क्षेत्र में होने वाले भ्रष्टाचार पर किया गया व्यंग्य सोच की खिडकी को खोलने वाला है—

० 'ब्लैक के प्लेग ने भगवान के घर को भी नही छोडा। घूस देने पर उनके दरवाजे भी रात को खुल जाते हैं।'

राजनीति स्वच्छ या अस्वच्छ नही होती। पर भ्रष्ट एवं सत्तालोलुप राजनेता उसकी उजली छवि को धूमिल बना देते हैं। राजनीति की अर्थवत्ता पर की गयी उनकी टिप्पणी व्यंग्यमयी प्रखर शैली का एक निदर्शन है—

"जनता को सादगी और शिष्टाचार का पाठ पढ़ाने वाले नेता जब तक स्वयं अपने जीवन मे सादगी नहीं लायेंगे, फिजूलखर्ची से नही बचेंगे तो वे जनता का पथदर्शन कैसे कर सकेगे ?"

आचार्य तुलसी का जीवन अनेक विरोधी युगलों का समाहार है। वे

---

१. आचार्य तुलसी के अमर संदेश, पृ० ३६

सूर्यसम प्रखर तेजस्वी है तो चांद की भाति सौम्य भी हैं। सागर के समान गभीर है तो आकाश की ऊंचाई भी उनमे समाविष्ट है। चट्टान की भाति अडिग, अचल है तो रबड़ के समान लचीले भी है। वज्रवत् कठोर है तो फूल से अधिक कोमल भी है। इसी भावना का प्रतिनिधित्व करने वाला सस्कृत साहित्य मे एक मार्मिक श्लोक मिलता है—

वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणा चेतासि, को नु विज्ञातुमर्हति ॥

उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता साहित्य की शैली मे भी प्रतिबिम्बित हुई है। दो विरोधो का समायोजन साहित्य का बहुत बड़ा वैशिष्ट्य है। उन्होने प्रकृतिकृत एव पुरुषकृत विरोध का सामजस्य कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। महावीर के विरोधी व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का निम्न उदाहरण दर्शनीय है—

"वे जीवन भर मुक्त हाथो से ज्ञानामृत बाटते रहे, पर एक बूद भी खाली नही हुए।"[१]

धर्म और विज्ञान के विरोधी स्वरूप मे सामंजस्य करते हुए उनका कहना है—

"धर्म और विज्ञान का ऐक्य नही है तो उनमे विरोध भी नही है। पदार्थ-विश्लेषण और नई-नई वस्तुओं को प्रस्तुत करने की दिशा मे विज्ञान आगे बढ़ता है तो आतरिक विश्लेषण की दिशा मे धर्म की साधना चलती है।"[२]

जहा वे एक उपदेष्टा की भूमिका पर अपनी बात कहते हैं, वहा उनकी भाषा बहुत सीधी-सपाट एव अभिधा शैली मे होती है। उनका उपदेश भी पाठक को उबाता नही, वरन् मानस पर एक विशेष प्रभाव डालकर जीने का विज्ञान सिखाता है। उपदेशात्मक ध्वनि के वाक्यो की कुछ कड़ियां इस प्रकार हैं—

० 'युवापीढी का यह दायित्व है कि वह संघर्ष को आमंत्रित करे, मूल्याकन का पैमाना बदले, अह को तोडे, जोखिम का स्वागत करे, स्वार्थ और व्यामोह से ऊपर उठे तथा इस सदी के माथे पर कलक का जो टीका लगा है, उसे अगली सदी मे सक्रात न होने दे।'

० 'मै देश के पत्रकारो को आह्वान करना चाहता हूं कि वे जन-जीवन को नयी प्रेरणाओ से ओत-प्रोत कर, लूट-खसोट, मार-काट आदि सवादो को महत्त्व न देकर निर्माण को महत्त्व दे। जातीय, साप्रदायिक आदि सकीर्ण विचारो को उपेक्षित कर व्यापक विचारो का प्रचार करे।'

---

१. बीती ताहि विसारि दे, पृ० ४९
२. एक बूद . एक सागर, पृ० ७४१

एक बात की सिद्धि मे उसके समकक्ष अनेक उदाहरणों को प्रस्तुत कर देना उनकी अपनी शैलीगत विशेषता है, जिससे कथ्य अधिक स्पष्ट एवं सुबोध हो जाता है। सत्य का यात्री कभी लकीर का फकीर नही होता, इस बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होने अनेक उदाहरण साहित्यिक भाषा मे प्रस्तुत किए हैं—

"प्रकाश की यात्रा करने वाला कोई भी मनुष्य अपनी मुट्ठी मे सूरज का बिम्ब लेकर जन्म नही लेता। अमृत की आकाक्षा रखने वाला कोई भी आदमी अगम्य लोको मे घर बसाकर नही रहता। ऊर्जा के अक्षय स्रोतों की खोज करने वाला व्यक्ति विरासत में प्राप्त टेक्नालॉजी को ही आधार मानकर नही चलता। इसी प्रकार सत्य की यात्रा करने वाला साधक पुरानी लकीरो पर चलकर ही आत्मतोष नही पाता।"

किसी विशिष्ट शब्द की व्याख्या भी वे अनेक रूपों में करते हैं, जिससे पाठक को वह हृदयंगम हो जाए। उस स्थिति में शब्द या वाक्यांश की पुनरुक्ति अखरती नही, अपितु एक विशेष चमत्कार और प्रभाव को उत्पन्न करती है। इसे भी एक प्रकार से समानान्तरता का उदाहरण कहा जा सकता है—

अणुव्रती, अकाल मौत, महावीर की स्मृति तथा युवा आदि शब्दो को स्पष्ट करने वाली पंक्तिया द्रष्टव्य है—

अणुव्रती बनने का अर्थ है—अहिंसक होना, शोषण न करना।
अणुव्रती बनने का अर्थ है—नए सामाजिक मूल्यों की प्रस्थापना करना।
अणुव्रती बनने का अर्थ है—अणु से पूर्ण की ओर गति करना।
अणुव्रती बनने का अर्थ है—मनुष्य बनना।

अकाल मौत का अर्थ है—प्रसन्नता मे कमी।
अकाल मौत का अर्थ है—मैत्री भाव मे कमी।
अकाल मौत का अर्थ है—स्वास्थ्य मे कमी।

महावीर की स्मृति का अर्थ है—पराक्रमी होना।
महावीर की स्मृति का अर्थ है—विषमता के विषवृक्षो को जड़ से उखाड़ फेंकना।
महावीर की स्मृति का अर्थ है—सत्यशोध के लिए विनम्र और उदार दृष्टिकोण अपनाना।
महावीर की स्मृति का अर्थ है—सयम की शक्ति का स्फोट करना

युवा वह होता है, जो तनावमुक्त होकर जीना जानता है।
युवा वह होता है, जो प्रतिस्रोत में चलना जानता है।

युवा वह होता है, जो वर्तमान मे जीना जानता है ।
युवा वह होता है, जो परिस्थितियो मे जीना जानता है ।
युवा वह होता है, जो पुरुषार्थ का प्रयोग करना जानता है ।
युवा वह होता है, जो आत्मविश्वास को बढ़ाना जानता है ।
युवा वह होता है, जो अनुशासित होकर रहना जानता है ।[1]

लोकप्रसिद्ध धारणा का निषेध वे उस धारणा को प्रस्तुत करके करते है । उनके इस शैलीगत वैशिष्ट्य के कारण वक्तव्य तो प्रभावी बनता ही है, पाठक की भ्रान्त धारणा का निराकरण भी हो जाता है तथा कथ्य के साथ वह सीधा सम्बन्ध भी स्थापित कर पाता है ।

शैली के इस वैशिष्ट्य के बारे में 'व्यावहारिक शैली विज्ञान' मे भोलानाथ तिवारी कहते है कि एक बात का निषेध कर दूसरी बात कहना शैली को आकर्षक बनाता है । इसमे बडे सहज रूप से दूसरी बात रेखांकित हो उठती है । हिंदी मे कुछ ही लेखक इस शैली का प्रयोग करते है, जिनमे प्रेमचद और हजारीप्रसाद द्विवेदी मुख्य है । प्रेमचद 'मानसरोवर' मे कहते हैं—"खाने और सोने का नाम जीवन नही है । जीवन नाम है सदैव आगे बढ़ते रहने की लालसा का ।"

साधु-सस्था के बारे मे लोगो की अनेक धारणाओ का निराकरण करके नई अवधारणा को प्रस्तुत करने वाली उनकी निम्न पक्तिया पठनीय है—"साधु भिखमंगे नही, भिक्षु है । बोझ नही, बल्कि ससार का बोझ उतारने वाले है । अभिशाप नही, बल्कि जगत् के लिए वरदानस्वरूप है । वे कलंक नही, बल्कि जगत् के शृगार हैं ।[2]

इसी प्रकार शब्द के अर्थ का स्पष्टीकरण भी कभी-कभी वे इसी शैली मे करते है—

० विनय का अर्थ दीनता, हीनता या दब्बूपन नही, वह तो आत्म-विकास का मार्ग है ।

० अपरिग्रह का अर्थ यह नही कि भूखे मरो, उत्पादन या क्रय-विक्रय मत करो । इसका वास्तविक अर्थ है कि दूसरो के अधिकार छीनकर, प्रामाणिकता और विश्वासपात्रता को गवाकर, एक शब्द मे, अन्याय द्वारा सग्रह मत करो ।

० समर्पण का अर्थ किसी दूसरे के हाथ मे अपना भाग्य सौंप देना नही, अपितु समर्पित होने का अर्थ है—सत्य को पाने की दिशा मे प्रस्थान करना ।

---

१. बीती ताहि विसारि दे, पृ० ८५
२. अणुव्रती सघ का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन, पृ० १२

धर्मनेता होने के कारण वे कर्तव्य की एक लम्बी शृंखला व्यक्ति या वर्गविशेष के सम्मुख रख देते है, जिससे कम-से-कम एक विकल्प तो व्यक्ति अपने अनुकूल खोज कर उसके अनुरूप स्वयं को ढाल सके। यह शैलीगत वैशिष्ट्य उन्हें अन्य साहित्यकारो से विलक्षण बना देता है। युगो से प्रताड़ित अवहेलित नारी जाति के सामने करणीय कार्यों की सूची प्रस्तुत करते हुए वे कहते है—

"महिलाए अपनी क्षमताओ का बोध करें, स्वाभिमान को जागृत करे, युगीन समस्याओ को समझें, समस्याओ को समाज के सामने रखे, उन्हे दूर करने के लिए सामूहिक आवाज उठाएं और आगे बढने के लिए स्वय अपना रास्ता बनाएं।"

'स्त्री को अपने व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए चारित्रिक सौंदर्य को निखारना होगा, आत्मविश्वास को बढ़ाना होगा, आत्मनिर्भरता की आवश्यकता का अनुभव करना होगा, चिंतन एव अभिव्यक्ति को नया परिवेश देना होगा, स्वाभिमान को जगाना होगा, निरभिमानता का विकास करना होगा, अनासक्ति का अभ्यास करके सग्रहवृत्ति को नियंत्रित करना होगा, युगीन समस्याओ को समझना होगा, प्रदर्शनप्रियता से ऊपर उठकर आत्माभिमुख बनना होगा, अनाग्रही वृत्ति को विकसित करना होगा तथा सहिष्णुता, मृदुता एव विनम्रता को आत्मसात् करना होगा।"

यद्यपि समानान्तरता का प्रयोग काव्य में अधिक मिलता है, पर हिंदी साहित्य में रामचद्र शुक्ल, प्रेमचद एव हजारीप्रसाद द्विवेदी ने गद्य साहित्य मे भी इसका प्रचुर प्रयोग किया है। इसी क्रम मे आचार्य तुलसी की भाषा मे भी प्रचुर मात्रा मे लयात्मकता एव समानान्तरता प्रवाहित होती दृग्गोचर होती हैं।

समानान्तरता का आशय है कि समान ध्वनि, समान शब्द, समान पद एव समान उपवाक्यो की पुनरुक्ति। जैसे बेकन अपने निबधो मे तीन शब्द, तीन पदबध तथा तीन वाक्य समानान्तर रखते थे—

कुछ पुस्तकें चखने की होती है, कुछ निगलने की होती हैं और कुछ चबाकर खाने और पचाने की।

रूपीय समानान्तरता के प्रयोग आचार्यश्री के साहित्य मे अधिक मिलते हैं—

० कुछ लोग निराशा की खोह मे सोये रहते है। वे अतीत मे जाते है, भविष्य मे उड़ान भरते है। जो नही किया, उसके लिए पछताते है। नयी आकाक्षाओ के सतरंगे इन्द्रधनुष रचते हैं। कभी समय को कोसते हैं। कभी परिस्थिति को दोष देते है और कभी अपने भाग्य का रोना रोते है। ऐसे लोग निषेधात्मक भावों के खटोले मे बैठकर जिन्दगी के दिन पूरे करते है।[1]

१. मुखड़ा क्या देखे दर्पण मे, पृ० ९

० दिनभर दुकान पर बैठकर ग्राहको को धोखा देना, रिश्वत लेना, झूठे केस लड़ना, चोरी, झूठ आदि मे लगे रहना और इनके दुष्परिणामो से बचने के लिए मदिर मे प्रतिमा की परिक्रमा करना, साधु-सतो के चरण स्पर्श करना, भजन-कीर्तन मे भाग लेना वास्तव मे धार्मिकता नही है ।[1]

आचार्य तुलसी का शब्द-सामर्थ्य बहुत समृद्ध है । अत: समतामूलक अर्थीय समानान्तरता के प्रयोग उनके साहित्य मे प्रचुर मात्रा मे मिलते है । भोलानाथ तिवारी का अभिमत है कि अर्थीय समानान्तरता आंतरिक है और इसका बाहुल्य शैली मे अपेक्षाकृत गभीरता का द्योतक होता है ।[2] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का एक प्रयोग है—

'मनुष्य की चरितार्थता प्रेम मे है, मैत्री मे है, त्याग मे है ।'

आचार्यश्री के साहित्य मे अर्थीय समानान्तरता के उदाहरण द्रष्टव्य है—

० 'अकर्मण्य व्यक्ति मे कैसा साहस ! कैसी क्षमता ! कैसा उत्साह !'

यह अर्थीय समानान्तरता का ही एक रूप है कि किसी भी बात या भाव पर बल देने के लिए वे शब्द के दो तीन पर्यायो का एक साथ प्रयोग करते है—

० 'कोई भी बाधा, रुकावट या मुसीबत आपके सत्यबल और आत्मबल के समय टिक नही पाएगी ।'

ओजस्विता और जीवन्तता उनकी शैली के सहज गुण हैं इसीलिए बेलाग और स्पष्ट रूप से कहने मे वे कही नही हिचकते । शैलीगत यह वैशिष्ट्य उनके सम्पूर्ण साहित्य मे छाया हुआ है । वे वर्गविशेष पर अगुलि-निर्देश करते समय निर्भीक होकर अपनी बात कहते हैं । यह वैशिष्ट्य उनके अपने फक्कडपन, मस्ती एव दुनियावी स्वार्थ से ऊपर उठने के कारण है । राजनैतिको ने सामने प्रस्तुत प्रश्न इसी शैली के उदाहरण कहे जा सकते है—

"राष्ट्र को स्थिर नेतृत्व प्रदान करने के नाम पर क्यो सिद्धातहीन समझौते और स्तरहीन कलाबाजिया दिखाई जा रही है ? सम्प्रदायवाद, जातिवाद, भाषावाद और प्रान्तवाद को भड़का करके क्यो सत्ता की गोटिया बिठाई जा रही हैं ? राष्ट्रपुरुष की छवि निखारने के नाम पर क्यो अपने स्वार्थों की पूर्ति की जा रही है ?[3]

उनकी कथन शैली का यह अनन्य वैशिष्ट्य हे कि वे केवल समस्या को प्रस्तुत ही नही करते, उसका समाधान एवं दूसरा विकल्प भी दर्शाते है । इससे उनके साहित्य मे पाठक को एक नयी खुराक मिलती है । देश के

---

१. एक बूंद : एक सागर, पृ० ६२
२. व्यावहारिक शैली विज्ञान, पृ० ८६
३. जैन भारती, १६ दिस. ७९

नागरिको को आह्वान करते हुए वे कहते है—

"संयम का मूल्याकन होता तो बढ़ती हुई आबादी की समस्या जटिल नही होती । अपरिग्रह का मूल्य समझा जाता तो गरीबी की समस्या को पाव पसारने का अवसर नही मिलता । पुरुषार्थ को महत्त्व मिलता तो बेरोजगारी की समस्या नही बढती । अहिंसा की मूल्यवत्ता स्थापित होती तो आतंकवाद की जड़े गहरी नही होती । एकता और अखंडता का मूल्यांकन होता तो धर्म, भाषा, जाति आदि के नाम पर देश का विभाजन नहीं होता । मानवीय एकता या समता का सिद्धात प्रतिष्ठित होता तो जातीय भेदभावो को पनपने का अवसर नही मिलता, छुआछूत जैसी मनोवृत्तियो को अपने पंख फैलाने के लिए खुला आकाश नही मिलता।"[१]

आचार्य तुलसी को आत्मविश्वास का पर्याय कहा जा सकता है। वे प्रवचन मे तो अपनी बात पूरे आत्मविश्वास से कहते ही हैं, लेखन मे भी उनका आत्मविश्वास प्रखरता से अभिव्यक्त हुआ है—

० "मैं विश्वासपूर्वक कहता हू कि दृढ संकल्प शक्ति के साथ प्रामाणिकता स्वीकार कर, नैतिकता पर डटकर खड़े हो जाओ तो देखोगे तुम ही सुखी हो।"[२]

० हमारा भविष्य हमारे हाथ मे है—यह आस्था मजबूत हो जाए तो समस्याओ की सौ-सौ आंधियां भी व्यक्ति के भविष्य को अधकारमय नही बना सकती ।[3]

० मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक हिंदुस्तान के पास अहिंसा की सम्पत्ति सुरक्षित है, कोई भी भौतिकवादी शक्ति उसे परास्त नही कर सकेगी ।

० "मुझे उस दिन की प्रतीक्षा है, जब समस्त मानव समाज मे भावात्मक एकता स्थापित होगी और बिना किसी जातिभेद के मानव-मानव धर्म के पथ पर आरूढ होगे ।"

नकारात्मक साहित्य समाज मे विकृति, सत्रास एव घुटन पैदा करता है । आचार्य तुलसी ने कही भी निराशा एव निषेध का स्वर मुखर नही किया है । उनके सम्पूर्ण साहित्य मे इस वैशिष्ट्य को पृष्ठ-पृष्ठ में देखा जा सकता है, जहां उन्होने अधकार मे भी प्रकाश की ज्योति जलाई है, निराशा मे भी आशा के गीत गाए हैं तथा दुःख मे से सुख को प्राप्त करने की कला बताई है—

---

१ क्या धर्म बुद्धिगम्य है ? पृ० १०४
२. एक बूद : एक सागर, पृ० १५९२
३. वही, पृ० १४८८

- मै सोचता हू थोडे-से अंधेरे को देखकर ढेर सारे प्रकाश से आख नही मूद लेनी चाहिए। आज समाज मे उल्लुओ की नही, हंसों की आवश्यकता है, जो क्षीर और नीर में भेद कर सके।
- मैं हर क्षण उत्साह की सास लेता हू, इसलिए सदा प्रसन्न रहता हू।
- "बचपन से ही अहिंसा के प्रति मेरी आस्था पुष्ट हो गयी। आस्था की वह प्रतिमा आज तक कभी भी खंडित नहीं हुई।"
- मुझे कभी सफलता मिली, कभी न भी मिली, पर सुधार के क्षेत्र मे मै कभी निराश होता ही नही, निराश होना मैंने सीखा ही नही। मै जिदगी भर आशावान् रहकर अडिग आत्मविश्वास के साथ काम करता रहूंगा।"

अन्य साहित्यकारों की भांति वे किसी भी लेख में लम्बी भूमिका नही लिखते है। सीधे कथ्य की अभिव्यक्ति ही करना चाहते है। भूमिका में अनेक बार पाठक केवल शब्दो के जाल मे उलझ जाता है, उसे कुछ नई प्राप्ति का अहसास नही होता।

प्रवचन साहित्य मे ही नही, निबंधो मे भी उन्होने पौराणिक, ऐतिहासिक तथा काल्पनिक घटनाओ से अपने कथ्य की पुष्टि की है। अनेक स्थानो पर तो उन्होने छोटे-छोटे कथा-व्यंग्यो एवं संस्मरणो के माध्यम से भी अपनी बात का समर्थन किया है। यह शैलीगत वैशिष्ट्य उनके सम्पूर्ण साहित्य मे छाया हुआ है। यही कारण है कि उनका साहित्य केवल विद्वद्-भोग्य ही नही, सर्वसाधारण के लिए भी प्रेरणादायी है।

उनके निबधो में वार्तालाप शैली का प्राधान्य है। इससे पाठक के साथ निकटता स्थापित हो जाती है। वार्तालाप का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

एक बार मोरारजी भाई ने कहा—'आचार्यजी! नेहरूजी के साथ आपके अच्छे संबंध है। आप उन्हे अध्यात्म की ओर मोड सकें तो बहुत लाभ हो सकता है।'

मैंने उनसे पूछा—'यह प्रयत्न आप क्यो नही करते?'

वे बोले—'हम नही कर सकते। आप चाहे तो यह काम हो सकता है।'

हमने सलक्ष्य प्रयत्न किया। तीन वर्षों के बाद मोरारजी भाई फिर मिले। वे बोले—'हमारा काम हो गया।'

मैंने पूछा—'क्या नेहरूजी बदल रहे है?'

वे बोले—'हां, उनके चिन्तन मे ही नहीं, व्यवहार मे भी बदलाव आ रहा है।'

कही-कही वे अपने कथ्य को इतनी भावुकतापूर्ण शैली में कहते हैं कि पाठक उसमे वहने लगता है। ग्रामीणो के वारे मे वे कितनी भावपूर्ण अभिव्यक्ति दे रहे है—

"जब मैं इन भोले-भाले, सहज, निश्छल और फटे-पुराने कपड़ो मे लिपटे ग्रामीणो को देखता हू तो मेरा मन पसीज उठता है। ये मेरी छोटी-सी प्रेरणा से शराब, तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं को छोड़ देते है तथा अपनी सादगीपूर्ण जिन्दगी और भक्ति-भावना से मेरे दिल मे स्थान बना लेते है।"[1]

युवापीढी के प्रति अपने आतरिक स्नेह को अभिव्यक्त करते हुए उनका वक्तव्य कितना सवेदनशील और हृदयग्राह्य बन गया है—

"युवापीढी सदा से मेरी आशा का केन्द्र रही है। चाहे वह मेरे दिखाए मार्ग पर कम चल पायी हो या अधिक चल पायी हो, फिर भी मेरे मन मे उसके प्रति कभी भी अविश्वास और निराशा की भावना नही आती। मुझे युवक इतने प्यारे लगते हैं, जितना कि मेरा अपना जीवन। मैं उनकी अद्भुत कर्मजा शक्ति के प्रति पूर्ण आश्वस्त हूं।"[2]

उनकी प्रतिपादन-शैली का वैशिष्ट्य है कि वे शब्द और विषय की आत्मा को पकडकर उसकी व्याख्या करते हैं। किसी भी शब्द या विषय की रूढ व्याख्या उन्हे पसद नही है। अहिंसा की मूल आत्मा को व्यक्त करती उनकी कथन-शैली का चमत्कार दर्शनीय है—

"जो लोग अहिसा को सीमित अर्थों मे देखते है, उन्हे चीटी के मर जाने पर पछतावा होता है, किन्तु दूसरो पर झूठा मामला चलाने मे पछतावा नही होता। अप्रामाणिक साधनो से पैसा कमाने मे हिसा का अनुभव नही होता। अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति मे दूसरो का वडे से वड़ा अहित करने मे उन्हे हिंसा की अनुभूति नही होती।"

धर्म की सीधी व्याख्या उनके अनुभव मे इस प्रकार है—

"मेरा धर्म किसी मदिर या पुस्तक मे नही, वल्कि मेरे जीवन मे है, मेरे व्यवहार मे है, मेरी भाषा में है।"

उनके प्रवचनों मे ही नही, लेखन मे भी यह विशेषता है कि वे किसी भी विषय या व्यक्ति के विविध रूपो को एक साथ सामने रख देते है। यह उनकी स्मृति-शक्ति का तो परिचायक है ही, साथ ही पाठक के समक्ष उस विषय की स्पष्टता भी हो जाती है। नारी के अनेक रूपो को प्रकट करने वाली निम्न पंक्तियां उनके इस शैलीगत वैशिष्ट्य को उजागर करती है—

"कभी नारी सुघड़ गृहिणी के रूप मे उपस्थित होती है तो कभी पूरे

---

१. एक बूद : एक सागर, पृ० १७१३

२. वही, पृ० १७११

घर की स्वामिनी बन जाती है। बगीचे में पौधों को पानी देते समय वह मालिन का रूप धारण करती है तो रसोईघर में अपनी पाक-कला का परिचय देती है। कपड़ो का ढेर सामने रखकर जब वह धुलाई का काम शुरू करती है तो उसकी तुलना धोबिन से की जा सकती है तो बच्चों को होम वर्क कराते समय वह एक ट्यूटर की भूमिका में पहुंच जाती है। कभी सीना-पिरोना, कभी बुनाई करना, कभी झाड़ू-बुहारी करना तो कभी बच्चों की परवरिश में खो जाना।''

अनुशासन के विविध पक्षों की साहित्यिक एवं क्रमबद्ध अभिव्यक्ति का उदाहरण पढ़िये—

''अनुशासन वह कला है, जो जीवन के प्रति आस्था जगाती है। अनुशासन वह आस्था है, जो व्यवस्था देती है। अनुशासन वह व्यवस्था है, जो शक्तियों का नियोजन करती है। अनुशासन वह नियोजन है, जो नए सृजन की क्षमता विकसित करता है। अनुशासन वह सृजन है, जो आध्यात्मिक चेतना को जगाता है। अनुशासन वह चेतना है, जो अस्तित्व का बोध कराती है। अनुशासन वह बोध है, जो कलात्मक जीवन जीना सिखाता है।''

इसी सन्दर्भ में अध्यात्म की व्याख्या भी पठनीय है—

''अध्यात्म केवल मुक्ति का ही पथ नही, वह शाति का मार्ग है, जीवन जीने की कला है, जागरण की दिशा है और है रूपान्तरण की सजीव प्रक्रिया।''

आचार्य तुलसी जीवन की हर समस्या के प्रति सजग हैं। अनेक स्थलो पर वे एक क्षेत्र की अनेक समस्याओ को प्रस्तुत करके एक ऐसा समाधान प्रस्तुत करते हैं, जो उन सब समस्याओं को समाहित कर सके। शैलीगत यह वैशिष्ट्य उनके साहित्य मे अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है—

''समाज में जहां-कही असंतुलन है, आक्रमण है, शोषण है, विग्रह है, असहिष्णुता है, अप्रामाणिकता है, लोलुपता है, असंयम है, और भी जो कुछ अवांछनीय है, उसका एक ही समाधान है—सयम के प्रति निष्ठा।''

निष्कर्ष की भाषा मे कहा जा सकता है कि उन्होने गद्य-साहित्य की लेखन-शैली मे अनेक नयी दिशाओ का उद्घाटन किया है। उनकी भाषा अनुभूतिप्रधान है, इस कारण उनका साहित्य केवल बुद्धि और तर्क को ही पैना नही करता, हृदय को भी स्पंदित करता है। उनका शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास तथा भावाभिव्यक्ति—ये सभी विषय की आत्मा को स्पष्ट करने में लगे हुए दिखाई देते है। कहा जा सकता है कि उनकी भाषा-शैली स्वच्छ, स्पष्ट, गतिमय, संप्रेषणीय, गम्भीर किन्तु बोधगम्य, मुहावरेदार तथा श्रुति-मधुर है।

चिन्तन के नए क्षितिज

आचार्य तुलसी एक ऐसे व्यक्तित्व है, जिन्हे चिन्तन का अक्षय कोष कहा जा सकता है। उनके चिंतन की धारा एक ही दिशा मे प्रवाहित नही हुई है, बल्कि उनकी वाणी ने जीवन की विविध दिशाओ का स्पर्श किया है। यही कारण है कि कोई भी महत्त्वपूर्ण विषय उनकी लेखनी से अछूता रहा हो, ऐसा नही लगता। उनके चिन्तन की खिड़कियां समाज को नई दृष्टि देने के लिए सदैव खुली रहती है। उन्होने हजारो विषयों पर अपने मौलिक विचार व्यक्त किए है पर उन सबको प्रस्तुत करना असम्भव है। फिर भी अहिंसा, धर्म और राष्ट्र के सन्दर्भ मे उन्होंने जो नई सूझ और नई दृष्टि समाज को दी है, उसका आकलन हम यहां प्रस्तुत कर रहे है। यहा उन विषयो पर उनके उद्धरणो एवं विचारों को ही ज्यादा महत्त्व दिया गया है, जिससे एक शोध-विद्यार्थी को उन पर थीसिस लिखने की सुविधा हो सके।

अहिंसा दर्शन

अहिंसा मानवीय जीवन की कुञ्जी है। अत. इसका सामयिक और इहलौकिक ही नही, अपितु सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक महत्त्व है। 'अहिंसा एक अखण्ड सत्य है। उसे टुकड़ो में नही बाटा जा सकता। एशिया, यूरोप और अमेरिका की अहिंसा अलग-अलग नही हो सकती।'[1] महावीर अहिंसा के सन्दर्भ मे कहते है कि ज्ञानी की सबसे बडी पहचान यह है कि वह किसी की हिंसा न करे। यदि करोडो पद्यो का ज्ञाता होने पर भी व्यक्ति हिंसा मे अनुरक्त है तो वह अज्ञानी ही है। "पुरिसा ! तुमसि नाम सच्चेव जं हतव्वं ति मन्नसि"—पुरुष जिसे तू हनन योग्य मानता है, वह तू ही है—यह ऐसा मत्र महावीर ने मानव जाति को दिया है, जिसके आधार पर विश्व की सभी आत्माओ मे समत्व प्रतिष्ठित हो सकता है।

यों तो अहिंसा सभी महापुरुषो के जीवन का आभूषण है, किन्तु कुछ कालजयी व्यक्तित्व ऐसे अमिट हस्ताक्षर छोड़ जाते है, जो स्वयं ही अहिंसक जीवन नही जीते, वरन् समाज को भी उसका सक्रिय एवं प्रयोगात्मक प्रशिक्षण देते हैं। इस दृष्टि से बीसवी सदी के महनीय पुरुष आचार्य तुलसी को मानव जाति कभी भूल नही पाएगी, क्योंकि उन्होंने अहिंसा के प्रशिक्षण की बात कहकर अहिंसक शक्ति को सगठित करने का भागीरथ प्रयत्न

१. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० २६

किया है। उनके अहिसक विचारो की विशदता और विपुलता का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि उनकी प्रकाशित पुस्तको में अहिसा से सम्बन्धित लगभग २०० लेख है।

उनके अहिंसक व्यक्तित्व के सन्दर्भ में प्रसिद्ध साहित्यकार यशपालजी का कहना है—"आचार्य तुलसी के पास कोई भौतिक वल नहीं, फिर भी वे प्रेम, करुणा एवं सद्भावना के द्वारा अहिंसक क्रांति का शंखनाद कर रहे है। विनोवा तो अन्तिम समय मे ऐकांतिक साधना में लग गए पर आचार्य तुलसी के चरण ८० वर्ष में भी गतिमान् है। उनकी अहिंसक साधना अविराम गति से लोगो को सही इन्सान वनाने का कार्य कर रही है।"

आचार्य तुलसी के कण-कण मे अहिंसा का नाद प्रस्फुटित होता रहता है। किसी भी विपम परिस्थिति मे हिसा की क्रियान्विति तो दूर, उसका चिन्तन भी उन्हें मान्य नहीं है। लोक-चेतना मे अहिंसा को जीवन-शैली का अंग बनाने के लिए उन्होने भारत की स्वतंत्रता के साथ ही अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात किया। कृतज्ञ राष्ट्र ने उनकी चार दशको की तपस्या का मूल्याकन किया और उन्हे (सन् १९९३ में) 'इन्दिरा गाधी पुरस्कार' से सम्मानित किया। पुरस्कार समर्पण के अवसर पर वे राष्ट्र को उद्बोधित करते हुए कहते है—"मै अपने समूचे संघ एवं राष्ट्र से यही चाहता हूं कि सब जगह एकता और सद्भावना का विस्तार हो तथा देश मे जितने भी विवादास्पद मुद्दे है, उन्हे अहिसा के द्वारा सुलझाया जाए। अहिसा के प्रचार-प्रसार में उनके आशावादी दृष्टिकोण की झलक निम्न पंक्तियो मे देखी जा सकती है—

"कई बार लोग मुझसे पूछते है, आप अहिंसा का मिशन लेकर चल रहे है तो क्या आप सारे संसार को पूर्ण अहिसक वना देंगे ? उन्हे मेरा उत्तर होता है—अव तक के इतिहास मे ऐसा कोई युग नही आया, जवकि सारा संसार अहिसक बना हो। फिर भी युग-युग मे अहिसक शक्तिया अपने-अपने ढग से अहिसा की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्न करती रही है। आज हम लोग भी वही प्रयास कर रहे है। पर मै इस भाषा मे नही सोचता कि हमारे इस प्रयास से सारा ससार अहिंसक या धार्मिक वन जाएगा। वस्तुत: सारे संसार के अहिंसक और धार्मिक वनने की वात कर्णप्रिय और लुभावनी तो है ही पर व्यावहारिक और सम्भव नही है। व्यावहारिक और सम्भव इतनी ही है कि हमारे प्रयास से कुछ प्रतिशत लोग अहिसक और धार्मिक वन जाए। पर इसके वावजूद भी हम अपने कार्य मे सफल है। मैं तो यहा तक भी सोचता हूं कि यदि एक व्यक्ति भी हमारे प्रयत्न से अहिसक या धार्मिक नही वनता है तो भी हम असफल नही है।[1]

१. भोर भई, पृ० ३२-३३

अहिंसक शक्ति के संगठन के सन्दर्भ में उनकी यह प्रस्थापना कितनी मौलिक एवं प्रेरक है—"अहिंसा और धर्म की शक्ति में तेज नहीं आ रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि दो डाकू, चोर या उपद्रवी मिल जाएंगे किन्तु दो अहिंसक या धार्मिक नहीं मिल सकते। मेरा निश्चित अभिमत है कि हिंसा में जितनी शक्ति लगाई गई, उस शक्ति का लक्षांश भी यदि अहिंसा की सृष्टि में लगता तो ऐसी विलक्षण शक्ति पैदा होती, जिसके परिणाम चौंकाने वाले होते।"[1] उनका आत्म-विश्वास अनेक अवसरों पर इन शब्दों में अभिव्यक्त होता है—"जिस दिन सामूहिक रूप से अहिंसा के प्रशिक्षण एवं प्रयोग की बात सम्भव होगी, हिंसा की सारी शक्तियों का प्रभाव क्षीण हो जाएगा।"

अहिंसा के प्रशिक्षण हेतु उनकी सन्निधि में दो अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेन्सों का आयोजन भी हो चुका है। प्रथम सम्मेलन दिसम्बर १९८८ में हुआ, जिसमें ३५ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन फरवरी १९९१ में हुआ। इन दोनों सम्मेलनों का मुख्य उद्देश्य था बढ़ती हुई हिंसा की विविध समस्याओं का समाधान तथा अहिंसा का विधिवत् प्रशिक्षण देकर एक अहिंसावाहिनी का निर्माण करना। अहिंसक शक्तियों को संगठित करने में यह लघु किन्तु ठोस उपक्रम बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। इन सम्मेलनों में ऐसी प्रशिक्षण प्रणाली प्रस्तुत की गयी, जिसमें मनुष्य की शक्ति ध्वंस में नहीं, अपितु रचनात्मक शक्तियों के विकास में लगे तथा अहिंसा की सामूहिक शक्ति का प्रदर्शन किया जा सके।

अहिंसा का स्वरूप

भारतीय संस्कृति अध्यात्मप्रधान संस्कृति है। अध्यात्म की आत्मा अहिंसा है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने अहिंसा का जो शाश्वत गीत गाया है, वह आज भी हमारे समक्ष आदर्श प्रस्तुत करता है। अहिंसा चिरन्तन जीवन-मूल्य है, अतः यह तो नहीं कहा जा सकता कि उसकी खोज किसने की, पर महात्मा गांधी कहते हैं कि इस हिंसामय जगत् में जिन्होंने अहिंसा का नियम ढूंढ निकाला, वे ऋषि न्यूटन से कहीं ज्यादा बड़े आविष्कारक थे। वे वैलिंग्टन से ज्यादा बड़े योद्धा थे, उनको मेरा साष्टांग प्रणाम है।[2]

महावीर ने अहिंसा को जीवन का विज्ञान कहा है। वेद, उपनिषद्, स्मृति, महाभारत आदि अनेक ग्रन्थों में इसका स्वरूप विश्लेषित हुआ है। पर इसके स्वरूप में आज भी बहुत विप्रतिपत्ति है। यही कारण है कि अनेक

---

१ अमृत सन्देश, पृ० ४४।
२ मेरे सपनों का भारत, पृ० ८२।

परिभाषाएं भी इसको व्याख्यायित करने में असमर्थ रही है। आचार्य तुलसी ने इसे आधुनिक परिवेश मे परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

अहिंसा के विषय मे उनका चिन्तन न केवल भारतीय चिन्तन के इतिहास मे नया चिन्तन प्रस्तुत करता है, अपितु पाश्चात्य विचारधारा मे भी नई सोच पैदा करने की सामर्थ्य रखता है। उनके वाङ्मय मे अहिंसा की सैकड़ो परिभाषाएं बिखरी पडी है, जो अहिंसा के विविध पहलुओं का स्पर्श करती हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

- सत्, चित् और आनन्द की अनुभूति ही अहिंसा है।
- सब प्राणियों के प्रति आत्मीय भाव होने का नाम अहिंसा है। अर्थात् सबके दर्द को अपना दर्द मानना अहिसाभाव है।
- मन, वाणी और कर्म इन तीनो को विशुद्ध और पवित्र रखना ही अहिसा है।[1]
- शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक--हर प्रवृत्ति मे भावक्रिया रहे, यही अहिंसा की साधना का फलित रूप है।
- अहिंसा का अर्थ है—स्वयं निर्भय होना और दूसरो को अभयदान देना।
- प्राप्त कष्टो को समभाव से सहन करना अहिंसा का विशिष्ट रूप है।
- अहिंसा का अर्थ है—बाहरी आकर्षण से मुक्ति तथा स्व का विस्तार।
- जहां भोग का त्याग हो, उन्माद का त्याग हो, आवेग का त्याग हो, वहा अहिसा रहती है।
- यदि छोटी-छोटी बातो पर तू-तू मै-मै होती है तो समझना चाहिए, अहिंसा का नाम केवल अधरो पर है, जीवन मे नही।
- अहिंसा का अर्थ अन्यायी के आगे दबकर घुटने टेकना नही, बल्कि अन्यायी की इच्छा के विरुद्ध अपनी आत्मा की सारी शक्ति लगा देना है।
- हम किसी दूसरे को न मारे, न पीटे, इतनी ही अहिंसा नही है। हम अपने आपको भी न मारे, न पीटे और न कोसे—यही अहिंसा का मूल हार्द है।
- जो निष्काम कर्म है, वही तो आतरिक अहिंसा है।[2]
- अहिंसा के जगत् मे इस चिन्तन की कोई भाषा नही होती कि मैं

१. मुक्तिपथ, पृ० १३

२ जैन भारती, २६ नव० ६१।

ही रहूं, मैं ही वचू या अन्तिम जीत मेरी ही हो। वहां की भाषा यही होती है—अपने अस्तित्व मे सव हो और सवके अस्तित्व का विकास हो।[1]

इतने व्यापक स्तर पर अहिंसा की व्याख्या इतिहास का दुर्लभ दस्तावेज है।

अहिंसा की मौलिक अवधारणा

अहिंसा के विपय मे तेरापन्थ के आद्य गुरु आचार्य भिक्षु ने कुछ मौलिक अवधारणाओं को प्रतिष्ठित किया। उन नयी अवधारणाओं को तत्कालीन समाज पचा नही सका, अत· उन्हें वहुत सघर्प एवं विरोध झेलना पडा। पर वर्तमान मे आचार्य तुलसी ने उनको आधुनिक भाषा एव आधुनिक सन्दर्भ मे प्रस्तुत करने का प्रशस्य प्रयत्न किया है। उनमे कुछ अवधारणाओ को विंदु रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है—

- शुद्ध अहिंसा है—हृदय-परिवर्तन के द्वारा किसी को अहिंसक वनाना। जव तक हिंसक का हृदय परिवर्तन नहीं होता, तव तक वह किसी न किसी रूप मे हिंसा कर ही लेगा। अत. साधन-शुद्धि अहिंसा की अनिवार्य शर्त है।
- वडो की रक्षा के लिए छोटो को मारना, वहुमत के लिए अल्पमत का उत्सर्ग कर देना हिंसा नही है—यह मानना अहिंसा को लज्जित करना है। हिंसा न छोड सके, यह मानवीय कमजोरी है, पर उसे अहिंसा मानने की दोहरी गलती क्यों करें?
- अनिवार्य हिंसा को अहिंसा मानना उचित नही। आकांक्षाओं के लिए होने वाली हिंसा, जीवन की आवश्यकता-पूर्ति करने वाली हिंसा अनिवार्य हो सकती है, पर उसे अहिंसा नही कह सकते।[2]
- किसी को अहिंसक वनाने के लिए हिसा का प्रयोग करना अहिंसा का दुरुपयोग है।
- आप लोग न मारे तो मैं भी आपको नही मारूं, आप यदि गाली न दे तो मैं भी गाली न दू, ऐसा विनिमय अहिंसा में नही होता।[3]
- अहिंसक वनने का उद्देश्य यह नही कि कोई न मरे, सव जिन्दा रहे, उसका उद्देश्य यही है कि व्यक्ति अपना आत्मपतन न होने

---

१. मेरा धर्म · केन्द्र और परिधि, पृ० ६५।
२. शांति के पथ पर, पृ० ४७।
३. एक वूद : एक सागर, पृ० २७०।

दे । कोई किसी को जिला सके, यह सर्वथा असम्भव बात है । पर कोई किसी को मारे नही, यह अहिंसा और मैत्री का व्यावहारिक एवं सम्भावित रूप है ।[1] इसी बात को रूपक के माध्यम से समझाते हुए वे कहते है—पडोसी को दुर्गंध न आए, इसलिए हम घर को साफ-सुथरा बनाये रखे, यह सही बात नही है । दूसरो को कष्ट न हो इसलिए हम अहिंसक रहे, अहिंसा का यह सही मार्ग नही है । आत्मा का पतन न हो, इसलिए हिंसा न करे, यह है अहिंसा का सही मार्ग । कष्ट का बचाव तो स्वयं हो जाता है ।[2]

अहिंसक कौन ?

अहिंसक कौन हो सकता है, इस विषय मे भारतीय मनीषियो ने पर्याप्त चिन्तन किया है । आचार्य तुलसी मानते हैं कि अहिंसा की जय बोलने वाले तथा उसकी महिमा का बखान करने वाले अनेक अहिंसक मिल जाएगे पर वास्तव मे अहिंसा को जान वाले कम मिलेंगे । अत अनेक बार दृढ़तापूर्वक वे इस तथ्य को दोहराते है—"अहिंसा को जितना खतरा तथाकथित अहिंसको से है, उतना हिंसकों से नही । अहिंसको का वंचनापूर्ण व्यवहार तथा उनकी कथनी और करनी मे असमानता ही अहिंसा पर कुठराघात है ।" आचार्यश्री ने विभिन्न कोणो से अहिंसक की विशेषताओ का आकलन किया है, उनमे से कुछ यहा प्रस्तुत है—

- मौत के पास आने पर जो धैर्य से उसका आह्वान करे, वही सच्चा अहिंसक हो सकता है ।
- अहिंसक व्यक्ति हर परिस्थिति मे शात रहता है । उसका अन्त:करण शीतलता की लहरो पर क्रीडा करता रहता है ।
- अहिंसक वही है, जो मारने की क्षमता रखता हुआ भी मारता नही है ।
- अहिंसक वही हो सकता है, जिसकी दृष्टि बाह्य भेदों को पार कर आतंरिक समानता को देखती रहती है ।
- अहिंसक सच्चा वीर होता है । वह स्वय मरकर दूसरे की वृत्ति बदल देता है, हृदय परिवर्तित कर देता है ।
- यदि हिंसक शक्तियो का मुकाबला करने मे अहिंसा असमर्थ है तो मै इसे अहिंसकों की दुर्बलता ही मानूगा ।

---

१. प्रवचन पाथेय, भाग ८, पृ० २९,३० ।
२ आचार्य तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ९८ ।

० निम्न सात सूत्रों से जिसका जीवन परिवेष्टित है, वही अहिंसक है। व्यक्ति स्वयं को तोले कि उसका जीवन किसकी परिक्रमा कर रहा है—
(१) शांति की अथवा क्रोध की।
(२) नम्रता की अथवा अभिमान की।
(३) संतोष की अथवा आकांक्षा की।
(४) ऋजुता की अथवा दंभ की।
(५) अनाग्रह की अथवा दुराग्रह की।
(६) सामंजस्य की अथवा वैपम्य की।
(७) वीरता की अथवा दुर्वलता की।

आचार्य तुलसी द्वारा उद्गीत अहिंसक की ये कसौटिया उसके सर्वांगीण व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने वाली है।

हिंसा के विविध रूप

हिंसा ऐसी चिनगारी है, जो निमित्त मिलते ही भड़क उठती है। हिंसा के बारे मे आचार्य तुलसी का मन्तव्य है कि किसी को मार देने तक ही हिंसा की व्याप्ति नही है। अहिंसा को समझने के लिए हिंसा के स्वरूप एवं उसके विविध रूपो को समझना आवश्यक है। आचार्य तुलसी हिंसा के जिस सूक्ष्म तल तक पैठे है, वहा तक पहुचना हर किसी व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। वे हिंसा को बहुत व्यापक अर्थ मे देखते है। हिंसा के स्वरूप-विश्लेषण मे उनके मथन से निकलने वाले कुछ निष्कर्ष इस भाषा में प्रस्तुत किए जा सकते है—

- राग-द्वेष युक्त प्रवृत्ति से किया जाने वाला हर कार्य हिंसा है।[1]
- हिंसा मात्र तलवार से ही नही होती, मिलावट और शोषण भी हिंसा है, जिसके द्वारा लाखो लोगो को मौत के घाट उतार दिया जाता है। सक्षेप मे कहे तो जीवन की हर असयत प्रवृत्ति हिंसा है।
- किसी से अतिश्रम लेने की नीति हिंसा है।
- अपने विश्वास या विचार को बलपूर्वक दूसरे पर थोपने का प्रयास करना भी हिंसा है, फिर चाहे वह अच्छी धार्मिक क्रिया ही क्यों न हो।
- जैसे दूसरो को मारना हिंसा है, वैसे ही हिंसा को रोकने के लिए आत्म-बलिदान से कतराना भी हिंसा है।

---

१. मुक्तिपथ, पृ० २१

- मै तोड़-फोड़ करने वालो और घेराव डालने वालो को ही हिसक नही मानता, किन्तु उन लोगो को भी हिसक मानता हू, जो अपने आग्रह के कारण वैसी परिस्थिति उत्पन्न करते है तथा मानवीय सवेदनाओं का लाभ उठाकर उन्ही से अपना जीवन चलाते है।
- युद्ध करना ही हिसा नही है, घर मे बैठी औरत यदि अपने पारिवारिक जनो से कलह करती है तो वह भी हिसा है।
- किसी के प्रति द्वेष भावना, ईर्ष्या, उसे गिराने का मनोभाव, किसी की बढ़ती प्रतिष्ठा को रोकने के सारे प्रयत्न हिसा में अन्तर्गर्भित हैं।

आचार्य तुलसी मानते है कि हिसा और आत्महनन एक दूसरे से जुडे हुए है। हिसा हमारे सामने कितने रूपो में प्रकट हो सकती है, उसका उन्होने मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर सुन्दर विवेचन किया है। यहा उनके द्वारा प्रतिपादित विचारयात्रा के कुछ सन्दर्भ मननीय है—

- स्व हिसा का अर्थ है—आत्मपतन। जहा थोडी या ज्यादा मात्रा मे आत्मपतन होगा, वही हिसा होगी। वास्तव मे आत्मपतन ही हिसा है।
- व्यक्ति कहता कुछ है और करता कुछ है। यह कथनी-करनी की असमानता अप्रामाणिकता है। इससे आत्महनन होता है, जो हिसा का ही एक रूप है।
- स्वामी की अनुमति के बिना किसी की कोई वस्तु लेना चोरी है। चोरी आत्महनन है, जो हिंसा का ही एक रूप है।
- अखण्ड ब्रह्मचर्य का संकल्प लेकर चलने पर भी यदि व्यक्ति को वासना सताती हो तो यह स्पष्ट रूप से उसका आत्महनन है, जो हिसा का ही एक रूप है।
- सम्पूर्ण अपरिग्रह का व्रत लेकर चलने पर भी यदि मन की मूर्च्छा नही टूटी है तो यह उसका आत्महनन है, जो हिंसा का ही एक रूप है।
- प्रतिकूल परिस्थिति एव प्रतिकूल सामग्री के कारण किसी के मन मे अशांति हो जाती है तो यह उसका आत्महनन है, जो हिसा का ही एक रूप है।
- व्यक्ति अपने आपको ऊचा और दूसरो को हीन मानता है। यह उसका अभिमान है, आत्महनन है, जो हिसा का ही एक रूप है।
- काय, भाषा एवं भाव की ऋजुता के अभाव में किसी के साथ

प्रवंचना करना मायाचार है। यह आत्महनन है, जो हिंसा का ही एक रूप है।

आचार्य तुलसी की दृष्टि मे हिंसा के पोषक तत्त्व पूर्वाग्रह, भय, अहं, सन्देह, धार्मिक असहिष्णुता, साम्प्रदायिक उन्माद आदि है।[१] उनकी स्पष्ट अवधारणा है कि हिंसा जीवन के लिए जरूरी हो सकती है, पर जीवन का साध्य नही बन सकती। समस्या वही होती है, जहां उसे साध्य मान लिया जाता है।[२]

हिंसा वैभाविक प्रतिक्रिया है, अतः वह जीवन-मूल्य नही वन सकती, क्योकि कोई आदमी लगातार हिंसा नही कर सकता। इसके अतिरिक्त हिंसा की सबसे बडी दुर्बलता यह है कि वह निश्चित आश्वासन नही वन सकती। वह पारस्परिक सघर्षो, विवादो एव समस्याओ को सुलझाने मे असफल रही है इसलिए उस पर विश्वास करने वाले भी सदिग्ध और भयभीत रहते है।

पूर्ण अहिंसक होते हुए भी आचार्य तुलसी का दृष्टिकोण सन्तुलित है। वे मानते है कि यह सम्भव नही कि सर्वसाधारण वीतराग वन जाए, अपने स्वार्थो की बलि कर दे, भेदभाव को भुला दे और जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक हिंसा को छोड़ दे।[३]

अनावश्यक हिंसा के विरोध मे जितनी सशक्त आवाज आचार्य तुलसी ने अपने साहित्य मे उठाई है, इस सदी मे दूसरा कोई साहित्यकार उनके समकक्ष नही ठहर सकता। उनका मानना है कि युद्ध जैसी वड़ी हिंसाओ से सभी चिंतित है पर वास्तव मे छोटी हिंसाएं ही बडी हिंसा को जन्म देती है। अतः उन्होने अपने साहित्य मे हिंसा के अनेक मुखौटो का पर्दाफाश करके मानवीय चेतना को उद्‌बुद्ध करने का प्रयास किया है। अरव देशों मे अमीरो के मनोरजन के लिए ऊट-दौड के साथ शिशुओ की होने वाली हत्या के सन्दर्भ मे वे अपनी तीखी आलोचना प्रकट करते हुए कहते है—

"एक ओर क्षणिक मनोरजन और दूसरी ओर मासूम प्राणो के साथ ऐसा क्रूर मजाक ! क्या मनुष्यता पर पशुता हावी नही हो रही है ? कहा तो यह जाता है कि बच्चा भगवान् का रूप होता है पर वच्चो की इस प्रकार वलि दे देना, क्या यह अमीरी का उन्माद नही है। इसे दूर करने के लिए जनमत को जागृत करना आवश्यक है।[४]

वीसवी सदी मे वैज्ञानिक परीक्षणो के दौरान एक नयी हिंसा का दौर और शुरू हो गया है। वह है—कन्या भ्रूण की हत्या। इसके लिए वे

१. अणुव्रत : गति प्रगति, पृ० १५४।
२. लघुता से प्रभुता मिले, पृ० २११।
३ २१ अप्रैल, ५० दिल्ली, पत्रकार सम्मेलन।
४. वैसाखियां विश्वास की, पृ० ६२।

बहिनो को भारतीय सस्कृति की गरिमा से अवगत कराते हुए उन्हे मातृत्व-बोध देना चाहते है—

"क्या मा की ममता का स्रोत सूख गया ? पाषाण खण्ड जैसे बच्चे को भी भार न मानने वाली मा एक स्वस्थ और सभावनाओं के पुज शिशु का प्राण ले लेती है, क्या वह क्रूर हिसा नही है ?"[1] व्यक्ति प्राणी जगत् के प्रति संवेदनशील नही है, इसलिए आज हिंसा प्रबल है। प्राचीनकाल मे प्रसाधन के रूप मे प्राकृतिक चीजो का प्रयोग होता था। लेकिन आज अनेक जीवित प्राणियो के रक्त और मास से रजित वह सौन्दर्य-सामग्री कितने ही बेजुबान प्राणियो की आहो से निर्मित होती है। इस अनावश्यक हिंसा का समाधान व्यंग्य भाषा मे करते हुए वे कहते है—

"प्रसाधन सामग्री के निर्माण मे निरीह पशु-पक्षियो के प्राणों का जिस बर्बरता के साथ हनन होता है, उसे कोई भी आत्मवादी वाछनीय नही मान सकता। जिस प्रसाधन सामग्री में मूक प्राणियो की कराह घुली है, उनका प्रयोग करने वाले अपने शरीर को भले ही सुन्दर बना ले पर उनकी आत्मा का सौन्दर्य सुरक्षित नही रह सकेगा।[2]

आज की घोर हिसा एव आतक को देखकर भी उनका मन कम्पित या निराश नही होता। उनका विश्वास कभी डोलता नही, अपितु इन शब्दो मे स्फुटित होता है—"समूची दुनिया अहिसा अपना नही सकती, इसलिए हमे निराश, चिन्तित या पीछे हटने की आवश्यकता नही है। हमे तो इसी भावना से अहिसा को लेकर चलना है कि कही अहिंसा की तुलना में हिंसा बलवान्, स्वच्छन्द और अनियत्रित न बन जाए।"[3] अहिंसा की तुलना मे हिसा शक्तिशाली हो रही है। अत मात्रा के इस असन्तुलन को मिटाने की प्रेरणा एवं भविष्य की चेतावनी देते हुए उनका कहना है—"यदि अहिंसा के द्वारा हिसा का मुकाबला नही किया गया तो निश्चित समझिए कि एक दिन मन्दिर, मठ, स्थानक, आश्रम और हमारी सस्कृति पर धावा होने वाला है।[4] हिसा की इस समस्या को समाहित करने के लिए वैज्ञानिको को सुझाव देते हुए वे कहते है कि पहले अन्वेषण किया जाए कि मस्तिष्क मे हिसा के स्रोत कहा विद्यमान है ? क्योकि स्रोतो की खोज करके ही उन्हे परिष्कृत करने और बदलने की बात सोचकर हिसक शक्ति को नियत्रित तथा अहिसा को शक्तिशाली बनाया जा सकता है।[5]

---

१. बैसाखिया विश्वास की, पृ० ५९।
२. सफर : आधी शताब्दी का, पृ० ९५।
३. प्रवचन पाथेय भाग-९, पृ० २६६।
४. एक बूद : एक सागर, पृ० २६७।
५ सफर : आधी शताब्दी का, पृ० ५८।

प्राय. धर्मग्रन्थो मे हिंसा के दुष्परिणामो का करुण एवं रोमांचक वर्णन मिलता है पर आचार्य तुलसी ने आधुनिक मानसिकता को देखकर हिंसा को नरक से नही जोड़ा पर अहिसा के प्रति निष्ठा जागृत करने के लिए उसका मनोवैज्ञानिक पथ प्रस्तुत किया है—

- हिसा करने वाला किसी दूसरे का अहित नही करता वल्कि अपनी आत्मा का अनिष्ट करता है—अपना पतन करता है।[1]
- हम किसी के लिए सुख के साधन वने या न वनें, कम से कम दु.ख का साधन तो न वनें। सन्तापहारी वने या न वनें, कम से कम सन्तापकारी तो न वनें।[2]

निरपराध प्राणियो को मौत के घाट उतारने वाले आतंकवादियो की अन्तश्चेतना जागृत करते हुए वे कहते है—"यदि कत्ले-आम करना चाहते हो तो आत्मा के उन घोर अपराजित शत्रुओं का करो, जिनसे तुम वुरी तरह जकड़े हुए हो, जो तुम्हारा पतन करने के लिए तुम्हारी ही नंगी तलवारे लिए हुए खडे है।[3]

अहिंसा का क्षेत्र

अहिंसा का क्षेत्र आकाश की भाति व्यापक है। आचार्य तुलसी मानते है कि अहिंसा को परिवार, कुटुम्व, समाज या राष्ट्र तक ही सीमित नही किया जा सकता। उसकी गोद में जगत् के समस्त प्राणी सुख की सांस लेते है। उसकी विशालता को व्याख्यायित करते हुए आचार्य तुलसी का कहना है—अहिंसा मे साम्प्रदायिकता नही, ईर्ष्या नही, द्वेष नही, वरन् एक सार्वभौमिक व्यापकता है, जो सकुचितता और संकीर्णता को दूर कर एक विशाल सार्वजनिक भावना लिए हुए है।

उनके द्वारा प्रतिपादित अहिंसा कितनी व्यापक एवं विशाल है, यह निम्न उक्ति से जाना जा सकता है—"किसी भी विचार या पक्ष के विरोध में प्रतिरोध होते हुये भी अहिसा यह अनुमति नहीं देती कि हमारे दिलो मे विरोधी के प्रति दुर्भाव या घृणा का भाव हो।"[4]

अहिंसा की शक्ति

अहिंसा की शक्ति अपरिमेय है, पर आवश्यकता है उसको सही प्रयोक्ता मिले। आचार्य तुलसी इसकी शक्ति को रूपक के माध्यम से समझाते

---

१ अहिंसा और विश्व शांति, पृ० ८।
२. शांति के पथ पर, पृ० ६१।
३ एक वूंद : एक सागर, पृ० ४७७।
४. अणुव्रत : गति-प्रगति, पृ० १५६।

हुये कहते है —"माटी का एक दीया भी अधकार की सघनता को भेदने मे सक्षम है। इसी प्रकार अहिसा की दिशा मे उठा हुआ एक-एक पग भी मंजिल तक पहुचाने में कामयाबी दे सकेगा"[1] पर अहिंसा की शक्ति की थाह पाना उनके लिए असभव है, जो हिंसा की शक्ति मे विश्वास करते हैं तथा इसानियत की अवहेलना करते हैं। अहिंसा के अमाप्य व्यक्तित्व मे योगक्षेम की जो क्षमता है, वह अतुल और अनुपमेय है। इसी भावना को आचार्य तुलसी समाज के हर वर्ग की चेतना को झकझोरते हुए कहते है—"अगर नेता, साहित्यकार, दार्शनिक, कलाविद् और कवि हिंसा के वातावरण को फैलाना छोडकर अहिंसा के पुनीत वातावरण को फैलाने में जुट जाएं तो संभव है कि अहिंसक क्राति की शक्ति का उज्ज्वल आलोक कण-कण मे छलक उठे।"

अहिंसा की शक्ति के प्रति अपना अमित विश्वास व्यक्त करते हुये वे कहते है—"अहिसा मे इतनी शक्ति है कि हिंसक यदि अहिसक के पास पहुच जाए तो उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है पर इस शक्ति का प्रयोग करने हेतु बलिदान की भावना एवं अभय की साधना अपेक्षित है।"

अहिंसा की प्रतिष्ठा

भारतीय सस्कृति के कण-कण मे अहिसा की अनुगूज है। यहा राम, बुद्ध, महावीर, नानक, कबीर और गाधी जैसे लोगो ने अहिंसा के महान् आदर्श को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है। उस महान् भारतीय जीवन-शैली मे हिसा की घुसपैठ चिन्तनीय प्रश्न है।

अहिंसा की प्रतिष्ठा प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मच से भी आज अहिंसा की प्रतिष्ठा का चिन्तन चल रहा है। राजीव गाधी एव गोर्बाच्योव ने विश्व शांति और अहिसा के लिए दस प्रस्ताव पारित किये, उनमे अधिकांश सुझाव अहिसा से संबधित है। आचार्य तुलसी का गहरा आत्मविश्वास है "हिसा चाहे चरम सीमा पर पहुंच जाये पर अहिसा की मूल्यस्थापना या प्रतिष्ठा कम नही हो सकती, क्योकि हिंसा हमारी स्वाभाविक अवस्था नही है। तूफान और उफान किसी अवधिविशेप तक ही प्रभावित कर सकते हैं, वे न स्थायी हो सकते हैं और न ही उनकी प्रतिष्ठा हो सकती है।[2] आचार्य तुलसी देश की जनता को झकझोरते हुए कहते है—"प्रश्न अब अहिंसा के मूल्य का नही, उसकी प्रतिष्ठा का है। मै मानता हू, यह अहिंसा का परीक्षा-काल है, अहिंसा के प्रयोग का काल है। इस स्वर्णिम अवसर का लाभ उठाते हुए

१. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० २७
२ अणुव्रत : गति प्रगति, पृ० १४१।

अहिंसा यदि इन समस्याओं का समाधान देती है तो उसका तेजस्वी रूप स्वयं प्रतिष्ठित हो जायेगा, अन्यथा वह हतप्रभ होकर रह जायेगी।[1]

अहिंसा को तेजस्वी और शक्तिशाली बनाए बिना उसकी प्रतिष्ठा की बात आकाश-कुसुम की भांति व्यर्थ है। इसको स्थापित करने के लिये वे भावनात्मक परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन या मस्तिष्कीय प्रशिक्षण को अनिवार्य मानते हैं।[2]

आचार्य तुलसी की दृष्टि में अहिंसा की प्रतिष्ठा में मुख्यतः चार बाधाएं हैं—

१. साधन-शुद्धि का अविवेक।
२. अहिंसा के प्रति आस्था की कमी।
३. अहिंसा के प्रयोग और प्रशिक्षण का अभाव।
४. आत्मौपम्य भावना का ह्रास।

अहिंसा की प्रतिष्ठा मे पहली बाधा है—साधन-शुद्धि का अविवेक। साध्य चाहे कितना ही प्रशस्त क्यो न हो, यदि साधन-शुद्ध नहीं है तो अहिंसा का, शांति का अवतरण नहीं हो सकता। क्योंकि हिंसा के साधन से शांति कैसे संभव होगी? रक्त से रंजित कपड़ा रक्त से साफ नहीं होगा। आचार्यश्री कहते हैं—"किसी भी समस्या का समाधान हिंसा, आगजनी और लूट-खसोट से कभी हुआ नहीं और न ही कभी भविष्य मे होने की संभावना है।"

अहिंसा की प्रतिष्ठा में दूसरी बाधा है—अहिंसा के प्रति आस्था की कमी। इस प्रसंग मे वे अपने अनुभव को इन शब्दो मे व्यक्त करते है—"अहिंसा की प्रतिष्ठा न होने का कारण मैं अहिंसा के प्रति होने वाली ईमानदारी की कमी को मानता हूं। लोग अहिंसा की आवाज तो अवश्य उठाते हैं, किन्तु वह आवाज केवल कंठो से आ रही है, हृदय से नही।[3]

अहिंसा की प्रतिष्ठा में तीसरी बाधा है—अहिंसा के प्रशिक्षण का अभाव। अहिंसा की परम्परा तब तक अक्षुण्ण नही बन सकती, जब तक उसका सफल प्रयोग एवं परीक्षण न हो। अहिंसा की प्रतिष्ठा हेतु प्रयोग एवं परीक्षण करने वाले शोधकर्त्ताओं के समक्ष वे निम्न प्रश्न रखते हैं—

- शस्त्र की ओर सबका ध्यान जाता है, पर शस्त्र बनाने और रखने वाली चेतना की खोज किस प्रकार हो सकती है?
- अहिंसा का संबंध मानवीय वृत्तियो के साथ ही है या प्राकृतिक

---

१. अणुव्रत : गति-प्रगति, पृ० १४०
२. अमृत-सदेश, पृ०-२३
३. अणुव्रत : गति-प्रगति, पृ० १४५

वातावरण के साथ भी है ?

- आतक या हिंसा की स्थिति को शात करने के लिए कही अहिसा का प्रयोग हुआ ?
- अहिसा को न मारने तक ही सीमित रखा गया है अथवा उसकी जड़े अधिक गहरी है।
- कहा जाता है कि अहिसक व्यक्ति के सामने हिसक व्यक्ति हिंसा को भूल जाता है, यह विश्वसनीय सचाई है या मिथ्या ही है ?
- हिंसा के विकल्प अधिक है, इसलिए उसके रास्ते भी अधिक है। अहिंसा के विकल्प और रास्ते कितने हो सकते है ?
- शस्त्र-हिसा में परम्परा चलती है तो फिर अशस्त्र-अहिसा मे परम्परा क्यो नही चलती ? किसी व्यक्ति को अपने विरोध मे शस्त्र का प्रयोग करते देख प्रतिरोध की भावना जागती है इसी प्रकार अहिसक व्यक्ति की मैत्री भावना का भी प्रभाव होता है क्या ?

इसी प्रकार के तथ्यो को सामने रखकर अहिसा के क्षेत्र मे शोध हो तो कुछ नयी वाते प्रकाश मे आ सकती है और अहिसा की तेजस्विता स्वतः उजागर हो सकती है।[1]

अहिसा की प्रतिष्ठा मे चौथी वाधा आत्म-तुला की भावना का विकास न होना है। वे अपनी अनुभवपूत वाणी इस भाषा मे प्रस्तुत करते है—"अहिसा के जगत् मे इस चिन्तन की कोई भाषा ही नही होती कि मै ही बचूगा या अतिम जीत मेरी ही हो। वहा की भापा यही होती है—अपने अस्तित्व में सब हो और सबके अस्तित्व का विकास हो।[2]

अहिंसा की प्रतिष्ठा के विपय मे उनके विचारो का निष्कर्प इस भाषा मे प्रस्तुत किया जा सकता है—"जव तक मस्तिष्क प्रशिक्षित नही होगा, वहां रहे हुए हिसा के संस्कार सक्रिय रहेगे। उन सस्कारो को निष्क्रिय किए बिना केवल सगोष्ठियो और नारो से अनत काल तक भी अहिसा की प्रतिष्ठा नही हो सकेगी।[3] यदि अहिसक शक्तिया सगठित होकर अहिसा के क्षेत्र में रिसर्च करे, अहिसा-प्रधान जीवन-शैली का प्रशिक्षण दे और हिंसा के मुकावले मे अहिंसा का प्रयोग करे तो निश्चित रूप से अहिसा का वर्चस्व स्थापित हो सकता है।[4]

अहिंसा का प्रयोग

धर्मशास्त्रो मे अहिसा की महिमा के व्याख्यान मे हजारों पृष्ठ भरे

---

१ सफर : आधी शताब्दी का, पृ० ५९
२. मेरा धर्म : केंद्र और परिधि पृ० ६५
३. अणुव्रत पाक्षिक १६ अग०, ८८
४. कुहासे में उगता सूरज पृ० २६

पड़े है। वर्तमान काल मे गाधी के वाद आचार्य तुलसी का नाम आदर से लिया जा सकता है, जिन्होने अहिंसा को प्रयोग के धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है।

यद्यपि आचार्य तुलसी पूर्ण अहिंसक जीवन जीते है, पर उनके विचार वहुत सन्तुलित एव व्यावहारिक है। अहिंसा के प्रयोग एवं परिणाम के वारे में उनका स्पष्ट मन्तव्य है कि दुनिया की सारी समस्याएं अहिंसा से समाहित हो जाएगी, यह मैं नही मानता पर इसका अर्थ यह नही कि वह निर्वल है। अहिंसा में ताकत है पर उसके प्रयोग के लिए उचित एवं उपयुक्त भूमिका चाहिए। विना उपयुक्त पात्र के अहिंसा का प्रयोग वैसे ही निष्फल हो जाएगा जैसे ऊपर भूमि मे पडा वीज।[1]

अहिसा का प्रयोग क्षेत्र कहा हो ? इस प्रश्न के उत्तर मे उनका चिन्तन निश्चित ही अहिसा के क्षेत्र मे नयी दिशाएं उद्‌घाटित करने वाला है—"मैं मानता हूं अहिंसा केवल मन्दिर, मस्जिद या गुरुद्वारा तक ही सीमित न रहे, जीवन व्यवहार में उसका प्रयोग हो। अहिंसा का सवसे पहला प्रयोगस्थल है – व्यापारिक क्षेत्र, दूसरा क्षेत्र है राजनीति।"

वर्तमान मे अहिंसक शक्तियो के प्रयोग मे ही कोई ऐसी भूल हो रही है, जो उसकी शक्तियो की अभिव्यक्ति में अवरोध ला रही है। उसमें एक कारण है उसका केवल निषेधात्मक पक्ष प्रस्तुत करना। आचार्य तुलसी कहते हैं कि विधेयात्मक प्रस्तुति द्वारा ही अहिंसा को अधिक शक्तिशाली वनाया जा सकता है।

जो लोग अहिंसा की शक्ति को विफल मानते है, उनकी भ्रान्ति का निराकरण करते हुए वे कहते है—"आज हिंसा के पास शस्त्र है, प्रशिक्षण है, प्रेस है, प्रयोग है, प्रचार के लिए अरवो-खरवो की अर्थ-व्यवस्था है। मानव जाति ने एक स्वर से जैसा हिसा का प्रचार किया वैसा यदि संगठित होकर अहिसा का प्रचार किया होता तो धरती पर स्वर्ग उतर आता, मुसीवतो के वीहड़ मार्ग मे भव्य एव सुगम मार्ग का निर्माण हो जाता, ऐसा नही किया गया फिर अहिंसा की सफलता मे सन्देह क्यो ?[2] वे स्पष्ट शब्दो मे कहते हैं—"मैं तो अहिंसा की ही दुर्वलता मानता हूं कि उसके अनुयायियों का संगठन नही हो पाया। कुछ अहिंसा-निष्ठ व्यक्तियो का संगठन मे इसलिए विश्वास नही है कि वे उसमें हिंसा का खतरा देखते हैं। मै अहिंसा की वीर्यवत्ता के लिए संगठन को उपयोगी समझता हूं। हिंसा वहां है, जहां वाध्यता हो। साधना के सूत्र पर चलने वाले प्रयत्न व्यक्तिगत स्तर पर

---

१. प्रवचन पाथेय भाग-९, पृ० २६५।
२. जैन भारती, १७ सित० ६१।

जितने शुद्ध होते है, समूह के स्तर पर भी उतने ही शुद्ध हो सकते है। सामूहिक अभ्यास से उस शुद्धता मे तेजस्विता और अधिक निखर आती है।''[1]

अहिंसा को प्रायोगिक बनाने के लिए वे अपनी भावना प्रस्तुत करते हुए कहते है—''मै चाहता हू कि एक शक्तिशाली अहिंसक सेना का निर्माण हो। वह सेना राजनीति के प्रभाव से सर्वथा अछूती रहे, यह आवश्यक है।'' मेरी दृष्टि मे इस अहिसक सेना में पाच तत्त्व मुख्य होगे—

१. समर्पण—अपने कर्त्तव्य के लिए जीवन की आहुति देनी पडे तो भी तैयार रहे।
२. शक्ति—परस्पर एकता हो।
३. संगठन—सगठन मे इतनी दृढता हो कि एक ही आह्वान पर हजारो व्यक्ति तैयार हो जाए।
४. सेवा—एक दूसरे के प्रति निरपेक्ष न रहे।
५ अनुशासन—परेड मे सैनिको की तरह चुस्त अनुशासन हो।[2]

अहिंसक क्रांति

संसार मे अन्याय, शोषण एव अनाचार के विरुद्ध समय-समय पर क्रातियां होती रही हैं पर उनका साधन विशुद्ध नही रहने से उनका दीर्घकालीन परिणाम सन्दिग्ध हो गया। आचार्य तुलसी स्पष्ट कहते है कि क्रांति की सफलता और स्थायित्व मै केवल अहिंसा मे ही देखता हू।[3] हिंसक क्राति से शांति और समता आ जाएगी, यह दुराशामात्र है। यदि आ भी जाएगी तो वह चिरस्थायी नही होगी। उसकी तह मे अशांति और वैमनस्य की ज्वाला धधकती रहेगी।[4] अहिसक क्रांति से उनका तात्पर्य है विना कोई रक्तपात, हिसा, युद्ध और शस्त्रास्त्र के सहयोग से होने वाली क्राति। उनका यह अटूट विश्वास है कि भौतिक साधनों से नही, अपितु प्रेम की शक्ति से ही अहिंसक क्राति सम्भव है। अहिंसक क्राति के सफल न होने का सबसे बडा कारण वे मानते है कि हिंसात्मक क्रांति करने वालों की तोड-फोड के साधनो मे जितनी श्रद्धा होती है, उतनी श्रद्धा अहिसात्मक क्राति वालो को अपने शांति-साधनो मे नही होती।...... अहिसात्मक क्राति को सफल होना है तो उसमे प्रतिरोधात्मक शक्ति पैदा करनी होगी।[5] इस दृढ निष्ठा से ही अहिंसा तेजस्वी एवं सफल हो सकती है।

---

१ अणुव्रत : गति प्रगति, पृ० १५५।
२. एक वूद : एक सागर, पृ० १७३४।
३ बेगलोर १६-९-६९ के प्रवचन से उद्धृत।
४. प्रवचन पाथेय भाग-९, पृ० २६५।
५. गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का, पृ० २५।

अहिंसा का सामाजिक स्वरूप

अहिंसा कोई नारा नही, अपितु जीवन का शाश्वत दर्शन है। समय की आधी इसे कुछ धूमिल कर सकती है पर समाप्त नही कर सकती।[1] अहिंसा केवल मोक्ष प्राप्ति के लिए ही नही, अपितु सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इसकी उपयोगिता निर्विवाद है। आचार्य तुलसी के अनुसार अहिसा वह सुरक्षा कवच है, जो घृणा, वैमनस्य, प्रतिशोध, भय, आसक्ति आदि घातक अस्त्रो के प्रहार को निरस्त कर देता है तथा समाज मे शांति, सह-अस्तित्व एव मैत्रीपूर्ण वातावरण वनाए रख सकता है। वे मानते है अहिसा का पथ जटिल एवं ककरीला हो सकता है पर महान् वनने हेतु इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नही है। अहिसा ही वह शक्ति है, जो समाज मे मानव को पशु वनने से रोके हुए है।[2]

आचार्य तुलसी ने अहिंसा को समाज के साथ जोडकर उसे जन-आन्दोलन या क्राति का रूप देने का प्रयत्न किया है। अहिंसा के सन्दर्भ मे नैतिकता को व्याख्यायित करते हुए वे कहते है—"अहिंसा का सामाजिक जीवन मे प्रयोग ही नैतिकता है। जिसमे दूसरों के प्रति मैत्री का भाव नही होता, करुणा की वृत्ति नही होती और दूसरो के कष्ट को अनुभव करने का मानस नही होता, वह नैतिक कैसे वन सकता है ?[3]

अहिंसा को सामाजिक सन्दर्भ मे व्याख्यायित करते हुए वे कहते है- दूसरो की सम्पत्ति, ऐश्वर्य और सत्ता देखकर मुंह मे पानी नही भर आता, यह अहिसा का ही प्रभाव है। "अहिसा के द्वारा जीवन की आवश्यकताए पूरी नही होती, इसलिए वह असफल है—चिन्तन की यह रेखा भूल भरे विन्दुओ से वनी है और वनती जा रही है।" समाज के सन्दर्भ में अहिसा की उपयोगिता स्पष्ट करते हुए उनका मन्तव्य है—व्यक्ति निरंकुश न हो, उसकी महत्त्वाकाक्षाएं दूसरो को हीन न समझे, उसकी प्रतिस्पर्धाएं समाज मे सघर्ष न करे—इन सव दृष्टियो से अहिंसा का सामाजिक विकास होना आवश्यक है।[4]

अहिंसा और समाज के सन्दर्भ मे प्रतिप्रश्न उठाकर वे सामाजिक प्राणी के लिये अहिसा की सीमारेखा या इयत्ता को स्पष्ट करते हुए कहते है—"सामाजिक प्राणी के लिये यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह खेती, व्यवसाय या अर्जन न करे और यह भी कैसे सम्भव है कि वह अपने अधिकृत

---

१ कुहासे मे उगता सूरज, पृ० १४।
२ प्रवचन डायरी, पृ० २३।
३ गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का, पृ० ९।
४ गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का, पृ० ११।

पदार्थों या अधिकारों की सुरक्षा न करे। अर्थ और पदार्थ का अर्जन और सरक्षण हिसा के बिना नही हो सकता। ·· ····इस सन्दर्भ में महावीर ने विवेक दिया तुम अहिसा का प्रारंभ उस विन्दु पर करो, जहा तुम्हारे जीवन की अनिवार्यताओ मे भी वाधा न आए और तुम क्रूर व आक्रामक भी न बनो।[1] इस दृष्टिकोण से प्रत्येक सामाजिक प्राणी समाज मे रहते हुए अहिसा का पालन कर सकता है तथा इस व्यावहारिक दृष्टिकोण से उसकी सामाजिकता मे भी कही अन्तर नही आता।

आचार्य तुलसी एक सामाजिक प्राणी के लिए मध्यम मार्ग प्रस्तुत करते हुए कहते है—"हिंसा जीवन की अनिवार्यता है और अहिसा पवित्र जीवन की अनिवार्यता। हिसा जीवन चलाने का साधन है और अहिसा आदर्श तक पहुंचने या लक्ष्य को पाने का साधन है।····हिंसा जीवन की शैली बन जाए, यह खतरनाक बिंदु है।"[2]

अहिसक समाज रचना आचार्य तुलसी का चिरपालित स्वप्न है। इस दिशा मे अणुव्रत के माध्यम से वे पिछले पचास सालो से अनवरत कार्य कर रहे है। २२ अप्रैल १९५० दिल्ली मे पत्रकारो के बीच एक वार्ता मे आचार्य तुलसी ओजस्वी वाणी मे अपनी अन्तर्भावना प्रकट करते है—"मैं सामूहिक अशांति को जन्म देने वाली हिसा को मिटाकर अहिसा प्रधान समाज का निर्माण करना चाहता हू। उसकी आधारशिला मे निम्न नियम कार्यकारी बन सकते है—

- जाति, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण आदि का भेद होने के कारण किसी मानव की हत्या न करना।
- दूसरे समाज या राष्ट्र पर आक्रमण न करना।
- निरपराध व्यक्ति को नही मारना, सब प्राणियो के प्रति आत्मौपम्य भाव का विकास।
- जीवन-यापन के लिए आवश्यक सामग्री के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का संग्रह न करना।
- मद्यपान और मासाहार नही करना।
- रक्षात्मक युद्ध मे भी शत्रुपक्षीय नागरिको की हत्या न करना।
- बडप्पन की भावना का अन्त करना, किसी के अधिकार का हनन न करना।
- व्यभिचार न करना।[3]

---

१. एक बूद . एक सागर, पृ० २७८।

२. सफर : आधी शताब्दी का, पृ० ५७

३ २१ अप्रैल ५०, दिल्ली, पत्रकार वार्ता।

इसके साथ ही वे अहिंसक समाज की प्रतिष्ठा मे निम्न प्रवृत्तियो का होना आवश्यक मानते है—

१. वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की पुनर्रचना—वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बुद्धि-पाटव और तर्कशक्ति का विकास हो रहा है पर चरित्र-शील व्यक्ति पैदा नही हो रहे है।

२. संयमी एवं त्यागी पुरुषो को महत्त्व देना। सत्ताधारी एवं पूजीपतियों को महत्त्व देने का अर्थ है—जन-साधारण को पूजी एवं सत्ता के लिए लोलुप बनाना। संयम को प्रधानता देने से पूजीपति भी सयम की ओर अग्रसर होगे। जहा संयम होगा, वहा हिसा नही हो सकती।

३. इच्छाओ का अल्पीकरण—"आज आर्थिक असमानता चरम सीमा पर है। कोई धनकुबेर धन का अबार लगा रहा है तो उसका पड़ोसी भूख से मर रहा है। यह असमानता हिंसा को जन्म दे रही है। इसे मिटाये बिना समाज मे अहिंसा का विकास कम सम्भव है।"[1]

इस स्थिति मे परिवर्तन के लिए आचार्य तुलसी का सुझाव है कि व्यक्ति, आर्थिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था—इन तीनो मे सापेक्ष और सतुलित परिवर्तन हो, तभी स्वस्थ समाज या अहिंसक समाज की परिकल्पना की जा सकती है।

आचार्य तुलसी का दृढ विश्वास है कि समाज की अनेक कठिन समस्या का हल अहिसा द्वारा खोजा जा सकता है। पर उसके लिये हिंसा के स्थान पर अहिंसा, शस्त्र-प्रयोग के स्थान पर नि शस्त्रीकरण तथा क्रूरता की तुलना मे करुणा का मूल्याकन करना होगा।[2]

वैचारिक अहिंसा

महावीर ने वैचारिक एव मानसिक हिंसा को प्राण-वियोजन से भी अधिक घातक माना है। इस सन्दर्भ मे आचार्य तुलसी का मन्तव्य है कि प्राणी की हत्या करने वाला शायद उसी की हत्या करता है पर विचारों की हत्या करने वाला न जाने कितने प्राणियो की हत्या का हेतु बन जाता है।[3] अपने एक प्रवचन मे आश्चर्य व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—"व्यक्ति धन के लिए लड़ सकता है, पत्नी के लिए भी सघर्ष कर सकता है, यह सम्भव है। पर विचारो के लिए लड़े, बडे-बडे महायुद्ध करे, लाखो व्यक्तियों के खून

---

१. ५ अगस्त ७०, पत्रकार वार्ता, रायपुर।

२. अमृत सन्देश, पृ० ४५।

३. गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का, पृ० १७।

से होली खेले. यह तो आश्चर्यचकित करने वाली बात है ।[1]

वैचारिक हिसा को स्पष्ट करते हुए उनका कहना है—"किसी की असत् आलोचना करना, किसी के विचारो को तोड़-मरोडकर रखना, आक्षेप लगाना, किसी के उत्कर्ष को सहन न करके उसके प्रति घृणा का प्रचार करना तथा अपने विचारो को ही प्रमुखता देना वैचारिक हिसा है ।[2] इसी सन्दर्भ मे उनका निम्न वक्तव्य भी वजनदार है—"घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, वासना और दुराग्रह—ये सब जीवन मे पलते रहें और अहिसा भी सधती रहे, यह कभी सम्भव नही है ।"[3]

आज की बढ़ती हुई वैचारिक हिसा का कारण स्पष्ट करते हुए वे कहते है—"वैचारिक हिंसा मे प्रत्यक्ष जीवघात न होने से वह जन-साधारण के बुद्धिगम्य नही हो सकी । यही कारण है कि आज लोग जितना जीव मारने से घबराते है, उतना परस्पर विरोध, अप्रामाणिकता, ईर्ष्या, क्रोध, स्वार्थ आदि से नही घबराते ।[4]

महावीर ने अनेकात के द्वारा वैचारिक अहिसा को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया । अनेकात के माध्यम से उन्होने मानव जाति को प्रतिबोध दिया कि स्वयं को समझने के साथ दूसरो को भी समझने की चेष्टा करो । अनेकात के विना सम्पूर्ण सत्य का साक्षात्कार नही किया जा सकता । आचार्य तुलसी ने न केवल उपदेश से बल्कि अपने जीवन के सैंकडो घटना प्रसंगो से वैचारिक अहिसा का सक्रिय प्रशिक्षण भारतीय जनमानस को दिया है ।

सन् १९६२ के आसपास की घटना है । अणुव्रत गोष्ठी के कार्यक्रम मे नगर के लब्धप्रतिष्ठ वकील को भी अपने विचार व्यक्त करने के लिए निमंत्रित किया गया । उन्होने वक्तव्य मे अणुव्रत के सम्बन्ध मे कुछ जिज्ञासाएं एव शकाएं उपस्थित की । उन्हे सुनकर अनेक श्रद्धालुओ ने उनको उपालम्भ दे डाला । शाम को कार्यक्रम की समाप्ति पर वकील साहब ने अपने प्रातः-कालीन वक्तव्य के लिए क्षमायाचना करने की इच्छा व्यक्त की । इसे सुनकर आचार्यश्री ने कहा—"आपके विचार तो बडे प्राञ्जल और प्रभावोत्पादक थे । मैने बहुत ध्यान से आपकी बात सुनी है । मै तो आपके विचारो की सराहना करता हू कि कोई समीक्षक हमे मिला तो सही ।"[5] आचार्यवर के इन उदार विचारो को सुनकर वकील साहब अभिभूत हो गए और बोले—

---

१ प्रवचन पाथेय भाग-९, पृ० ५१ ।
२ पथ और पाथेय, पृ० ३२,३३ ।
३ गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का, पृ० १५ ।
४. पथ और पाथेय, पृ० ३३ ।
५. जैन भारती, २५ फरवरी १९६२ ।

"अपने से विरोधी विचारों को सुनना, पचा लेना, एव ग्राह्य की प्रशंसा करना—यह कार्य आचार्य तुलसी जैसे महान् व्यक्ति ही कर सकते है। सचमुच आप स्वस्थ विचार एव स्वस्थ मस्तिष्क के धनी है।"

अहिंसात्मक प्रतिरोध

प्रतिरोध हिंसात्मक भी होता है और अहिंसात्मक भी। हिंसात्मक प्रतिरोध क्षणिक होता है किन्तु अहिंसात्मक प्रतिरोध का प्रभाव स्थायी होता है। महावीर ने प्रतिरोधात्मक अहिंसा का प्रयोग दासप्रथा के विरोध मे किया। उसी कडी मे गाधीजी ने भी इसका प्रयोग सत्याग्रह आदोलन के रूप मे किया, जो काफी अंशो मे सफल हुआ।

आचार्य तुलसी अपने दीर्घकालीन नेतृत्व के अनुभवो को बताते हुए कहते हैं—"जन-जन के लिए अहिसा तभी व्यवहार्य और ग्राह्य हो सकती है, जब उसमे प्रतिरोध की शक्ति आए। इसके बिना अहिसा तेजहीन हो जाती है। निर्वीर्य अहिंसा मे आज के युग की आस्था नही हो सकती।"[1]

जब तक प्रतिरोधात्मक शक्ति जागृत नही होती, व्यक्ति अन्याय के विरोध मे आवाज नही उठा सकता। इसी बात पर टिप्पणी करते हुये वे कहते हैं—"समाज या परिवार मे जो कुछ भी गलत घटित होता है, उस समय यदि आप यह सोचे कि उससे आपका क्या बिगाड़ता है? बुराई के प्रति यह निरपेक्षता या तटस्थता बहुत घातक सिद्ध हो सकती है। इसलिए अपने भीतर सोई प्रतिवाद की शक्ति को जागृत करना बड़ा जरूरी है। इससे अहिंसा का वर्चस्व बढ़ेगा और समाज मे बुराइयो का अनुपात कम होगा।[2]

आचार्य तुलसी मानते है कि तटस्थता और विनम्रता अहिंसात्मक प्रतिरोध के आधार स्तम्भ है। उनकी दृष्टि मे किसी भी विचार के प्रति पूर्वाग्रह या अहंभाव टिक नही सकता। पक्ष विशेप से बन्धकर प्रतिरोध की बात करना स्वयं हिंसा है। वहा अहिंसात्मक प्रतिरोध सफल नही होता।[3]

प्रतिरोध करने वाले व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओ के बारे मे उनका मन्तव्य है कि अहिसात्मक प्रतिकार के लिए व्यक्ति मे सबसे पहले असाधारण साहस होना नितात अपेक्षित है। साधारण साहस हिसा की आग देखकर काप उठता है। जहा मन मे कम्पन होता है, वहा स्थिति का समाधान हिंसा मे दिखाई पडता है। दर्शन का यह मिथ्यात्व व्यक्ति को हिंसा की प्रेरणा देता है। हिंसा और प्रतिहिंसा की यह परम्परा बराबर चलती रहती है। इस परंपरा का अन्त करने के लिये व्यक्ति को सहिष्णु बनना पडता है।

---

१ अतीत का विसर्जन : अनागत का स्वागत, पृ० १३३।

२. बीती ताहि विसारि दे, पृ० १११।

३. अणुव्रत : गति प्रगति, पृ० १५६।

सहिष्णुता के अभाव में मानसिक सन्तुलन बिगड जाता है। मन सन्तुलित न हो तो अहिसात्मक प्रतिकार की वात समझ मे नही आती, इसलिये वैचारिक सहिष्णुता की बहुत अपेक्षा रहती है।[1]

मृत्यु से डरने वाला तथा कष्ट से घबराने वाला व्यक्ति थोड़ी-सी यातना की सम्भावना से ही विचलित हो जाता है। ऐसे व्यक्ति हिसात्मक परिस्थिति के सामने घुटने टेक देते है। इस विषय मे आचार्य तुलसी का अभिमत है-- "जो व्यक्ति कष्टसहिष्णु होते है, वे विषम स्थिति मे भी अन्याय और असत्य के सामने झुकने की वात नही सोचते। ऐसे व्यक्ति अहिसात्मक प्रतिकार मे अधिक सफल होते है। उनकी कष्ट-सहिष्णुता इतनी बढ़ जाती है कि वे मृत्यु तक का वरण करने के लिये सदा उद्यत रहते हैं। जिन व्यक्तियो को मृत्यु का भय नही होता, वे सत्य की सुरक्षा के लिए सव-कुछ कर सकते है। प्रतिरोधात्मक अहिसा का प्रयोग इन्ही व्यक्तियो द्वारा किया जाता है।[2]

कुछ व्यक्ति हडताल, घेराव आदि साधनो को अहिसात्मक प्रतिकार के रूप मे स्वीकार करते है किन्तु इस विषय मे आचार्य तुलसी का दृष्टि-कोण कुछ भिन्न है। वे स्पष्ट कहते है—"घेराव में हिंसात्मक उपकरणो का सहारा नही लिया जाता, यह ठीक है, फिर भी वह अहिसा का साधन नही हो सकता, क्योकि इसमे उत्सर्ग की भावना विलुप्त है। अपनी शक्ति से किसी को वाध्य करना अहिसा नही हो सकती क्योकि वाध्यता स्वय हिसा है। इस प्रकार सविनय अवज्ञा आन्दोलन, सत्याग्रह, घेराव आदि साधनों की भूमिका मे विशुद्धता, तटस्थ दृष्टिकोण, देशकाल और परिस्थितियो का सही विचार और आत्मोत्सर्ग की भावना निहित हो तो मै समझता हूं कि अहिंसा को इन्हे स्वीकार करने मे कोई सकोच नही होता।"

इस कथन का तात्पर्य यह है कि अन्याय से अन्याय को परास्त करना दुर्वलता है तथा अन्याय को स्वीकार करना भी बहुत वडी कायरता और हिंसा है। उनका अपना अनुभव है कि यदि माग मे औचित्य है तो उसे स्वीकार करने मे कोई वाधा नही रहनी चाहिए अन्यथा हिसा के सामने झुकना सिद्धात की हत्या करना है।" सद्भावना, मैत्री, प्रेम, करुणा की वृत्ति से हिसा को पराजित किया जा सकता है। वलप्रयोग, दवाव या वाध्यता चाहे अहिसात्मक ही क्यो न हो, उसमे सूक्ष्म हिसा का भाव रहता है। अहिंसात्मक प्रतिरोध की शक्ति वलिदान की भावना तथा अभय की साधना से ही सफल हो सकती है। क्योकि स्वय हिंसा भी वलिदान के

---

१. अणुव्रत के आलोक मे, पृ० ५०

२. अणुव्रत के आलोक मे, पृ० ५०।

अभाव मे सफल नही हो सकती। अतः अहिंसात्मक प्रतिरोध हेतु ईमानदार और बलिदानी व्यक्तियो की आवश्यकता है अन्यथा इसकी आवाज का मूल्य अरण्य रोदन से अधिक नही होगा।

अनुशास्ता होने के कारण आचार्य तुलसी ने अपने जीवन मे अहिंसात्मक प्रतिरोध के अनेक प्रयोग किए, जो सफल रहे। कलकत्ता की धार्मिक सभाओ मे मनोमालिन्य चरम सीमा पर पहुंच गया। जयपुर चातुर्मास के दौरान आचार्य तुलसी ने एकासन तप प्रारम्भ कर दिया, साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि मैंने जो सकल्प किया है, वह दवाव डालने हेतु नही है। मै दवाव को हिंसा मानता हूं। यदि इससे भी हृदय परिवर्तन नही हुआ, तो मै और भी तगड़ा कदम उठा सकता हूं।''[1] आचार्यश्री के इस अहिंसात्मक प्रतिरोध से पारस्परिक सौहार्द एवं सामंजस्य का सुन्दर वातावरण निर्मित हुआ और उलझी हुई गुत्थी को एक समाधायक दिशा मिल गई।

अहिंसा सार्वभौम

द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका से त्रस्त होकर अहिसा और शाति के क्षेत्र मे कार्य करने वाली कुछ अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओं का उदय हुआ। जैसे सयुक्त राष्ट्र संघ, इन्स्टीट्यूट फोर पीस एण्ड जस्टीस, इटरनेशनल पीस रिसर्च. कोपरेशन फोर पीस तथा गाधी शाति सेना आदि। उसी परम्परा मे आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आदोलन के अन्तर्गत 'अहिसा सार्वभौम' की स्थापना करके अहिसा के इतिहास मे एक नयी कडी जोड़ने का प्रयत्न किया है। उन्होने अहिसा का ऐसा सर्वमान्य मच उपस्थित किया है, जहा से अहिसा की आवाज दिगन्तो तक पहुच सकती है।

एक ओर मनुष्य की शाति प्राप्त करने की चाह तो दूसरी ओर घातक परमाणु अस्त्रो का निर्माण—इस विसगति को तोडकर अहिंसा को प्रयोग से जोडने एव उसके प्रति आस्था निर्मित करने मे अहिंसा सार्वभौम ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेंद्रजी आदि अनेक विद्वान् इस कार्यक्रम के साथ जुडे। आचार्य तुलसी अहिंसा सार्वभौम को एक वहुत वडी क्राति मानते हैं। इसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं—"अहिसा सार्वभौम मे अहिसा के गुणगान नही हैं, अहिंसा की परिभाषा नही है, अहिंसा की व्याख्या नही है, इसमे है अहिंसा का अनुशीलन, शोध और उसके प्रयोग। प्रायोगिक होने के कारण यह एक वैज्ञानिक प्रस्थापना है।[2]

'राजस्थान विद्यापीठ' उदयपुर के सस्थापक जनार्दन राय नागर ने

---

१ जैन भारती, २८ दिसम्बर, १९७५

२ सफर : आधी शताब्दी का, पृ० ६१।

इस नए अभियान के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा— "आज की विषम परिस्थितियो मे आवश्यक है कि अहिसा का स्वर उठे, लोक-चेतना जागे और हिसा के विरुद्ध लोकशक्ति अपना मार्ग प्रशस्त करे। अहिसा सार्वभौम इसी का प्रतीक है। गाधीजी के बाद अहिसा के क्षेत्र मे आचार्य तुलसी द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है। आचार्य तुलसी मजहब से दूर भारतीय सस्कृति को एक शुद्ध, ठोस एव आध्यात्मिक आधार प्रदान कर रहे है।"

अहिसा सार्वभौम की एक अतरग परिषद् को सम्बोधित करते हुए आचार्य तुलसी इसका उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहते है— "मेरा यह निश्चित अभिमत है कि ससार मे हिसा थी, है और रहेगी। हिसा की तरह अहिसा का भी त्रैकालिक अस्तित्व है। हिंसा की प्रबलता देखकर अहिंसा की निष्ठा शिथिल हो जाए या समाप्त हो जाए, यह चिन्तन का विषय है। हिसा का पलडा अहिंसा से भारी न हो, ऐसी जागरूकता रखनी है। यह काम निराशा और कुण्ठा के वातावरण मे नही होगा। प्रसन्नता, उत्साह और लगन के साथ काम करना है, अहिसा की शक्ति को उजागर करना है। अहिंसा सार्वभौम की सफलता का पहला कदम यही होगा।[1]

अहिसा और वीरता

आचार्य तुलसी कहते है—"अहिसा का पथ तलवार की धार से भी अधिक तीक्ष्ण है। इस स्थिति मे कोई भी कायर और दुर्बल व्यक्ति इस पर चलने का साहस कैसे कर सकता है ?[2]

कुछ लोग अहिसा का सम्बन्ध कायरता से जोडते हुए कहते है— जैनधर्म की अहिंसा ने हमे कायर बना दिया है। इस प्रश्न के उत्तर मे आचार्य तुलसी का स्पष्ट मन्तव्य है—"कायरता अहिंसा का अंचल तक नही छू सकती। सोने के थाल बिना सिहनी का दूध कहा रह सकता है ? उसी प्रकार अहिसा का वास वीर हृदय को छोडकर अन्यत्र असम्भव है। यह अटल सत्य है। अहिंसा और कायरता का वही सम्बन्ध है, जो ३६ के अको मे तीन और छ का है।"[3] अहिसा तो साहस और पुरुषार्थ का पर्याय है। वह कभी नही कहती कि हम अपनी सुरक्षा ही न करे। जिस प्रकार भय दिखाना हिसा है, उसी तरह भयभीत होना भी हिसा ही है।[4] जो लोग स्वय की कमजोरी पर आवरण डालने के लिये अहिसा का सहारा लेते है, ऐसे तथाकथित

---

१. अमरित बरसा अरावली मे, पृ० २८१।
२. एक बूद : एक सागर, पृ० २७३।
३. शाति के पथ पर, पृ० ५७।
४. २५-४-६५ के प्रवचन से उद्धृत।

अहिंसक ही अहिसा को कमजोर बनाते है ।" वे मानते है--"अहिसा व्यक्ति या समाज को कमजोर बनाती है—यह भ्रम इसलिये उत्पन्न हुआ कि सही अर्थ मे अहिसा मे विश्वास रखने वाले धार्मिको ने अपनी दुर्बलता को अहिसा की ओट मे पाला-पोसा । इसी बात को वे व्यग्यात्मक भाषा में प्रस्तुत करते है--"शेर के सामने खरगोश कहे कि मै अहिंसक हूं, इसलिए तुमको नही मारता तो क्या वह अहिंसक हो सकता है ?[1] इसी सन्दर्भ मे उनकी दूसरी टिप्पणी भी महत्त्वपूर्ण है—"मै कायरता को अहिसा नही मानता । डर से छुपने वाला यदि अपने को अहिंसक कहे तो मैं उसे प्रथम दर्जे की कायरता कहूंगा । वह दूसरो को क्या मारे जो स्वयं ही मरा हुआ है ।"[2] आचार्य तुलसी अहिंसक को शक्ति सम्पन्न होना अनिवार्य मानते हैं अत. खुले शब्दो मे आह्वान करते है—"जिस दिन अहिंसक मौत से नही घबराएगा । वह दिन हिसा की मौत का दिन होगा । हिसा स्वत' घबराकर पीछे हट जायेगी और अपनी हार स्वीकार कर लेगी ।"[3]

लोकतंत्र और अहिंसा

"लोकतत्र से अहिंसा निकल गयी तो वह केवल अस्थिपजर मात्र बचा रहेगा"—आचार्य तुलसी की यह उक्ति राजनीति मे अहिसा की महत्ता को प्रतिष्ठित करती है । अहिसा को तेजस्वी और वर्चस्वी बनाने हेतु उनका चिन्तन है कि एक शक्तिशाली अहिंसक दल का निर्माण किया जाए, जो राजनीति के प्रभाव से सर्वथा अछूता रहे पर राजनीति को समय-समय पर मार्गदर्शन देता रहे ।

हिसा मे विश्वास रखने वाले राजनीतिज्ञो को वे चेतावनी देते हुए कहते है--"मै राजनीतिज्ञो को एक चेतावनी देता हूं कि हिसात्मक क्राति ही सब समस्याओ का समुचित समाधान है वे इस भ्राति को निकाल फेंके । अन्यथा स्वय उन्हे कटु परिणाम भोगना होगा । हिंसक क्रातियो से उच्छृंखलता का प्रसार होता है । आज के हिंसक से कल का हिसक अधिक क्रूर होगा, फिर कैसे शाति रह सकेगी ?[4]

लोकतंत्र अहिसा का प्रतिरूप होता है, क्योकि उसमे व्यक्ति स्वातंत्र्य को स्थान है । पर आज की बढती हिसा से वे अत्यंत चितित ही नही, आश्चर्यचकित भी है—"दिन है और अंधकार है—इस उक्ति में जितना

---

१ एक बूद : एक सागर, पृ० २५२ ।
२. एक बूद : एक सागर, पृ० २७४ ।
३. पथ और पाथेय, पृ० ३६ ।
४ जैन भारती, ३१ मार्च १९६८ ।

अन्तर्विरोध है, उतना ही अतर्विरोध इस स्थिति मे है कि लोकतंत्र है और हिसा की प्रबलता है।" अभय, समानता, स्वतंत्रता, सहानुभूति आदि तत्त्व लोकतत्र को जीवित रखते है। लोकतत्र मे अहिसा के विकास की सर्वाधिक सम्भावनाए होती हैं। यदि लोकतत्र मे अच्छाइयो का विकास न हो तो इससे अधिक आश्चर्य की बात क्या होगी ?[1]

अहिसक लोकतत्र की कल्पना गाधीजी ने रामराज्य के रूप मे की पर वह साकार नही हो सकी क्योकि गांधीवाद के सिद्धांतो एव आदर्शों ने वाद का रूप तो धारण कर लिया पर उनका जीवन में सक्रिय प्रशिक्षण नही हो सका। आचार्य तुलसी ने अहिंसक जनतत्र की कल्पना प्रस्तुत की है, उसके मुख्य बिदु निम्न है—

१ व्यक्ति स्वातत्र्य का विकास।
२. मानवीय एकता का समर्थन।
३. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व।
४. शोषण मुक्त व नैतिक समाज की रचना।
५. अतर्राष्ट्रीय नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठापना।
६. सार्वदेशिक निःशस्त्रीकरण के सामूहिक प्रयत्न।
७ मैत्री व शाति सगठनो की सार्वदेशिक एकसूत्रता।[2]

अहिंसा और युद्ध

युद्ध की विभीषिका का इतिहास अति-प्राचीन है। प्राचीनकाल से ही आवेश की क्रियान्विति युद्ध के रूप मे होती रही है। जिस देश मे युद्ध के प्रसग जितने अधिक उपस्थित होते थे, वह देश उतना ही अधिक शौर्य सम्पन्न समझा जाता था। युद्ध के बारे मे किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार ईसा पूर्व ३६०० वर्ष से लेकर आज तक मानव जाति कुल २९२ वर्ष ही शाति से रह सकी है। इस बीच छोटे बडे १४५१४ युद्ध लडे गए। उन युद्धों मे तीन अरब से भी अधिक लोगो को अपने प्राणो की आहुति देनी पड़ी।

वर्तमान युग के नाभिकीय एव अणु रासायनिक युद्ध का परिणाम विजेता और विजित दोनो राष्ट्रो को सदियों तक समान रूप से भोगना पडता है। युद्ध भौतिक हानि के अतिरिक्त मानवता के अपाहिज और विकलाग होने मे भी बहुत बड़ा कारण है।[3] इससे पर्यावरण इतना प्रदूषित हो जाता है कि सालो तक व्यक्ति शुद्ध सास और भोजन भी प्राप्त नही कर सकता। वैज्ञानिक इस बात की घोषणा कर चुके है कि भविष्य मे युद्ध मे

---

१ अतीत का विसर्जन . अनागत का स्वागत, पृ० ११७।

२ जैन भारती, २८ दिस० १९६५।

३. अणुव्रत, 1 दिस० १९५६।

प्रत्यक्ष रूप मे भाग लेने वाले कम और दुष्परिणामो का शिकार बनने वाले संसार के सभी प्राणी होगे। युद्ध के भयावह परिणामो की उद्घोषणा करते हुए आचार्य तुलसी का कहना है—"युद्ध वह आग है, जिसमें साहित्यकारो का साहित्य, कलाकारों की कला, वैज्ञानिको का विज्ञान, राजनीतिज्ञो की राजनीति और भूमि की उर्वरता भस्मसात् हो जाती है।"[1] इसी सन्दर्भ मे उनके काव्य की निम्न पक्तियां भी पठनीय है—

साथ उनके हो गईं कितनी कलाए लुप्त है।
युद्ध से उत्पन्न क्षति भी क्या किसी से गुप्त है।
देखते ही अमित जन-धन का हुआ संहार है।
हाय ! फिर भी रक्त की प्यासी खड़ी तलवार हैं ॥[2]

वैयक्तिक अहंकार, सत्ता की महत्त्वाकाक्षा, स्वार्थ तथा स्वय को शक्तिशाली सिद्ध करने की इच्छा आदि युद्ध के मूल कारण हैं। आचार्य तुलसी मानते है कि युद्ध मूलतः असन्तुलित व्यक्ति के दिमाग मे उत्पन्न होता है।[3] युद्ध और अहिसा के बारे मे भारतीय मनीषियो ने गहन चिंतन किया है। भारत-पाक युद्ध के समय रामधारीसिंह दिनकर आचार्य तुलसी के पास आकर बोले– "आचार्यजी ! आप न तो युद्ध को अच्छा समझते है, न समर्थन करते है और न ही युद्ध मे भाग लेने हेतु अनुयायियो को आदेश देते है। देश के ऊपर आए ऐसे संकट के समय में आपकी अहिसा क्या कहती है ? आचार्य तुलसी ने इस प्रश्न का सटीक एव सामयिक उत्तर देते हुए कहा— "मै युद्ध को न अच्छा मानता हूं और न समर्थन ही करता हू—यहां तक इस कथन मे अवश्य सचाई है किन्तु युद्ध मे भाग लेने का निषेध करता हूं, यह कहना सही नही है। क्योकि जब तक समाज के साथ परिग्रह जुड़ा हुआ है, मै हिंसा और युद्ध की अनिवार्यता देखता हू। परिग्रह के साथ लिप्सा का गठबंधन होता है। लिप्सा भय को जन्म देती है और भय निश्चित रूप से हिसा और सघर्ष को आमत्रण देता है। समाज मे जीने वाला और समाज की सुरक्षा का दायित्व ओढ़ने वाला आदमी युद्ध के अनिवार्य कारणों को देखता हुआ भी नकारने का प्रयत्न करे--इसे मै खण्डित मान्यता मानता हूं।"[4]

युद्ध की परिस्थिति अनिवार्य होने पर समाज के कर्त्तव्य का स्पष्टीकरण करते हुए उनका निम्न कथन न केवल चौकाने वाला, अपितु करणीय की ओर यथार्थ इंगित करने वाला है—"जहा व्यक्ति युद्ध के मैदान से भागता

१ एक बूंद : एक सागर, पृ० ११४२।
२. भरतमुक्ति, पृ० १००
३. जैन भारती, १८ अग० १९६८।
४. अणुव्रत : गति प्रगति पृ० १४७।

है, समाज पर आई कठिन घडियो के समय घरो मे छिपकर अपनी जान वचाने का उपाय करता है, वहा भले ही वह स्थूल रूप से हिसा से वच रहा है किंतु सूक्ष्मता से और गहरे मे वह हिसक ही है। वहा हिसा ही होती है, अहिसा नही। क्योकि जहा व्यक्ति प्राणो के व्यामोह से अपनी जान वचाए फिरता है, वहा कायरता है, भय है, मोह है, इसलिए हिसा है। युद्ध मे मारना भी हिसा है, भागना भी हिंसा है, किंतु जहा व्यक्ति सर्वथा अभय है, निर्भय है, वहा अहिसा है।"[1]

इसी सन्दर्भ में उनकी दूसरी टिप्पणी भी मननीय है—"व्यक्ति समाज मे जीता है अतः समाज और राष्ट्र की सुरक्षा का दायित्व ओढ़ने वाला व्यक्ति युद्ध के अनिवार्य कारणो को देखता हुआ भी उसे नकार नही सकता। जहा युद्ध की स्थिति को टाला न जा सके वहा अहिसा का अर्थ यह नही कि कायरतापूर्वक युद्ध के मैदान से भागा जाए।"[2] साथ ही वे यह भी स्पष्ट करते है कि राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु युद्ध अनिवार्य हो सकता है, एक सामाजिक प्राणी उससे विमुख नही हो सकता पर युद्ध मे होने वाली हिंसा को अहिसा की कोटि मे नही रखा जा सकता। अनिवार्य हिसा भी अहिसा नही वन सकती।"

युद्ध की स्थिति मे भी अहिसा को जीवित रखा जा सकता है, हिसा का अल्पीकरण हो सकता है—इस वारे मे आचार्य तुलसी ने पर्याप्त चितन किया है। वे कहते है—"युद्ध मे होने वाली हिसा को अहिंसा नही माना जा सकता कितु उसमे अहिसा के लिए वहुत वडा क्षेत्र खुला है। जैसे—आक्रांता न बने, निरपराध को न मारे, अपाहिजो के प्रति क्रूर व्यवहार न करे, अस्पताल, धर्मस्थान, स्कूल, कालेज आदि पर आक्रमण न करे, आवादी वाले स्थानो पर वमबारी न करे आदि नियम युद्ध मे भी अहिंसा की प्रतिष्ठा करते है।[3]

क्या युद्ध का समाधान अहिसा वन सकती है ? इस प्रश्न के समाधान मे उनका मतव्य है—"युद्ध का समाधान असंदिग्ध रूप से अहिसा और मैत्री है। क्योकि शस्त्र परम्परा से कभी युद्ध का अंत नही हो सकता। शक्ति सन्तुलन के अभाव मे वद होने वाले युद्ध का अत नही होता। वह विराम दूसरे युद्ध की तैयारी के लिये होता है।"[4] इस सन्दर्भ मे उनका निम्न प्रवचनाश उद्धरणीय है—"मनुष्य कितना भी युद्ध करे, अत मे उसे समझौता

---

१. दायित्व का दर्पण : आस्था का प्रतिविम्व, पृ॰ १३-१४।
२. शाति के पथ पर, पृ० ७०।
३. अणुव्रत : गति प्रगति, पृ० १५१।
४. अणुव्रत : गति प्रगति, १५०-१५१।

करना पड़ता है। मैं चाहता हू मनुष्य की यह अन्तिम शरण प्रारंभिक शरण बने।"[1]

आचार्य तुलसी के चिंतन मे युद्ध मे अहिसक प्रयोग के लिए समुचित भूमिका, प्रभावशाली नेतृत्व, अहिसा के प्रति अनन्य निष्ठा तथा उसके लिये मर मिटने वाले वलिदानियो की अपेक्षा रहती है।[2] आक्रमण एवं युद्ध का अहिसक प्रतिकार करने वाले मे आचार्य तुलसी तीन विशेषताएं आवश्यक मानते हैं—

१. वह अभय होगा, मौत से नही डरेगा।
२ वह अनुशासन और प्रेम से ओत-प्रोत होगा, मानवीय एकता मे आस्था रखेगा।
३ वह मनोवली होगा—अन्याय के प्रति असहयोग करने की भावना किसी भी स्थिति मे नही छोड़ेगा।[3]

युद्ध अनिवार्य हो सकता है, फिर भी युद्ध के वारे मे उनका अतिम सुझाव या निर्णय यही है कि युद्ध मे जय निश्चित हो फिर भी वह न किया जाए क्योकि उसमे हिंसा और जनसंहार तो निश्चित है पर समस्या का स्थायी समाधान नही है……युद्ध आज के विकसित मानव समाज पर कलंक का टीका है।"[4] वे कहते है—"युद्ध परिस्थितियो को दवा सकता है पर शात नही कर सकता। दवी हुई चीज जव भी अवसर पाकर उफनती है, दुगुने वेग से उभरती है।"

लोगों को मस्तिष्कीय प्रशिक्षण देते हुए वे कहते है—"युद्ध करने वाले और युद्ध को प्रोत्साहन देने वाले किसी भी व्यक्ति को आज तक ऐसा कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रोत्साहन नही मिला, जो उसे गौरवान्वित कर सके। युद्ध तो वरवादी है, अशाति है, अस्थिरता है और जानमाल की भारी तवाही है।[5]

अहिंसा और विश्वशांति

आचार्य तुलसी की दृष्टि मे शाति उस आह्लाद का नाम है, जिससे आत्मा में जागृति, चेतनता, पवित्रता, हल्कापन और मूल-स्वरूप की अनुभूति होती है।"[6] आज सारा संसार शाति की खोज मे भटक रहा है पर आणविक अस्त्रों के निर्माण ने विश्व शांति के अस्तित्व को खतरे मे डाल दिया है। पूरी

---

१. तेरापथ टाईम्स, १८ फरवरी १९८१।
२. अणुव्रत : गति प्रगति, पृ० १५१।
३-४. क्या धर्म बुद्धिगम्य है ? पृ० ७३।
५. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० २७।
६ अणुव्रत, १५ अक्टूवर १९५७।

दुनिया मे प्रति मिनिट एक करोड चालीस लाख से भी अधिक रुपये हथियारो के निर्माण मे खर्च हो रहे हैं। स्वयं परमाणु अस्त्र निर्माता भी अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिये भयभीत है। आचार्य तुलसी की अहिसक चेतना आज की इस स्थिति से उद्वेलित है। अणुशक्ति पर विश्वास रखने वालों को वे व्यग्य मे पूछते है—"शांति के लिए सब कुछ हो रहा है—ऐसा सुना जाता है। युद्ध भी शाति के लिए, स्पर्धा भी शाति के लिए, अशाति के जितने बीज है, वे सब शाति के लिए—यह मानसिक झुकाव भी कितनी भयंकर भूल है। बात चले विश्वशाति की और कार्य हो अशांति के तो शाति कैसे सम्भव हो? विश्वशाति के लिये अणुबम आवश्यक है, यह घोषणा करने वालो ने यह नही सोचा कि यदि यह उनके शत्रु के पास होता तो।"[1] यद्यपि आचार्य तुलसी व्यक्तिगत चितन के स्तर पर शाति एवं सद्भाव की स्थापना के लिए अणुशस्त्रो के निर्माण के कट्टर विरोधी है। फिर भी भारत के बारे मे उनकी निम्न टिप्पणी चिन्तन की नयी दिशाए उद्घाटित करने वाली है—"भारत विज्ञान और एटमबम का देश नही, अध्यात्म और अहिसा का देश है। अहिसा और अध्यात्म के देश मे विज्ञान न हो, बम न हो, ऐसी बात नही, किन्तु हम इन चीजो को प्रधानता नही देते है, यह इस सस्कृति की विशेषता है।"

आचार्य तुलसी का चिन्तन है कि शाति और सद्भाव को प्रतिष्ठित करने से पूर्व अशाति और असद्भाव के कारणो को जान लेना जरूरी है। उनकी दृष्टि मे सयमहीन राष्ट्रीयता की भावना, रगभेद और जातिभेद की भित्ति पर टिकी हुई उच्चता और नीचता की परिकल्पना, अधिकार-विस्तार की भावना और अस्त्रो की होड—ये सभी विश्वशाति के लिये खतरे हैं।[2] वे स्पष्ट कहते है जब तक जीवन मे दम्भ रहेगा, क्षोभ रहेगा, तब तक शाति का अवतरण हो सके, यह कम सम्भव है।"[3] वे अनेक बार इस सत्य को अभिव्यक्त करते है कि इच्छाओं का विस्तार ही विश्वशाति का सबसे बडा खतरा है। अतः दूसरो के अधिकारो पर हाथ न उठाना ही विश्वशाति का मूलस्रोत है।"[4]

हिसक क्राति द्वारा विश्व-शाति लाने वाले लोगो को आचार्य तुलसी की चेतावनी है कि हिंसा की धरती पर शाति की पौध नही उगायी जा सकती। अहिसा की विशाल चादर के प्रयोग से ही विश्वशाति की

---

१. जैन भारती, २३ जून १९६८।
२. जैन भारती, ६ जुलाई १९५८।
३. प्रवचन डायरी, भाग १, पृ० १५७।
४. एक बूद : एक सागर, पृ० १२६७।

कल्पना सार्थक की जा सकती है क्योंकि शाति के सारे रहस्य अहिंसा के पास है। अहिंसा से बढकर कोई शास्त्र नही है, शस्त्र भी नही है।[1]

उनके दिमाग मे यह प्रत्यय स्पष्ट है कि अहिंसा और अनेकात की आखों मे ही विश्वशाति का सपना उतर सकता है पर वह बलप्रयोग से नहीं, हृदयपरिवर्तन द्वारा ही सम्भव है।

इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होने अणुव्रत का रचनात्मक उपक्रम मानव जाति के समक्ष उपस्थित किया। न्यूनतम मानवीय मूल्यो के प्रति वैयक्तिक वचनबद्धता प्राप्त कर विश्व को हिंसा से मुक्ति दिलाने का यह अनूठा प्रयोग है। व्रतों को आन्दोलन का रूप देकर उनके द्वारा शाति स्थापित करने का यह विश्व के इतिहास मे पहला प्रयास है। अणुव्रत के कुछ नियम जैसे—मै निरपराध प्राणी की हिंसा नही करूंगा, तोड़-फोड मूलक प्रवृत्तियो मे भाग नही लूगा। मैं किसी पर आक्रमण नही करूंगा। आक्रामक नीति का समर्थन नही करूगा। विश्वशांति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूगा। साम्प्रदायिक उत्तेजना नही फैलाऊंगा। मानवीय एकता मे विश्वास करूगा। जाति रंग के आधार पर किसी को ऊंच-नीच नही मानूगा। अस्पृश्य नही मानूगा—ये सभी नियम विश्वशाति के आधारभूत स्तम्भ है। यदि हर व्यक्ति इन नियमो को स्वीकार कर अणुव्रती बन जाए तो विश्व-शाति की स्थापना बहुत सम्भव है।

प्रकाशित रूप से आचार्य तुलसी का सबसे प्राचीन सन्देश है—'अशात विश्व को शाति का सन्देश।' इस पूरे सन्देश मे उन्होने विश्वशाति के लिए १३ सूत्रो का निर्देश किया है, जिसे पढकर महात्मा गांधी ने अपनी टिप्पणी व्यक्त करते हुए कहा—"क्या ही अच्छा होता जब सारी दुनिया इस महापुरुष के बताए मार्ग पर चलती।"

कोरियन पर्यटक एक प्रोफेसर ने जब आचार्य तुलसी से अहिंसा, शाति और अणुव्रत का सन्देश सुना तो वह आश्चर्य मिश्रित दुःखद स्वरो मे बोला—"काश! हम पश्चिम वालो को यह सन्देश कोई सुनाने वाला होता तो हम निरन्तर महायुद्धो मे पडकर बर्बाद नही होते।"

निःशस्त्रीकरण

शस्त्रीकरण के भयावह दुष्परिणामो से समस्त विश्व भयाक्रात हे इसीलिए आज निःशस्त्रीकरण की आवाज चारो ओर से उठ रही है। महावीर ने आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व इस सत्य को अभिव्यक्त किया था कि शस्त्र परम्परा का कही अन्त नही होता। इसके लिए व्यक्ति के मन मे जो शस्त्र बनाने की चेतना है, उसे मिटाना आवश्यक है। आचार्य तुलसी की

---

१. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० १७३।

अवधारणा है कि ये भौतिक शस्त्र उतने खतरनाक नही जितना सचेतन शस्त्र मनुष्य है। सचेतन शस्त्र को परिभाषित करते हुए वे कहते है—"शस्त्र वह बनता है, जो असयत होता है। शस्त्र वह बनता है, जो क्रूर होता है। शस्त्र वह बनता है, जो प्राणी-प्राणी मे भेद समझता है।"[1] उनका मानना है कि केवल कुछ प्रक्षेपास्त्रो को कम करने से नि:शस्त्रीकरण का नारा बुलन्द नही किया जा सकता।

शक्ति सन्तुलन के लिए भी वे शस्त्र-निर्माण की बात से सहमत नही है क्योकि इससे अपव्यय तो होता ही है साथ ही किसी के गलत हाथो से दुरुपयोग होना भी बहुत सम्भव है। आज से ३३ साल पूर्व भारत के सम्बन्ध मे कही गयी उनकी यह उक्ति अत्यन्त मार्मिक एवं प्रेरणादायी है—"आज हमारे पास राकेट नही, बम नही। मै कहूगा यह भारत के पास न हो। भारत इस माने मे दरिद्र ही रहे। कारण यह कि डर तो न रहे। डर तो उनको है, जिनके पास बम है। हमारे पास तो सबसे बडी सम्पत्ति अहिसा की है। जब तक हमारे पास यह सम्पत्ति सुरक्षित है, कोई भी भौतिकवादी हमारे सामने देख नही सकेगा। अगर हमने यह सम्पत्ति खो दी तो हमारा बचाव होना मुश्किल है।"[2] उनका स्पष्ट मन्तव्य है कि जिस राष्ट्र की नीति मे दूसरे राष्ट्रो को दबाने के लिए शस्त्रो का विकास किया जाता है, वह राष्ट्र विश्वशाति के लिए सबसे अधिक बाधक है।

अहिंसक विश्व रचना की उनके दिल मे कितनी तडप है, यह उनकी निम्न उक्ति से पहचानी जा सकती है—"जिस दिन अणु-अस्त्रो पर सम्पूर्ण प्रतिबन्ध लगेगा, क्रूर हिंसा रूपी राक्षसी को कील दिया जायेगा, वह दिन समूची मानव जाति के लिए महान् उपलब्धि का दिन होगा। यह मेरा व्यक्तिगत सपना है।"[3] वे कहते है सामंजस्य और समन्वय के बिना कोई रास्ता नही कि शस्त्र-निर्माण के स्थान पर अहिंसा की प्रतिष्ठा हो सके क्योकि अभय, सद्‌भाव और सहिष्णुता नि.शस्त्रीकरण के बीज है।[4]

आचार्य तुलसी के अहिंसक प्रयोग

"अहिंसा मे मेरा अधविश्वास नही है। वह मेरे जीवन की प्रकाश-रेखा है। मैने इससे अपने जीवन को आलोकित करने का प्रयत्न किया है। मै इससे बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न हूं"—"आचार्य तुलसी की यह अनुभव-पूत वाणी उनके अहिंसक व्यक्तित्व की प्रतिध्वनि है। उनके साये मे आने

---

१ लघुता से प्रभुता मिले, पृ० ३७।

२ जैन भारती, १७ जुलाई १९६०।

३. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० २४।

४. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० २८-२९।

वाला हिंसक व्यक्ति भी अहिंसा की भावधारा से अनुप्राणित हो जाता है। उनके जीवन के सैकडो ऐसे प्रसग है, जहा तीव्र हिंसात्मक वातावरण मे भी वे अहिंसात्मक प्रयोग करते रहे।। वे कभी अपनी समता, सहिष्णुता और धृति से विचलित नही हुए। उनकी इसी क्षमता ने उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर प्रतिष्ठित कर दिया है। अपने अनुभवो को वे इस भाषा मे प्रस्तुत करते है—"मेरे जीवन में अनेक प्रसग आए है, जहा कुछ लोगो ने मेरे प्रति हिंसा का वातावरण तैयार किया। वे लोग चाहते थे कि मैं अपनी अहिंसात्मक नीति को छोडकर हिसा के मैदान में उतर जाऊं, पर मेरे अन्त करण ने कभी भी उनका साथ नही दिया और मैंने हर हिंसात्मक प्रहार का प्रतिकार अहिसा से किया।"[1]

आचार्य तुलसी हर विरोधी एवं विपम स्थिति को विनोद कैसे मानते रहे, इसका अनुभव बताते हुए वे कहते है -- "अहिंसा का साधक कटु सत्य भी नही बोल सकता, फिर वह कटु आक्षेप, प्रत्याक्षेप या प्रत्याक्रमण कैसे कर सकता है ? इसी बोधपाठ ने मुझे हर परिस्थिति मे संयत और सन्तुलित रहना सिखाया है।"

समाचार-पत्रो मे जब वे आतंकवादियो की हिंसक वारदातों के विपय मे सुनते या पढते है तो अनेक बार अपनी अन्तर्भावना इन शब्दो मे व्यक्त करते है—"मेरे मन मे अनेक बार यह विकल्प उठता है कि उपद्रवी और हिंसक भीड के बीच में खडा हो जाऊं और उन लोगो से कहूं कि तुम कौन होते हो निरपराध एव निर्दोप प्राणियों को मौत के घाट उतारने वाले?"

आचार्यश्री ने अपने जीवन मे विप को अमृत बनाया है, संघर्प की अग्नि को समत्व के जल से शात करने का प्रयत्न किया है, उनके जीवन की सैकडो ऐसी घटनाए है, जो उनके इस अहिंसक व्यक्तित्व की अमिट रेखाएं है। पर उन सबका यहा सकलन एव प्रस्तुतीकरण सम्भव नही है। यहां उनके जीवन के कुछ अहिंसक प्रयोग प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

साम्प्रदायिक उन्माद

आचार्य बनने के बाद आचार्य तुलसी का प्रथम चातुर्मास बीकानेर मे था। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् मार्गशीर्प कृष्णा प्रतिपदा के मध्याह्न मे उन्होने विहार किया। पूर्व निर्धारित मार्ग पर अभी कुछेक कदम ही आगे बढ़े थे कि अप्रत्याशित रूप से सहसा एक अन्य सम्प्रदाय के आचार्य का जुलूस उन्हे सामने की दिशा से आता हुआ दिखाई दिया। सकरे मार्ग से एक जुलूस भी मुश्किल से गुजर रहा था, वहा दो जुलूसो का एक साथ गुजरना तो सम्भव ही नही था। सामने वाले जुलूस से 'हटो' 'हटो' का

---

१. अणुव्रत के आलोक मे, पृ० ५०।

स्वर प्रखरता से मुखर हो रहा था। आचार्य श्री ने स्थिति की गभीरता का आकलन किया और विना इसे प्रतिष्ठा का विन्दु बनाए पास के चौक मे एक ओर हटते हुए सामने वाले जुलूस के लिए रास्ता छोड़ दिया। हालाकि आचार्यश्री का यह निर्णय जुलूस मे सम्मिलित गर्म खून वाले अनुयायियो को वहुत अप्रिय लगा पर तेरापन्थ सघ के अनुशासन की ऐसी गौरवशाली परम्परा रही है कि आचार्य का कोई भी प्रिय अप्रिय निर्णय बिना किसी ननुनच के स्वीकार्य होता है। इसलिए जुलूस मे सम्मिलित सभी सन्त तथा हजारो लोग भी आचार्यश्री का अनुगमन करते हुए एक तरफ हट गए। सामने वाले जुलूस के गुजर जाने के पश्चात् ही उन्होने अपने गन्तव्य के लिए प्रस्थान किया। पूरे शहर मे इस घटना की तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

प्रतिपक्ष के समझदार लोगो ने भी यह महसूस किया कि आचार्यश्री ने सूझ-वूझ एव अहिसक नीति के आधार पर सही समय पर सही निर्णय लेकर शहर को एक सम्भावित रक्तरजित सघर्ष से वचा लिया। तत्कालीन वीकानेर नरेश महाराज गगासिहजी ने कहा—"आचार्यश्री भले ही अवस्था मे छोटे हो, पर उनकी यह सूझ-वूझ वृद्धो की सी है। उन्होने वडी समझदारी एव शाति से काम लिया।" यह उनकी अहिसा एवं शातिवादिता की प्रथम विजय थी।

सन् १९६१ के आसपास की घटना है। आचार्यश्री वाडमेर, वायतू होते हुए जसोल पधार रहे थे। विरोधियों ने ऐसे पेम्पलेट निकाले की कही धर्मवृद्धि के स्थान पर सिरफोडी न हो जाए। इससे भी आगे उन्होने नियत प्रवचनस्थल पर वंचनापूर्वक अड्डा जमा लिया। इससे श्रद्धालुओ के मन मे रोप उभर आया। आचार्यश्री इस विरोधी विष को भी शकर की तरह पी गए। वे शहर के वाहर ही किसी के मकान में ठहर गए। पर लोग तो वहा भी पहुच गए।

उनमें कुछ श्रद्धालु थे तो कुछ आचार्यश्री की आखो मे रोष की झलक देखने आए थे। आचार्यवर ने दोनो ही पक्षो के लोगो की मनःस्थिति को ध्यान में रखते हुए कहा – "हमें विरोध का उत्तर शाति से देना है। मुझे ताज्जुव हुआ जव मैने यह पढा कि धर्मवृद्धि के स्थान पर कही सिर-फोडी न हो जाए। क्या हम आग लगाने आते है? सन्यस्त होकर भी क्या हम रोटी, कपडा और स्थान के लिए झगडे? हममे क्रांति के भाव जागे कि गाली का उत्तर भी शाति से दे सके। मैने सुना है कि कुछ अनुयायी कहते हैं—आचार्यश्री को जाने दो फिर देखेगे। यदि मेरे जाने के वाद उनकी आखों मे उवाल आ गया तो मै कहना चाहता हू कि तुम लोगो ने केवल नारे लगाए है आचार्य तुलसी को नही पहचाना है। 'शठे शाठ्य समाचरेद्' यह राजनीति का सूत्र हो सकता है; धर्मनीति का नही। हमे तो वुरो के दिल

को भी भलाई से बदलना है। जो अड़ता है, उनसे हमें टल जाना है। दूसरा जलता है तो हमें जल बन जाना है।[1] यद्यपि आए हुए उभार को रोकना समुद्र के ज्वार को रोकना है पर आचार्यश्री के इस ओजस्वी वक्तव्य ने न केवल श्रद्धालु लोगों को शान्त कर दिया, वरन् विरोधियों को भी सोच की एक नयी दृष्टि प्रदान की।

आचार्यश्री के जीवन में जब-जब विरोध के क्षण आए, वे इसी बात को बार-बार दोहराते रहे—"विरोधी लोग क्या करते है इस ओर ध्यान न देकर, हमें क्या करना चाहिए, यही अधिक ध्यान देने की बात है। हमें विरोध का शमन विरोध और हिंसा से नही, अपितु शान्ति और अहिंसा से करना है। अपना अनुभव डायरी में लिखते हुए वे कहते हैं— "अहिंसा का जोश आज मेरे हृदय मे रह-रहकर तूफान पैदा कर रहा है, मेरा सीना इससे तना हुआ है और यही मुझमें अहिंसा को जनशक्ति मे केन्द्रित करने की एक अज्ञात प्रेरणा जागृत कर रहा है।"

विधायक दृष्टिकोण

आचार्य तुलसी का दृष्टिकोण विधायक है। यही कारण है कि वे हर बुराई में अच्छाई खोज लेते हैं। वे मानते हैं—"जहा तक अहिंसा का प्रश्न है, वहा हमारा आचरण और व्यवहार अलौकिक होना चाहिए—इस सिद्धान्त मे मेरी गहरी आस्था है।"[2] आचार्य तुलसी के जीवन की सैकड़ों घटनाएं इस आस्था की परिक्रमा कर रही हैं।

जोधपुर (सन् १९५४) मे अणुव्रत का अधिवेशन था। साम्प्रदायिक लोगों ने विरोध मे अनेक पर्चे निकाले। दीवारें ही नही, सडकों को भी पोस्टरों से पाट दिया। मध्याह्न में आचार्यवर पादविहार कर अधिवेशन स्थल पर पहुंचे। वहां अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा—साम्प्रदायिक लोग कभी-कभी अनजाने में हित कर देते है। यदि आज सड़कों पर ये पोस्टर बिछे नहीं होते तो पैर कितने जलते? दुपहरी के समय में डामर की सड़कों पर नंगे पैर चलना कितना कठिन होता? इन पोस्टरों ने हमारी कठिनाई कम कर दी इस अवसर पर आचार्यश्री ने यह घोष दिया **"जो हमारा हो विरोध, हम उसे समझें विनोद।"**[3]

जहां दृष्टिकोण इतना विधायक और उदार हो वहां विरोध की कोई भी स्थिति व्यक्ति को विचलित नहीं कर सकती। उस व्यक्तित्व के सामने अभिशाप वरदान में तथा शत्रुता मित्रता में परिणत हो जाती है।

१. जैन भारती १७ सित० १९६१।
२. एक बूंद : एक सागर, पृ० १६३७।
३. धर्मचक्र का प्रवर्तन, पृ० २६४।

कानपुर का प्रसंग है। स्थानीय अनेक पत्र-पत्रिकाओ मे आचार्यश्री के विरोध मे तरह-तरह की वाते छपी। इस स्थिति से उद्वेलित होकर एक वकील आचार्यवर के उपपात मे पहुचा और वोला—"अमुक पत्र का सम्पादक मेरा किराएदार है। आप विरोध का प्रत्युत्तर लिखकर दे दे, मैं उसे वैसा ही छपवा दूगा।" आचार्यवर ने उत्तर दिया—"कीचड मे पत्थर डालने से क्या लाभ ? आलोचना का उत्त र मैं कार्य को मानता हू। यदि स्तर का विरोध या आलोचना हो तो उसके उत्तर मे शक्ति लगायी जाए अन्यथा शक्ति लगाना व्यर्थ है। निरुद्देश्य और निरर्थक विरोध अरण्य प्रलाप की तरह एक दिन स्वय शात हो जाएगा। मुझे तो विरोध देखकर दुःख नही, वल्कि नादानी पर हसी आती है। ये विरोध तो मेरे सहयोगी हैं। इनसे मुझे अधिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। यदि विरोध मे घवराने लगे तो कुछ भी कार्य नही कर सकेगे।"

बाल दीक्षा का विरोध

जयपुर मे जब बाल-दीक्षा के विरुद्ध मे विरोध का वातावरण वना तो तेरापथी लोगो मे भी कुछ आक्रोश उभरने लगा। संगठित सघ होने के कारण अनेक स्थानो से हजारो-हजारो लोग उसका प्रतिकार करने के लिए पहुच गए। यद्यपि उन्हे शात रखना कोई सहज कार्य नही था, पर अहिंसा की तेजस्विता प्रकट करने के लिए यह हर स्थिति मे आवश्यक था। उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होने अपने अनुयायियो को प्रतिवोध देते हुए कहा—"हिंसा को हिंसा से जीतना कोई मौलिक विजय नही होती। हिंसा को अहिंसा से जीतना चाहिए। हम साधन-शुद्धि पर विश्वास करते हे, अतः पथ की समस्त वाधाओ को स्नेह और सौहार्द से ही पार करना होगा। उत्तेजित होकर काम को विगाडा ही जा सकता हे, सुधारा नही जा सकता। मैं यह नही कहता कि आप विरोधो के सामने झुक जाए। यह तो उन्ही की सफलता मानी जाएगी। किन्तु आप यदि उस समय भी शात रहे तो यह आपकी सफलता होगी। मै आशा करता हू कि कोई भी तेरापंथी भाई न उत्तेजित होगा और न उत्तेजना वडे, वैसा कार्य करेगा। दूसरा क्या कुछ करता है, यह उसके सोचने की वात है। पर हमारा मार्ग सदैव शाति का रहा है और इसी मे हमारी सफलता के वीज निहित है।" आचार्यश्री का उपर्युक्त प्रतिवोध सचमुच ही अत्यन्त प्रभावी सिद्ध हुआ। लोगो के मनो मे उफन रहे आक्रोश को शान्त करने मे उसने जल के छींटे का सा काम किया। अहिसा की तेजस्विता मूर्त हो उठी।

अग्नि-परीक्षा बनाम अहिंसक-परीक्षा

आचार्य तुलसी का चातुर्मास रायपुर में था। वहां उनका अभूतपूर्व

स्वागत हुआ। किन्तु उस चातुर्मास के दौरान कुछ लोग उनकी लोकप्रियता को सह नही सके। उनके खण्डकाव्य 'अग्नि-परीक्षा' को आधार बनाकर कुछ गलत तत्त्वो ने साम्प्रदायिक हिंसा का वातावरण तैयार कर दिया। उन्होंने आचार्यश्री पर यह आरोप लगाया कि उन्होने सीता को गाली दी है। जनता इस बात को सुनकर भडक उठी। स्थान-स्थान पर आचार्यश्री के पुतले जलाए गये, पथराव हुआ तथा और भी हिंसात्मक वारदाते होने लगी। इस वातावरण को देखकर पत्रकारो को सबोधित करते हुए आचार्यश्री ने अपना सक्षिप्त वक्तव्य दिया—"मै अहिंसा और समन्वय मे विश्वास करता हूं। मेरे कारण से दूसरो को पीडा पहुची, इससे मुझे भी पीडा हुई। प्रस्तुत चर्चा के दौरान कुछ विद्वानो के मूल्यवान् सुझाव मेरे सामने आए है। अग्रिम सस्करण मे उन पर मै गभीरतापूर्वक विचार करूंगा।"

इसके बावजूद भी विरोधी सभाओ का आयोजन हुआ, जुलूस आदि निकाले गये। स्थिति जटिल एव गभीर बन गई। उस स्थिति मे भी वे वीर अहिंसक की भाति अडोल रहे तथा शाति स्थापना हेतु अपना मतव्य व्यक्त करते हुए कहा—"मेरे लिए प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा का प्रश्न मुख्य नहीं है। यदि शाति के लिए मेरा शरीर भी चला जाए तो भी मै उसे ज्यादा नही मानता। प्रतिष्ठा की बात पहले भी नही थी, किन्तु परिस्थिति कुछ दूसरी थी। आज स्थिति उससे भिन्न है। मुझे निमित्त बनाकर हिंसा का वातावरण उभारा जा रहा है। मै नही चाहता कि मै हिंसा का कारण बनू, पर किसी प्रकार बना दिया गया हू। मै इसके लिए किसी को दोप नही देता। मैने अपने मिशन को चलाने का बराबर प्रयत्न किया है और आगे भी करता रहूंगा। ऐसी स्थिति केवल मेरे लिए ही बनी है, ऐसा नही है। महावीर, गाधी और विनोबा के साथ भी ऐसा ही हुआ है।"[1]

उनकी करुणा और अहिंसा की पराकाष्ठा तो उस समय देखने को मिली, जब हिसा के दौरान कुछ विरोधी व्यक्ति पुलिस के द्वारा पकडे गये तब उनके प्रति अधिकारियो से अपना आत्मनिवेदन उन्होने इस भाषा मे रखा—"आज जो लोग गिरफ्तार हुए, उसकी मुझे पीडा है। मुझे उनके प्रति सहानुभूति है। मेरे मन मे उनके प्रति किसी प्रकार का रोप नही है। मैं आप लोगो से अनुरोध करता हू कि यदि संभव हो सके तो आज रात्रि मे ही गिरफ्तार लोगो को मुक्त कर दिया जाए।"

विरोधी लोगो द्वारा पंडाल जलाने पर भी वे वही स्थिरयोगी बनकर बैठे रहे। आचार्यश्री का यह स्पष्ट मतव्य है कि अहिसक कायर नही हो सकता। जो मरने से डरता है, वह अहिसा का अंचल भी नही छू सकता। लोगो के निवेदन करने पर भी वे दृढतापूर्वक कहते है—मै यही बैठा हूं देखता हू क्या होता है? उस भयावह स्थिति मे भी वे प्रकम्पित नही हुए।

उनकी इस दृढता और मजबूती को देखकर आग लगाने वालो ने भी अपने मन मे लज्जा और कायरता का अनुभव किया ।

इस विषम एवं हिसक वातावरण मे भी वे लोगो को ओजस्वी स्वरो मे कहते रहे—"आज मै इस अवसर पर अपने शुभचिन्तको को पूर्णरूप से संयमित रहने का निर्देश देता हू । मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे किसी भी स्थिति में अहिसा को नही भूलेगे । हमारी विजय शाति मे है । शाति नही थकती, थकता है विरोध ।" इस घटना से उनकी अहिसा के प्रति गहरी निष्ठा और शातिप्रियता की स्पष्ट झलक मिलती है ।

उदार दृष्टिकोण

यह निर्विवाद सत्य है कि उदार व्यक्ति ही अहिसा का पालन कर सकता है । विना उदारता के व्यक्ति विपक्ष को सह नही सकता । आचार्य तुलसी उदारता की प्रतिमूर्ति है । इसका ज्वलन्त निदर्शन है—मेवाड और कलकत्ता का घटना प्रसग । कानोड गाव से विहार कर आचार्यवर आगे पधार रहे थे । उनके साथ मे सैकडो लोग नारे लगाते हुए आगे वढ रहे थे । आचार्यवर को ज्ञात हुआ कि जुलूस जिस मार्ग से आगे वढ रहा है, उस मार्ग मे अन्य मुनियो का व्याख्यान हो रहा है । आचार्य तुलसी दो क्षण रुके और निर्देश की भाषा मे श्रावको से कहा—"नारे वंद कर दिए जाए । श्रद्धालुओ ने प्रश्न उपस्थित किया—हम किसी को वाधा नही पहुचाना चाहते पर अपने मन के उत्साह को कैसे रोके ? सदा से ही ऐसा होता रहा है । फिर आज यह नयी वात क्यो उठी ? आचार्यवर ने उनके मानस को समाहित करते हुए कहा—"आगे मुनियो का प्रवचन हो रहा है । नारे लगाने से श्रोताओ को सुनने मे वाधा पहुचेगी ।" मनोवैज्ञानिक ढग से अपनी वात को समझाते हुए आचार्यश्री ने कहा—"तुम्हारी धर्मसभा मे साधु-साध्वियो का या मेरा प्रवचन होता है, उस समय दूसरे लोग नारे लगाते हुए वहा से गुजरे तो तुम्हे कैसा लगेगा ?" आचार्यश्री की यह वात उनके अत करण को छू गयी और सभी अनुयायी शातभाव से आगे वढने लगे । शांत जुलूस को देखकर दर्शक तो आश्चर्यचकित हुए ही, दूसरे सप्रदाय के लोगो पर भी इतना गहरा असर हुआ कि वे सहयोग कि भावना प्रदर्शित करने लगे । यह समन्वय एव सह-अस्तित्व का मार्ग है ।

सन् १९५९ कलकत्ता चातुर्मास की समाप्ति पर एक पत्रकार आचार्यश्री के चरणो मे उपस्थित हुआ और वोला—मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए । आचार्यश्री ने कहा—"मैने अभिशाप और दुराशीष कव दी थी ? तुमने चार महीने जी भरकर हमारे विरुद्ध लिखा, न लिखने की वात भी लिखी पर मैने कभी तुम्हारे प्रति दुर्भावना नही की, क्या यह आशीर्वाद नही

है ? मै उस समय भी अपनी साधना मे था, आज भी अपनी साधना में हूं। तुम्हारे प्रति मुझे कोई रोप नहीं है। हां, इस बात की प्रसन्नता है कि किसी भी समय यदि मनुष्य में अध्यात्म के भाव जागते है तो वह श्रेय का पथ है।" यह घटना उनके सहिष्णु व्यक्तित्व की कथा कह रही है। आलोचनाएं सुन-सुनकर आचार्यश्री की मानसिकता उतनी परिपक्व हो गयी है कि उनके मन पर विरोधी वातावरण का कोई विशेप प्रभाव नही होता।

विनोबा भावे के छोटे भाई शिवाजी भावे महाराष्ट्र यात्रा में आचार्यश्री से मिले। मिलने का प्रयोजन वताते हुए उन्होंने कहा— "आपके विरोध मे प्रकाशित साहित्य विपुल मात्रा मे मेरे पास पहुचा है। उसे देखकर मैने सोचा, जिस व्यक्ति के विरोध में इतना साहित्य छपा है, जो विरोध का प्रतिकार विरोध द्वारा नही करता, निश्चय ही वह कोई प्राणवान् एवं जीवन्त व्यक्ति होना चाहिए। आपसे मिलने के वाद मन में आता है कि यदि मै यहा नही आता तो मेरे जीवन मे वहुत वडा धोखा रह जाता।"

युवाचार्य महाप्रज्ञजी कहते है-- "ऐसा लगता है कि आचार्य तुलसी की जन्म कुंडली ख्याति और सघर्ष की कुडली है। ख्याति और सघर्ष को अलग-अलग नही किया जा सकता। ख्याति सघर्ष को जन्म देती है और सघर्ष ख्याति को जन्म देता है। यह अनुभव से निष्पन्न सचाई है।"

आचार्यश्री के जीवन मे अनेक वार वाह्य और अंतरंग संघर्ष आये है। पर उन्होने हर सघर्ष को समताभाव से सहन किया है।

आचार्यश्री देवास मे प्रवचन कर रहे थे। अचानक कुछ अज्ञानी लोगो ने पत्थर फेका। वह आचार्यश्री की पीठ पर लगा पर वे शांत रहे और इस घटना को तटस्थ भाव से देखते रहे। एक वार वे उज्जैन के रास्ते से गुजर रहे थे। एक भाई ने इत्र एव फूलमाला से स्वागत किया। पर आचार्यश्री मुस्कराकर आगे वढ गए। आचार्यश्री दोनो घटनाओ में मध्यस्थ रहे। न क्रोध, न प्रसन्नता। इन दोनो घटनाओ के परिप्रेक्ष्य में वे स्वानुभव की चर्चा करते हुए कहते है—"समय कितना विचित्र होता है। देवास मे पर्वतपुत्र (पत्थर) से कुछ लोगो ने स्वागत किया तो यहा पर तरुवरपुत्र (पुष्प) से स्वागत हो रहा है। पर हम तो दोनो को ही अस्वीकार करते है। वे कहते है—"मै अपने विपय मे अनुभव करता हू कि जैसे-जैसे अहिसा का मर्म हृदयगम हुआ है, वैसे-वैसे अधिक मध्यस्थ वना हू।"

महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी के शब्दों मे उनका व्यक्तित्व निन्दा के वातूल से विचलित नही होता तथा प्रशसा की थपकियो से प्रमत्त नही वनता, इसलिए वे महापुरुप है।

इन घटनाओ के आलोक मे आचार्य तुलसी की अहिसा का मूर्त्तरूप स्वत: हमारे दृष्टिपथ पर अवतरित हो जाता है। उनकी यह तेजस्वी अहिसा दूसरो के लिए भी अहिसा, प्रेम और मैत्री का वोधपाठ वन सकती है।

धर्म-चिन्तन

धर्म का स्वरूप

भारतीय संस्कृति की आत्मा धर्म है। यही कारण है कि यहा अनेक धर्म पल्लवित एव पुष्पित हुए है। सबने अपने-अपने ढग से धर्म की व्याख्या की है।

सुप्रसिद्ध लेखक लार्ड मोर्ले ने लिखा है—"आज तक धर्म की लगभग १० हजार परिभापाए हो चुकी है, पर उनमे भी जैन, बौद्ध आदि कितने ही धर्म इन व्याख्याओ से बाहर रह जाते है।" लार्ड मोर्ले की इस बात से यह चिन्तन उभर कर सामने आता है कि ये सब परिभाषाए धर्म-सम्प्रदाय की हुई है, धर्म की नही। आचार्य तुलसी कहते है—"सम्प्रदाय अनेक हो सकते है, पर उनमे निहित धर्म का सन्देश सबका एक है।"

आचार्य तुलसी ने क्लिष्ट शब्दावली से बचकर धर्म के स्वरूप को सहज एव सरल ढग से प्रस्तुत किया है। उनके साफ, स्पष्ट, प्रौढ़ एव सुलझे हुए विचारो ने जनता मे धर्म के प्रति एक नई जिज्ञासा, नया आकर्षण और नया विश्वास जागृत किया है। वे इस सत्य को स्वीकारते है कि हम जिस युग मे धर्म की पुन. प्रतिष्ठा की बात कर रहे है, वह उपलब्धि की दृष्टि से वैज्ञानिक, शक्ति की दृष्टि से आणविक और शिक्षा की दृष्टि से बौद्धिक है। क्या अबौद्धिक, अवैज्ञानिक और शक्तिहीन पद्धति से धर्म का उत्कर्ष सम्भव है ?

उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म की कसौटी पर कट्टर नास्तिक भी अपने को धार्मिक कहने मे गौरव का अनुभव करता है। धर्म के स्वरूप को विश्लेषित करती उनकी ये पक्तिया कितनी वैज्ञानिक एव वेधक बन पडी है—"मै उस धर्म का पक्षपाती नही हू, जो केवल क्रियाकाडो तक सीमित है, जो जड उपासना पद्धति से सम्बन्धित है, जो अवस्था विशेष के बाद ही किया जाता है। अथवा जिसमे अन्य सब कार्यो से निवृत्त होने की अपेक्षा रहती है। मेरी दृष्टि मे धर्म है—जीवन का स्वभाव।"[1] वे स्पष्ट शब्दो मे कहते है—"जो धर्म जीवन को परिवर्तन की दिशा नही देता, मनुष्य के व्यवहार मे जीवन्त नही होता, वह धर्म नही, सम्प्रदाय है, क्रियाकाड है, उपासना है।"

पथ, सम्प्रदाय या वर्ग तक ही धर्म को सीमित करने वालो की विवेक-चेतना जागृत करते हुए वे कहते है—"धर्म न तो पथ, मत, सम्प्रदाय,

---

१ क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?, पृ० ७७।

मन्दिर या मस्जिद में है और न धर्म के नाम पर पुकारी जाने वाली पुस्तकें ही धर्म है। धर्म तो सत्य और अहिंसा है। आत्मशुद्धि का साधन है।" जिन लोगो ने सामाजिक सहयोग को धर्म का बाना पहना दिया है, उनको प्रतिबोध देते हुए उनका कहना है—"किसी को भोजन देना, वस्त्र की कमी मे सहायता प्रदान करना, रोग आदि का उपचार करना अध्यात्म धर्म नही, किन्तु पारस्परिक सहयोग है, लौकिक धर्म है।"[1]

आचार्य तुलसी एक ऐसे धर्म के पक्षधर है, जहा सुख-शांति की पावन गगा-यमुना प्रवाहित होती है। इस विषय मे वे कहते है--"मै तो उसी धर्म का प्रचार व प्रसार करने में लगा हुआ हू, जो त्रस्त, दुःखी व व्याकुल मानव-जीवन को आत्मिक सुख-शांति व राहत की ओर मोडने वाला है, जो नारकीय धरातल पर खडे जन-जीवन को सर्वोच्च स्वर्गीय धरातल की ओर आकृष्ट करने वाला है।"[2]

इस सन्दर्भ मे उनकी दूसरी टिप्पणी भी विचारणीय है—"मै जिस धर्म की प्रतिष्ठा देखना चाहता हू, वह आज के भेदात्मक जगत् मे अभेदात्मक स्वरूप की कल्पना है। धर्म को मैं निर्विशेषण देखना चाहता हू। आज तक उसके पीछे जितने भी विशेषण लगे, उन्होने मनुष्य को बाटने का ही प्रयत्न किया है। इसलिए आज एक विशेषणरहित धर्म की आवश्यकता है, जो मानव-मानव को आपस मे जोड सके। यदि विशेषण ही लगाना चाहे तो उसे मानव-धर्म कह सकते है। इस धर्म का स्थान मंदिर, मठ या मस्जिद नही, अपितु मनुष्य का हृदय है।"[3]

धार्मिक कौन ?

धर्म और धार्मिक को अलग नही किया जा सकता। धर्म धार्मिक के जीवन मे मूर्त रूप लेता है किन्तु आज धार्मिक का व्यवहार धर्म के सिद्धान्तो से विपरीत है। आचार्य तुलसी कहते है—"मेरा विश्वास अधार्मिक को धार्मिक बनाने से पहले तथाकथित धार्मिक को सच्चा धार्मिक बनाने मे है। आज अधार्मिक को धार्मिक बनाना उतना कठिन नही, जितना कठिन एक धार्मिक को वास्तविक धार्मिक बनाना है।[4] धर्मस्थान मे धार्मिक और बाहर निकलते ही अन्याय, अत्याचार एव शोपण—इस विरोधाभासी दृष्टिकोण के वे सख्त विरोधी है। धार्मिक के दोहरे व्यक्तित्व पर व्यग्य करते हुए आचार्य तुलसी कहते है—"आज धार्मिक भगवान् से

---

१ एक बूद : एक सागर, पृ० ७४१।
२ जैन भारती, ३० मई १९५४।
३ हिसार, स्वागत समारोह मे प्रदत्त प्रवचन से उद्धृत।
४. ५-७-८४ जोधपुर मे हुए प्रवचन से उद्धृत।

मिलना चाहते है, किन्तु पडोसी से मिलना नही चाहते । वे मन्दिर मे जाकर भक्त कहलाना चाहते है लेकिन दुकान और वाजार मे ग्राहको को धोखा देने से बचना नही चाहते ।''

धर्म जीवन का रूपान्तरण करता है। पर जिनमे परिवर्तन घटित नही होता उन धार्मिको को सम्वोधित करते हुए वे कहते हैं—''मै उन धार्मिको से हैरान हू, जो पचास वर्षो से धर्म करते आ रहे है, किन्तु जीवन मे परिवर्तन नही आ रहा है ।''

धार्मिक की सवसे वडी पहचान है कि वह प्रेम और करुणा से भरा होता है। धार्मिक होकर भी व्यक्ति लड़ाई, झगडे, दगे-फसाद करे, यह देखकर आश्चर्य होता है। इस विपय मे आचार्य तुलसी दु ख भरे शव्दो मे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है—''धार्मिक अधर्म से लडे, यह तो समझ मे आता है, किन्तु एक धार्मिक दूसरे धार्मिक से लडे, यह दु.ख का विषय है ।''

वे धर्म और नैतिकता को विभक्त करके नही देखते । धार्मिक होकर यदि व्यक्ति नैतिक नहीं है तो यह धर्म के क्षेत्र का सवसे वड़ा विरोधाभास है। वे इस वात को गणितीय भापा मे प्रस्तुत करते है—''आज देश की लगभग ८० करोड की आवादी मे सत्तर करोड जनता धार्मिक मिल सकती है पर जहा तक ईमानदारी का प्रश्न है, दो करोड भी सम्भव नही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वेईमान धार्मिको की सख्या अधिक है ।''[1] वे कहते है—''एक धार्मिक कहलाने वाला व्यक्ति चरित्रहीन हो, हिसा पर उतारू हो, आक्राता हो, धोखाधड़ी करने वाला हो, छुआछूत मे उलझा हुआ हो, शराव पीता हो, दहेज की माग करता हो और भी अनेक अनैतिक आचरण करता हो, क्या वह धार्मिक कहलाने का अधिकारी है ?[2]

सच्चे धार्मिक की पहचान वताते हुए वे कहते है—''अशाति मे जो आदमी शाति को ढूढ निकालता है, अपवित्रता मे से जो पवित्रता को ढूढ लेता है, असन्तुलन मे से जो सन्तुलन को खोज लेता है और अन्धकार मे से प्रकाश को ढूढ लेता है, वह धार्मिक है ।[3]

वे धार्मिक की कसौटी मन्दिर या धर्मस्थान मे जाना नही मानते अपितु उसकी सही कसौटी दुकान पर वैठकर पवित्र रहना मानते है ।[4] इसी वात को वे साहित्यिक शैली मे प्रस्तुत करते हुए कहते है—

---

१ विज्ञप्ति स० ८२७ ।
२ एक बूद : एक सागर, पृ० ६१ ।
३. क्या धर्म बुद्धिगम्य है ? पृ० १२ ।
४. १३-७-६९ के प्रवचन से उद्धृत ।

"अप्रमाणिक या अनैतिक जीवन मे धार्मिक होने का दावा फटे टाट मे रेशमी पैवन्द लगाने जितना उपहासास्पद है।"

उनके साहित्य मे उन लोगो के समक्ष अनेक ऐसे प्रश्न उपस्थित है, जो पीढियो से अपने को धार्मिक मानते आ रहे है। ये प्रश्न उन्हे अपने बारे मे नए ढग से सोचने को विवश करते है तथा अन्तर में झांकने के लिए प्रेरित करते है। यद्यपि ये प्रश्न बहुत सामान्य एव व्यावहारिक है पर रूपांतरण घटित करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। यहां कुछ प्रश्नो को उपस्थित किया जा रहा है:—

१ समता या मैत्री का व्रत लिया है, पर दूसरो के प्रति क्रूरता कम हुई या नही, इसकी आलोचना करे।

२ सत्य के प्रति निष्ठा दरसाई है, पर ईमानदारी की वृत्ति बढ़ी या नही, इसका अनुवीक्षण करे।

३ सरल जीवन बिताने का सकल्प लिया है। पर वक्रता का भाव छूटा या नही, इसे टंटोले।

४ सयम का पथ चुना है, पर जीवन की आवश्यकताएं कम हुई या नही, मुडकर देखे।[1]

धर्म और राजनीति

धर्म और राजनीति दो भिन्न-भिन्न धाराए है। दोनो का उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न है। धर्म व्यक्तित्व रूपान्तरण की प्रक्रिया है और राजनीति राज्य को सही दिशा मे ले चलने वाली प्रक्रिया। आचार्य तुलसी के शब्दो में राजनीति का सूत्र है—दूसरो को देखो और धर्मनीति का सूत्र है—अपने आपको देखो।" आचार्य तुलसी की यह बहुत स्पष्ट अवधारणा है कि धर्म जब अपनी मर्यादा से दूर हटकर राज्य सत्ता मे घुलमिल जाता है तो वह विष से भी अधिक घातक बन जाता है।"[2] उनका चिन्तन है कि यदि राजनीति से धर्म का विसंबंधन नही रहा तो वह विरोध, सघर्ष और युद्ध का साधनमात्र रह जाएगा।[3] जहां कही धर्म का राजनीति के साथ गठबन्धन कर उसे जनता पर थोपा गया, वहा हिसा और रक्तपात ने समूचे राष्ट्र मे तबाही मचा दी।[4] इसका कारण स्पष्ट करते हुए वे कहते है—"राजनीति अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए हिसा के कधे पर सवारी कर लेती है पर धर्म का हिंसा के साथ दूर का भी रिश्ता नही है।"

---

१ पथ और पाथेय, पृ० ९१-९२।

२. धर्म और भारतीय दर्शन, पृ० ५।

३. जैन भारती, ८ मई १९५५।

४. एक बूद : एक सागर, पृ० ७४०।

आचार्य तुलसी के उपरोक्त चिन्तन ने उनके व्यक्तित्व में एक ऐसा आकर्षण पैदा किया है कि अनेक राष्ट्र-नायक समय-समय पर उनके चरणो मे उपस्थित होते रहते है पर आचार्यश्री अपना अनुभव इन शब्दो मे व्यक्त करते है—धर्माचार्य और राजनयिक के मिलन का अर्थ यह कभी नही है कि धर्म और राजनीति एक हो गए। राजनीति ने बहुत वार हमारे दरवाजे पर आकर दस्तक दी है, पर हमने उसे विनम्रतापूर्वक लौटा दिया।"

धर्म और राजनीति को विरोधी मानते हुए भी आचार्य तुलसी आज की भ्रष्ट, स्वार्थी, पदलोलुप और मायायुक्त राजनीति की छवि को स्वच्छ बनाने के लिए राजनीति मे धर्मनीति का समावेश आवश्यक मानते है। उनका चिन्तन है कि निस्पृह होने के कारण धर्मनेता मे ही वह शक्ति होती है कि वे राजनीति पर अकुश रख सके, उसे उच्छृंखल होने से बचा सके। वे अनेक वार अपनी प्रवचन सभाओ मे स्पष्ट कहते है—"यदि धर्म नही रहा तो राजनीति अनीति वन जाएगी। उसकी सफलता क्षणस्थायी होगी या फिर वह असफल, भ्रष्ट और दलवदलू हो जाएगी। पर, आचार्य तुलसी धर्म का राजनीति मे हस्तक्षेप नैतिक नियन्त्रण और मार्गदर्शन तक ही उचित मानते है, उससे आगे नही। प्रसिद्ध साहित्यकार सरदारपूर्णसिह 'सच्ची वीरता' मे यहा तक लिख देते है कि हमारे असली और सच्चे राजा ये साधु पुरुष ही है।

धर्म और राजनीति मे समन्वय करता हुआ उनका निम्न उद्धरण आज की दिशाहीन राजनीति को नया प्रकाश देने वाला है—"धर्म के चार आधार है—क्षाति, मुक्ति, आर्जव और मार्दव। मुझे लगता है लोकतन्त्र के भी चार आधार है। लोकतन्त्र के सन्दर्भ मे क्षाति का अर्थ होगा—सहिष्णुता। मुक्ति का अर्थ होगा—निर्लोभता या पद के प्रति अनासक्ति। ऋजुता का अभिप्राय होगा—मन, वचन और शरीर की सरलता, कुटिलता का अभाव तथा मार्दव का अर्थ होगा—व्यवहार की मृदुता, विरोधी दल पर छीटाकशी का अभाव।"[1]

धर्म और राजनीति इन दो विरोधी तत्त्वो मे सामजस्य करते हुए उनका चिन्तन कितना सटीक है—"यद्यपि इस वात से इन्कार नही किया जा सकता कि धर्म की विकृतियो को मिटाने के लिए राजनीति और राजनीति की विकृतियो को मिटाने के लिए धर्म का अपना उपयोग है। पर जव इन्हे एकमेक कर दिया जाता है तो अनेक प्रकार की समस्याए खडी होती है। अभी कुछ राष्ट्रो में इन्हे एकमेक किया जा रहा है पर इससे समस्याए भी वढी है।"[2]

१. १-१२-६९ के प्रवचन से उद्धृत।
२. जैन भारती, १६ अगस्त १९७०।

आचार्य तुलसी ने राष्ट्र की अनेक समस्याओं का हल राजनेताओं के समक्ष प्रस्तुत किया है क्योंकि उनकी दृष्टि मे राजनैतिक वादो की समस्याओं का हल भी धर्म के पास है। साम्यवाद और पूजीवाद का सामजस्य करते हुए ५० वर्ष पूर्व कही गयी उनकी निम्न टिप्पणी कितनी महत्त्वपूर्ण है—

"अमर्यादित अर्थ-लालसा समस्या का मूल है। पूजीपति शोषण की सुरक्षा दान की आड मे चाहते है। पर अब वह युग बीत गया है। पूजीपति यदि संग्रह के विसर्जन की बात नही समझे तो वैषम्य का चालू प्रवाह न एटमबम और उद्जनबम से रुकेगा और न अस्त्र-शस्त्रो के निर्माण से। आज के त्रस्त जन-हृदय मे विप्लव है।...... ...संग्रह की निष्ठा आज हिंसा को निमत्रण है। आवश्यकताओ का अल्पीकरण अपरिग्रह की दिशा है। यही पूजीवाद और साम्यवाद के तनाव को मिटाने का व्यवहार्य मार्ग है।'[1]

उनके इसी समाधायक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिह ने हजारो की उपस्थिति मे आचार्यश्री के चरणों मे अपनी भावना प्रस्तुत करते हुए कहा—"आपको सरकार की नही, अपितु सरकार को आपकी जरूरत है।"

धर्म और विज्ञान

धर्म और विज्ञान को विरोधी तत्त्व मानकर बहुत सारे धर्माचार्य विज्ञान की उपेक्षा करते रहे है। यही कारण है कि अध्यात्म और विज्ञान परस्पर लाभान्वित नही हो सके। आचार्य तुलसी ने इस दिशा मे एक नई पहल करते हुए दोनो मे सामजस्य स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया है। वे धर्म और विज्ञान को एक ही सिक्के के दो पहलू मानते है जिनको कि अलग नही किया जा सकता। वे बहुत स्पष्ट शब्दो मे कहते हैं कि धर्म की तेजस्विता विज्ञान से ही संभव है, क्योकि विज्ञान प्रयोग से जुडा होने के कारण धर्म को रूढ होने से बचाता है। साथ ही प्रकृति के रहस्यो का उद्घाटन करके विज्ञान ने जो शक्ति मानव के हाथो मे सौंपी है, उस शक्ति का सही उपयोग धार्मिक हाथो से ही संभव है।[2]

उनका अनुभव है कि धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के पूरक और सापेक्ष होकर चले तो भारतीय सस्कृति मे नव उन्मेष सभव है। क्योकि विज्ञान जहा बाह्य सुख-सुविधा प्रदान करता है, वहा अध्यात्म आन्तरिक पवित्रता एव सुख-शाति देता है। सन्तुलित एव शातिपूर्ण जीवन के लिए दोनो आवश्यक है। अन्यथा ये दोनो खण्डित सत्य को ही अभिव्यक्ति देते रहेगे।"[3]

१. नैतिकता की ओर, पृ० ४।
२ जैन भारती, १४ सितम्बर १९६९।
३ २७-८-६९ के प्रवचन से उद्धृत।

अपने एक प्रवचन मे दोनों की उपयोगिता एव कार्यक्षेत्र पर प्रकाश डालते हुए वे कहते है—"विज्ञान की आशातीत सफलता देखकर लगता है, विज्ञान के बिना मनुष्य की गति नही है। पर साथ ही आतरिक शक्ति के विकास विना वाह्य शक्ति का विकास अपूर्ण ही नही, विनाशकारी भी है।[1] एक गेय गीत मे भी वे इस सत्य का सगान करते है—

"कोरी आध्यात्मिकता युग को त्राण नही दे पाएगी,
कोरी वैज्ञानिकता युग को प्राण नही दे पाएगी,
दोनो की प्रीत जुडेगी, युगधारा तभी मुडेगी।"

उनका सन्तुलित दृष्टिकोण जहा दोनो की अच्छाई देखता है, वहा वुराई की भी समीक्षा करता है। विज्ञान की समालोचना करते हुए वे कहते है—"वर्तमान विज्ञान जड तत्त्वो की छान-वीन मे लगा हुआ है। वह भौतिकवादी दृष्टिकोण के सहारे पनपा है अत. आत्म-अन्वेपण से उदासीन है।" इसी प्रकार धर्म के बारे मे भी उनका चिन्तन स्पष्ट है—"जिस धर्म के सहारे सुख-सुविधा के साधन जुटाए जाते है, प्रतिष्ठा की कृत्रिम भूख को शात किया जाता है, प्रदर्शन और आडम्वर को प्रोत्साहन दिया जाता है, उस धर्म की शरण से शाति नही मिल सकती।"[2]

वे इस वात से चिन्तित है कि वैज्ञानिक आविष्कारों ने पृथ्वी का अनावश्यक दोहन प्रारम्भ कर दिया है। विश्व को पलक झपकते ही समाप्त किया जा सके, ऐसे अणुशस्त्रो का निर्माण हो चुका है। ऐसी स्थिति मे उनका समाधायक मन कहता है कि अध्यात्म ही वह अकुश है, जो विज्ञान पर नियन्त्रण कर सकता है।

धर्म और सम्प्रदाय

साम्प्रदायिकता का उन्माद प्राचीनकाल से ही हिंसा एव विध्वस का ताडव नृत्य प्रस्तुत करता रहा है। इतिहास गवाह है कि एक मुस्लिम शासक ने अपने राज्यकाल के ११ वर्षो मे धर्म और प्रान्त के नाम पर खून की नदिया ही नही वहाई वल्कि एक ग्रन्थालय का ईंधन के रूप मे उपयोग किया, जो १० लाख वहुमूल्य ग्रन्थो से परिपूर्ण था। वे पुस्तके पाच हजार रसोइयो के लिए छह मास के ईन्धन के रूप मे पर्याप्त थी। इस दुष्कृत्य का तार्किक समाधान करते हुए साप्रदायिक अभिनिवेश में रगा वह शासक वोला—"यदि ये पुस्तके कुरान के अनुकूल है तो कुरान ही पर्याप्त है। यदि कुरान के प्रतिकूल है तो काफिरो की पुस्तको की कोई आवश्यकता नही।" धर्म और मजहब के नाम से ऐसे भीषण अत्याचारो से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े है।

---

१. जैन भारती, १४ सितम्वर १९६९।
२ खोए सो पाए, पृ० ६३।

किसी भी महापुरुष ने धर्म का प्रारम्भ किसी सीमित दायरे मे नही किया पर उनके अनुगामी संख्या के व्यामोह मे सम्प्रदाय के घेरे मे बन्ध जाते है तथा धर्म के स्वरूप को विकृत कर देते है। सम्प्रदाय के सन्दर्भ में आचार्य तुलसी का चिन्तन बहुत स्पष्ट एवं मौलिक है—"मेरी आस्था इस बात मे है कि सम्प्रदाय अपने स्थान पर रहे और उसका उपयोग भी है किन्तु वह सत्य का स्थान न ले। सत्य का माध्यम ही बना रहे, स्वय सत्य न बने।"[1]

आचार्य तुलसी के अनुसार सप्रदाय के नाम पर मानव जाति की एकता और अखडता को बांटना अक्षम्य अपराध है। इस सन्दर्भ मे उनका चिन्तन है कि भौगोलिक सीमा, जाति आदि ने मनुष्य जाति को बाटा तो उसका आधार भौतिक था। इसलिए उन्हें दोष नही दिया जा सकता पर धर्म-सम्प्रदाय ही मानव जाति को विभक्त कर डाले, यह अक्षम्य है।[2] उनका चिन्तन है कि जो लोगो को बांटते है, ऐसे तथाकथित धार्मिकों से तो वे नास्तिक ही भले है, जो धर्म को नही मानते तो धर्म के नाम पर ठगी भी नही करते।[3]

आचार्य तुलसी का मानना है कि साम्प्रदायिक भावनाओ को प्रश्रय देने वाले सप्रदाय खतरे से खाली नही है। उनका भविष्य कालिमापूर्ण है।[4] एक धर्म-सम्प्रदाय के आचार्य होते हुए भी वे स्पष्ट कहते है—"एक सप्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय पर कीचड उछाले और यह कहें—धर्म तो हमारे सम्प्रदाय में है अन्य सब झूठे है। हमारे सम्प्रदाय मे आने से ही मुक्ति होगी यह सकुचित दृष्टि समाज का अहित कर रही है।"[5]

आचार्य तुलसी ने अपने साहित्य मे साप्रदायिकता का जितना विरोध किया है उतना किसी अन्य आचार्य ने किया हो, यह इतिहासकारो के लिए खोज का विषय है। अपने एक प्रवचन मे वे स्पष्ट शब्दो मे कहते हैं—"सप्रदायवादी बातो से मुझे चिढ़ हो गयी है। फलतः मुझे ऐसा अभ्यास हो गया है कि मै एक महीने तक निरन्तर प्रवचन करूं, उसमे धर्म विशेष का नाम लिए बिना मैं नैतिक बाते कह सकता हूं। मै अपनी प्रवचन सभाओ मे ऐसे प्रयोग करता रहता हू, जिससे कट्टरपन्थी विचारको को भी मुक्तभाव से सोचने का अवसर मिले। इतना ही नही, जहा साप्रदायिक संकीर्णता नही, वह समारोह किसी भी जाति का हो, किसी भी सम्प्रदाय द्वारा आयोजित

---

१. एक बूद : एक सागर, पृ० १७२३।
२. जैन भारती, १६ मई १९५४।
३. बहता पानी निरमला, पृ० ९८।
४. जैन भारती, २० अप्रैल १९५८।
५. दक्षिण के अंचल मे, पृ० ७१८।

हो, नैतिक एव आध्यात्मिक मूल्यो की प्रतिष्ठा के लिए मै सदैव उनके साथ हू और रहूगा ।[1]

आचार्य तुलसी का स्पष्ट कथन है कि सम्प्रदायो की अनेकता धर्म की एकता को खडित नही कर सकती क्योकि प्रत्येक व्यक्ति अपने आपमे एक सम्प्रदाय है । मम्प्रदाय को मिटाने का अर्थ है— व्यक्ति के अस्तित्व को मिटाना ।[2] साथ ही वे यह भी कहते है कि जिस प्रकार धूप और छाव को किसी घर के अन्दर वन्द नही किया जा सकता, उसी प्रकार धर्म को भी किसी एक सप्रदाय या वर्ग तक सीमित नही किया जा सकता । धर्म तो आकाश की तरह व्यापक है, सप्रदाय तो उसमे झाकने की खिड़किया है ।"

आचार्य तुलसी ने अणुव्रत के मच पर सव धर्म के वक्ताओ को उन्मुक्त भाव से आमन्त्रित किया है । वम्वई मे फादर विलियम अणुव्रत के वारे मे अपने विचार व्यक्त करने लगे । कार्यक्रम समाप्ति पर एक भाई आचार्यश्री के पास आकर वोला—"आपने फादर विलियम को अपने मच पर खडा करके खतरा मोल लिया है । तेरापन्थी भाई उसके भाषण से प्रभावित होकर ईसाई वन जाएगे ।" आचार्यश्री ने उस भाई को उत्तर देते हुए कहा—"एक अन्य सम्प्रदाय का व्यक्ति यदि अपने जीवन पर अणुव्रत के प्रभाव को व्यक्त करता है तो इससे अन्य लोगो को भी अणुव्रती वनने की प्रेरणा मिलती है । इस स्थिति मे यदि कोई तेरापन्थी ईसाई वनता है तो मुझे कोई चिन्ता नही । मै तो ऐसे अनुयायी देखना चाहता हू जो विरोधी तत्त्वो को सुनकर भी अप्रकम्पित रहे ।"[3] इस घटना के आलोक मे उनके उदार एव असाम्प्रदायिक विचारो को पढा जा सकता है ।

रायपुर के अशात एव हिसक वातावरण मे वे सार्वजनिक प्रवचन मे स्पष्ट शव्दो मे कहते है—"यदि मेरे अनुयायी साम्प्रदायिक अशाति मे योग देने की भावना रखेगे तो मै उनसे यही कहूगा कि उन्होने आचार्य तुलसी को पहचाना नही है ।" इसी सन्दर्भ मे एक पत्रकार के साथ हुई वार्ता को उद्धृत करना भी अप्रासगिक नही होगा । पत्रकार--"आचार्यजी ! क्या आप अणुव्रत के माध्यम से अधिक से अधिक लोगो को तेरापन्थी वनाने की वात तो नही सोच रहे है ? आचार्यश्री—"यदि आप ऐसा सोचते है तो समझिए आप अधकार मे है, असम्भव कल्पना लेकर चलते है ।" अणुव्रत की ओट मे मम्प्रदाय वढाने की वात सोचना क्या जनता के साथ धोखा नही होगा ? मेरी मान्यता है कि अणुव्रत के प्रकाश मे व्यक्ति अपना जीवन देखे और उसे

१ एक बूद : एक सागर, पृ० १७२२ ।
२ जैन भारती, १२ नव० १९६१ ।
३ जैन भारती, १८ नव० ६२ ।

सही पथ पर ले चले। फिर चाहे वह जैन, वौद्ध, मुस्लिम या ईसाई कोई भी हो। किसी भी जाति, दल या समाज का हो।"

ऐसे हजारो प्रसगो को उद्धृत किया जा सकता है जो अणुव्रत के व्यापक, असाम्प्रदायिक और सार्वजनीन स्वरूप को प्रकट करते है।

साम्प्रदायिक उन्माद को दूर करने हेतु उनका चिन्तन है कि जितना वल उपासना पर दिया जाता है, उससे अधिक वल यदि क्षमा, सत्य, सयम, त्याग.. ....आदि पर दिया जाए तो धर्म प्रधान हो सकता है और सम्प्रदाय गौण।"[1] उनके विशाल चिन्तन का निष्कर्ष यही है कि धर्म वही कुण्ठित होता है, जहा धार्मिक या धर्मनेता धर्म की अपेक्षा सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा का ख्याल अधिक रखते है।"

धार्मिक सद्‌भाव

आचार्य तुलसी ने धर्म के क्षेत्र में एकता और समन्वय का उद्‌घोष किया है। उन्हे इस वात का आश्चर्य होता है कि जो धर्म एक दिन सभी प्रकार के झगडो का निपटारा करता था, उसी धर्म के लिए लोग आपस मे लड रहे है।[2] साम्प्रदायिक उन्माद से होने वाली हिंसा एवं अकृत्य को देखकर वे अनेक वार खेद प्रकट करते हुए कहते हैं "धार्मिक समाज के हीनत्व की वात जव भी मेरे कानो मे पडती है, मुझे अत्यन्त पीडा की अनुभूति होती है। मै सहअस्तित्व और समन्वय मे विश्वास करता हू। इसलिए मैने सभी समाजो और सम्प्रदायो के साथ समन्वय साधने का प्रयत्न किया है। इस सदर्भ मे उनकी निम्न उक्ति मननीय है—"एक धर्माचार्य होते हुए भी मुझे खेद के साथ कहना पडता है कि दो विरोधी राजनेता परस्पर मिल सकते है, शाति से विचार-विनिमय कर सकते है, किन्तु दो धर्माचार्य नही मिल सकते। धर्म गुरुओ की पारस्परिक ईर्ष्या, कलह और विद्वेप को देखकर लगता है पानी मे आग लग गई। वधुओ! मै इस आग को बुझाना चाहता हू। और इसके लिए आप सवका सहयोग चाहता हू।[3]" निम्न दो उद्धरण भी उनके उदार मानस के परिचायक है—

"मैं चाहता हू कि भारत के सभी धर्म फले-फूले। अपनी वात कहता हूं कि मै किसी धर्म पर आक्षेप करता नही, करना चाहता नही और करने देता नही।"[4]

---

१ क्या धर्म वुद्धिगम्य है ? पृ० १३।

२ विवरण पत्रिका, अप्रैल १९४७।

३ दक्षिण के अंचल मे, पृ ३४५।

४ एक बूद . एक सागर, पृ० १७२२।

"मै नही मानता कि धर्म का सम्पूर्ण अधिकारी मै ही हू, दूसरे सव अधार्मिक है। मैं अपने साथ उन सव व्यक्तियों को धार्मिक मानता हू, जिनका विश्वास सत्य मे है, अहिसा मे है, मैत्री मे है।"[1]

जन-जीवन मे समन्वय एव सौहार्द की प्रेरणा भरने हेतु वे अपने साहित्य मे अनेक बार इस वात को दोहराते रहते है—"एक धार्मिक सप्रदाय, इतर धार्मिक सम्प्रदाय के साथ अमानवीय व्यवहार करता है। एक दूसरे पर आक्षेप व छीटाकशी करता है, एक के विचारो को विकृत वनाकर लोगो को भडकने व वहकाने के लिए प्रचार करता है तो यह अपने आपके साथ धोखा है। अपनी कमजोरी का प्रदर्शन है। अपने दुष्कृत्यो का रहस्योद्घाटन है और अपनी सकीर्ण भावना व तुच्छ मनोवृत्ति का परिचायक है।[2]

उनके असाम्प्रदायिक एव उदार दृष्टि के उदाहरण मे निम्न प्रवचनाश को उद्धृत किया जा सकता है—"मुझसे कई वार लोग पूछते है—सवसे अच्छा कौन-सा धर्म है? मै कहा करता हू—"सवसे अच्छा धर्म वही है, जो धर्मानुयायियो के जीवन मे अहिसा और सत्य की व्याप्ति लाए। जिसका पालन करने वालो का जीवन त्याग, सयम और सदाचरण की ओर झुका हो।[3] वे स्पष्ट उद्घोषणा करते है—"मेरा सम्प्रदाय ही श्रेष्ठ है—यह सोचना धार्मिक उन्माद का प्रतिफल है और चितन शक्ति का दारिद्र्य है।[4]

आचार्य तुलसी धर्म को इतना व्यापक देखना चाहते है कि वहा तव और मम का भेद ही न रहे। वे अपनी मनोभावना प्रकट करते है कि मै उस समय का इतजार कर रहा हू, जव बिना किसी जातिभेद के मानव-मानव धर्मपथ पर प्रवृत्त होगा।[5]

आचार्य तुलसी धार्मिक सद्भाव एव समन्वय के परिपोषक है पर उनकी दृष्टि मे धर्म-समन्वय का अर्थ अपने सिद्धातो को ताक पर रखकर अपने आपका विलय करना कतई नही है। पाचो अगुलियो को एक वनाने जैसी काल्पनिक एकता को वे वहुमूल्य नही मानते। वे मानते है कि व्यक्तिगत रुचि, आस्था, मान्यता आदि सदा भिन्न रहेगी, पर उनमे आपसी टकराव न हो, परस्पर सहयोग, सद्भाव एव सापेक्षता वनी रहे, यह आवश्यक है।[6]

---

१ जैन भारती, ९ नवम्वर १९६९।
२ जैन भारती, २० जून १९५४।
३ जैन भारती, ८ अप्रैल १९५६।
४ एक बूद एक सागर, पृ. ७६४।
५ १-१२-६४ के प्रवचन से उद्धृत।
६ राजपथ की खोज, पृ १८२।

समन्वय की व्याख्या उनके शब्दों मे इस प्रकार है—"मेरे अभिमत से सद्भाव और समन्वय का अर्थ है—मतभेद रहते हुए भी मनभेद न रहे, अनेकता मे एकता रहे।[1] अपने विचारो को सशक्त भाषा मे रखें पर दूसरों के विचारों को काटकर या तिरस्कृत करके नही। स्वय द्वारा स्वीकृत सही सिद्धांतो के प्रति दृढ विश्वास रहे पर दूसरो के विचारो के प्रति सहिष्णुता हो।[2] आचार्य तुलसी के विचार से सर्वधर्मसद्भाव का विचार अनाग्रह की पृष्ठभूमि पर ही फलित हो सकता है।

सर्वधर्म एकता के लिए उन्होने रायपुर चातुर्मास (सन् १९७०) में त्रिसूत्री कार्यक्रम की रूपरेखा भी प्रस्तुत की—[3]

१ सभी धर्म-सम्प्रदायो के आचार्य या नेता समय-समय पर परस्पर मिलते रहे। ऐसा होने से अनुयायी वर्ग एक दूसरे के निकट आ सकता है और भिन्न-भिन्न सप्रदायो के बीच मैत्री भाव स्थापित हो सकता है।

२ समस्त धर्मग्रन्थो का तुलनात्मक अध्ययन हो। ऐसा होने से धर्म-सम्प्रदायो मे वैचारिक निकटता बढ सकती है।

३. समस्त धर्मों से कुछ ऐसे सिद्धात तैयार किए जाएं जो सर्वसम्मत हो। उनमे सप्रदायवाद की गध न रहे, ताकि उनका पालन करने मे किसी भी सप्रदाय के व्यक्ति को कठिनाई न हो।

असाम्प्रदायिक धर्म : अणुव्रत

एक धर्मसघ एव सम्प्रदाय से प्रतिबद्ध होने पर भी आचार्य तुलसी का दृष्टिकोण असाम्प्रदायिक रहा है। इस बात की पुष्टि के लिए निम्न उद्धरण पर्याप्त होगे—

० जैन धर्म मेरी रग-रग मे, नस-नस मे रमा हुआ है, किन्तु साम्प्रदायिक दृष्टि से नही, व्यापक दृष्टि से। क्योंकि मैं सम्प्रदाय मे रहता हू पर सम्प्रदाय मेरे दिमाग मे नही रहता।

० तेरापथ किसी व्यक्ति विशेप या वर्गविशेप की थाती नही है बल्कि जो प्रभु के अनुयायी है, वे सब तेरापंथ के अनुयायी हैं और जो तेरापथ के अनुयायी है, वे सब प्रभु के अनुयायी है।[4]

० मैं सोचता हू मानव जाति को कुछ नया देना है तो साप्रदायिक दृष्टि से नही दिया जा सकता, सकीर्ण दृष्टि से नही दिया जा सकता, व्यापक

---

१ जैन भारती, २१ अप्रैल १९६८।
२ अमृत महोत्सव स्मारिका पृ० १३।
३ समाधान की ओर, पृ ४२।
४. जैन भारती, २६ जून १९५५।

दृष्टि से ही दिया जा सकता है। यही कारण है कि मैंने सम्प्रदाय की सीमा को अलग रखा और धर्म की सीमा को अलग।"

इसी व्यापक दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर आचार्य तुलसी ने असाम्प्रदायिक धर्म का आदोलन चलाया, जो जाति, वर्ण, वर्ग, भाषा, प्रांत एव धर्मगत संकीर्णताओं से ऊपर उठकर मानव-जाति को जीवन-मूल्यो के प्रति आकृष्ट कर सके। इस असाम्प्रदायिक मानव-धर्म का नाम है—**'अणुव्रत आंदोलन।'** अणुव्रत को असाम्प्रदायिक धर्म के रूप मे प्रतिष्ठित करने वाला उनका निम्न उद्धरण इसकी महत्ता के लिए पर्याप्त है—

"इतिहास मे ऐसे धर्मो की चर्चा है, जिनके कारण मानव जाति विभक्त हुई है। जिन्हे निमित्त बनाकर लडाइयां लडी गई है किन्तु विभक्त मानव जाति को जोड़ने वाले अथवा संघर्ष को शान्ति की दिशा देने वाले किसी धर्म की चर्चा नही है। क्यों ? क्या कोई ऐसा धर्म नही हो सकता, जो ससार के सब मनुष्यो को एकसूत्र में बाध सके। अणुव्रत को मैं एक धर्म के रूप मे देखता हूं पर किसी संप्रदाय के साथ इसका गठबन्धन नही है। इस दृष्टि से मुझे यह स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही है कि अणुव्रत धर्म है, पर यह किसी वर्ग विशेष का धर्म नही है।"[1]

अणुव्रत जीवन को अखड बनाने की बात कहता है। अणुव्रत के अनुसार ऐसा नही हो सकता कि व्यक्ति मंदिर में जाकर भक्त बन जाए और दुकान पर बैठकर क्रूर अन्यायी। अणुव्रत कहता है—"तुम मदिर, मस्जिद, चर्च कही भी जाओ या न जाओ, अगर रिश्वत नही लेते हो, बेईमानी नही करते हो, आवेश के अधीन नही होते हो, दहेज की माग नही करते हो, व्यसनो को निमत्रण नही देते हो, अस्पृश्यता से दूर हो तो सही माने मे धार्मिक हो।"[2]

धार्मिकता के साथ नैतिकता की नयी सोच देकर अणुव्रत ने एक नया दर्शन प्रस्तुत किया है। पहले धार्मिकता के साथ केवल परलोक का भय जुडा था। उसे तोडकर अणुव्रत ने इहलोक सुधारने की बात कही तथा धर्माराधना के लिए कोई खास देश या काल की प्रतिबद्धता निर्धारित नही की।

भारत के गिरते नैतिक एव चारित्रिक मूल्यों को देखकर अणुव्रत ने एक आवाज उठाई—"जिस देश के लोग धार्मिकता का दंभ नही भरते, वहां अनैतिक स्थिति होती है तो क्षम्य हो सकती है क्योकि उनके पास कोई

---

१. बैसाखिया विश्वास की, पृ० ५।
२. एक बूद : एक सागर, पृ० ४९।

आध्यात्मिक दर्शन नही होता, कोई रास्ता दिखाने वाला नही होता। किंतु यह विपम स्थिति महावीर, वुद्ध और गाधी के देश मे हो रही है, जहां से सारे संसार को चरित्र की शिक्षा मिलती थी। भारत की माटी के कण-कण मे महापुरुषो के उपदेश की प्रतिध्वनियां है। यहां गाव-गाव मे मंदिर हैं, मठ हैं, धर्मस्थान है, धर्मोपदेशक है। फिर भी यह चारित्रिक दुर्वलता! एक अनुत्तरित प्रश्न आज भी आक्रांत मुद्रा में खड़ा है।"[1]

अणुव्रत के माध्यम से आचार्य तुलसी अपने संकल्प की अभिव्यक्ति निम्न शव्दो मे करते है—"अणुव्रत ने यह दावा कभी नही किया है कि वह इस धरती से भ्रष्टाचार की जडे उखाड़ देगा। वह सदाचार की प्रेरणा देता है और तव तक देता रहेगा, जव तक हर सुवह का सूरज अन्धकार को चुनौती देकर प्रकाश की वर्षा करता रहेगा।"[2]

अणुव्रत की आचार महिता से प्रभावित होकर स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहते है—"अणुव्रत आदोलन का उद्देश्य नैतिक जागरण और जनसाधारण को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करना है। यह प्रयास अपने आपमे इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसका सभी को स्वागत करना चाहिए। आज के युग में जवकि मानव अपनी भौतिक उन्नति से चकाचौध होता दिखाई दे रहा है और जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक तत्त्वो की अवहेलना कर रहा है, वहां ऐसे आंदोलनो के द्वारा ही मानव अपने सतुलन को वनाए रख सकता है और भौतिकवाद के विनाशकारी परिणामो से वचने की आशा कर सकता है।"

अणुव्रत आदोलन ने अपने व्यापक दृष्टिकोण से सभी धर्मों के व्यक्तियो को धर्म एव नैतिक मूल्यो के प्रति आस्थावान् वनाया है। वह किसी की व्यक्तिगत आस्था या उपासना पद्धति में हस्तक्षेप नही करता। व्यक्ति अपने जीवन को पवित्र एवं चरित्र को उन्नत वनाए, यही अणुव्रत का उद्देश्य है।

अणुव्रत आदोलन का जन-जन मे प्रचार करते हुए आचार्य तुलसी अपना अनुभव वताते हुए कहते है—"हिन्दुस्तान की एक विशेपता मैंने देखी कि मुझे इस देश मे कोई नास्तिक नही मिला। ऐसे लोग, जिन्होने प्रथम वार मे धर्म के प्रति असहमति प्रकट की, किन्तु अणुव्रत धर्म की असाम्प्रदायिक एव व्यावहारिक व्याख्या सुनकर वे स्वय को धार्मिक मानने मे गौरव की अनुभूति करने लगे।" आचार्य तुलसी के शब्दो में अणुव्रत आंदोलन के निम्न फलित है—

१ अनैतिकता की धूप . अणुव्रत की छतरी, पृ० १८०।
२ वैसाखियां विश्वास की, पृ० ४।

१ मानवीय एकता का विकास
२. सह अस्तित्व की भावना का विकास
३. व्यवहार मे प्रामाणिकता का विकास
४ आत्मनिरीक्षण की प्रवृत्ति का विकास
५ समाज मे सही मानदण्डो का विकास ।

उच्च आदर्शो को लेकर चलने वाला यह आदोलन जनसम्मत एव लोकप्रिय होने पर भी आचरणगत एवं जीवनगत नही हो सका, इस कमी को वे स्वयं भी स्वीकार करते है—"यह बात मै निःसंकोच रूप से स्वीकार कर सकता हू कि अणुव्रत सैद्धान्तिक स्तर पर जितना लोकप्रिय हुआ, आचरण की दिशा मे यह इतना आगे नहीं बढ सका । इसका कारण है कि किसी भी सिद्धान्त को सहमति देना बुद्धि का काम है और उसे प्रयोग मे लाना जीवन के बदलाव से सम्बन्धित है ।"[1]

फिर भी आचार्य तुलसी अणुव्रत के स्वर्णिम भविष्य के प्रति आश्वस्त है । इसके उज्ज्वल भविष्य की रूपरेखा उनके शब्दो मे यो उतरती है—"इक्कीसवी सदी के भारत का निर्माता मानव होगा और वह अणुव्रती होगा । अणुव्रती गृह सन्यासी नही होगा । वह भारत का आम आदमी होगा और एक नए जीवन-दर्शन को लेकर इक्कीसवी सदी मे प्रवेश करेगा ।"[2]

धार्मिक विकृतियां

आचार्य तुलसी के अनुसार धर्मक्षेत्र मे विकृति आने का सबसे बडा कारण धर्म का पूजी के साथ गठबंधन होना है । वे मानते है—"जब-जब धर्म का गठबधन पूजी के साथ हुआ, तब-तब धर्म अपने विशुद्ध स्थान से खिसका है । खिसकते-खिसकते वह ऐसी डावाडोल स्थिति मे पहुंच गया है, जहा धर्म को अफीम कहा जाता है ।"[3] धन और धर्म को जब तक अलग-अलग नही किया जाएगा तब तक धर्म का विशुद्ध स्वरूप जनता तक नही पहुच सकता । धर्म का धन से सम्बन्ध नही हैं इसको तर्क की कसौटी पर कसकर चेतावनी देते हुए वे कहते है—"मै अनेक बार लोगो को चेतावनी देता हू कि यदि धर्म पैसे से खरीदा जाता तो व्यापारी लोग उसे खरीद कर गोदाम भर लेते । यह खेत मे उगता तो किसान भारी सग्रह कर लेते ।"[4]

जो लोग धर्म के साथ धन की बात जोडकर अपने को धार्मिक मानते है, उन पर तीखा व्यग्य करते हुए वे कहते है—"एक मनुष्य ने लाखो रुपया

---

१ अनैतिकता की धूप . अणुव्रत की छतरी, पृ १६५ ।
२. एक बूद ' एक सागर, पृ. ४८ ।
३. जैन भारती, २६ जून १९५५ ।
४. हस्ताक्षर, पृ. ३ ।

ब्लैक मे कमाया, उसने दो हजार रुपयो से एक धर्मशाला वनवा दी, एक मदिर वनवा दिया, अव वह सोचता है कि मानो स्वर्ग की सीढी ही लगा दी, यह दृष्टिकोण का मिथ्यात्व है। धर्म, धन से नही, त्याग और संयम से होता है।"[1] इसी संदर्भ मे उनकी निम्न टिप्पणी भी मननीय है—"एक तरफ लाखो करोड़ो का ब्लैक तथा दूसरी तरफ लोगो को जूठी पत्तल खिलाकर पुण्य और स्वर्ग की कामना करना सचमुच वड़ी हास्यास्पद वात है।"

धर्मस्थानो में पूजी की प्रतिष्ठा देखकर उनका हृदय क्रंदन कर उठता है। इस वेमेल मेल को उनका वौद्धिक मानस स्वीकार नही करता। धर्मस्थलो मे पूजीकरण के विरुद्ध उनकी निम्न पक्तिया कितनी सटीक हैं—"तीर्थस्थान, जो भजन और उपासना के केन्द्र थे, वे आज आपसी निंदा और अर्थ की चर्चा के केन्द्र हो रहे हैं। मदिर, मठ, उपाश्रय और धर्मस्थानो मे ऊपरी रूप ज्यादा रहता है। जिसके फर्श पर अच्छा पत्थर जडा होता है, मोहरे और हीरे चमकते रहते है, वह मंदिर अच्छा कहलाता है। मूर्ति, जो ज्यादा सोने से लदी होती है, वढिया कहलाती है। वह ग्रन्थ, जो सोने के अक्षरो मे लिखा जाता है, अधिक महत्वशील माना जाता है। ऐसा लगता है, मानो धर्म सोने के नीचे दव गया है।"[2]

धर्म के क्षेत्र मे चलने वाली धांधली एवं रिश्वतखोरी पर करारा व्यंग्य करते हुए उनका कहना है—"यदि दर्शनार्थी मंदिर जाकर दर्शन करना चाहे तो पुजारी फौरन टका सा जवाव दे देगा कि अभी दर्शन नही हो सकेगे, ठाकुरजी पोढे हुए है। लेकिन यदि उससे धीरे से कहा जाए कि भइया! दर्शन करके, इतने रुपये कलश मे चढाने हैं तो फौरन कहेगा—अच्छा! मैं टोकरी वजाता हूं, देखे, ठाकुरजी जागते है या नही?"[3]

इसी सदर्भ मे उनकी निम्न टिप्पणी भी विचारोत्तेजक है—"लोग भगवान् को प्रसन्न रखने के लिए उन्हे कीमती आभूषणों से सजाते है। उनकी सुरक्षा के लिए पहरेदारो को रखा जाता है। मै नही समझता कि जो भगवान् स्वयं अपनी रक्षा नही कर सकता, वह दूसरो की सुरक्षा कैसे कर सकेगा?[4]

महावीर ने अपार वैभव का त्याग करके दिगम्वर एवं अपरिग्रही जीवन जीया पर उनके अनुयायियो ने उन्हे आभूषणों से लाद दिया। दुनिया को अपरिग्रह का सिद्धांत देने वाले महावीर को परिग्रही देखकर वे मृदु

---

१ प्रवचन पाथेय भाग ९ पृ. १६५।
२. जैन भारती, २९ मार्च १९६४।
३. विवरण पत्रिका, २७ नव० १९५२।
४ जैन भारती, २० मई १९७१।

कटाक्ष करने से नही चूके है—"कही-कही तो हमने महावीर को इतने ठाठ-बाट से सजा हुआ देखा कि उतना एक सम्राट् भी नही सजता। लाखो-करोड़ो की सपत्ति भगवान के शरीर पर लाद दी जाती है। महावीर स्वय अपने इस शरीर को देखकर शायद पहचान भी नही सकेगे, क्या यह मै ही हूं ? यह सदेह उन्हे व्यथित नही तो विस्मित अवश्य कर देगा।"[1]

धर्म के क्षेत्र मे साधन और साध्य की शुद्धि पर आचार्य तुलसी ने अतिरिक्त बल दिया है। धर्म का गलत उपयोग करने वालो पर उनका व्यंग्य पठनीय है—"तम्बाकू पीने वाला कहता है, चिलम सुलगाने को जरा आग दे दो, बडा धर्म होगा। भीख मागने वाला दुआ देता है, एक पैसा दे दो, बडा धर्म होगा। इतना ही नही हिंसा और शोपण मे लगा व्यक्ति भी अपने कार्यो पर धर्म की छाप लगाना चाहता है। स्वार्थान्ध व्यक्ति ने धर्म का कितना भयानक दुरुपयोग किया।[2]

धार्मिक की धर्म और भगवान से ही सब कुछ पाने की मनोवृत्ति उनकी दृष्टि मे ठीक नही है। इससे धर्म तो बदनाम होता ही है, साथ ही साथ अकर्मण्यता आदि अनेक विकृतिया भी पनपती है। असत्य और अन्याय की रक्षा के लिए भगवान की स्मृति करने वालो की तीखी आलोचना करते हुए वे कहते है—"जब व्यक्ति न्यायालय में जाता है, तब भगवान से आशीर्वाद मागकर जाता है और जब जीत जाता है, तब भगवान की मनौती करता है। भगवान यदि झूठो की विजय करता है तो वह भगवान कैसे होगा ? झूठ चलाने के लिए जो भगवान की शरण लेता है, वह भक्त कैसे होगा ? धार्मिक कैसे होगा ?[3]

धर्म मे विकृति आने का एक कारण उनके अनुसार यह है कि धर्म के अनुकूल अपने को न बनाकर धर्म को लोगों ने अपने अनुकूल बना लिया, इससे धर्म की आत्मा मृतप्राय: हो गयी है।

धर्म के क्षेत्र मे विकृति के प्रवेश का एक दूसरा कारण उनकी दृष्टि मे यह है कि व्यक्ति का उद्देश्य सम्यक् नही है। धर्म का मूल उद्देश्य चित्त की निर्मलता और आत्मशुद्धि हैं पर लोगो ने उसे बाह्य वैभव प्राप्त करने के साथ जोड़ दिया है। गौण को मुख्य बनाने से यह विसगति पैदा हुई है। इस बात की प्रस्तुति वे बहुत सटीक शब्दो मे करते है—"धर्म की शरण पवित्र और शुद्ध बनने के लिए नही ली जाती, बुराई का फल यहा भी न मिले, अगले जन्म मे कभी और कही भी न मिले, इसलिए ली जाती है।

---

१. बहता पानी निरमला, पृ० ८२।
२. जैन भारती, ६ अप्रैल, १९५८।
३. अनैतिकता की धूप : अणुव्रत की छतरी, पृ० २४०।

तात्पर्य यह है कि बुरा बने रहने के लिए आदमी धर्म का कवच धारण करता है। यही है धर्म के साथ खिलवाड़ और आत्मवंचना।[1]

आचार्य तुलसी अनेक बार इस बात को कहते हैं—"ऐश्वर्य सम्पदा धर्म का नहीं, परिश्रम का फल है। धर्म का फल है शांति, धर्म का फल है—पवित्रता, धर्म का फल है—सहिष्णुता और धर्म का फल है—प्रकाश।[2]

अशिक्षा, सामाजिक रूढियों एवं विकृतियों की तो जनक है ही, धर्म क्षेत्र मे फैलने वाली विकृतियों मे भी इसका बहुत बड़ा हाथ है। आचार्य तुलसी ने असाम्प्रदायिक नीति से धर्मक्षेत्र में पनपने वाली विकृतियों की ओर अगुलिनिर्देश ही नही किया, रूपान्तरण एवं परिष्कार का प्रयास भी किया है। काव्य की निम्न पक्तियो मे वे रूढ धार्मिको को चेतावनी दे रहे हैं—

इस वैज्ञानिक युग में ऐसे धर्म न चल पाएंगे।
केवल रूढिवाद पर जो चलते रहना चाहेंगे॥

पदयात्रा के दौरान उनके प्रवचनों से प्रभावित होकर भी अनेक लोगो ने धार्मिक रूढियो का परित्याग किया है। दिनांक २८ अगस्त १९६९ की घटना है। आचार्य तुलसी कर्नाटक प्रदेश की यात्रा पर थे। एक गांव मे उन्होंने देखा कि एक जुलूस निकल रहा है। वह जुलूस राजनैतिक नही, अपितु धर्म और भगवान् के नाम पर था। जुलूस के साथ अनेक निरीह प्राणियो का झुंड चल रहा था। जुलूस का प्रयोजन पूछने पर ज्ञात हुआ कि अकाल की स्थिति को दूर करने के लिए भगवान् को प्रसन्न करने के लिए यह उपक्रम किया गया है। आचार्य तुलसी ने सायंकालीन प्रवचन सभा मे ग्रामवासियो को प्रतिबोधित करते हुए कहा—"प्राकृतिक प्रकोप से संघर्ष करके उस पर विजय पाना तो बुद्धिगम्य है पर बेचारे निरीह प्राणियो की बलि देकर देवता को प्रसन्न करना तो मेरी समझ के बाहर है…… आज के वैज्ञानिक युग मे भी ऐसे क्रूरतापूर्ण कार्य सार्वजनिक रूप से हो, और उसे शिक्षित एवं सभ्य कहलाने वाले लोग देखते रहें, इससे बड़ी चिंता एवं शर्म की बात क्या हो सकती है ?[3] राजस्थान के अनेको गांवो में आचार्य तुलसी की प्रेरणा से लोग इस बलि प्रथा से मुक्त हुए हैं।

धर्मक्षेत्र में पनपी विकृतियों को दूर करने के लिए आचार्य तुलसी तीन उपाय प्रस्तुत करते हैं—

१ हमारे विचार शुद्ध, असंकीर्ण और व्यापक हों।
२. विचारो के अनुरूप ही हमारा आचार हो।

---

१. रामराज्य पत्रिका (कानपुर), अक्टू०, १९५८।
२. क्या धर्म बुद्धिगम्य है ? पृ० ९।
३. जैन भारती, २३ मार्च १९६९।

३. हम सत्य के पुजारी हो ।[1]

पर इसके लिए वे उपदेश को ही पर्याप्त नही मानते। इसके साथ शोध, प्रयोग और प्रशिक्षण भी जुडना आवश्यक है।

उनका अनुभव है कि जब तक धर्म मे आयी विकृतियो का अत नही होगा, धार्मिको का धर्मशून्य व्यवहार नही बदलेगा, देश की युवापीढी धर्म के प्रति आस्था नही रख सकेगी।"[2] वे दृढविश्वास के साथ कहते है—"धर्म के क्षेत्र मे पनपने वाली विकृतियो को समाप्त कर दिया जाए तो वह अधकार मे प्रकाश बिखेर देता है, विपमता की धरती पर समता की पौध लगा देता है, दुःख को सुख मे बदल देता है और दृष्टिकोण के मिथ्यात्व को दूर कर व्यक्ति को यथार्थ के धरातल पर लाकर खडा कर देता है। यथार्थदर्शी व्यक्ति धर्म के दोनो रूपो को सही रूप मे समझ लेता है, इसलिए वह कही भ्रान्त नही होता।"[3]

धर्मक्रांति

भारत की धार्मिक परम्परा मे आचार्य तुलसी ऐसे व्यक्तित्व का नाम है, जिन्होने जड उपासना एव क्रियाकाण्ड तक सीमित मृतप्राय: धर्म को जीवित करने मे अपनी पूरी शक्ति लगाई है। बीसवी सदी मे धर्म के नए एव क्रातिकारी स्वरूप को प्रकट करने का श्रेय आचार्य तुलसी को जाता है। वे अपने सकल्प की अभिव्यक्ति निम्न शब्दो मे करते है—"मै उस धर्म की शुद्धि चाहता हू, जो रूढिवाद के घेरे मे बन्द है, जो एक स्थान, समय और वर्गविशेष मे बदी हो गया है।"

धर्मक्रान्ति के सदर्भ मे एक पत्रकार द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर मे वे कहते है—"आचार को पहला स्थान मिले और उपासना को दूसरा। आज इससे उल्टा हो गया है, उसे फिर उल्टा देने को मै धर्मक्राति मानता हू।"[4] उनकी क्रातिकारिता निम्न पक्तियो से स्पष्ट है—"मेरे धर्म की परिभापा यह नही कि आपको तोता रटन की तरह माला फेरनी होगी। मेरी दृष्टि मे आचार, विचार और व्यवहार की शुद्धता का नाम धर्म है।"[5] इसी सदर्भ मे उनका निम्न उद्धरण भी विचारोत्तेजक है—"मै धर्म को जीवन का अभिन्न तत्त्व मानता हू। इसलिए मै बार-बार कहता हू, भले ही आप वर्प भर मे धर्मस्थान मे न जाए, मै इसे क्षम्य मान लूगा। बशर्ते कि आप

---

१. जैन भारती, २१ जून १९७०।

२ सफर . आधी शताब्दी का, पृ० ८४।

३. विज्ञप्ति स० ८०७।

४. जैन भारती, ३ मार्च १९६८।

५. दक्षिण के अचल मे, पृ. १७६।

कार्यक्षेत्र को ही धर्मस्थान बना ले, मदिर बना ले ।"[1]

आचार्य तुलसी समय-समय पर अपने क्रांतिकारी विचारो को जनता के समक्ष प्रस्तुत करते रहते है, जिससे अनेक आवरणो मे छिपे धर्म का विशुद्ध और मौलिक स्वरूप जनता के समक्ष प्रकट हो सके। वे धर्म को प्रभावी, तेजस्वी एवं कामयाबी बनाने के लिए उसके प्रयोगात्मक पक्ष को पुष्ट करने के समर्थक है। इस संदर्भ मे उनका विचार है—"धर्म को प्रायोगिक बनाए बिना किसी भी व्यक्ति को यथेष्ट लाभ नही मिल सकता। इसलिए थ्योरिकल धर्म को प्रेक्टिकल रूप देकर इसकी उपयोगिता प्रमाणित करनी है क्योकि धर्म के प्रायोगिक स्वरूप को उपेक्षित करने से ही अवैज्ञानिक परम्पराओ और क्रियाकाण्डो को पोषण मिलता है।"[2] आचार्य तुलसी ने 'प्रेक्षाध्यान' के माध्यम से धर्म का प्रायोगिक रूप जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है। जिससे हजारो-लाखों लोगो ने तनाव मुक्त जीवन जीने का अभ्यास किया है। 'चतुर्थ प्रेक्षाध्यान शिविर' के समापन समारोह पर अपने चिरपोषित स्वप्न को आंशिक रूप मे साकार देखकर वे अपना मनस्तोष इस भाषा मे प्रकट करते हैं—

"मेरा बहुत वर्षो का एक स्वप्न था, कल्पना थी कि जिस प्रकार नाटक, सिनेमा को देखने, स्वादिष्ट पदार्थो को खाने मे लोगो का आकर्षण है, वैसा ही या इससे बढ़कर आकर्षण धर्म व अध्यात्म के प्रति जागृत हो। लोगो को धर्म व अध्यात्म की बात सुनने का निमन्त्रण नही देना पड़े, बल्कि आतरिक जिज्ञासावश और आत्मशान्ति की प्राप्ति के लिये वे स्वयं उसे सुनना चाहे, धार्मिक बनना चाहे और धर्म व अध्यात्म को जीना पसद करें। मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है कि मेरा वह चिर संजोया स्वप्न अब साकार रूप ले रहा है।"[3] आचार्य तुलसी के धर्म सम्बन्धी कुछ स्फुट क्रांत विचारो को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—

"केवल परलोक सुधार का मीठा आश्वासन किसी भी धर्म को तेजस्वी नही बना सकता। इस लोक को बिगाडकर परलोक सुधारने वाला धर्म बासी धर्म होगा, उधार का धर्म होगा। हमे तो नगद धर्म चाहिए। जब भी धर्म करे, हमारा सुधार हो। वह नगद धर्म है—बुराइयो का त्याग।"

केवल भगवान् का गुणगान करने से जीवन में रूपान्तरण नही आ सकता। सच्ची भक्ति और उपासना तभी सभव है, जब भगवान् द्वारा

---

१. एक बूद : एक सागर, पृ १७११।
२. सफर : आधी शताब्दी का, पृ. ८४।
३. सोचो ! समझो !! भाग ३, पृ० १४१।

प्ररूपित आदर्श जीवन में उतरें। इस प्रसंग मे धार्मिको के समक्ष उनके प्रश्न है—

- भगवान् का चरणामृत लेने वाले आज वहुत मिल सकते है। उनकी सवारी पर फूल चढाने वालों की भी कमी नही है। पर भगवान् के पथ पर चलने वाले कितने है ?
- व्यापार मे जो अनैतिकता की जाती है, क्या वह मेरी प्रशंसा मात्र से धुल जाने वाली है। दिन भर की जाने वाली ईर्ष्या, आलोचना एक दूसरे को गिराने की भावना का पाप, क्या मेरे पैरो मे सिर रखने मात्र से साफ हो जाएगे ? ये प्रश्न मुझे वडा वेचैन कर देते है।[1]

धर्म मानव-चेतना को विभक्त करके नही देखता। इसी वात को वे उदाहरण की भापा मे प्रस्तुत करते है—

- "जिस प्रकार कुए आदि पर लेवल लगा दिए जाते है 'हिन्दुओ के लिए' 'मुसलमानो के लिए' 'हरिजनो के लिए' आदि-आदि। क्या धर्म के दरवाजे पर भी कही लेवल मिलता है ? हा। एक ही लेवल मिलता है—"आत्म उत्थान करने वालो के लिए।"[2]

धर्म की सुरक्षा के नाम पर हिंसा करने वाले साम्प्रदायिक तत्त्वो को प्रतिबोध देते हुए वे कहते है—

- "कहा जाता है-**धर्मो रक्षति रक्षितः** "धर्म की रक्षा करो, धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा।" इसका तात्पर्य यह नही कि धर्म को वचाने के लिए अडंगे करो, हिंसाएं करो। इसका अर्थ है कि धर्म को ज्यादा से ज्यादा जीवन मे उतारो, धर्माचरण करो, धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा, तुम्हे पतन से वचाएगा।"[3]

इस प्रसग मे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की मार्मिक एवं प्रेरणा-दायी पक्तियो को उद्धृत करना भी अप्रासगिक नही होगा—

हम आड़ लेकर धर्म की, अव लीन हैं विद्रोह मे,
मत ही हमारा धर्म है, हम पड़ रहे है मोह मे।
है धर्म वस नि स्वार्थता ही प्रेम जिसका मूल है,
भूले हुए है हम इसे, कैसी हमारी भूल है॥

धर्म के क्षेत्र मे वलप्रयोग और प्रलोभन दोनो को स्थान नही है। इन दोनो विकृतियो के विरुद्ध आचार्य भिक्षु ने सशक्त स्वरो मे क्रान्ति की। धर्म भौतिक प्रलोभन एव सुख-सुविधा के लिए नही, अपितु आत्म-शांति के

---

१. एक बूंद : एक सागर, पृ. १७०४।
२-३. प्रवचन पाथेय, भाग ९ पृ. ८।

लिए आवश्यक है । जो लोग बाह्य आकर्षण से प्रेरित होकर धर्म करते हैं, वे धर्म का रहस्य नही समझते । इसी बात को बुलंदी दी आचार्य तुलसी ने । वे कहते है—"धर्म के मंच पर यह नही हो सकता कि एक धनवान् अपने चद चांदी के टुकड़ो के बल पर तथा एक बलवान् अपने डण्डे के प्रभाव से धर्म को खरीद ले और गरीब व निर्बल अपनी निराशा भरी आंखो से ताकते ही रह जाए । धर्म को ऐसी स्वार्थमयी असतुलित स्थिति कभी मजूर नही है । उसका धन और बलप्रयोग से कभी गठबंधन नही हो सकता । उसे उपदेश या शिक्षा द्वारा हृदय-परिवर्तन करके ही पाया जा सकता है ।"[1]

आचार्य तुलसी ने स्पष्ट शब्दो मे धर्मक्षेत्र की कमजोरियो को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है । उनके द्वारा की गयी धर्मक्रान्ति ने प्रचण्ड विरोध की चिनगारिया प्रज्वलित कर दी । पर उनका अटोल आत्मविश्वास किसी भी परिस्थिति मे डोला नही । यही कारण है कि आज समाज एवं राष्ट्र ने उनका मूल्याकन किया है । वे स्वयं भी इस सत्य को स्वीकारते है—"एक धर्माचार्य धर्मक्रान्ति की बात करे, यह समझ मे आने जैसी घटना नही थी । पर जैसे-जैसे समय बीत रहा है, परिस्थितिया बदल रही हैं, यह बात समझ मे आने लगी हैं । मेरा यह विश्वास है कि शाश्वत से पूरी तरह से अनुबंधित रहने पर भी सामयिक की उपेक्षा नही की जा सकती ।"

जो धार्मिक विकृतियो को देखकर धर्म को समाप्त करने की बात सोचते है, उन व्यक्तियो को प्रतिबोध देने मे भी आचार्य तुलसी नहीं चूके है । इस सदर्भ मे वे सहेतुक अपना अभिमत प्रस्तुत करते है— "आज तथाकथित धार्मिको का व्यवहार देखकर एक ऐसा वर्ग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, जो धर्म को ही समाप्त करने का विचार लेकर चलता है । लेकिन यह बात मेरी समझ मे नही आती कि क्या पानी के गंदा होने से मानव पानी पीना ही छोड दे ? यदि धर्म बीमार है या संकुचित हो गया है तो उसे विशुद्ध करना चाहिए पर उसे समाप्त करने का विचार ठीक नही हो सकता । मेरी ऐसी मान्यता है कि बिना धर्म के कोई जीवित नही रह सकता ।"[2] धर्म का विरोध करने वालो को भविष्य की चेतावनी के रूप मे वे यहा तक कह चुके है—"जिस दिन धर्म की मजबूत जड़ें प्रकम्पित हो जाएंगी, इस धरती पर मानवता की विनाशलीला का ऐसा दृश्य उपस्थित होगा, जिसे देखने की क्षमता किसी भी आंख में नही रहेगी ।"[3]

---

१. जैन भारती, २० जून १९५४ ।
२. जैन भारती, ३१ मई १९७० ।
३. एक बूद : एक सागर, पृ. ७२५ ।

राष्ट्र-चिंतन

किसी भी देश की माटी को प्रणम्य बनाने एव कालखड को अमरता प्रदान करने मे साहित्यकार की अहभूमिका होती है। धर्मनेता होते हुए भी आचार्य तुलसी राष्ट्र की अनेक समस्याओ के प्रति जागरूक ही नही रहे है वल्कि उनके साहित्य मे वर्तमान भारत की समस्याओ के समाधान का विकल्प भी प्रस्तुत है। इसलिए राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करने मे उनका साहित्य अपनी अहंभूमिका रखता है।

भारत की स्वतत्रता के साथ अणुव्रत के माध्यम से देश के नैतिक एव चारित्रिक अभ्युदय के लिए आचार्य तुलसी ने स्वय को पूर्णतः समर्पित कर दिया। विशेष अवसरो पर अनेक बार वे इस सकल्प को व्यक्त कर चुके है—"मै देश की चप्पा-चप्पा भूमि का स्पर्श करना चाहता हूं। अपनी पदयात्राओ के द्वारा मै देश के हर वर्ग, जाति, वर्ण एव सम्प्रदाय के लोगो से इसानियत और भाईचारे के नाते मिलकर उन्हे जीवन के लक्ष्य से परिचित कराना चाहता हू।"[1]

राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता का अर्थ राष्ट्र की एकता एव राष्ट्रीय चेतना से है। रामप्रसाद किचलू कहते है कि यदि कोई कवि या साहित्यकार अपने साहित्य मे देश के गौरव तथा उसकी सास्कृतिक एवं सामाजिक चेतना को जगाने का कार्य करता है तो यह कार्य राष्ट्रीय ही है।[2] आचार्य तुलसी की हर पुस्तक में राष्ट्रीय विचारो की झलक स्पष्टत. देखी जा सकती है। राष्ट्र के प्रति दायित्व वोध कराने वाली उनकी निम्न पक्तिया सबमे जोश एव उत्साह भरने वाली है—

"प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र से कुछ अपेक्षाए रखता है तो उसे यह भी सोचना होगा कि जिस राष्ट्र से मेरी इतनी अपेक्षाए है, वह राष्ट्र मुझसे भी कुछ अपेक्षाए रखेगा। क्या मै उन अपेक्षाओ को समझ रहा हू ? अव तक मैने अपने राष्ट्र के लिए क्या किया ? मेरा कोई काम ऐसा तो नही है, जिससे राष्ट्रीयता की भावना का हनन हो—चिन्तन के ये कोण राष्ट्रीय दायित्व का वोध कराने वाले है।"[3]

---

१. एक बूद . एक सागर, पृ० १७३१।

२ आधुनिक निबध, पृ० १९३।

३ मनहंसा मोती चुगे, पृ० १८६।

आचार्य तुलसी मानते है कि राष्ट्र को हम परिवार का महत्व दे, तभी व्यक्ति मे राष्ट्र-प्रेम की भावना उजागर हो सकती है। इस प्रसंग में उनका निम्न वक्तव्य कितना प्रेरक बन पड़ा है—"व्यक्ति का अपने परिवार के प्रति प्रेम होता है तो वह पारिवारिक जनो के साथ विश्वासघात नही करता है। यदि वैसा ही प्रेम राष्ट्र के प्रति हो जाए तो वह राष्ट्र के साथ विश्वासघात कैसे करेगा? राष्ट्र-प्रेम विकसित हो तो जातीयता, साम्प्रदायिकता और राजनैतिक महत्वाकाक्षाए दूसरे नम्बर पर आ जाती है, राष्ट्र का स्थान सर्वोपरि रहता है।"[1]

आचार्य तुलसी ने भारत की स्वतत्रता के साथ ही जनता के समक्ष यह स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेजों के चले जाने मात्र से देश की सारी समस्याओ का हल होने वाला नही है। बाह्य स्वतंत्रता के साथ यदि आंतरिक स्वतन्त्रता नही जागेगी तो यह व्यर्थ हो जाएगी। प्रथम स्वाधीनता दिवस पर प्रदत्त प्रवचन का निम्न अग उनकी जागृत राष्ट्र-चेतना का सबल सबूत है—"कल तक तो अच्छे बुरे की सब जिम्मेदारी एक विदेशी हुकूमत पर थी। यदि देश मे कोई अमंगल घटना घटती या कोई अनुत्तरदायित्वपूर्ण बात होती तो उसका दोष, उसका कलक विदेशी सरकार पर मढ़ दिया जाता या गुलामी का अभिशाप बताया जा सकता था। लेकिन आज तो स्वतंत्र राष्ट्र की जिम्मेदारी हम लोगो पर है। ....स्वतत्र राष्ट्र होने के नाते अब अच्छे बुरे की सब जिम्मेदारी जनता और उससे भी अधिक जन-सेवकों (नेताओ) पर है। अब किसी अनुत्तरदायित्वपूर्ण बात को लेकर दूसरो पर दोष भी नही मढ़ सकते। अब तो वह समय है, जबकि आत्मस्वतत्रता तथा विश्वशांति के प्रसार में राष्ट्र को अपनी आध्यात्मिक वृत्तियो का परिचय देना है और यह तभी संभव है जबकि राष्ट्रनेता और राष्ट्र की जनता दोनों अपने उत्तरदायित्व का ख्याल रखे।"[2]

इसी संदर्भ मे स्वतत्र भारत के प्रथम प्रधानमत्री पडित नेहरू के मिलन प्रसग को उद्धृत करना भी अप्रासगिक नही होगा। पडित नेहरू जब प्रथम बार दिल्ली मे आचार्य तुलसी से मिले तो उन्होने कहा—आचार्यजी! आपको क्या चाहिए? आचार्यश्री ने उत्तर देते हुए कहा—पडितजी! हम लेने नही, आपको कुछ देने आए है। हमारे पास त्यागी एवं पदयात्री साधु कार्यकर्त्ताओ का एक बड़ा समुदाय है। उसे मै नवोदित देश के नैतिक उत्थान के कार्य मे लगाना चाहता हूं क्योकि मेरा ऐसा मानना है

१. तेरापथ टाइम्स, २४ सित. १९९०।
२. सदेश, पृ० २०,२१।

कि आज राष्ट्र राजनैतिक दासता से मुक्त हो गया है पर उसे मानसिक दासता से मुक्त करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए हम अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से देश मे स्वस्थ वातावरण बनाना चाहते है। अपनी बात जारी रखते हुए आचार्य तुलसी ने कहा—"मै राष्ट्र का वास्तविक विकास बड़े-बड़े बाधों, पुलो और सडको मे नही देखता। उसका सच्चा विकास उसमे रहने वाले मानवो की चरित्रशीलता, सदाचरण, सचाई और ईमानदारी मे मानता हू। मेरा मानना है कि नैतिकता के बिना राष्ट्रीय एकता परिपुष्ट नही हो सकती। अतः नैतिक आदोलन अणुव्रत के कार्यक्रम की अवगति देना ही हमारे मिलन का मुख्य उद्देश्य है"। पडित नेहरू आचार्य तुलसी के इस उत्तर से अवाक् तो थे ही, साथ ही श्रद्धा से नत भी हो गए। तभी से आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आदोलन के माध्यम से मानवता की सेवा का व्रत ले लिया। आचार्य तुलसी अनेक बार यह भविष्यवाणी कर चुके है—"जब कभी भारत को स्वर्णिम भारत, अच्छा भारत या रामराज्य का भारत बनना है, अणुव्रती भारत बनकर ही वह इस आकाक्षा को पूरा कर सकता है।[१]

आचार्य तुलसी की स्पष्ट अवधारणा है कि यदि व्यक्तितत्र, समाज-तत्र या राजतत्र नैतिक मूल्यो को उपेक्षित करके चलता है तो उसका सर्वांगीण विकास होना असभव है। कभी-कभी तो वे यहा तक कह देते है—"मेरी दृष्टि मे नैतिकता के अतिरिक्त राष्ट्र की दूसरी आत्मा सभव नहीं है। विशेष अवसरो पर वे अनेक बार यह सकल्प व्यक्त कर चुके है—"मै देश मे फैले हुए भ्रष्टाचार और अनैतिकता को देखकर चिंतित हू। नैतिकता की लौ किसी न किसी रूप मे जलती रहे, मेरा प्रयास इतना ही है।"[२] उनका विश्वास है कि नैतिक आदोलनो के माध्यम से असत्य से जर्जरित युग मे भी सत्यनिष्ठ हरिश्चन्द्र को खडा किया जा सकता है, जो जीवन की सत्यमयी ज्योति से एक अभिनव आलोक प्रस्फुटित कर सके।"[३]

भारतीय संस्कृति

आचार्य तुलसी का मानना है कि जिस राष्ट्र ने अपनी सस्कृति को भुला दिया, वह राष्ट्र वास्तव मे एक जीवित और जागृत राष्ट्र नही हो सकता। वे भारतीय सस्कृति की गरिमा से अभिभूत है अत देशवासियो को अनेक बार भारत के विराट् सास्कृतिक मूल्यो की अवगति देते रहते है। उनकी निम्न पक्तिया हिंदू सस्कृति के प्राचीन गौरव को उजागर करने वाली है—"जो लोग पदार्थ-विकास मे विश्वास करते है, वे असहिष्णु हो सकते है। जो लोग शस्त्रशक्ति मे विश्वास करते है, वे निरपेक्ष हो सकते हैं।

---

१. मनहसा मोती चुगे, पृ० ८७।

२,३ एक बूंद · एक सागर, पृ० १७०७, १७३१।

जो लोग अपने लिए दूसरों के अनिष्ट को क्षम्य मानते हैं, वे अनुदार हो सकते हैं पर भारतीय संस्कृति की यह विलक्षणता रही है कि इसने पदार्थ को आवश्यक माना पर उसे आस्था का केन्द्र नहीं माना। राजनीति का सहारा लिया पर उससे त्राण नहीं देखा। अपने लिए दूसरों का अनिष्ट हो गया पर उसे क्षम्य नहीं माना। यहां जीवन का चरम लक्ष्य विलासिता नहीं, आत्मसाधना रहा, भोग-लालसा नहीं, त्याग-तितिक्षा रहा।"[1]

अपने प्रवचनों के माध्यम से वे भारतीय जनता में खोए आत्म-विश्वास एवं अध्यात्मशक्ति को जगाने का उपक्रम करते रहते हैं। इस संदर्भ में अतीत के गौरव को उजागर करने वाली उनकी निम्न उक्ति अत्यन्त प्रेरक एवं मार्मिक है— "एक समय भारत अध्यात्म-विद्या की दृष्टि से विश्व का गुरु कहलाता था। आज वही भारत भौतिक विद्या की तरह आत्मविद्या के क्षेत्र में भी दूसरों का मुहताज बन रहा है।....इस सदी में भी भारतीय संतों, मनीषियों और वैज्ञानिकों के मौलिक चिन्तन एवं अनुसधान ने ससार को चमत्कृत किया है। समस्या यह नहीं है कि भारतीय लोगों ने अपनी अन्तर्दृष्टि खो दी। समस्या यह है कि उन्होंने अपना आत्मविश्वास खो दिया। ... आज सबसे बड़ी अपेक्षा यह है कि भारत अपना मूल्यांकन करना सीखे और खोई प्रतिष्ठा को पुनः अर्जित करे।"[2] इसी व्यापक एवं गहन चिन्तन के आधार पर उनका विश्वास है कि सही अर्थ में अगर कोई संसार का प्रतिनिधित्व कर सकता है तो भारत ही कर सकता है क्योंकि भारत की आत्मा में आज भी अध्यात्म की प्राणप्रतिष्ठा है। मैं मानता हूं कि यदि भारत आध्यात्मिकता को भुला देगा तो अपनी मौत मर जाएगा।"

छत्तीसवें स्वतत्रता दिवस पर दिए गए राष्ट्र-उद्बोधन में उनके क्रातिकारी एव राष्ट्रीय विचारों की झलक देखी जा सकती है, जो सुषुप्त एव मूर्च्छित नागरिकों को जगाने में संजीवनी का कार्य करने वाला है— "एक स्वतंत्र देश के नागरिक इतने निस्तेज, निराश और कुंठित क्यों हो गए, जो अपने विश्वास और आस्थाओं को भी जिन्दा नहीं रख पाते।... "एक बड़ा कालखंड बीत जाने के बाद भी यह सवाल उसी मुद्रा में उपस्थित है कि एक स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिकों के अरमान पूरे क्यों नहीं हुए ? इस अनुत्तरित प्रश्न का समाधान न आंदोलनों में है, न नारेबाजी में है और न अपनी-अपनी डफली पर अपना-अपना राग अलापने में है। इसके लिए तो सामूहिक प्रयास की अपेक्षा है, जो जनता के चिंतन को बदल सके

१. क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?, पृ० ५८

२ अणुव्रत, १६ मार्च, १९९१

लक्ष्य को बदल सके और कार्यपद्धति को बदल सके ।"[1]

आचार्यश्री का चिंतन है कि भारतीय सस्कृति सबसे प्राचीन ही नही, समृद्ध और जीवन्त भी है। अतः किसी भी राष्ट्रीय समस्या का हल हमे अपने सांस्कृतिक तत्त्वो के द्वारा ही करना चाहिए अन्यथा मानसिक दासता हमे अपनी संस्कृति के प्रति उतनी गौरवशील नही रहने देगी। इसी प्रसंग मे उनके एक प्रवचनाश को उद्धृत करना अप्रासगिक नही होगा—"लोग कहते है भारत मे कम्युनिज्म-साम्यवाद आने से शोषण मिट सकता है। मै उनसे कहूंगा—वे अपनी भारतीय सस्कृति को न भूले। उसकी पवित्रता मे अब भी इतनी ताकत है कि वह शोषण को जड-मूल से मिटा सकती है, अन्याय का मुकाबला कर सकती है। उसके लिये विदेशवाद की जरूरत नही है।"[2]

इसी प्रकार निम्न घटना प्रसग मे भी उनकी राष्ट्र के प्रति अपूर्व प्रेम की झलक मिलती है—व्यास गाव मे जोरावरसिह नामक सरदार आचार्यश्री के पास आकर बोला—भारत बदमाशो एव स्वार्थी लोगो का देश है, अतः मै इस देश को छोडकर विदेश जाने की बात सोचता हू। इसके लिए आप मुझे क्या परामर्श देगे?

आचार्य तुलसी गम्भीर स्वरो मे बोले—"तुमको देश बुरा लगा और विदेश अच्छा, वहा क्या कुछ नही हो रहा है? मारकाट क्या वहा नही है? ईरान मे क्या हो रहा है? वहा के कत्लेआम की बात सुनकर तुम पर कोई असर नही हुआ? कम्बोडिया से ४ लाख लोग भाग गए, २० लाख निकम्मे है। मै समझता हूं कि देश खराब नही होता, खराब होता है आदमी।"[3]

पवित्र हिन्दू सस्कृति मे गलत तत्त्वो के मिश्रण से वे अत्यन्त चिन्तित है। ४३ वर्ष पूर्व प्रदत्त उनका निम्न वक्तव्य कितना हृदय-स्पर्शी एव वेधक है—" भारतीय जीवन से जो सतोप, सहिष्णुता, शौर्य और आत्मविजय की सहज धारा वह रही है वह दूसरो को लाखो यत्न करने पर भी सुलभ नही है। यदि इन गुणो के स्थान पर भौतिक संघर्ष, सत्तालोलुपता या पद की आकाक्षा बढती है तो मै इसे भारत का दुर्भाग्य कहूगा।"

भारतीय सस्कृति के परिप्रेक्ष्य मे उनका वार्तमानिक अनुभव कितना प्रेरणादायी एव मार्मिक बन पडा है—"यह भारत भूमि, उस राम-भरत की

---

१ बहता पानी निरमला, पृ० २४७।

२. प्रवचन पाथेय भाग ९, पृ० १४३,१४४।

३ सस्मरणो का वातायन, पृ० १-२।

मनुहारो मे चौदह वर्ष पादुकाए राज-सिंहासन पर प्रतिष्ठित रही, महावीर और बुद्ध जहा व्यक्ति का विसर्जन कर विराट बन गए, कृष्ण ने जहा कुरुक्षेत्र में गीता का ज्ञान दिया और गाधीजी संस्कृति के प्रतीक बनकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर एक आलोक छोड गए, उस देश मे सत्ता के लिए छीना-झपटी, कुर्सी के लिए सिद्धातो का सौदा, वैभव के लिए अपवित्र प्रतिस्पर्धा और विलासमने हाथो राष्ट्र-प्रतिमा का अनावरण हृदय मे एक चुभन पैदा करता है ।"[1]

वे पाश्चात्य सस्कृति की अच्छाई ग्रहण करने के विरोधी नही है पर सभी वातो मे उनका अनुकरण राष्ट्र के हित मे नही मानते । उनका चिंतन है कि पाश्चात्य संस्कृति का आयात हिंदू संस्कृति के पवित्र माथे पर एक ऐसा धव्वा है, जिसे छुडाने के लिए पूरी जीवन-शैली को वदलने की अपेक्षा है । वे विदेशी प्रभाव मे रगे भारतीय लोगो को यहा तक चेतावनी दे चुके है—"हिन्दू संस्कारों की जमीन छोड़कर आयातित संस्कृति के आसमान मे उडने वाले लोग दो चार लम्बी उडानो के बाद जब अपनी जमीन पर उतरने या चलने का सपना देखेंगे तो उनके सामने अनेक प्रकार की मुसीबते खडी हो जाएंगी ।"[2]

भारतीय सस्कृति प्रकृति में जीने की संस्कृति है पर विज्ञान ने आज मनुष्य को प्रकृति से दूर कर दिया है । प्रकृति से दूर होने का एक निमित्त वे टेलीविजन को मानते हैं । भारतीय जीवन-शैली मे दूरदर्शन के बढते प्रभाव से वे अत्यत चिन्तित हैं । इससे होने वाले खतरों की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करते हुए उनका कहना है—"टी०वी० इस युग की संस्कृति है । पर इसने सास्कृतिक मूल्यों पर पर्दा डाल दिया है और पारिवारिक संबंधो की मधुरिमा मे जहर घोल दिया है । यह जहर घुली संस्कृति मनुष्य के लिए सबसे बडी त्रासदी है । ....टी०वी० की सस्कृति शोपण की संस्कृति है । यह चुपचाप आती है और व्यक्ति को खाली कर चली जाती है । .... मै मानता हू कि टी०वी० की संस्कृति से उपजी हुई विकृति मनुष्य को सुखलिप्सु और स्वार्थी बना रही है ।"[3]

इन उद्धरणो से उनके कथन का तात्पर्य यह नही निकाला जा सकता कि वे आधुनिक मनोरजन के साधनो के विरोधी हैं । निम्न उद्धरण के आलोक मे उनके संतुलित एव सटीक विचारो को परखा जा सकता है—आधुनिक मनोरजन के साधनो की उपयोगिता के आगे प्रश्नचिह्न लगाना

१ राजपथ की खोज, पृ० १३७ ।
२ एक बूद एक सागर, पृ० १६८० ।
३. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० ४२,४३ ।

मेरा काम नही है पर यह निश्चित है कि आधुनिकता के प्रयोग मे यदि औचित्य की प्रज्ञा जागृत नही रही तो पारम्परिक सस्कारों की इतनी निर्मम हत्या हो जाएगी कि उनके अवशेष भी देखने को नही मिलेगे। सस्कारो का ऐसा हनन किसी व्यक्ति या समाज के लिए नही, पूरी मानव-सस्कृति के लिए वडा खतरा है।"[1]

भारतीय जीवन-शैली मे विकृति एव अपसस्कृति की घुसपैठ होने पर भी वे इस संस्कृति को विश्व की सर्वोच्च सस्कृति के रूप मे स्वीकार करते है। इस सदर्भ मे उनका निम्न प्रवचनाश उल्लेखनीय है—"विश्व के दूसरे-दूसरे देशो मे छोटी-छोटी वातो को लेकर क्रातिया हो जाती है पर हिंदुस्तानी लोग वहुत-कुछ सहकर भी खामोश रहते हैं।"

विवेकानन्द की भाति भारतीय सस्कृति के गौरव को विदेशो तक फैलाने की उनकी तीव्र उत्कठा भी समय-समय पर मुखर होती रहती है। १२ दिस० १९८९ को भारत मे सोवियत महोत्सव हुआ। उस समय भारत की प्राचीन महिमामडित सस्कृति को रूसी युवको के सामने उजागर करने हेतु सरकार को दायित्ववोध देती हुई उनकी निम्न पक्तिया मार्मिक एव प्रेरक ही नही, उत्कृष्ट राष्ट्र-चेतना का परिचय भी दे रही हैं— "जिस समय सोवियत सघ की सडको पर एक तिनका भी गिरा हुआ नही मिलता, उस समय भारत की राजधानी की सडको पर घूमने वाले रूसी युवक उन सडको को किस नजरिए से देखेंगे ? मिट्टी, पत्थर, काच, कागज, फलो के छिलके आदि क्या कुछ नही विखरा रहता है यहा ? और तो क्या, वलगम और श्लेष्म भी सडको की शोभा वढाते है। एक ओर गन्दगी, दूसरी ओर वीमारी के कीटाणु तथा तीसरी ओर केले आदि के छिलको से फिसलने का भय। क्या हमारे देश के विकास की कसौटिया यही है ? · · भारतीय लोग अपने जीवन के लिए और अपनी भावी पीढी के लिए नही तो कम से कम उन आगन्तुक यायावरो के मन पर अच्छी छाप छोडने के लिए भी सास्कृतिक और नैतिक मूल्यो की सुरक्षा करे तो देश की छवि उजली रह सकती है। अन्यथा कोई विदेशी दल यहां के लोक-जीवन की उजडी-उखडी शैली को इतिहास के पृष्ठो पर उकेर देगा तो हमारी शताब्दियो-पूर्व की गरिमा खण्ड-खण्ड नही हो जाएगी ? ··· · क्या भारत सरकार और राष्ट्रीय एवं सामाजिक संस्थाओ का यह दायित्व नही है कि वे अपने आगतुक अतिथियो को इस देश की मूलभूत सस्कृति से परिचित कराए ? क्या उनके मन पर ऐसी छाप नही छोडी जा सकती, जिसे वे रूस पहुचने के वाद भी पोछ न सकें ?[2]

१. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० १०७।
२. वही, पृ० ७-८।

आचार्य तुलसी ने भारतीय जनता के समक्ष एक नया जीवन दर्शन एवं नई जीवन-शैली प्रस्तुत की है, जिससे युगीन समस्याओं का समाधान कर सही जीवन-मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जा सके। इस जीवन-शैली का नाम है—'**जैन जीवन-शैली**'। 'जैन' शब्द मात्र से इसे साम्प्रदायिक नहीं माना जा सकता। क्योंकि यह भारतीय संस्कृति के मूल्यों पर आधृत है। इस बात को उनके निम्न उद्धरण के आलोक में भी पढ़ा जा सकता है—"जैन जीवन-शैली में संकलित सूत्रों में न तो साम्प्रदायिकता की गंध है और न अतिवादी कल्पना का समावेश है। जीवन-निर्माण में सहायक मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात् करने वाली यह जीवन-शैली केवल जैन समाज के लिए ही नहीं है, मानव मात्र को मानवता का मंगल पथदर्शन करने वाली है। यह जीवन-शैली जन-जीवन की सर्वमान्य शैली बन जाए, ऐसी मेरी आकांक्षा है।"[1]

इस शैली के व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु आचार्य तुलसी की सन्निधि में अनेक शिविरों का समायोजन भी किया जा चुका है, क्योंकि वे मानते हैं कि दीपक बोलता नहीं, जलता है और प्रकाश फैलाता है। यह जीवन-शैली भी बोलने की नहीं, जीने की शैली है। यह न कोई आंदोलन है, न नियमों का समवाय है, न नारा है और न कोई घोषणा-पत्र है। यह है एक मार्ग, जिस पर चलना है और मनुष्यता के शिखर पर आरोहण करना है।[2]

जैन जीवन-शैली के निम्न सूत्र हैं—

१. सम्यग् दर्शन
२. अनेकांत
३. अहिंसा
४. समण संस्कृति—सम, शम, श्रम
५. इच्छा परिमाण
६. सम्यग् आजीविका
७. सम्यक् संस्कार
८. आहारशुद्धि और व्यसनमुक्ति
९. साधर्मिक वात्सल्य

राष्ट्रीय विकास

आचार्य तुलसी के सम्पूर्ण वाङ्मय में देश की जनता के नाम सैकड़ों प्रेरक उद्बोधन हैं। वे स्वयं को भारत तक ही सीमित नहीं मानते, वरन्

---

१. लघुता से प्रभुता मिले, पृ० १८७।
२. वही, १८७।

जागतिक मानते है, फिर भी भारत की पावनभूमि मे जन्म लेने के कारण उसके प्रति अपनी विशेष जिम्मेवारी समझते है। उनके मुख से अनेक वार ये भाव व्यक्त होते रहते है—"यद्यपि किसी देशविशेष से मेरा मोह नही है, तथापि मै भारत मे भ्रमण कर रहा हू, अतः जब तक श्वास रहेगा, मै राष्ट्र, समाज व सघ के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करता रहूंगा।"[1] राष्ट्रीय विकास हेतु वे अनुशासन और मर्यादा की प्राण-प्रतिष्ठा को अनिवार्य मानते है। उनकी अवधारणा है कि अनुशासन और व्यवस्थाविहीन राष्ट्र को पराजित करने के लिए शत्रु की आवश्यकता नही, वह अपने आप पराजित हो जाता है।

राष्ट्र-निर्माण के नाम पर होने वाली विसंगतियो को प्रश्नात्मक शैली मे प्रस्तुत करते हुए वे कड़े शब्दो मे कहते है—"क्या राष्ट्र की दूर-दूर तक सीमा बढा देना राष्ट्र-निर्माण है ? क्या सेना बढाना राष्ट्र-निर्माण है ? क्या सहारक अस्त्र-शस्त्रो का निर्माण व सग्रह करना राष्ट्र-निर्माण है ? क्या भौतिक व वैज्ञानिक नए-नए आविष्कार करना राष्ट्र-निर्माण है ? क्या सोना, चादी और रुपए-पैसो का सचय करना राष्ट्र-निर्माण है ? क्या अन्यान्य शक्तियो व राष्ट्रो को कुचलकर उन पर अपनी शक्ति का सिक्का जमा लेना राष्ट्र-निर्माण है ? यदि इन्ही का नाम राष्ट्र-निर्माण होता है तो मैं जोर देकर कहूंगा, यह राष्ट्र-निर्माण नही, वल्कि राष्ट्र का विध्वंस है।[2]

देश की समस्या को व्यक्त करने वाले प्रश्नो के परिप्रेक्ष्य मे उनके राष्ट्र-चिन्तन के गाभीर्य को समझा जा सकता है—"जिस देश मे करोडो व्यक्तियो को दलित समझा जा रहा है, उन्हे अस्पृश्य माना जा रहा है, उनके सामने भोजन और मकान की समस्या है, स्वास्थ्य और शिक्षा की समस्या है, क्या उस देश मे अपने आपको स्वतन्त्र और सुखी मानना लज्जास्पद नही है ?"[3]

राष्ट्र के विकास मे वे तीन मूलभूत बाधाओ को स्वीकार करते है—"जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण का अभाव, आत्म-नियन्त्रण की अक्षमता तथा वढती आकाक्षाए—ये ऐसे कारण है, जो देश को समस्याओ की धधकती आग मे झोक रहे है।"

जिस प्रकार गाधीजी ने 'मेरे सपनो का भारत' पुस्तक लिखी, वैसे ही आचार्य तुलसी कहते है—"मेरे सपनो मे हिन्दुस्तान का एक रूप है, वह इस प्रकार है—

---

१ नैतिक सजीवन, पृ० ९।
२ जैन भारती, ९ दिस० १९७३।
३ १६-११-७४ के प्रवचन से उद्धृत।

० देश मे गरीबी न रहे ।
० किसी प्रकार का धार्मिक संघर्ष न हो ।
० कोई किसी को अस्पृश्य मानने वाला न हो ।
० कोई मादक पदार्थों का सेवन करने वाला न हो ।
० खाद्य पदार्थो मे मिलावट न हो ।
० कोई रिश्वत लेने वाला न हो ।
० कोई शोषण करने वाला न हो ।
० कोई दहेज लेने वाला न हो ।
० वोटो का विक्रय न हो ।"[1]

नए वर्ष पर सम्पूर्ण मानव-जाति को उनके द्वारा दिए गए हेय और उपादेय के बोधपाठ राष्ट्र की अनेक समस्याओ को समाहित कर उसे विकास के पथ पर अग्रसर करने वाले है—

"१. मनुष्य क्रूरता के स्थान पर करुणा का पाठ पढे ।
२. स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ का पाठ पढे ।
३ अव्रत के स्थान पर अणुव्रत का पाठ पढे ।
४ धर्म-निरपेक्षता के स्थान पर धर्म-सापेक्षता का पाठ पढे ।
५. अलगाववाद और जातिवाद के स्थान पर भाईचारे का पाठ पढे ।
६ प्रान्तवाद और भाषावाद के स्थान पर राष्ट्रीय एकता और मानवीय एकता का पाठ पढे ।
७ धर्म को राजनीति से पृथक् रखने का पाठ पढे ।
८ राजनीति पर धर्म के नियन्त्रण का पाठ पढे ।
९. अपनी ओर से किसी का अहित न करने का पाठ पढे ।

मानव को मानवता सिखाने वाले ये पाठ शैशव को सात्त्विक सस्कारो से सवारेगे, यौवन को उद्धत नही होने देगे और अनुभवप्रवण बुढापे को भारभूत होने से बचाएगे ।"[2]

आचार्य तुलसी ने केवल राष्ट्र की उन्नति एव उत्कर्ष के ही गीत नही गाए, उसकी अधोगति के कारणो का भी विश्लेषण किया है। भारत की वार्तमानिक स्थितियो को देखकर अनेक बार उनके मन मे पीडा के भाव उभर आते है। उनके साहित्य मे अनेक स्थलों पर इस कोटि के विचार पढने को मिलेगे—" 'स्टैण्डर्ड ऑफ लाइफ' के नाम पर भौतिकवाद, सुविधावाद और अपसस्कारो का जो समावेश हिन्दुस्तानी जीवन-शैली मे

---

१ एक बूद . एक सागर, पृ० १६७७ ।
२. बैसाखिया विश्वास की, पृ० ११ ।

हुआ है या हो रहा है, वह निश्चित रूप से चिन्तनीय है। वीसवी सदी के हिन्दुस्तानियो द्वारा की गई इस हिमालयी भूल का प्रतिकार या प्रायश्चित्त इस सदी के अन्त तक हो जाए तो वहुत शुभ है, अन्यथा आने वाली शताब्दी की पीढिया अपने पुरखो को कोसे विना नही रहेगी।"[1]

आचार्य तुलसी का निश्चित अभिमत है कि राष्ट्र का विकास पुरुषार्थ-चेतना से ही सम्भव है। देशवासियो की पुरुपार्थ चेतना को जगाने के लिए वे उन्हे अतीत के गौरव से परिचित करवाते हुए कहते है—"जो भारत किसी जमाने मे पुरुपार्थ एव सदाचार के लिए विश्व के रगमच पर अपना सिर उठाकर चलता था, आज वही पुरुपार्थहीनता एव अकर्मण्यता फैल रही है। मेरा तो ऐसा सोचना है कि हिन्दुस्तान को अगर सुखी बनना है, स्वतन्त्र रहना है तो वह विलासी न वने, श्रम को न भूले।" इसी सन्दर्भ मे जापान के माध्यम से हिन्दुस्तानियो को प्रतिवोध देती उनकी निम्न पक्तिया भी देश की पुरुपार्थ-चेतना को जगाने वाली है—"हिन्दुस्तानी लोग बाते वहुत करते है, पर काम करने के समय निराश होकर बैठ जाते है। ऐसी स्थिति मे प्रगति के नए आयाम कैसे खुल पाएगे? जिस देश के लोग पुरुपार्थी होते है, वे कही-के-कही पहुच जाते है। जापान इसका साक्षी है। पूरी तरह से टूटे जापान को वहां के नागरिको ने कितनी तत्परता से खडा कर लिया। क्या भारतवासी इससे कुछ सवक नही लेगे?"[2]

राजनीति

किसी भी राष्ट्र को उन्नत और समृद्धि की ओर अग्रसर करने मे सक्रिय, साफ-सुथरी एव मूल्यो पर आधारित राजनीति की सर्वाधिक आवश्यकता रहती है। आचार्य तुलसी की दृष्टि मे वही राजनीति अच्छी है, जो राज्य को कम-से-कम कानून के घेरे मे रखती है। राष्ट्र के नागरिको को ऐसा स्वच्छ प्रशासन देती है, जिससे वे निश्चिन्तता और ईमानदारी के साथ जीवनयापन कर सके।[3]

देश की राजनीति को स्वस्थ एव स्थिर रूप देने के लिए वे निम्न चिन्तन-विन्दुओ को प्रस्तुत करते है—

१. शासन का लोकतान्त्रिक एव सम्प्रदायनिरपेक्ष स्वरूप अक्षुण्ण रहे। शासन की दृष्टि मे यदि हिन्दू, मुसलमान, अकाली आदि भेद-रेखाए जन्मेगी तो 'भारत' भारत नही रहेगा।

२. सत्य एव अहिंसात्मक आचारभित्ति वनी रहे। हिसा और दोहरी

---

१. एक वूद : एक सागर, पृ० १६७८।

२ वैसाखिया विश्वास की, पृ० ९५।

३ अमृत सदेश, पृ० ५१।

नीति अन्ततः लोकतन्त्र की विनाशक बनेगी ।

३ व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता एवं सिद्धांतवादी राजनीति का पुनर्स्थापन ।

४ चुनाव-पद्धति एवं परिणाम को देखते हुए शासनपद्धति में भी परिवर्तन ।

५. चरित्र-हनन की घातक प्रवृत्ति का परित्याग ।

६. विधायक आचार-सहिता का निर्माण ।

७ नैतिक शिक्षण एव साम्प्रदायिक सौहार्द ।[1]

राजनीति के क्षेत्र मे विद्यार्थियों के गलत उपयोग के वे सख्त विरोधी है। क्योंकि इस उम्र मे उनकी कोमल भावनाओं को भडकाकर उन्हें ध्वंसात्मक प्रवृत्तियो मे शामिल करने से उनके जीवन की दिशा गलत हो जाती है। इससे न केवल उनका स्वयं का भविष्य ही अंधकारमय बनता है, अपितु पूरे राष्ट्र का भविष्य भी धुंधलाता है। इस सन्दर्भ में उनका स्पष्ट कथन है—"जिस देश मे विद्यार्थियो को राजनीति का मोहरा बनाकर गुमराह किया जाता है, उनकी शिक्षा मे व्यवधान उपस्थित किया जाता है, उस देश का भविष्य कैसा होगा, कल्पना नही की जा सकती।"[2] इसी सन्दर्भ में उनका निम्न वक्तव्य भी मननीय है— "यदि विद्यार्थियो को राजनीति के साथ जोडा गया तो भविष्य मे यह खतरनाक मोड़ ले सकता है, क्योंकि बच्चो के कोमल मानस को उभारा जा सकता है, किन्तु इसका शमन करना सहज नहीं है।"[3]

संसद

ससद राष्ट्र की सर्वोच्च सस्था है। आचार्य तुलसी मानते है कि देश का भविष्य ससद के चेहरे पर लिखा होता है। यदि वहां भी शालीनता और सभ्यता का भंग होता है तो समस्या सुलझने के बजाय उलझती जाती है। वार्तमानिक ससद की शालीनता भग करने वाली स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते है— "छोटी-छोटी बातो पर अभद्र शब्दो का व्यवहार, हो-हल्ला, छींटाकशी, हंगामा और बहिर्गमन आदि ऐसी घटनाए है, जिनसे संसद जैसी प्रतिनिधि संस्था का गौरव घटता है।"[4] सांसद जनता के सम्मानित प्रतिनिधि होते हैं। ससद मे उनका तभी तक सत्ता पर बने रहने का अधिकार है, जब तक जनता के मन मे उनके प्रति सम्मान और विश्वास है।

ससद मे कैसे व्यक्तित्व आने चाहिए, इस बात को आचार्य तुलसी

---

१. पांव-पाव चलने वाला सूरज, पृ० २४३ ।

२. क्या धर्म बुद्धिगम्य है ? पृ० १४४ ।

३. जैन भारती, ३ जन० १९७१ ।

४. तेरापन्थ टाइम्स, ३० जुलाई १९९० ।

स्वयं न कहकर ससद के 'द्वारा कहलवा रहे है। ससद के मुख से उद्गीर्ण उनका वक्तव्य काफी वजनी है—"ससद जनता को चिल्ला-चिल्लाकर कह रही है कि कृपा करके तीन प्रकार के व्यक्तियो को चुनकर ससद मे मत भेजिए—पहले वे, जो परदोपदर्शी है, जो विपक्ष की अच्छाई मे भी बुराई देखने वाले है। ''''''दूसरे वे, जो कुटिल है, मायावी है, नेता नही, अभिनेता है, असली पात्र नही, विदूपक की भूमिका निभाने वाले है। सत्ता-प्राप्ति के लिए अकरणीय जैसा उनके लिए कुछ भी नही है। जिस जनता के कधो पर बैठकर केन्द्र तक पहुचते है, उसके साथ भी धोखा कर सकते है। जिस दल के घोषणा-पत्र पर चुनाव जीतकर आए है, उसकी पीठ मे छुरा भोक सकते है। तीसरे उन व्यक्तियो को मुझसे दूर रखिए, जो असयमी है, चरित्रहीन है, जो सत्ता मे आकर राष्ट्र से भी अधिक महत्व अपने परिवार को देते है। देश से भी अधिक महत्त्व अपनी जाति और सम्प्रदाय को देते है। सत्ता जिनके लिए सेवा का साधन नही, विलास का साधन है। 'भारतीय ससद भारतीय जनता के द्वार पर अपनी मर्मभेदी पुकार लेकर खडी है।"[1]

चुनाव

जनतत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू चुनाव है। यह राष्ट्रीय चरित्र का प्रतिबिम्ब होता है। जनतत्र मे स्वस्थ मूल्यो को बनाए रखने के लिए चुनाव की स्वस्थता अनिवार्य है। आचार्य तुलसी का मानना है—"चुनाव का समय देश के भविष्य-निर्धारण का समय है। अभाव और मोह को उत्तेजना देकर लोकमत प्राप्त करना चुनाव की पवित्रता का लोप करना है। जिस देश मे वोट बेचे और खरीदे जाते है, उस देश का रक्षक कौन होगा ? ये दोनो बाते जनतत्र की दुश्मन है।"[2]

चुनाव के समय हर प्रत्याशी का चिन्तन रहना चाहिए कि राष्ट्र को नैतिक दिशा मे कैसे आगे बढाया जाए ? उसकी एकता और अखण्डता को कायम रखने का वातावरण कैसे बनाया जाए ? लेकिन आज इसके विपरीत स्थिति देखने को मिलती है। भारतीय सस्कृति के परिप्रेक्ष्य मे कुर्सी के लिए होने वाली होड की अभिव्यक्ति वे इन शब्दो मे करते है—"जहा पद के लिए मनुहारे होती थी, कहा जाता था—मै इसके योग्य नही हू, तुम्ही संभालो, वहां आज कहा जाता है कि पद का हक मेरा है, तुम्हारा नही। पद के योग्य मै हू, तुम नही।"[3]

आचार्य तुलसी की दृष्टि मे चुनाव मे नैतिकता अनिवार्य शर्त है।

---

१ राजपथ की खोज, पृ० १४१-४२।

२ जैन भारती, १८ फरवरी, १९६८।

३. वही, २२ नव० १९६४।

वे कहते है—"चुनाव चाहे ससद के हो, विधान सभाओ के हो, महाविद्यालयो के हो या अन्य सभा-संस्थाओ के, जहा नीति की वात पीछे छूट जाती है, वहा महासमर मच जाता है।"[1]

चुनाव के समय हर राजनैतिक दल अपने स्वार्थ की वात सोचता है तथा येन-केन-प्रकारेण ज्यादा-से-ज्यादा वोट प्राप्त करने की तरकीबें निकालता है। आचार्य तुलसी का मतव्य है कि जव तक शासक और जनता को लोकतंत्र के अनुसार प्रशिक्षित एव दीक्षित नही किया जाएगा, तव तक लोकतत्र सुदृढ नही वन सकता। वे अपने विशिष्ट लहजे मे कहते है कि आश्चर्य तो तव होता है, जव कई अगूठे छाप व्यक्ति भी जनता द्वारा निर्वाचित होकर ससद मे पहुंच जाते हैं।"[2]

मतदान की प्रक्रिया मे शुद्धि न आने के वे तीन कारण स्वीकारते हैं—अज्ञान, अभाव एव मूढ़ता। इस सन्दर्भ मे उनकी निम्न टिप्पणी पठनीय है- "अनेक मतदाताओ को अपने हिताहित का ज्ञान नहीं है, इसलिए वे हित-साधक व्यक्ति या दल का चुनाव नही कर पाते। अनेक मतदाता अभाव से पीड़ित है। वे अपने मत को रुपयो मे वेच डालते हैं। अनेक मतदाता मोहमुग्ध है, इसलिए उनका मत शराव की वोतलो के पीछे लुढक जाता है।"[3]

इसी प्रसग मे उनकी निम्न टिप्पणी जनता की आखो को खोलने वाली है—"जो जनता अपने वोटो को चद चादी के टुकड़ो मे वेच देती हो, सम्प्रदाय या जाति के उन्माद मे योग्य-अयोग्य की पहचान खो देती हो, वह जनता योग्य उम्मीदवार को संसद मे कैसे भेज पाएगी?"[4] उनके विचारों से स्पष्ट है कि स्वच्छ प्रशासन लाने का दायित्व जनता का है। चुनाव के समय वह जितनी जागरूक होगी, उतना ही देश का हित होगा।

आचार्य तुलसी ने अणुव्रत के माध्यम से चुनावी वातावरण को स्वस्थ वनाने का प्रयत्न किया है। उनका मानना है कि चुनाव का माहौल तूफान से भी अधिक भयकर होता है। उस समय अणुव्रत के माध्यम से नैतिकता का एक छोटा-सा दीप भी जलता है तो कम-से-कम वह प्रकाश के अस्तित्व को तो व्यक्त करता ही है। यदि चुनाव को पवित्र संस्कार नही दिया गया तो भारत की त्यागप्रधान परम्परा दुर्वल एवं क्षीण हो जाएगी।"[5]

---

१ विज्ञप्ति स० ८९९।
२ अणुव्रत, १ फरवरी, १९९१।
३ राजपथ की खोज, पृ० १२८।
४ जैन भारती, १८ फरवरी, १९६८।
५ विज्ञप्ति सं० ९७२।

चुनाव-शुद्धि की दृष्टि से उन्होने अणुव्रत के माध्यम से मतदाता और उम्मीदवार की एक नैतिक आचार-सहिता तो प्रस्तुत की ही है, साथ ही अपने प्रवचनो एव निवन्धो मे भी अनेक महत्त्वपूर्ण मुद्दो को उठाकर जनता को प्रशिक्षित किया है। चुनावशुद्धि के सन्दर्भ मे दिए गए उनके तीन विकल्प अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

पहला—हम विजयी बने या न बने, पर चुनाव में भ्रष्ट तरीको का प्रयोग नही करेंगे।

दूसरा—सत्तारूढ़ दल चुनाव-शुद्धि के लिए सकल्पवद्ध हो।

तीसरा—जनमत जागृत हो।"[1]

सांसद एवं विधायक

लोकतत्र मे शासनतत्र की बागडोर जनता द्वारा चुने गए सासदो और विधायको के हाथो मे होती है। लोकतत्र की यह दुर्वलता है कि (सासदो) विधायको का चुनाव अर्हता, गुणवत्ता एव योग्यता के आधार पर न होकर, दल या संस्था के आधार पर होता है। इससे राजनीति स्वस्थ नही वन सकती। आचार्य तुलसी का मानना है कि राष्ट्रीय चरित्र अपने चरित्र को भारतीय मूल्यो एवं आदर्शों के अनुरूप ढाले, यह अत्यन्त आवश्यक है। अतः प्रत्याशियो को प्रतिवोध देते हुए वे कहते है—"लोगो मे चुनाव के लिए पार्टी का टिकट पाने की जितनी उत्सुकता होती है, उतनी उत्सुकता यदि योग्य बनने की हो तो कितना अच्छा काम हो सकता है।"[2]

चुनाव के माहौल मे एक पत्रकार द्वारा पूछा गया प्रश्न कि हम किसको वोट दे, का उत्तर देते हुए वे कहते है—"इस प्रसग मे पार्टी, पक्ष, विपक्ष, सम्प्रदाय, जाति आदि के लेवल को नजरअदाज कर सही व्यक्ति की खोज करनी चाहिए। अणुव्रत के अनुसार उस व्यक्ति की पहचान यह हो सकती है—जो नैतिक मूल्यो के प्रति आस्थाशील हो, ईमानदार हो, निर्लोभी हो, सत्यनिष्ठ हो, व्यसनमुक्त हो तथा निष्कामसेवी हो।"[3] इसी सन्दर्भ मे उनका दूसरा वक्तव्य भी स्वस्थ राजनीतिज्ञ की अनेक विशेपताओ को उजागर करने वाला है—"स्वस्थ राजनीति मे ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता है, जो निष्पक्ष हो, सक्षम हो, सुदृढ हो, स्पष्ट व सर्वजनहिताय का लक्ष्य लेकर चलने वाला हो।"

सासद और विधायक के रूप मे वे ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना करते है,

---

१. एक बूद · एक सागर, पृ० ५८५।
२. उद्वोधन, पृ० १२९।
३ जीवन की सार्थक दिशाएं, पृ० ३६।

जो शिखर पर बैठकर भी तलहटी से जुड़ा रहे। जो देश की समस्याओ से जूझने के हिमालयी सकल्प की पूर्ति के साधन जुटाता रहे और अंतिम पंक्ति मे खडे व्यक्ति को भी सडक पर फेके गये केले के छिलको-सी नियति न समझे।

सासदो और विधायको का सही चयन हो इसके लिए उनका अमूल्य सुझाव है—"राजनीति का चेहरा साफ-सुथरा रहे, इसके लिए अपेक्षित है कि इस क्षेत्र मे आने वाले व्यक्तियो के चरित्र का परीक्षण हो। आई क्यू टेस्ट की तरह करेक्टर टेस्ट की कोई नई प्रविधि प्रयोग में आए।"[1]

आचार्य तुलसी का विचार है कि लोकतंत्र मे सत्ता पाने का प्रयत्न एकान्तत. बुरा नही है पर नैतिकता और सिद्धान्तवादिता को दूर रखकर हिसा, उच्छृंखलता द्वारा केवल सत्ता पाने का प्रयत्न जनतत्र का कलंक है।"[2] आज की दूपित राजनीति का आकलन करते हुए वे कहते है—"राष्ट्रहित और जनहित की महत्त्वाकाक्षा व्यक्तिहित और पार्टीहित के दवाव से नीचे वैठती जा रही है। सत्ता के स्थान पर स्वार्थ आसीन हो रहा है। जनता के दु ख-दर्द को दूर करने के वायदे चुनाव घोपणा-पत्र की स्याही सूखने से पहले विस्मृति के गले मे टग जाते हैं।"[3] राजनेताओ की सत्तालोलुपता को उन्होने गाधी के आदर्श के समक्ष कितने तीखे व्यग्य के साथ प्रस्तुत किया है—"गाधी ने कहा था—'मेरा ईश्वर दरिद्र-नारायणो मे रहता है।' आज यदि उनके भक्तो से यही प्रश्न पूछा जाए तो संभवतः यही उत्तर मिलेगा कि हमारा ईश्वर कुर्सी मे रहता है, सत्ता मे रहता है, झोपडी मे रहने वाला ईश्वर आज प्रासाद मे रहने लगा है। इससे अधिक गाधी के सिद्धान्तो का मजाक और क्या हो सकता है?"[4]

चुनाव के समय होने वाले सघर्प तथा उसके परिणामो को प्रकट कर विधायको की ओर अगुलिनिर्देश करने वाली उनकी निम्न टिप्पणी यथार्थ का उद्घाटन करने वाली है—"ऐसा लगता है राजनीतिज्ञ का अर्थ देश मे सुव्यवस्था वनाए रखना नही, अपनी सत्ता और कुर्सी वनाए रखना है। राजनीतिज्ञ का अर्थ उस नीतिनिपुण व्यक्तित्व से नही, जो हर कीमत पर राष्ट्र की प्रगति, विकास-विस्तार और समृद्धि को सर्वोपरि महत्त्व दे, किन्तु उस विदूपक-विशारद व्यक्तित्व से है, जो राष्ट्र के विकास और समृद्धि को अवनति के गर्त मे फेककर भी अपनी कुर्सी को

---

१. वैसाखिया विश्वास की, पृ० ९७।
२. १-३-६९ के प्रवचन से उद्धृत।
३. जैन भारती, १ फरवरी, १९७०।
४. अणुव्रत : गति प्रगति, पृ० १८७।

सर्वोपरि महत्त्व देता है।"[1]

वे इस बात को मानकर चलते है कि राजनैतिक लोगो से महात्मा बनने की आशा नही की जा सकती, पर वे पशुता पर उतर आएं, यह ठीक नही है। अत. राजनीतिज्ञो को प्रेरणा देते हुए वे कहते है—"यदि राजनीतिज्ञ स्थायी शाति चाहते है तो उन्हे हिंसा के स्थान पर अहिसा, प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोगिता और हृदय की वक्रता के स्थान पर सरलता को अपनाना होगा।"[2]

यदि शासक मे विलासिता, आलस्य और कदाचार है तो देश को अनुशासन का पाठ कौन पढाएगा ? अतः सत्ताधीशों के विलासी जीवन पर कटाक्ष करने से भी वे नही चूके है—"देखा जाता है कि एक ओर लोगो के पास चढने को साइकिल भी नही है और दूसरी ओर नेता लोग लाखो रुपयो की कीमती कारों मे घूमते है। एक ओर देश के लाखो-लाखो व्यक्तियो को झोपड़ी भी उपलब्ध नही है और दूसरी ओर नेता लोग एयरकडीशन बगलो मे रहते है। पिता मिठाई खाए और बच्चे भूखे मरे, क्या यह भी कोई न्याय है ?"[3]

सत्तादल और प्रतिपक्ष दोनों को ही छीटाकशी एव विद्वेष को भुलाकर एकता एव सामजस्य की प्रेरणा वे कितने तीखे एवं सटीक शब्दों मे दे रहे है—"दोनो ही दलो को यह चिन्ता कहा है कि हमारी आपसी लडाई से ५० करोड (वर्तमान मे ८५ करोड) जनता का कितना अहित हो रहा है ? विरोधी राष्ट्रो को इससे लाभ उठाने का कैसा अवसर मिल रहा है ?"[4] वे अनेक वार यह दृढ विश्वास व्यक्त कर चुके है कि यदि चरित्रसम्पन्न व्यक्ति राजनीति के रथ को हाकते रहेंगे तो उसके उत्पथ मे भटकने की संभावना क्षीण हो जाएगी।"[5]

लोकतंत्र

वर्तमान मे भारत सबसे बडा लोकतान्त्रिक देश है। आचार्य तुलसी का मानना है कि लोकतंत्र एक जीवित तत्र है, जिसमे सबको समान रूप से अपनी-अपनी मान्यताओ के अनुसार चलने की पूरी स्वतत्रता होती है। लोकतंत्र की नीव जनता के मतों पर टिकी होती है। यदि मत भ्रष्ट हो जाए तो प्रशासन तो भ्रष्ट होगा ही।[6] इस सदर्भ मे उनके निम्न उद्धरण

१-२. एक बूद : एक सागर, पृ० ११६२।

३. जैन भारती, ५ जुलाई, १९७०।

४. वही, ३० नव० १९६९।

५. वैसाखिया विश्वास की, पृ० ९७।

६. राजपथ की खोज, पृ० १२८।

लोकतत्र के हृदय को छूने वाले है—

"वोटो के गलियारे मे सत्ता के सिहासन तक पहुचने की आकाक्षा और जैसे-तैसे वोट बटोरने का मनोभाव—ये दोनों ही लोकतत्र के शत्रु है। लोकतत्र मे जिस ढग से वोटो का दुरुपयोग हो रहा है, उसे देखकर इस तत्र को लोकतत्र कहने का मन नही होता।"[1]

सत्ता और सम्पदा के शीर्ष पर बैठकर यदि जनतंत्र के आदर्शों को भुला दिया जाता है तो वहा लोकतंत्र के आदर्शों की रक्षा नही हो सकती। इस सदर्भ मे उनका मौलिक मतव्य है—"तंत्र के व्यासपीठ पर जो व्यक्ति बैठता है, उसकी दृष्टि जन पर होनी चाहिए, तंत्र या पार्टी पर नही। आज जन पीछे छूट गया है तथा तंत्र आगे आ गया है। इसी कारण हिंसा भड़क रही है। मेरी दृष्टि मे वही लोकतंत्र अधिक सफल होता है, जिसमे आत्मतंत्र का विकास हो, अन्यथा जनतत्र मे भी एकाधिपत्य, अव्यवस्था और अराजकता की स्थितियां उभर सकती है।"[2]

लोकतंत्र की मूलभूत समस्याओ की ओर इगित करते हुए आचार्य तुलसी का कहना है—"जब राष्ट्र मे हिंसा और आतंक के स्फुलिंग उछलते है, सम्प्रदायवाद सिर उठाता है, जातिवाद के आधार पर वोटो का विभाजन होता है, अस्पृश्यता के नाम पर मनुष्य के प्रति घृणा का भाव बढ़ता है, तब लोकतंत्रीय चेतना मूच्छित हो जाती है।" लोकतंत्र के प्रासाद को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए वे चार स्तम्भों को आवश्यक मानते है—"स्वतत्रता, सापेक्षता, समानता और सह-अस्तित्व। इनके बिना लोकतंत्र का अस्तित्व टिक नही सकता।"[3]

स्वतत्रता के संदर्भ मे उनका चिन्तन है कि उसका सही उपयोग होना चाहिए। यदि स्वतंत्रता का दुरुपयोग होता है तो लोकतत्र की पवित्रता समाप्त हो जाती है। वर्तमान मे स्वतंत्रता के नाम पर होने वाली अवांछनीय बातों की ओर सकेत करते हुए वे खुले शब्दो मे कहते है—"आज लोकतंत्र के नाम पर बोलने की स्वतत्रता का उपयोग गाली-गलोच मे हो रहा है। लिखने की स्वतंत्रता का उपयोग किसी के मर्मोद्घाटन और किसी पर आरोपो की वर्षा से किया जा रहा है। चिन्तन और आचरण की स्वतंत्रता ने लोगो को अपनी संस्कृति, सभ्यता और नैतिक मूल्यो से दूर धकेल दिया है। पीड़क दुश्चक्र तो यह है कि अधिकाश व्यक्तियो को इस स्थिति की चिन्ता भी नही है।"[4] लोकतात्रिक प्रणाली मे जनता

१. मनहंसा मोती चुगे, पृ० ८६।
२. जैन भारती, २२ जून, १९८६।
३. एक बूद : एक सागर, पृ० ११९५।
४. अणुव्रत पाक्षिक, १ फर, १९९१।

को लिखने, वोलने, सोचने और करने की स्वतंत्रता होती है। जनता के स्वतंत्र अधिकारो का हनन करने वाले शासको के समक्ष आचार्य तुलसी चेतावनी की भापा मे प्रश्न उपस्थित करते है—"जिस देश के शासक यह कहते है कि जनता को सोचने की जरूरत नही हैं, सरकार उसके लिए देखेगी। जनता को वोलने की अपेक्षा नही है, सरकार उसके लिए वोलेगी और जनता को कुछ करने की जरूरत नही है, सरकार उसके लिए करेगी। क्या शासक इन घोपणाओ के द्वारा जनता को पगु, अशक्त और निष्क्रिय वनाकर लोकतंत्र की हत्या नही कर रहे है ?"[1]

समानता लोकतंत्र का हृदय है। आचार्य तुलसी कहते है—"कुछ लोग कोठियो में रहे, कुछ को फुटपाथ पर रात वितानी पडे, यह विपमता आज के विश्व को मान्य नही हो सकती क्योकि इसकी अंतिम परिणति हिंसा और संघर्ष है।"[2] लोकतंत्र के सदर्भ मे समानता को स्पष्ट करने वाली डा० अम्वेडकर की निम्न पक्तिया उल्लेखनीय है—"प्रत्येक वालिग स्त्री पुरुप को मतदान का अधिकार देकर सविधान ने राजनीतिक समता तो ला दी किंतु आर्थिक और सामाजिक समता अभी आयी नही है। यदि इस दिशा मे भारत ने सफल प्रयत्न नही किया तो राजनीतिक समता निकम्मी सिद्ध होगी, सविधान टूट जाएगा।"

आचार्य तुलसी अनेक वार इस चिंतन को अभिव्यक्ति दे चुके है कि यदि देश के लोकतत्र को मजवूत और सगठित वनाना है तो मत्रियो, सांसदो और विधायकों को प्रशिक्षित करना होगा। इसी वात की प्रस्तुति व्यग्यात्मक शैली मे पठनीय है—"मुझे वडा आश्चर्य होता है कि इन मत्रियो, विधायको आदि को कोई प्रशिक्षण नही मिलता, जवकि एक वकील, इजीनियर या डाक्टर को पहले प्रशिक्षण लेना पडता है। मै सोचता हू कि विधायको के लिए भी एक प्रशिक्षण केन्द्र होना आवश्यक है। विना प्रशिक्षण चुनाव मे कोई उम्मीदवार के रूप मे खडा न हो। मेरा विश्वास है—अणुव्रत यह प्रशिक्षण देने मे समर्थ है।"[3]

राष्ट्रीय एकता

अनेकता मे एकता भारतीय सस्कृति का आदर्श रहा है। यहा अनेक धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ण, प्रान्त एवं राजनैतिक पार्टिया है, पर भिन्नता और अनेकता होने मात्र से सास्कृतिक एव राष्ट्रीय एकता को विघटित नही किया जा सकता। आचार्य तुलसी का मंतव्य है कि भिन्नताओ का लोप कर

१ सफर · आधी शताव्दी का, पृ० ९८।
२ एक वूद . एक सागर, पृ० १२७२।
३. जैन भारती, ३० नवम्वर, १९६९।

सवको एक कर देना असंभव है। ऐसी एकता में विकास के द्वार अवरुद्ध हो जाते है। अनेकता भी वही कीमती है, जो हमारी मौलिक एकता को किसी प्रकार का खतरा पैदा न करे।"[1] इसी वात को उदाहरण के माध्यम से प्रस्तुति देते हुए वे कहते है—"एक वृक्ष की अनेक शाखाओ की भांति एक राष्ट्र के अनेक प्रात हो सकते है, पर उनका विकास राष्ट्रीयता की जड से जुडकर रहने मे है, जव भेद में अभेद को मूल्य देने की वात व्यावहारिक वनेगी, उसी दिन राष्ट्रीय एकता की सम्यक् परिणति होगी।"[2] वे कहते है—"जहा विविधता एकता को विघटित करे, उसमे वाधक वने, उस विविधता को समाप्त करना आवश्यक हो जाता है। शरीर में कोई अवयव शरीर को नुकसान पहुंचाने लगे तो उसे काटने या कटवाने की मानसिकता हो जाती है।"[3]

राष्ट्र की विषम स्थितियो एवं विघटनकारी तत्त्वो के विरुद्ध आचार्य तुलसी ने सशक्त आवाज उठाई है। राष्ट्रीय एकता को उन्होने अपनी श्रम की वूदो से सीचा है। अपने अठहत्तरवें जन्मदिन पर वे लाडनू मे देश की हिंसक स्थितियो को अहिंसक नेतृत्व प्रदान करने हेतु अपने दायित्व-वोध का उच्चारण इन शब्दो में करते हैं—"मैं राष्ट्रीय एकता परिषद् के एक सदस्य के नाते अपना दायित्व समझता हूं कि अपनी शक्ति देश की समस्याओ को सुलझाने मे लगाऊ। मुझे लगता है कि हिंसा, आतंक, अपहरण और क्रूरता आदि समस्याओ से भी वड़ी समस्या है—मानवीय मूल्यो के प्रति अनास्था। इस दिशा मे मुझे अणुव्रत के माध्यम से लोकतत्र की शुद्धि हेतु और भी तीव्र गति से कार्य करना है।" उनकी इसी सेवा का मूल्याकन करते हुए भारत सरकार ने उन्हे राष्ट्रीय एकता परिषद् के सदस्य के रूप मे मनोनीत किया है।

राष्ट्रीय एकता के अनेक घटको में एक घटक है—भाषा। इस संदर्भ मे आचार्य तुलसी का मंतव्य हे—"यदि देश की एक भाषा होती है तो हर प्रात के व्यक्ति का दूसरे प्रात के व्यक्ति के साथ सम्पर्क जुड सकता है। मै मानता हू कि देश की एकता के लिए राष्ट्र मे एक भाषा का होना अत्यन्त आवश्यक है।"[4]

आचार्य तुलसी इस सत्य से परिचित है कि केवल भौगोलिक एकता के नाम पर राष्ट्रीय एकता को चिरजीवी नही वनाया जा सकता, फिर भी प्रातवाद देश की अखडता को विघटित करने मे मुख्य कारण वनता है। वे अलगाववादी तत्त्वो को स्पष्ट शब्दो मे कहते है—"हरेक प्रांत जव अपने

१ विज्ञप्ति स० ९९३।

२-३. अणुव्रत पाक्षिक, १६ मई १९९०।

४ रश्मिया, पृ० ८।

ही हित की वात सोचता है, तव राष्ट्र की एकता खतरे मे पड़ जाती है। उत्तर के लोग उत्तर की चिन्ता करते है, दक्षिण के लोग दक्षिण की, लेकिन भारत की चिन्ता कौन करे ? भारत सलामत है तो सव सलामत है। भारत ही नही रहा तो उत्तर और दक्षिण का क्या होगा ?[१] आचार्य तुलसी मानते है कि प्रांतीय व्यवस्था देश के शासनसूत्र मे स्थिरता लाने के लिए थी पर आज चद स्वार्थो के पीछे एक जटिल पहेली वनकर रह गयी है। जब तक राष्ट्र के लिए स्वतत्त्व को विसर्जित करने की भावना पुष्ट नही होगी, राष्ट्रीय एकता का नारा सार्थक नही हो सकता।"[२]

आचार्य तुलसी जव दक्षिण यात्रा पर थे तव दो प्रातो के वैचारिक वैषम्य मे समन्वय करती निम्न उक्ति उनके गंभीर चिंतन की साक्षी है—"केरल और तमिलनाडु एक-दूसरे से सटे हुए होने पर भी प्रकृति से भिन्न है। एक भक्तिप्रधान है तो दूसरा तर्कप्रधान। तमिलनाडु मे तर्क है ही नही और केरल में भक्ति है ही नही, ऐसा मै नही कहता हू। मै दोनो के मध्य हू, दोनो का समन्वय करना चाहता हूं।"[३]

साम्प्रदायिक उन्माद मे उन्मत्त व्यक्ति कृत्य-अकृत्य के विवेक को खो देता है। इस सदर्भ मे आचार्य तुलसी का सापेक्ष चिन्तन है—"व्यक्ति अपने-अपने मजहव की उपासना मे विश्वास करे, इसमे कोई वुराई नही, पर जहा एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय के प्रति द्वेष और घृणा का प्रचार करते है, वहा देश की मिट्टी कलकित होती है, राष्ट्र शक्तिहीन होता है तथा व्यक्ति का मन अपवित्र वनता है।"[४] धर्मगुरु होते हुए भी वे साम्प्रदायिकता से कोसो दूर है। वे अनेक वार इस वात की अभिव्यक्ति दे चुके है कि मै जैन शब्द को भी वही तक पकडे रहना चाहता हू, जहा तक वह सम्पूर्ण मानव-हितो से विसगत नही होता।"

साम्प्रदायिक उन्माद के वारे मे वे स्पष्ट उद्घोषणा करते है—"साम्प्रदायिक उन्माद को वढाने मे असामाजिक तत्त्वो का तो हाथ रहता ही है, कही-कही धर्मगुरु भी इस आग मे ईंधन डाल देते है।"[५] आचार्य तुलसी कभी-कभी तो साम्प्रदायिकता फैलाने वाले लोगो को यहा तक कह देते है—"काच के महल मे बैठकर पत्थर फेकने वाला क्या कभी सुरक्षित रह सकता है ?"[६]

---

१ जैन भारती, २३ मार्च १९६९।

२ वही, १० मार्च १९६३।

३ त्रिवेन्द्रम्, १५-३-६९ के प्रवचन से उद्धृत।

४. विज्ञप्ति सं० ९८८।

५. एक वूद : एक सागर, पृ० १५६५।

६ मनहसा मोती चुगे, पृ० ८५।

धर्म और राजनीति की समस्या को सुलझाने के लिए वे राजनयिकों को भी अनेक बार सुझाव दे चुके है-- "यदि धर्मनिरपेक्षता को सम्प्रदाय-निरपेक्षता के रूप में मान्यता देकर मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाय तो राष्ट्रीय एकता की नींव सशक्त हो सकती है। मेरा विश्वास है कि हिंदुस्तान सम्प्रदायनिरपेक्ष होकर अपनी एकता वनाए रख सकता है किंतु धर्महीन होकर अपनी एकता को सुरक्षित नही रख सकता।"[1]

राष्ट्रीय एकता को सबसे बड़ा खतरा उन स्वार्थी राष्ट्र-नेताओं से भी है, जो केवल अपने हित की बात सोचते है। देश-सेवा के नाम पर अपना घर भरते है; तथा धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग आदि के नाम पर जनता को बांटने का प्रयत्न करते है। इस संदर्भ मे आचार्य तुलसी का उन लोगो के लिए संदेश है—

- पूरे विश्व को चरित्र की शिक्षा देने वाला भारत आज इतना दीन-हीन क्यो होता जा रहा है? स्वार्थ का कौन सा ऐसा दैत्य उसे इस प्रकार नचा रहा है? क्या इस देश की जनता परार्थ और परमार्थ की भूमिका पर खडी होकर नही सोच सकती?[2]
- राष्ट्रीय धरा से जुडकर रहने मे ही सबकी अस्मिता सुरक्षित रह सकती है तथा सबको विकास का अवसर मिल सकता है।[3]

राष्ट्रीय एकता परिपद् की दूसरी संगोष्ठी के अवसर पर प्रेषित अपने एक विशेप सदेश मे वे खुले शब्दो में कहते है—दलगत राजनीति और चुनाव समस्याओ को उभारने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। अपने-अपने दल की सत्ता स्थापित करने के लिए कभी-कभी वे काम भी हो जाते हैं, जो राष्ट्र के हित मे नही है। ... सत्ता को हथियाने की स्पर्धा होना अस्वाभाविक नही है पर स्पर्धा के वातावरण में जैसे-तैसे बहुमत और सत्ता पाने पर ही ध्यान केन्द्रित रहता है। यह एक समस्या है, जो राष्ट्रीय एकता की वहुत वडी वाधा है।"[4] वे भारत के राजनैतिक दलों की वदतर स्थिति का जिक्र करते हुए कहते है—"भारत मे एक-दो दल नही, दल मे भी उपदल हैं। उपदल मे भी और दलदल है। सभी मे ऐसे दुर्दान्त कलह पनप रहे है कि भाड मे चने की भांति एक एक ओर भागता है तो दूसरा दूसरी ओर। ... ...कभी-कभी तो वे वच्चो के खेल से भी ज्यादा घटिया हो जाते है।"[5] इस प्रकार अपने ही

---

१. युवादृष्टि, फर० १९९४।
२. वैसाखिया विश्वास की, पृ० ८७।
३ अणुव्रत पाक्षिक, १६ मई १९९०।
४ वैसाखियां विश्वास की, पृ० १०५।
५. विज्ञप्ति स० ९४४।

हित का चश्मा चढाकर चारो ओर देखने वाले व्यक्ति राष्ट्रीय चरित्र से कोसों दूर है। ऐसे लोग ही देश की भावात्मक एकता मे दरार डालते हैं।

राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए वे जनता को प्रतिबोध देते हुए कहते है—"राष्ट्रीय एकता की शुभ शुरुआत हर व्यक्ति अपने से करे, यह अपेक्षित है। यदि राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक यह सकल्प कर ले कि वह अपने किसी भी आचरण और व्यवहार से राष्ट्रीय एकता को नुकसान नही पहुंचाएगा तो यह उसका इस क्षेत्र मे बहुत बडा सहयोग होगा।"[1] साथ ही वे कुछ आचरणीय बिंदु एवं विकल्प भी प्रस्तुत करते है, जिससे राष्ट्रीय एकता मे बाधक तत्त्वो को अलग कर एकता एवं अखंडता को सुदृढ किया जा सके—

"१ भारतीय जनता के बडे भाग मे राष्ट्रीयता की कमी महसूस हो रही है। राष्ट्रीयता के बिना राष्ट्रीय एकता की कल्पना नही की जा सकती। इसलिए सर्वप्रथम राष्ट्रीय चेतना को जगाने की दिशा मे शक्ति का नियोजन हो।

२. राष्ट्रीयता के प्रशिक्षण-शिविरो की आयोजना तथा शिक्षा के साथ राष्ट्रीयता के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो।

३ लोकतत्र मे सबको समान अवसर और अधिकार प्राप्त है। इस स्थिति मे बहुसख्यक, अल्पसंख्यक जैसी विभक्त करने वाली व्यवस्थाओं पर पुनर्विचार किया जाए।

४. जातीयता तथा साम्प्रदायिकता को राष्ट्रीयता के साथ न जोडा जाए।

५. केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था और केन्द्रित शासन-व्यवस्था अव्यवस्था और सघर्ष को जन्म देती है। इसलिए उनके विकेन्द्रीकरण पर चिन्तन किया जाए।"[2]

इन विकल्पों के अतिरिक्त वे तीन मुख्य बिदुओ पर सबका ध्यान केन्द्रित करना चाहते है—"मै मानता हू अध्यात्म का अभाव, अर्थ की प्रधानता और मौलिक चिन्तन की कमी—इन तीन विन्दुओ पर ध्यान केन्द्रित किया जाए तो देश की अखडता और स्वतत्रता सार्थक हो सकती है तथा देश के भविष्य को स्थिरता दी जा सकती है।"[3]

राष्ट्र की एकता मे भेद डालने वाली स्थितियो को समाहित करने के लिए आचार्य तुलसी राजनेताओ को आह्वान करते हुए कहते है—"कानून के

---

१ विज्ञप्ति सं० ९८८।

२ बैसाखिया विश्वास की, पृ० १०५,१०६।

३. जीवन की सार्थक दिशाएं, पृ० ४६।

नियमो द्वारा एकता प्रतिष्ठित नही हो सकती। इसके लिए हृदय-परिवर्तन, समता और मैत्री तो अपेक्षित है ही, साथ ही यह भी आवश्यक है कि सत्ता से अलिप्त कोई ऐसा पराक्रम जागे, जो राष्ट्र का मार्गदर्शन कर सके तथा जनता को वास्तविक स्वतन्त्रता का अहसास करा सके।

डा० के. के. शर्मा ने 'हिन्दी साहित्य के राष्ट्रीय काव्य' मे राष्ट्रीय भावनाओ से सम्बन्धित निम्न विषयों का वर्णन किया है[1]—

१. जन्मभूमि के प्रति प्रेम।
२. स्वर्णिम अतीत के चित्र।
३. प्रकृति प्रेम।
४ विदेशी शासन की निंदा।
५. वर्तमान दशा पर क्षोभ।
६. सामाजिक सुधार—भविष्य निर्माण।
७. वीर पुरुषो या नेताओ की स्तुति।
८. पीडित जनता का चित्रण।
९. भाषा-प्रेम।

आचार्य तुलसी के साहित्य मे लगभग इन सभी विषयो का विस्तृत विवेचन हुआ है। अनेक वक्तव्य एव निबंध तो इतने भावपूर्ण है कि पढकर व्यक्ति के मन मे राष्ट्र के लिए सब कुछ न्यौछावर करके उसके नव-निर्माण की भावना जाग जाती है।

आचार्य तुलसी की राष्ट्रीय भावनाए भौगोलिक सीमा मे आबद्ध नही है। यद्यपि वे अपने को सार्वजनीन मानते है, अत उनके विचार विशाल एवं व्यापक है, फिर भी भारत मे जन्म लेने को वे अपना सौभाग्य मानते है। अपने सौभाग्य एव दायित्वबोध को वे निम्न शब्दो मे प्रकट करते है— "मैं सौभाग्यशाली हू कि भारत जैसे पवित्र देश में मुझे जन्म मिला, उसमे भ्रमण किया, उसके अन्न-जल का उपयोग किया और श्रद्धा एव स्नेह को पाया। इसलिए मेरा फर्ज है कि समस्याओं के निदान और समाधान मे त्याग और बलिदान द्वारा जितना बन सके, मानवता का कार्य करूं। मैंने अपने सम्पूर्ण सम्प्रदाय को इस दिशा मे मोडने का प्रयास किया है।"[2] सचमुच, जिस महाविभूति का हर श्वास, हर वाणी राष्ट्रभक्ति के भावो से अनुप्राणित हो, उनके द्वारा किए जा रहे राष्ट्रीय एकता के कार्यो का सम्पूर्ण आकलन अनेको लेखनियो से भी संभव नही है।

---

१. हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रीय काव्य, पृ० १९।
२ एक बूंद : एक सागर, पृ १७१५।

समाज-दर्शन

साहित्य समाज की चेतना मे सास लेता है, अत. साहित्यकार समाज की चेतना को तो प्रतिध्वनित करता ही है, साथ ही साथ वह अपने मौलिक एव क्रात चिन्तन से समाज को नया विचार एव नया दिशादर्शन भी देता है। डॉ० वी० डी० वैश्य कहते है--"समाज का यथार्थ ऊपर-ऊपर नही तैरता, उसकी कई परते होती है। साहित्यकार की सूक्ष्म दृष्टि ही परतो को भेदकर उस यथार्थ को जनता के समक्ष प्रस्तुत करती है।"

प्राचीन मनीपियो ने भी साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्वन्ध माना है। नरेन्द्र कोहली कहते है—"यदि साहित्य मे दुःख, वेदना या निराशा होगी तो समाज मे भी निराशा एव दुःख की वृद्धि होगी। साहित्य मे उच्च गुणो की प्रशसा होगी तो समाज मे भी उसका सम्मान वढेगा। साहित्य समाज से कही अधिक शक्तिशाली है क्योकि समाज का निर्माण साहित्यकार के हाथो होता है। अत' साहित्यकार समाज का महत्त्वपूर्ण सदस्य है।"[1]

समाज धनी-निर्धन, पूजीपति-मजदूर, शिक्षित-अशिक्षित आदि अनेक वर्गो मे बटा हुआ है। इन दोनो वर्गो मे सन्तुलन का कार्य साहित्यकार ही कर सकता है।

प्रेमचन्द इस वात को स्वीकार करते है कि समाज स्वय नही चल सकता। उसका नियन्त्रण करने वाली सदा ही कोई अन्य शक्ति रही है। उसमे धर्माचार्य और साहित्यकार महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

आचार्य तुलसी धर्माचार्य के साथ साहित्यकार भी है अत. उनके साथ सहज ही मणिकाचन योग हो गया है। जिस प्रकार कवीर ने जो कुछ लिखा वह कितावी ज्ञान से नही, अपितु आखो देखी वात लिखी, वैसे ही आचार्य तुलसी ने सामाजिक चेतना को अपनी अनुभव की आखो से देखकर उसे सवारने का प्रयत्न किया है। उनके समाजदर्शन की विशेषता है कि उन्होने सव कुछ स्वीकारा नही है, गलत मान्यताओ को फटकार एव चुनौती भी दी है तथा उसके स्थान पर नए मूल्य-निर्माण का सदेश दिया है।

धर्माचार्य होने के नाते वे स्पष्ट शब्दो मे अपने सामाजिक दायित्व को स्वीकारते है—"धर्मगुरुओ का काम सामायिक, ध्यान, तपस्या, कीर्तन

---

१. प्रेमचन्द, पृ० १७२, १९०।

आदि की प्रेरणा देना ही नहीं है। समाज के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ सामाजिक मूल्यों के परिष्कार का दायित्व भी उन्हीं पर होता है क्योंकि किसी भी समाज में धर्मगुरु के निर्देश का जितना पालन होता है, अन्य किसी का नही होता।"[1]

आचार्य तुलसी के उद्‌बोधन से समाज ने एक नयी करवट ली है तथा उसने युग के अनुसार अपने को वदलने का प्रयास भी किया है। दक्षिण यात्रा की एक घटना इसका वहुत वडा निदर्शन है—कन्याकुमारी के बाद जब आचार्य तुलसी केरल जाने लगे तब उन्होंने सोचा कि केरल में साम्यवादी सरकार है। यात्रा मे इतनी वहिने घूघट और आभूषणों से लदी हैं, यह ठीक नही होगा। कोई मुसीबत खड़ी हो सकती है अतः रात्री में यात्रा-सघ की गोष्ठी बुलाई गई। महिलाओ को निर्देश दिया गया कि या तो घूंघट और आभूषणो का मोह त्यागें अथवा मंगलपाठ सुनकर राजस्थान की ओर रवाना हो जाएं। वहिनों के मन में उथल-पुथल मच गयी। वर्षों के संस्कार को एक क्षण में छोड़ना कठिन था। आचार्यश्री को भी विश्वास नही था कि वहिनें वैसा कर पाएंगी क्या ? पर आश्चर्य ! दूसरे ही दिन सभी वहिनें अपने धर्मगुरु के एक आह्वान पर परिवर्तन कर चुकी थी। उनके उद्‌बोधनो ने समाज की अनेक रूढियों को इसी प्रकार विदाई दी है।

समाज के सम्यक् विकास एवं गति हेतु वे नारी जाति को उचित सम्मान देने के पक्षपाती हैं। उन्होने अनेक बार इस स्वर को मुखर किया है—"जो समाज नारी को सम्मानपूर्वक जीने, स्वतन्त्र चिंतन करने और अपनी अस्मिता को पहचानने का अधिकार नही देता, वह विकास नहीं कर सकता।"[2] वे समाज को प्रतिबोध देते हैं कि स्त्री होने के कारण महिला जाति की क्षमताओं का समुचित अंकन और उपयोग न हो, इस चिंतन के साथ मेरी सहमति नही है।

समाज मे उचित व्यवस्था एवं सामंजस्य वनाए रखने के लिए आचार्य तुलसी नारी और पुरुष- समाज के इन दोनो वर्गों को सावधान करते हुए कहते हैं—"यदि पुरुष नारी वनने की कोशिश करेगा एवं नारी पुरुष वनने का प्रयत्न करेगी तो समाज और परिवार रुग्ण वने विना नही रह सकेगा।" उसकी स्वस्थता का एक ही आधार है कि दोनों की विशेषताओं का पूरा-पूरा समादर किया जाए।"[3]

प्रगतिशील एवं आधुनिक कहलाने का दम्भ भरने वाले नारी समाज

---

१. दोनो हाथ : एक साथ, पृ० ४७।

२. एक बूंद : एक सागर, पृ० १४९५।

३. अणुव्रत अनुशास्ता के साथ, पृ० २७।

को वे विशेष रूप से प्रतिबोध देते है—"नारी के मुख से जब मै समानाधिकार की बात सुनता हू तो मुझे जचता नही। कैसा समानाधिकार ? नारी के तो अपने अधिकार ही बहुत बडे है। वह परिवार, समाज और राष्ट्र की निर्मात्री है। वह समान अधिकार की नही, स्व-अधिकार की अधिकारिणी है। कभी-कभी मुझे लगता है नारी पुरुष के बराबर ही नही, उसके विरोध मे खडी होने का प्रयत्न कर रही है पर यह प्रतिक्रिया है, उसके विकास मे बाधा है।"[1] आचार्य तुलसी के इस चितन का यही निष्कर्ष है कि समाज तभी विकसित, गतिशील एव सचेतन रह सकता है, जब स्त्री और पुरुष दोनों अपनी-अपनी सीमाओ मे रहकर अपने कर्त्तव्यो का पालन करते रहे।

परिवार

परिवार समाज की महत्त्वपूर्ण एव बुनियादी इकाई है। पाश्चात्य देशो मे परिवार पति-पत्नी पर आधारित है पर भारतीय परिवारो के मुख्य केन्द्र बालक, माता-पिता एव दादा-दादी होते है। आचार्य तुलसी सयुक्त परिवार के पक्षपाती है क्योकि इसमे निश्चिन्तता और स्थिरता रहती है। उनका मानना है कि परिवार के टूटने का प्रभाव केवल वर्तमान पीढी पर ही नही पड़ता उससे भावी पीढियां भी प्रभावित हुए बिना नही रहती। "वर्तमान पीढ़ी की थोड़ी-सी असावधानी आने वाली कई पीढ़ियो को मानसिक दृष्टि से अपाहिज या संकीर्ण बना सकती है।"[2]

आज संयुक्त परिवारो मे तेजी से बिखराव आ रहा है। समाज-शास्त्रियो ने पारिवारिक विघटन के अनेक कारणो की मीमासा की है। आचार्य तुलसी की दृष्टि मे व्यक्तिवादी मनोवृत्ति, असहिष्णुता, सन्देह, अहकार, औद्योगीकरण, मकान तथा यातायात की समस्या आदि तत्त्व परिवार-विघटन मे मुख्य निमित्त बनते है। पर सबसे बड़ा कारण वे पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव को मानते है—"पश्चिमी सभ्यता की घुसपैठ ने परिवार मे बिखराव तो ला दिया, पर अकेलेपन की समस्या का समाधान नही किया।"[3]

पारिवारिक विघटन से उत्पन्न कठिनाइयो को प्रस्तुत करते उनके ये सटीक प्रश्न आज की असहिष्णु पीढ़ी को कुछ सोचने को मजबूर कर रहे है—"स्वतन्त्र परिवार मे कुछ सुविधाए भले ही हो, पर उनकी तुलना मे कठिनाइया अधिक हैं। सबसे बड़ी कठिनाई है विरासत मे प्राप्त होने वाले

---

१ जैन भारती, १६ मार्च १९५८।

२ बीति ताहि विसारि दे, पृ० ६८।

३. मनहसा मोती चुगे, पृ० १०३।

सस्कारो की। लड़की ससुराल जाते ही सास-ससुर आदि के साये से दूर रहने लगेगी तो उसे संस्कार कौन देगा ? पति के ऑफिस चले जाने पर सुवह से शाम तक अकेली स्त्री क्या करेगी ? वीमारी आदि की परिस्थिति मे सहयोग किसका मिलेगा ? कही आने-जाने के प्रसग मे घर और वच्चो का दायित्व कौन ओढेगा ? ऐसे ही कुछ और सवाल है, जो संयुक्त परिवार से मिलने वाली सुविधाओ को उजागर कर रहे है।"[1]

अच्छे सस्कारो का सक्रमण सयुक्त परिवार की सवसे वड़ी उपयोगिता है। इस तथ्य को आचार्य तुलसी अनेक वार भारतीय जनता के समक्ष प्रस्तुत करते रहते है। भारत की प्राचीन सस्कृति की अवगति देते हुए वे आज की युवापीढी को प्रतिवोध दे रहे है—"प्राचीनकाल मे वूढी नानियो-दादियो के पास सस्कारो का अखूट खजाना हुआ करता था। सूर्यास्त के वाद वच्चों का जमघट उन्ही के आस-पास रहता था। वे मीठी-मीठी कहानिया सुनाती, लोरिया गाती, वच्चो के साथ सवाद स्थापित करती और वातो ही वातो में उन्हे संस्कारो की अमूल्य धरोहर सौप जाती। जिन लोगो को अपना वचपन नानियो-दादियो के साये मे विताने का मौका मिला है, वे आज भी उच्च सस्कारो से सम्पन्न है।"[2]

अलगाववादी मनोवृत्ति वाली युवापीढ़ी को रूपान्तरण का प्रतिवोध देते हुए उनका कहना है—"जो व्यक्ति परिवार मे वढते हुए झगड़ो के कारण अलग रहने का निर्णय लेते है, उन्हे स्थान के वदले स्वभाव वदलने की वात सोचनी चाहिए।"[3] इसी प्रकार परिवार की वुजुर्ग महिलाओ को भी मनोवैज्ञानिक तरीके से स्वभाव-परिवर्तन एव व्यवहार परिष्कार की वात सुझाते है—"जिस प्रकार महिलाए अपनी वेटी की गलती को शाति से सह लेती है, उसी प्रकार वहू को भी सहन करना चाहिए। अन्यथा उनके जीवन मे दोहरे सस्कार और दोहरे मानदण्ड सक्रिय हो उठेगे।"[4]

परिवार मे शान्त सहवास का होना अत्यन्त अपेक्षित है। आचार्य तुलसी तो यहा तक कह देते है—"जहा एक सदस्य दूसरे के जीवन में विघ्न वने विना रहता है, जहा सापेक्षता वहुत स्पष्ट होती है, वही सही अर्थ मे परिवार वनता है।"[5] सयुक्त परिवार मे शात एव सौहार्दपूर्ण सहवास के लिए आचार्य तुलसी चार गुणो का होना अनिवार्य मानते है—१ सहनशीलता,

१ दोनों हाथ · एक साथ, पृ० ५।
२. आह्वान, पृ० ४।
३. वीती ताहि विसारि दे, पृ० ६७।
४ अतीत का विसर्जन अनागत का स्वागत, पृ० १४२।
५ क्या धर्म वुद्धिगम्य है ?, पृ० ६६।

२ स्नेहशीलता, ३ श्रमशीलता, ४. पारस्परिक विश्वास। उनका विश्वास है कि ये चार तत्त्व जिस परिवार के सदस्यो मे है, वहा सैकड़ो सदस्यो की उपस्थिति मे भी विघटन एव तनाव की स्थिति घटित नही हो सकती।

पाश्चात्य विद्वान् मैकेजी कहते है—"यदि परिवार को छोटा राज्य कहे तो शिशु उसका वास्तविक सम्राट् है।" बालको के निर्माण मे परिवार की अहभूमिका रहती है। जिस परिवार में बच्चो के सस्कार-निर्माण की ओर ध्यान नही दिया जाता, कालान्तर मे उस परिवार मे सुख समृद्धि एव विकास के द्वार अवरुद्ध हो जाते है। आज समाज शास्त्री यह स्पष्ट उद्घोपणा कर चुके है कि जैसा परिवार होगा, वैसा ही बालक का व्यक्तित्व निर्मित होगा। आचार्य तुलसी की निम्न प्रेरणा अभिभावको को दायित्वबोध कराने मे सक्षम है—"आश्चर्य है कि रोटी कपडे के लिए मनुष्य जब इतने कष्ट सह सकता है तो सन्तान को सस्कारी बनाने की ओर उसका ध्यान क्यो नही जाता?"[1]

सामाजिक रूढ़ियां

अंधविश्वास और रूढिया किसी न किसी रूप मे सर्वत्र रहेगी। यदि उसके विरोध मे आवाज उठती रहे तो समाज जड नही बनता। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते है—"साहित्य सामाजिक मगल का विधायक है। यह सत्य है कि वह व्यक्ति विशेप की प्रतिभा से रचित होता है किन्तु और भी अधिक सत्य यह है कि प्रतिभा सामाजिक प्रगति की ही उपज है।"[2]

आचार्य तुलसी ने समाज से पराङ्मुख होकर अपनी लेखनी एव वाणी का उपयोग नही किया। समाज की किसी भी रूढ़ि या गलत परम्परा को अनदेखा नही किया। यही कारण है कि उनके पूरे साहित्य मे समाज के सभी वर्गो की सामाजिक एव धार्मिक कुरूढियो पर प्रहार करने वाले हजारो वक्तव्य है। समाज की समस्याओ के बारे मे आचार्य तुलसी नवीन सन्दर्भ मे सोचने, देखने व परखने मे सिद्धहस्त है। उन्होने समाज की इस विवेक दृष्टि को खोलने का प्रयत्न किया कि सभी पूर्व मान्यताओ को नवीन कसौटियो पर नही कसा जा सकता। पुरानी चौखट पर नवीन तस्वीर को नही मढा जा सकता। उसमे भी कुछ युगीन एव अपेक्षित सशोधन आवश्यक है। कहा जा सकता है कि उनके साहित्य मे प्राचीन परम्परा और युगचेतना एक साथ साकार देखी जा सकती है।

सामाजिक परम्पराओ के बारे मे उनका चिन्तन स्पष्ट है कि

---

१. एक बूद एक सागर, पृ० १४१९।
२. विचार और तर्क, पृ० २४४।

सामाजिक परम्पराएं एवं रीति-रिवाज एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रांत होते है और समाज को जोड़कर रखते है। पर जव उन परम्पराओ और रीति-रिवाजो मे अपसस्कृति का मिश्रण होने लगे, आडम्वर और प्रदर्शन होने लगे तो वे अपनी सांस्कृतिक गरिमा खो देते है।"[1] इन क्रांत विचारो के कारण आचार्य तुलसी को रूढ़ि किसी भी क्षेत्र मे प्रिय नही है। अच्छी से अच्छी वात मे भी उनको यह आशका हो जाए कि यह आगे जाकर रूढ़ि या देखादेखी का रूप ले सकती है तो वे स्थिति आने से पूर्व ही समाज को सावचेत कर उसमे नया उन्मेप लाने की वात सुझा देते हैं।

आचार्य तुलसी हर परम्परा को अंधविश्वास या रूढ़ि नही मानते, क्योकि वे मानते है कि सत्य अनन्त है अतः वुद्धिगम्य भाग को छोड़कर शेष विपुल सत्य को अन्धविश्वास कहना उचित नही है। पर जव उसमे अवाछनीय तत्त्व प्रवेश कर जाते है, तव समाज को दिशादर्शन देते हुए उनका कहना है—"जिस परम्परा की अर्थवत्ता समाप्त हो जाए, जो रूढ़ि का रूप ले ले, जिसके कारण व्यक्ति या समाज पर आर्थिक दवाव पड़े और जो वुद्धि एव आस्था के द्वारा भी समझ का विपय न वने, उस परम्परा का मूल्य एक शव से अधिक नही हो सकता।"

परिवर्तन एवं अनुकरण के वारे में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की निम्न उक्ति अत्यन्त मार्मिक है—"लज्जा प्रकाश ग्रहण करने में नही, अन्धानुकरण मे होनी चाहिए। अविवेक पूर्ण ढंग से जो भी सामने पड़ गया उसे सिर माथे चढा लेना, अन्धभाव से अनुकरण करना जातिगत हीनता का परिणाम है। जहां मनुष्य विवेक को ताक पर रखकर सव कुछ ही अंधभाव से नकल करता है, वहा उसका मानसिक दैन्य और सास्कृतिक दारिद्रय प्रकट होता है। जहां सोच समझकर ग्रहण करता है.........वहा वह अपने जीवन्त स्वभाव का परिचय देता है।"[2] आचार्य तुलसी की निम्न उक्ति रूढ़ एवं अन्धविश्वासी चेतना को परिवर्तन की प्रेरणा देने मे पर्याप्त है—"समाज सदा परिवर्तनशील है अतः समय-समय पर उपयुक्त परिवर्तन के लिए हमे सदैव तैयार रहना चाहिए अन्यथा जीवन रूढ़ वन जाएगा और अनेक समस्याओ का सामना करना पड़ेगा।"[3]

आचार्य तुलसी समाज को अनेक वार चुनौती दे चुके है—सामाजिक कुरूढि एवं अन्धविश्वासों से समाज इतना जर्जर, दु.खी, निष्क्रिय, जड़ और सत्त्वहीन हो जाता है कि वह युग की किसी चुनौती को झेल नही

---

१. एक वूद : एक सागर, पृ० ८५२।
२ हजारीप्रसाद द्विवेदी-ग्रन्थावली-भाग ७, पृ० १३८।
३ जैन भारती, १६ अग० १९६९।

सकता । यही कारण है कि वे समाज मे व्याप्त दुर्बलता, कुरीति एवं कमजोरी की तीखी आलोचना करते है पर उस आलोचना के पीछे उनका प्रगतिशील एवं सुधारवादी दृष्टिकोण रहता है, जो कम लोगो मे मिलता है। निम्न वार्तालाप उनके व्यक्तित्व की उसी छवि को अकित करता है—

एक कवि ने आचार्य तुलसी से पूछा—आप धर्मगुरु है ? राजनीतिज्ञ है या समाज सुधारक ? आचार्य तुलसी ने उत्तर दिया—"धर्मगुरु तो आप मुझे कहे या नही, पर मै साधक हूं, समाज सुधारक भी हू।" साधक होने के कारण उनका सुधारवादी दृष्टिकोण किसी कामना या लालसा से संपृक्त नही है, यही उनके सुधारवादी दृष्टिकोण का महत्त्वपूर्ण पहलू है।

दहेज

दहेज की परम्परा समाज के मस्तक पर कलक का अमिट धब्बा है। इस विकृत परम्परा से अनेक परिवार क्षत-विक्षत एव प्रताडित हुए है। अनेक कन्याओ एव महिलाओ को असमय में ही कुचल दिया गया है। आचार्य तुलसी की प्रेरणा ने लाखों परिवारो को इस मर्मान्तिक पीडा से मुक्त ही नही किया वरन् सैकड़ों कन्याओ के स्वाभिमान को भी जागृत करने का प्रयत्न किया है, जिससे समाज की इस विपैली प्रथा के विरुद्ध वे अपनी विनम्र एवं शालीन आवाज उठा सके। राणावास मे मेवाड़ी वहिनो के सम्मेलन में कन्याओ के भीतर जागरण का सिहनाद करते हुए वे कहते है—"दहेज वह कैंसर है, जिसने समाज को जर्जर बना दिया है। इस कष्टसाध्य बीमारी का इलाज करने के लिए वहिनो को कुर्वानी के लिए तैयार रहना होगा। आप लोगो मे यह जागृति आए कि जहा दहेज की माग होगी, ठहराव होगा, वहा हम शादी नही करेंगी। आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर जीवन व्यतीत करेंगी, तभी वाछित परिणाम आ सकता है।"

दहेजलोलुप लोगो की विवेक चेतना जगाते हुए आचार्य तुलसी कहते है—"कहा तो कन्या का गृहलक्ष्मी के रूप मे सर्वोच्च सम्मान और कहा विवाह जैसे पवित्र सस्कार के नाम पर मोल-तोल ! यह कुविचार ही नही, कुकर्म भी है।"[1]

आचार्य तुलसी ने समाज की इस कुप्रथा के विविध रूपो को पैनेपन के साथ उकेरकर वेधक प्रश्नचिह्न भी उपस्थित किए है—"दहेज की खुली माग, ठहराव, माग पूरी करने की वाध्यता, प्राप्त दहेज का प्रदर्शन और टीका-टिप्पणी—इससे आगे वढकर देखा जाए तो नवोढा के मन को व्यंग्य वाणो से छलनी वना देना, उसके पितृपक्ष पर टोट कसना, वात-वात मे उसका अपमान करना आदि क्या किसी शिष्ट और संयत मानसिकता की

१. एक बूद : एक सागर, पृ० ८५३।

उपज है ? दहेज की इस यात्रा का अन्त इसी विन्दु पर नही होता.......
अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक यातनाएं, मार-पीट, घर से निकाल देना और जिन्दा जला देना, क्या एक नारी की नियति यही है"[1]

पिशाचिनी की भांति मुह वाए खड़ी इस समस्या के उन्मूलन के प्रति आचार्य तुलसी आस्थावान् हैं। दहेज उन्मूलन हेतु प्रतिकार के लिए समाज को दिशावोध देते हुए वे कहते हैं—"जहां कही, जव कभी दहेज को लेकर कोई अवाछनीय घटना हो, उस पर अंगुलिनिर्देश हो, उसकी सामूहिक भर्त्सना हो तथा अहिंसात्मक तरीके से उसका प्रतिकार हो। ऐसे प्रसंगों को परस्मैपद की भाषा न देकर आत्मनेपद की भाषा में पढा जाए, तभी इस असाध्य वीमारी से छुटकारा पाने की सम्भावना की जा सकती है।"[2]

जातिवाद

"मेरा अस्पृश्यता मे विश्वास नही है। यदि कोई अवतार भी आकर उसका समर्थन करे तो भी मैं इसे मानने को तैयार नही हो सकता। मेरा मनुष्य की एक जाति में विश्वास है"—आचार्य तुलसी की यह क्रांतवाणी जातिवाद पर तीखा व्यंग्य करने वाली है। आचार्य तुलसी समता के पोपक हैं अत. उन्होंने पूरी शक्ति के साथ इस प्रथा पर प्रहार कर मानवीय एकता का स्वर प्रखर किया है। लगभग ४५ वर्पो से वे समाज की इस विपमता के विरोध मे अपना आंदोलन छेडे हुए हैं। इस वात की पुप्टि निम्न घटना प्रसग मे होती है—

सन् १९५४,५५ की वात है। आचार्यश्री के मन मे विकल्प उठा कि मानव-मानव एक है, फिर यह भेद क्यो ? यह विचार मुनिश्री नथमलजी (युवाचार्य महाप्रज्ञ) के समक्ष रखा। उन्होंने एक पुस्तिका लिखी, जिसमें जातिवाद की निरर्थकता सिद्ध की गयी। पुस्तिका को देखकर आचार्यप्रवर ने कहा—अभी इसे रहने दो, समाज इसे पचा नही सकेगा। दो क्षण वाद फिर दृढ़ विश्वास के साथ उन्होंने कहा—"जव इन तथ्यो की स्थापना करनी ही है तो फिर भय किसका है ? ऊहापोह होगा, होने दो। किताव को समाज के समक्ष आने दो। इससे मानवता की प्रतिप्ठा होगी। हमारे सामने उन लाखो-करोड़ो लोगों की तस्वीरे हैं, जिन्हे पददलित एवं अस्पृश्य कहकर लोगों ने ठुकरा दिया है। ऐसे लोगों को हमें ऊंचा उठाना है, सहारा देना है।" इस घटना मे आचार्य तुलसी का अप्रतिम साहस वोल रहा है।

उच्चता और हीनता के मानदंडों को प्रकट करने वाली उनकी ये

---

१. अनैतिकता की धूप : अणुव्रत की छतरी, पृ० १७७।
२. अमृत सन्देश, पृ० ७०।

पक्तियां कितनी सटीक बनकर श्रीमतो और महाजनों को अंतर मे झाकने को प्रेरित कर रही है—"जाति के आधार पर किसी को दीन, हीन और अस्पृश्य मानना, उसको मौलिक अधिकारो से वचित करना सामाजिक विषमता एव वर्गसघर्प को बढावा देना है। मै तो मानता हू जाति से व्यक्ति नीच, भ्रष्ट या घृणास्पद नही होता। जिनके आचरण खराव है, आदते बुरी है, जो शराबी है, जुआरी है, वे भ्रष्ट है, चाहे वे किसी जाति के हो।"

जातिवाद पनपने का एक बहुत बडा कारण वे रूढ धर्माचार्यो को मानते है। समय आने पर सामाजिक वैपम्य फैलाने वाले धर्माचार्यो को ललकारने से भी वे नही चूके है—"देश मे लगभग पन्द्रह करोड हरिजन हे। उनका सम्बन्ध हिन्दू समाज के साथ है। उनकी जो दुर्दशा हो रही है, उसका मुख्य कारण है—धर्मान्धता। ये धर्मान्ध लोग कभी उनके मन्दिर-प्रवेश पर रोक लगाते है और कभी अन्य बहाना बनाकर अकारण ही उन्हे सताते है। क्या ऐसा कर उन्हे धर्म-परिवर्तन की ओर धकेला नही जा रहा है? क्या ऐसा होना समाज के हित मे होगा? कुछ धर्मगुरु भी वेबुनियादी बातो को प्रश्रय देते हैं, जातिवाद का विप घोलते है और हिन्दु-समाज को आपस मे लड़ाकर अपनी अहवादी मनोवृत्ति का परिचय देते है।"[१] उनका यह कथन इस बात का सकेत है कि सभी धर्माचार्य और धर्मनेता चाहे तो वे समाज को टूटन और बिखराव की स्थिति से उबार सकते है। धर्मगुरुओ को वे विनम्र आह्वान करते हुए कहते है—"देश के धर्मगुरुओ और धर्मनेताओ को मेरा विनम्र सुझाव है कि वे अपने अनुयायियो को नैतिक मूल्यो की ओर अग्रसर करे। उन्हे हिसा, छुआछूत एव साम्प्रदायिकता से बचाए। पारस्परिक सौहार्द एव सद्भावना बढाने की प्रेरणा दे तथा इन्सानियत को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करे तो अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है।"[२]

आचार्य तुलसी ने जातिवाद के विरुद्ध आवाज ही नही उठाई, जीवन के अनेक उदाहरणो से समाज को सक्रिय प्रशिक्षण भी दिया है। सन् १९६१ के आसपास की घटना है। आचार्यवर कुछ साधु-साध्वियो को अध्ययन करवा रहे थे। सहसा प्रवचन सभा मे बलाई जाति के लोगो को दरी छोड देने को कडे शब्दो मे कहा गया, देखते ही देखते उनके पैरो के नीचे से दरी निकाल ली गयी। आचार्यश्री को जब यह ज्ञात हुआ तो तत्काल अध्यापन का कार्य छोडकर प्रवचनस्थल पर पधारे और कडे शब्दो मे समाज को ललकारते हुए कहा—"जाति से स्वय को ऊचा मानने वाले जरा सोचे तो

---

१. क्या धर्म बुद्धिगम्य है? पृ० १४३।
२. बैसाखिया विश्वास की, पृ० ७९।

यही ऐसा कौन-सा मानव है, जिसका सृजन हाड़-मांस या रक्त से न हुआ हो? ऐसी कौन-सी माता है, जिसने बच्चे की सफाई में हरिजनत्व न स्वीकारा हो? भाइयो! मनुष्य अछूत नहीं होता, अछूत दुष्प्रवृत्तियां होती हैं।"[1] ऐसे ही एक विशेष प्रसंग पर लोक-चेतना को प्रबुद्ध करते हुए वे कहते हैं—"मैं समझ नहीं पाया, यह क्या सब्जोल है? जिस घृणा को मिटाने के लिए धर्म है, उसी के नाम पर घृणा और मनुष्य जाति का विघटन! मन्दिर में आप लोग हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध कर देंगे पर यदि उन्होंने घर बैठे ही भगवान् को अपने मनमंदिर में बिठा लिया तो उसे कौन रोकेगा?"[2]

लम्बी पदयात्राओं के दौरान अनेक ऐसे प्रसंग उपस्थित हुए, जबकि आचार्यश्री ने उन मंदिरों एवं महाजनों के स्थान पर प्रवास करने से इन्कार कर दिया, जहां हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध था। १ जुलाई १९६८ की घटना है। आचार्य तुलसी दक्षिण के बेलोर गांव में विराज रहे थे। अचानक वे मकान को छोड़कर बाहर एक वृक्ष की छाया में बैठ गए। पूछने पर मकान छोड़ने का कारण बताते हुए उन्होंने कहा—"मुझे जब पता चला कि कुछ हरिजन भाई मुझसे मिलने नीचे खड़े हैं, उन्हें ऊपर नहीं आने दिया जा रहा है, यह देखकर मैं नीचे मकान के बाहर असीम आकाश के नीचे आ गया। इस विषम स्थिति को देखकर मेरे मन में विकल्प उठता है कि समाज में कितनी जड़ता है कि एक कुत्ता मकान में आ सकता है, साथ में खाना खा सकता है किंतु एक इन्सान मकान में नहीं आ सकता, यह कितने आश्चर्य की बात है?"[3] आचार्य तुलसी मानते हैं—"जाति, रंग आदि के मद से सामाजिक विक्षोभ पैदा होता है इसलिए यह पाप की परम्परा को बढ़ाने वाला पाप है।"

आचार्य तुलसी के इन सघन प्रयासों से समाज की मानसिकता में इतना अन्तर आया है कि आज उनके प्रवचनों में बिना भेदभाव के लोग एक दरी पर बैठकर प्रवचन का लाभ लेते हैं।

सामाजिक क्रान्ति

देश में अनेक क्रांतियां समय-समय पर घटित होती रही हैं, उनमें सामाजिक क्रांति की अनिवार्यता सर्वोपरि है क्योंकि रूढ़ परम्पराओं में जकड़ा समाज अपनी स्वतंत्र पहचान नहीं बना सकता। आचार्य तुलसी को सामाजिक क्रांति का सूत्रधार कहा जा सकता है। समाज को संगठित करने, उसे नई दिशा देने, जागृत करने तथा अच्छा-बुरा पहचानने में उनका

---

१. जैन भारती, ३० अप्रैल १९६१।
२. २८-९-६५ के प्रवचन से उद्धृत।
३. जैन भारती, २१ जुलाई १९६८।

क्रांतिकारी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आया है। क्रांति के संदर्भ में आचार्य तुलसी का निजी मंतव्य है कि क्राति की सार्थकता तब होती है, जब व्यक्ति-चेतना में सत्य या सिद्धात की सुरक्षा के लिए गलत मूल्यों या गलत तत्त्वो को निरस्त करने का मनोभाव जागता है।"[1] वे रूढ सामाजिक मान्यताओ के परिवर्तन हेतु क्राति को अनिवार्य मानते है पर उसका साधन शुद्ध होना आवश्यक मानते है।

आचार्य तुलसी सामाजिक क्रांति की सफलता मे मुख्य केन्द्र-बिन्दु युवा समाज को स्वीकारते है। इस सन्दर्भ मे उनकी निम्न टिप्पणी पठनीय है—"क्राति का इतिहास युवाशक्ति का इतिहास है। युवको के सहयोग और असहयोग पर ही वह सफल एवं असफल होती है।"[2] युवको को अतिरिक्त महत्त्व देने पर भी उनका सतुलित एव समन्वित दृष्टिकोण इस तथ्य को भी स्वीकारता है—"मै मानता हूं समाज की प्रगति एव परिवर्तन के लिए वृद्धो का अनुभव तथा युवको की कर्तृत्व शक्ति दोनो का उपयोग है। मै चाहता हूं वृद्ध अपने अनुभवो से युवको का पथदर्शन करे और युवक वृद्धो के पथदर्शन मे अपने पौरुष का उपयोग करे।"[3]

आचार्य तुलसी की दृष्टि मे सामाजिक क्राति का प्रारम्भ व्यक्ति से होना चाहिए, समाज से नही। वे अनेक बार इस तथ्य को अभिव्यक्ति दे चुके है कि व्यक्ति-परिवर्तन के माध्यम से किया गया समाज-परिवर्तन ही चिरस्थायी होगा। व्यक्ति-परिवर्तन की उपेक्षा कर थोपा गया समाज-परिवर्तन भविष्य में अनेक समस्याओ का उत्पादक बनेगा।"[4] आचार्य तुलसी व्यक्ति-सुधार के माध्यम से समाज-सुधार करने में अधिक लाभ एव स्थायित्व देखते है। 'अणुव्रत गीत' मे भी वे इसी सत्य का संगान करते है—

सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से, राष्ट्र स्वय सुधरेगा।
'तुलसी' अणुव्रत सिंहनाद सारे जग मे पसरेगा।।

सामाजिक क्राति की सफलता के सदर्भ मे आचार्य तुलसी का मानना है कि जब तक परिवर्तन और अपरिवर्तन का भेद स्पष्ट नही होगा, तब तक सामाजिक क्राति का चिरस्वप्न साकार नही होगा।"[5]

सामाजिक सकट की विभीषिका को उनका दूरदर्शी व्यक्तित्व समय से पहले पहचान लेता है। इसी दूरदृष्टि के कारण वे परिवर्तन और स्थिरता

---

१ सफर : आधी शताब्दी का, पृ० ८३।
२. भोर भई, पृ० २०।
३. धर्मचक्र का प्रवर्त्तन, पृ० २१७।
४. एक बूद : एक सागर, पृ० १४९७।
५ वही, पृ० १५५९।

के बीच सेतु का काम करते रहते है। आचार्य तुलसी ने अपने साहित्य में अंधरूढियो के विरोध मे क्राति की आवाज ही बुलन्द नही की अपितु उनके सशोधन एव परिवर्तन की प्रक्रिया एव प्रयोग भी प्रस्तुत किए है क्योकि उनकी मान्यता है कि परिवर्तन और क्राति के साथ यदि नया विकल्प या नई परम्परा समाज के समक्ष प्रकट नही की जाए तो वह क्रांति या परिवर्तन सफल नही हो पाता है।

आचार्य तुलसी के क्रातिकारी व्यक्तित्व का अकन करते हुए राममनोहर त्रिपाठी कहते है—"क्राति की बात करना आसान है पर करना बहुत कठिन है। इसके लिए समग्रता से प्रयत्न करने की अपेक्षा रहती है। आचार्य तुलसी जैसे तपस्वी मानव ही ऐसा वातावरण निर्मित कर सकते है।"

आचार्य तुलसी के समक्ष यह सत्य स्पष्ट है कि परम्परा का व्यामोह रखने वाले और विरोध की आग से डरने वाले कोई महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न नही कर सकते।"[1] जब आचार्य तुलसी ने सडी-गली मान्यताओ के विरोध मे अपनी सशक्त आवाज उठाई, तब समाज मे होने वाली तीव्र प्रतिक्रिया उनकी स्वय की भाषा मे पठनीय है—"मैने समाज को सादगीपूर्ण एवं सक्रिय जीवन जीने का सूत्र तब दिया, जब आडम्बर और प्रदर्शन करने वालो को प्रोत्साहन मिल रहा था। इससे समाज मे गहरा ऊहापोह हुआ। धर्माचार्य के अधिकारो की चर्चाए चली। सामाजिक दायित्व का विश्लेषण हुआ और मुझे परम्पराओ का विघटक घोषित कर दिया गया। मेरा उद्देश्य स्पष्ट था इसलिए समाज की आलोचना का पात्र बनकर भी मैने समय-समय पर प्रदर्शनमूलक प्रवृत्तियो, अधपरम्पराओ और अधानुकरण की वृत्ति पर प्रहार किया।"[2]

वे प्रवचनो एव निबधो मे स्पष्ट कहते रहते है—"मै रूढियो का विरोधी हू, न कि परम्परा का। समाज में उसी परम्परा को जीवित रहने का अधिकार है, जो व्यक्ति, समाज एव राष्ट्र की धारा से जुड़कर उसे गतिशील बनाने मे निमित्त बनती है। पर मै इतना रूढ भी नही हू कि अर्थहीन परम्पराओ को प्रश्रय देता रहू।"[3] वे इस सत्य को जीवन का आदर्श मानकर चल रहे है— "मै परिवर्तन के समय मे स्थिरता मे विश्वास बनाए रखना चाहता हू और स्थिरता के लिए परिवर्तन मे विश्वास करता हू। वह परिवर्तन मुझे मान्य नही, जहा सत्य की विस्मृति हो जाए।"[4]

---

१. एक बूद : एक सागर, पृ० ८५१।
२. राजपथ की खोज, पृ० २०१।
३. एक बूद : एक सागर, पृ० ८५२,८५३।
४. वही, पृ० ८६१।

सामाजिक क्राति को घटित करने के कारण वे युगप्रवर्त्तक एवं युगप्रधान के रूप में प्रतिष्ठित हुए है। उन्होने सदैव युग के साथ आवश्यकतानुसार स्वय को वदला है तथा दूसरो को भी वदलने की प्रेरणा दी है।

नया मोड़

आडम्वर, प्रदर्शन एवं दिखावे की प्रवृत्ति से सामाजिक परम्पराए इतनी बोझिल हो जाती हैं कि उन्हे निभाते हुए सामान्य व्यक्ति की तो आर्थिक रीढ ही टूट जाती है और न चाहते हुए भी उसके कदम अनैतिकता की ओर अग्रसर हो जाते है। आचार्य तुलसी सामाजिक कुरीतियो को जीवन-विकास का सवसे वडा वाधक तत्त्व मानते है।

समाज के वढते हुए आर्थिक बोझ तथा सामाजिक विकृतियो को दूर करने हेतु उन्होने सन् १९५८ के कलकत्ता प्रवास मे अणुव्रत आदोलन के अन्तर्गत 'नए मोड' का सिहनाद फूका।

आचार्य तुलसी के शब्दो मे 'नए मोड' का तात्पर्य है—"जीवन दिशा का परिवर्तन। आडम्वर और कुरूढियो के चक्रव्यूह को भेदकर सयम, सादगी की ओर अग्रसर होना। विषमता और शोषण के पजे से समाज को मुक्त करना। अहिंसा और अपरिग्रह के माध्यम से जीवन-विकास का मार्ग प्रस्तुत करना। जीवन की कुण्ठित धारा को गतिशील वनाना।"[1]

दहेज प्रथा को मान्यता देना, शादी के प्रसग मे दिखावा करना, मृत्यु पर प्रथा रूप से रोना, पति के मरने पर वर्षो तक स्त्री का कोने मे बैठे रहना, विधवा स्त्री को कलक मानना, उसका मुख देखने को अपशकुन कहना—आदि ऐसी रूढिया है, जिनको आचार्य तुलसी ने इस नए अभिक्रम मे उनको ललकारा है। आज ये कुरूढिया उनके प्रयत्न से अपनी अन्तिम सासे ले रही है।

इस नए अभिक्रम की विधिवत् शुरुआत राजनगर मे तेरापथ की द्विशताब्दी समारोह (१९५९) की पुनीत वेला मे हुई। आचार्य तुलसी ने 'नए मोड' को जन-आदोलन का रूप देकर नारी जाति को उन्मुक्त आकाश मे सास लेने की वात समझाई। वहिनो मे एक नयी चेतना का सचार किया। नए मोड के प्रारम्भ होने से राजस्थानी वहिनो का अपूर्व विकास हुआ। जो स्त्री पर्दे मे रहती थी, शिक्षा के नाम पर जिसे एक अक्षर भी नही पढाया जाता था, यात्रा के नाम पर जो स्वतन्त्र रूप से घर की दहलीज भी नही लाघ सकती थी, उस नारी को सार्वजनिक मच पर उपस्थित कर उसे अपनी शक्ति और अस्तित्व का अहसास करवा दिया।

---

१ जैन भारती, १७ सित० १९६१।

अपने प्रयाण गीत में वे क्रांतिकारी भावनाओ को व्यक्त करते हुए वे कहते है—

"नया मोड हो उसी दिशा में, नयी चेतना फिर जागे,
तोड गिराएं जीर्ण-शीर्ण जो अंधरूढियो के धागे।
आगे बढने का अब युग है, बढ़ना हमको सबसे प्यारा॥"

जन्म, विवाह एवं मृत्यु के अवसर पर लाखों-करोड़ों रुपयों को पानी की भाति बहाया जाता है। इन झूठे मानदंडों को प्रतिष्ठित करने से समाज की गति अवरुद्ध हो जाती है। 'नए मोड' अभियान के माध्यम से आचार्य तुलसी ने समाज की प्रदर्शनप्रिय एवं आडम्बरप्रधान मनोवृत्ति को सयम, सादगी एवं शालीनता की ओर मोडने का भागीरथ प्रयत्न किया है।

आचार्य तुलसी का चिन्तन है कि मानव अपनी आतरिक रिक्तता पर आवरण डालने के लिए प्रदर्शन का सहारा लेता है। उन्होने समाज में होने वाले तर्कहीन एवं खोखले आडम्बरो का यथार्थ चित्रण अपने साहित्य में अनेक स्थलों पर किया है। यहा उसके कुछ बिन्दु प्रस्तुत है, जिससे समाज वास्तविकता के धरातल पर खड़ा होकर अपने आपको देख सके। निम्न विचारों को पढने से समझा जा सकता है कि वे समाज की हर गतिविधि के प्रति कितने जागरूक है?

जन्म दिन पर होने वाली पाश्चात्य सस्कृति का अनुकरण आचार्य तुलसी की दृष्टि मे सम्यक् नही है। इस पर प्रश्नचिह्न उपस्थित करते हुए वे कहते हैं—"केक काटना, मोमबत्तिया जलाना या बुझाना आदि जैन क्या भारतीय संस्कृति के भी अनुकूल नही है। फिर भी आधुनिकता के नाम पर सब कुछ चलता है। कहा चला गया मनुष्य का विवेक? क्या यह आख मूदकर चलने का अभिनय नही है?"[1]

शादी आज सादी नही, बर्बादी बनती जा रही है। विवाह के अवस पर होने वाले आडम्बरों एवं रीति-रिवाजों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करते हुए वे समाज को कुछ सोचने को मजबूर कर रहे हैं—

"विवाह से पूर्व सगाई के अवसर पर बडे-बडे भोज, साते या बींटी में लेन-देन का असीमित व्यवहार, बारात ठहराने एव प्रीतिभोजों के लिए फाइव स्टार (पंचसितारा) होटलो का उपयोग, घर पर और सडक पर समूह-नृत्य, मण्डप और पण्डाल की सजावट मे लाखों का व्यय, कार से उतरने के स्थान से लेकर पण्डाल तक फूलो की सघन सजावट, बिजली की अतिरिक्त जगमगाहट, कुछ मनचले लोगो द्वारा बारात मे शराब का प्रयोग, एक-एक खाने मे सैकडो किस्म के खाद्य, अनेक प्रकार के पेय, प्रत्येक दस मिनट के

१. आह्वान पृ० १३।

वाद नए-नए खाद्य-पेय की मनुहार—क्या यह सब धार्मिक कहलाने वाले परिवारो मे नही हो रहा है ? समाज का नेतृत्व करने वाले लोगो मे नही हो रहा है ? "एक ओर करोड़ो लोगो को दो समय का पूरा भोजन मयस्सर नही होता, दूसरी ओर भोजन-व्यवस्था मे लाखो-करोड़ो की वर्बादी। समझ में नही आता, यह सब क्या हो रहा है ?"[1]

शादी की वर्षगाठ को धूमधाम से मनाना आधुनिक युग की फैशन वनती जा रही है। इसकी तीखी आलोचना करते हुए वे समाज का ध्यान आकृष्ट करना चाहते है—

"प्राचीनकाल मे एक वार विवाह होता और सदा के लिए छुट्टी हो जाती। पर अब तो विवाह होने के वाद भी वार-वार विवाह का रिहर्सल किया जाता है। विवाह की सिल्वर जुवली, गोल्डन जुवली, षष्टिपूर्ति आदि न जाने कितने अवसर आते हैं, जिन पर होने वाले समारोह प्रीतिभोज आदि देखकर ऐसा लगता है मानो नए सिरे से शादी हो रही है।"[2]

मृतक प्रथा पर होने वाले आडम्वर और अपव्यय पर उनका व्यंग्य कितना मार्मिक एवं वेधक है—"आश्चर्य है कि जीवनकाल मे दादा, पिता और माता को पानी पिलाने की फुरसत नही और मरने के वाद हलुआ, पूडी खिलाना चाहते है, यह कैसी विडम्वना और कितना अंधविश्वास है।"[3]

इसके अतिरिक्त 'नए मोड' के माध्यम से उन्होने विधवा स्त्रियो के प्रति होने वाली उपेक्षा एवं दयनीय व्यवहार को भी वदलने का प्रयत्न किया है। इस सदर्भ मे उन्होंने समाज को केवल उपदेश ही नही दिया, वल्कि सक्रिय प्रयोगात्मक प्रशिक्षण भी दिया है। हर मंगल कार्य में अपशकुन समझी जाने वाली विधवा स्त्रियो का उन्होने प्रस्थान की मंगल वेला मे अनेक वार शकुन लिया है तथा समाज की भ्रात धारणा को वदलने का प्रयत्न किया है। विधवा स्त्रियो की दयनीय स्थिति का चित्रण करती हुई उनकी ये पंक्तिया समाज को चिन्तन के लिए नए विन्दु प्रस्तुत करने वाली है—"विधवा को अपने ही घर मे नौकरानी की तरह रहना पडता है। क्या कोई पुरुष अपनी पत्नी के वियोग मे ऐसा जीवन जीता है ? यदि नही तो स्त्री ने ऐसा कौन-सा अपराध किया, जो उसे ऐसी हृदय-विदारक वेदना भोगनी पडे। समाज का दायित्व है कि ऐसी वियोगिनी योगिनियो के प्रति सहानुभूतिपूर्ण वातावरण का निर्माण करे और उन्हें सचेतन जीवन जीने का अवसर दे।"

---

१ आह्वान, पृ० ११,१२।

२. वही, पृ० १३।

३ एक बूद . एक सागर, पृ० ९।

सती प्रथा के विरोध मे भी उन्होंने अपना स्वर प्रखर किया है। वे स्पष्ट कहते हैं—"समाज और धर्म के कुछ ठेकेदारो ने सती प्रथा को धार्मिक परम्परा का जामा पहना कर प्रतिष्ठित कर दिया। यह अपराध है, मातृ जाति का अपमान है और विधवा स्त्रियो के शोषण की प्रक्रिया है।"

समाज ही नही, धार्मिक स्थलों पर होने वाले आडम्बर और प्रदर्शन के भी वे खिलाफ हैं। धार्मिक समारोहो को भी वे रूढ़ि एवं प्रदर्शन का रूप नहीं लेने देते। उदयपुर चातुर्मास प्रवेश पर नागरिक अभिनन्दन का प्रत्युत्तर देते हुए वे कहते हैं—"मैं नही चाहता कि मेरे स्वागत में बैंड बाजे बजाए जाएं, प्रवचन पंडाल को कृत्रिम फूलों से सजाया जाए। यह धर्मसभा है या महफिल? कितना आडम्बर! कितनी फिजूल खर्ची!! मैं यह भी नही चाहता कि स्थान-स्थान पर मुझे अभिनन्दन-पत्र मिलें। हार्दिक भावनाएं मौखिक रूप से भी व्यक्त की जा सकती हैं, सैकड़ो की संख्या में उनका प्रकाशन करना धन का अपव्यय है। माना, आपमे उत्साह है पर इसका मतलब यह नही कि आप धर्म को आडम्बर का रूप दें।"[1]

बगड़ी मे प्रदत्त निम्न प्रवचनांश भी उनकी महान् साधकता एव आत्मलक्ष्यी वृत्ति की ओर इंगित करता है—"......प्रवचन पंडालों मे अनावश्यक बिजली की जगमगाहट का क्या अर्थ है? प्रत्येक कार्यक्रम के वीडियो कैसेट की क्या उपयोगिता है?"[2] वे कहते हैं—"धार्मिक समाज ने यदि इस सन्दर्भ में गम्भीरता से चिन्तन नही किया तो अनेक प्रकार की जटिलताओं का सामना करना पड़ सकता है।"[3]

आचार्य तुलसी समाज की मानसिकता को बदलना चाहते है पर बलात् या दबाव से नही, अपितु हृदय-परिवर्तन से। यही कारण है कि अनेक स्थलो पर उन्हें मध्यस्थ भी रहना पड़ता है। अपनी दक्षिण यात्रा का अनुभव वे इस भाषा में प्रकट करते हैं—"मेरी दक्षिण-यात्रा मे ऐसे कई प्रसंग उपस्थित हुए, जिनमे बैंड बाजो से स्वागत किया गया। हरियाली के द्वार बनाए गए। तोरणद्वार सजाए गए। पूर्ण जलकुंभ रखे गये। फलों, फूलो और फूल-मालाओं मे स्वागत की रस्म अदा की गई। चावलों के साथिए बनाए गए। कन्याओ द्वारा कच्चे नारियल के जगमगाते दीपों से आरती उतारी गई। कुंकुम-केसर चरचे गए। शंखनाद के साथ वैदिक मंत्रोच्चारण हुआ। स्थान-स्थान पर मेरी अगवानी में सड़क पर घड़ों भर पानी छिड़का गया। उन लोगों को समझाने का प्रयास हुआ, पर उन्हें मना नहीं सके। वे हर मूल्य

---

१. जैन भारती, १० जून १९६२।
२. जीवन की सार्थक दिशाएं, पृ० ८८।
३. आह्वान, पृ० १६।

पर अपनी परम्परा का निर्वाह करना चाहते थे। ऐसी परिस्थिति में मै अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर सकता हू, किन्तु किसी पर दवाव नही डाल सकता।"[1]

सामाजिक क्राति से आचार्य तुलसी का स्पष्ट अभिमत है—"जहा क्राति का प्रश्न है, वहा दवाव या भय से काम तो हो सकता है, पर उस स्थिति को क्रांति नाम से रूपायित करने में मुझे संकोच होता है।"[2] उनकी दृष्टि मे क्राति की सफलता के लिए जनमत को जागृत करना आवश्यक है। हजारीप्रसाद द्विवेदी का मंतव्य है—"सिर्फ जानना या अच्छा मानना ही काफी नही होता, जानते तो वहुत से लोग है, परन्तु उसको ठीक-ठीक अनुभव भी करा देना साहित्यकार का कार्य है।"[3]

आचार्य तुलसी के सत्प्रयासो एवं ओजस्वी वाणी से समाज ने एक नई अंगडाई ली है, युग की नब्ज को पहचानकर चलने का संकल्प लिया है तथा अपनी शक्ति का नियोजन रचनात्मक कार्यो मे करने का अभिक्रम प्रारम्भ किया है।

यह कहना अतिशयोक्ति नही होगा कि आचार्य तुलसी द्वारा की गयी सामाजिक क्राति का यदि लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाए तो एक स्वतत्र शोधप्रबध तैयार किया जा सकता है।"

नारी

पुरुष हृदय पाषाण भले ही हो सकता है,
नारी हृदय न कोमलता को खो सकता है।
पिघल-पिघल अपने अन्तर् को धो सकता है,
रो सकता है, किंतु नहीं वह सो सकता है॥

आचार्य तुलसी द्वारा उद्गीत इन काव्य-पक्तियो मे नारी की मूल्यवत्ता एव गुणात्मकता की स्पष्ट स्वीकृति है। आचार्य तुलसी मानते है कि महिला वह धुरी है, जिसके आधार पर परिवार की गाडी सम्यक् प्रकार से चल सकती है। धुरी मजबूत न हो तो कही भी गाडी के अटकने की सभावना वनी रहती है।"[4] उनकी दृष्टि मे सयम, शालीनता, समर्पण, सहिष्णुता की सुरक्षा पक्तियों मे रहकर ही नारी गौरवशाली इतिहास का सृजन कर सकती है।

आचार्य तुलसी के दिल मे नारी की कितनी आकर्षक तस्वीर है,

---

१ राजपथ की खोज, पृ० २०२।
२ अनैतिकता की धूप . अणुव्रत की छतरी, पृ० १९३।
३ हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग ७, पृ० २०६।
४ दोनो हाथ एक साथ, पृ० ४६।

इस बात की झांकी निम्न पंक्तियों मे देखी जा सकती है—"मैं महिला को ममता, समता और क्षमता की त्रिवेणी मानता हूं। उसके ममता भरे हाथों से नई पीढ़ी का निर्माण होता है, समता से परिवार में सतुलन रहता है और क्षमता से समाज एव राष्ट्र को संरक्षण मिलता है।"[1] आचार्य तुलसी की प्रेरणा से युगो से आत्मविस्मृत नारी को अपनी अस्मिता और कर्तृत्वशक्ति का तो अहसास हुआ ही है, साथ ही उसकी चेतना में क्राति का ऐसा ज्वालामुखी फूटा है, जिससे अधविश्वास, रूढसंस्कार, मानसिक कुठा और अशिक्षा जैसी बुराइयों के अस्तित्व पर प्रहार हुआ है। आचार्य तुलसी अनेक वार महिला सम्मेलनो मे अपने इस सकल्प को मुखर करते हैं—"शताब्दियो से अशिक्षा के कुहरे से आच्छन्न महिला-समाज को आगे लाना मेरे अनेक स्वप्नो मे से एक स्वप्न है। ....मैं महिला-समाज के अतीत को देखता हू तो मुझे लगता है, उसने वहुत प्रगति की है। भविष्य की कल्पना करता हूं तो लगता है कि अभी वहुत विकास करना है।"[2]

यह कहना अत्युक्ति या प्रशस्ति नही होगा कि यह सदी आचार्य तुलसी को और अनेक रूपों मे तो याद करेगी ही पर नारी उद्धारक के रूप मे उनकी सदैव अभिवन्दना करती रहेगी।

नारी के भीतर पनपने वाली हीनता एव दुर्वलता की ग्रथि को आचार्य तुलसी ने जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से सुलझाया है, वह इतिहास के पृष्ठो मे अमर रहेगा। वे नारी को संवोधित करते हुए कहते हैं—"पुरुप नारी का सम्मान करे, इससे पहले यह आवश्यक है कि नारी स्वयं अपना सम्मान करना सीखे। महिलाए यदि प्रतीक्षा करती रहेंगी कि कोई अवतार आकर उन्हें जगाएगा तो समय उनके हाथ से निकल जाएगा और वे जहा खडी हैं, वही खड़ी रहेंगी।"[3]

इसी संदर्भ मे उनकी निम्न प्रेरणा भी नारी को उसकी अस्मिता का अहसास कराने वाली हैं—"पुरुषवर्ग नारी को देह रूप मे स्वीकार करता है, किंतु वह उसके सामने मस्तिष्क वनकर अपनी क्षमताओं का परिचय दे, तभी वह पुरुषो को चुनौती दे सकती है।"[4]

नारी जाति मे अभिनव स्फूर्ति एव अटूट आत्मविश्वास भरने वाले निम्न उद्धरण कितने सजीव एव हृदयस्पर्शी वन पड़े हैं—

० केवल लक्ष्मी और सरस्वती वनने से ही महिलाओ का काम नहीं

---

१. एक बूद एक सागर, पृ० १०६६।
२. वही, पृ० १७३२।
३. वही, पृ० १०६६।
४ दोनो हाथ · एक साथ, पृ० ८५।

चलेगा, उन्हें दुर्गा भी बनना होगा। दुर्गा बनने से मेरा मतलब हिंसा या आतक फैलाने से नही, शक्ति को सजोकर रखने से है।"[1]

- नारी अबला नही, सबला बने। बोझ नही, शक्ति बने। कलहकारिणी नही, कल्याणी बने।
- आज का क्षण महिलाओ के हाथ मे है।' इस समय भी अगर महिलाए सोती रही, घडी का अलार्म सुनकर भी प्रमाद करती रही तो भी सूरज को तो उदित होना ही है। वह उगेगा और अपना आलोक बिखेरेगा।
- स्त्री मे सृजन की अद्भुत क्षमता है। उस क्षमता का उपयोग विश्वशाति या समस्याओ के समाधान की दिशा मे किया जाए तो वह सही अर्थ मे विश्व की निर्मात्री और संरक्षिका होने का सार्थक गौरव प्राप्त कर सकती है।"[2]

आचार्य तुलसी ने नारी जाति को उसकी अपनी विशेषताओ से ही नही, कमजोरियो से भी अवगत कराया है, जिससे कि उसका सर्वांगीण विकास हो सके। महिला-अधिवेशनो को सबोधित करते हुए नारी समाज को दिशा-दर्शन देते हुए वे अनेक बार कह चुके है—"मै बहिनो को सुझाना चाहता हू कि यदि उन्हे सघर्ष ही करना है तो वे अपनी दुर्बलताओ के साथ सघर्ष करे। उनके साहित्य मे नारी जाति से जुडी कुछ अर्थहीन रूढियो एव दुर्बलताओ का खुलकर विवेचन ही नही, उन पर प्रहार भी हुआ है तथा उसकी गिरफ्त से नारी-समाज कैसे बचे, इसका प्रेरक सदेश भी है।

सौन्दर्य-सामग्री और फैशन की अधी दौड मे नारी ने अपने आचार-विचार एव सस्कृति को भी ताक पर रख दिया है। इस संदर्भ मे उनके निम्न उद्धरण नारी जाति को कुछ सोचने, समझने एव बदलने की प्रेरणा देते है—

- मातृत्व के महान् गौरव से महनीय, कोमलता, दयालुता आदि अनेक गुणो की स्वामिनी स्त्री पता नही भीतर के किस कोने से खाली है, जिसे भरने के लिए उसे ऊपर की टिपटॉप से गुजरना पडता है।' 'मैं मानता हू कि फैशनपरस्ती, दिखावा और विलासिता आदि दुर्गुण स्त्री समाज के अन्तर् सौन्दर्य को ढकने वाले आवरण है।"[3]
- अपने कृत्रिम सौन्दर्य को निखारने के लिए पशु-पक्षियो की निर्मम

---

१ दोनो हाथ : एक साथ, पृ० २१।

२. एक बूद : एक सागर, पृ० १९१४।

३. वही, पृ० १६१३।

हत्या को किस प्रकार बर्दाश्त किया जा सकता है, यह प्रश्नचिह्न मेरे अंत:करण को बेचैन बना रहा है।"[1]

उनका चिंतन है कि यदि वैज्ञानिक सवेदनशील यंत्रो के माध्यम से वायुमडल मे विकीर्ण उन बेजुबान प्राणियो की करुण चीत्कारो के प्रकम्पनो को पकड सके और उनका अनुभव करा सके तो कृत्रिम सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टि बदल सकती है।

आज कन्याभ्रूणो की हत्या का जो सिलसिला बढ़ रहा है, इसे वे नारी-शोषण का आधुनिक वैज्ञानिक रूप मानते है तथा उसके लिए महिला समाज को ही दोषी ठहराते हैं। नारी जाति को भारतीय संस्कृति से परिचित कराती हुई उनकी निम्न प्रेरणादायिनी पंक्तिया पठनीय ही नही, मननीय भी है--

"भारतीय मा की ममता का एक रूप तो वह था, जब वह अपने विकलाग, विक्षिप्त और बीमार बच्चे का आखिरी सांस तक पालन करती थी। परिवार के किसी भी सदस्य द्वारा की गई उसकी उपेक्षा से मा पूरी तरह से आहत हो जाती थी। वही भारतीय मां अपने अजन्मे, अबोल शिशु को अपनी सहमति से समाप्त करा देती है। क्यो ? इसलिए नही कि वह विकलाग है, विक्षिप्त है, बीमार है पर इसलिए कि वह एक लड़की है। क्या उसकी ममता का स्रोत सूख गया है ? कन्याभ्रूणो की बढ़ती हुई हत्या एक ओर मनुष्य को नृशंस करार दे रही है, तो दूसरी ओर स्त्रियों की सख्या मे भारी कमी से मानविकी पर्यावरण मे भारी असंतुलन उत्पन्न कर रही है।"[2]

वे नारी जाति के विकास हेतु उचित स्वातंत्र्य के ही पक्षधर हैं, क्योकि सावधानी के अभाव मे स्वतत्रता स्वच्छदता मे परिणत हो जाती है तथा प्रगति का रास्ता नापने वाले पग उत्पथ में बढ़ जाते हैं। विकास के नाम पर अवाछित तत्त्व भी जीवन मे प्रवेश कर जाते हैं। इस दृष्टि से वे भारतीय नारी को समय-समय पर जागरूकता का दिशाबोध देते रहते है।

आचार्य तुलसी पोस्टरो तथा पत्र-पत्रिकाओ मे नारी-देह की अश्लील प्रस्तुति को नारी जाति के गौरव के प्रतिकूल मानते है। इसमे भी वे नारी जाति को ही अधिक दोषी मानते है, जो धन के प्रलोभन में अपने शरीर का प्रदर्शन करती है तथा सामाजिक शिष्टता का अतिक्रमण करती है। नारी के अश्लील रूप की भर्त्सना करते हुए वे कहते है—

"मुझे ऐसा लगता है कि एक व्यवसायी को अपना व्यवसाय चलाने

---

१ विचार वीथी, पृ० १७०।

२ कुहासे मे उगता सूरज, पृ० ९७।

की जितनी आकाक्षा होती है, शायद उससे भी अधिक आकांक्षा उन महिलाओ के मन मे ढेर सारा धन बटोरने की पल रही होगी, जो समाज के मूल्य-मानको को ताक पर रखकर कैमरे के सामने प्रस्तुत होती है।"[1]

आचार्य तुलसी ने अनेक बार इस सत्य को अभिव्यक्त किया है कि पुरुष नारी के विकास मे अवरोधक बना है, इसमे सत्याश हो सकता है पर नारी स्वय नारी के विकास मे बाधक बनती है, यह वास्तविकता है। दहेज की समस्या को बढाने मे नारी जाति की अहंभूमिका रही है, इसे नकारा नही जा सकता। इसी बात को आश्चर्यमिश्रित भाषा मे प्रखर अभिव्यक्ति देते हुए वे कहते है—"आश्चर्य इस बात का है कि दहेज की समस्या को बढाने मे पुरुषो का जितना हाथ है, महिलाओं का उससे भी अधिक है। दहेज के कारण अपनी बेटी की दुर्दशा को देखकर भी एक मा पुत्र की शादी के अवसर पर दहेज लेने का लोभ सवरण नही कर सकती। अपनी बेटी की व्यथा से व्यथित होकर भी वह बहू की व्यथा का अनुभव नही करती।"[2]

इसी सदर्भ मे उनका दूसरा उद्‌बोधन भी नारी-चेतना एव उसके आत्मविश्वास को जागृत करने वाला है—"दहेज के सवाल को मै नारी से ही शुरू करना चाहता हूं। मा, सास तथा स्वय लड़की जब दहेज को अस्वीकार करेगी तभी उसका सम्मान जागेगा। इस तरह एक सिरे से उठा आत्मसम्मान धीरे-धीरे पूरी समाज-व्यवस्था मे अपना स्थान बना सकता है।"[3]

एक धर्माचार्य होने पर भी नारी जाति से जुड़ी ऐसी अनेक रूढियो एव कमजोरियो की जितनी स्पष्ट अभिव्यक्ति आचार्य तुलसी ने अपने साहित्य मे दी है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। नारी जाति को विकास का सूत्र देते हुए उनका कहना है—"विकास के लिए बदलाव एवं ठहराव दोनो जरूरी हैं। मौलिकता स्थिर रहे और उसके साथ युगीन परिवर्तन भी आते रहे, इस क्रम से विकास का पथ प्रशस्त होता है।"[4]

आचार्य तुलसी नारी की शक्ति के प्रति पूर्ण आश्वस्त है। उनका इस बात मे विश्वास है कि अगर नारी समाज को उचित पथदर्शन मिले तो वे पुरुषों से भी आगे बढ सकती है। वे कहते है—"मेरे अभिमत से ऐसा कोई कार्य नही है, जिसे महिलाए न कर सके।"[5] अपने विश्वास को

---

१. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० ११३।
२. अनैतिकता की धूप अणुव्रत की छतरी, पृ० १७८।
३. अणुव्रत अनुशास्ता के साथ, पृ० २९।
४. दोनो हाथ : एक साथ, पृ० ४५।
५. बहता पानी निरमला, पृ० २८१।

महिला समाज के समक्ष वे इस भाषा मे रखते है—"महिलाओं की शक्ति पर मुझे पूरा भरोसा है। जिस दिन मेरे इस भरोसे पर महिलाओं को पूरा भरोसा हो जाएगा, उस दिन सामाजिक चेतना में क्रान्ति का एक नया विस्फोट होगा, जो नवनिर्माण की पृष्ठभूमि के रूप मे सामने आएगा।" नारी जाति के प्रति अतिरिक्त उदारता की अभिव्यक्ति कभी-कभी तो इन शब्दो मे प्रस्फुटित हो जाती है—"मैं उस दिन की प्रतीक्षा मे हूं, जब स्त्री-समाज का पर्याप्त विकास देखकर पुरुष वर्ग उसका अनुकरण करेगा।" एक पुरुष होकर नारी जाति के इस उच्च विकास की कामना उनके महिमा-मंडित व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

युवक

युवक शक्ति का प्रतीक और राष्ट्र का भावी कर्णधार होता है पर उचित मार्गदर्शन के अभाव मे जहा वह शक्ति विध्वसक बनकर सम्पूर्ण मानवता का विनाश कर सकती है, वहा वही शक्ति कुशल नेतृत्व मे सृजनात्मक एव रचनात्मक ढग से कार्य करके देश का नक्शा बदल सकती है। आचार्य तुलसी ने युवको की सृजन चेतना को जागृत किया है। उनका विश्वास है कि देश की युवापीढ़ी तोड़-फोड़ एव अपराधों के दौर से तभी गुजरती है, जब उसके सामने कोई ठोस रचनात्मक कार्य नही होता है। आचार्यश्री ने युवापीढ़ी के समक्ष करणीय कार्यो की एक लम्बी सूची प्रस्तुत कर दी है, जिससे उनकी शक्ति को सृजन की धारा के साथ जोड़ा जा सके। उनकी अनुभवी, हृदयस्पर्शी और ओजस्वी वाणी ने सैकड़ो धीर, वीर, गभीर, तेजस्वी, मनीषी और कर्मठ युवको को भी तैयार किया है। आचार्य तुलसी ने अपने जीवन से युवकत्व को परिभाषित किया है। वे कहते है—

- युवक वह होता है, जिसकी आखो मे सपने हो, होठो पर उन सपनो को पूरा करने का सकल्प हो और चरणो मे उस ओर अग्रसर होने का साहस हो, विचारो मे ठहराव हो, कार्यो मे अंधानुकरण न हो।"[1]
- जहा उल्लास और पुरुषार्थ अठखेलिया करे, वहा बुढ़ापा कैसे आए ? वह युवा भी बूढ़ा होता है, जिसमे उल्लास और पौरुष नही होता।

आचार्य तुलसी की युवको के नवनिर्माण की बेचैनी को निम्न शब्दो मे देखा जा सकता है—"मुझे युवको के नवनिर्माण की चिन्ता है, न कि उन्हें शिष्य बनाए रखने की। मैं युवापीढी के बहुआयामी विकास को देखने के लिए बेचैन हूं। मेरी यह बेचैनी एक-एक युवक के भीतर उतरे, उनकी ऊर्जा का केन्द्र प्रकम्पित हो और उस प्रकम्पन धारा का उपयोग सकारात्मक काम

१. एक बूद : एक सागर, पृ० ११४५।

में हो तो उनके जीवन मे विशिष्टता का आविर्भाव हो सकता है ।"[1]

उन्होने अपने साहित्य मे आज की दिग्भ्रान्त युवापीढी की कमजोरियो का अहसास कराया है तो विशेषताओ को कोमल शब्दो मे सहलाया भी है। कही उन्हे दायित्व-बोध कराया है तो कही उनसे नई अपेक्षाएं भी व्यक्त की है। कही-कही तो उनकी अन्त वेदना इस कदर व्यक्त हुई हैं, जो प्रत्येक मन को आदोलित करने मे समर्थ है—"यदि भारत का हर युवक शक्ति सम्पन्न होता और उत्साह के साथ शक्ति का सही नियोजन करता तो भारत की तस्वीर कुछ दूसरी ही होती।"

आचार्य तुलसी अपने साहित्य मे स्थान-स्थान पर अकर्मण्य, आलसी और निरुत्साही युवको को झकझोरते रहते है। औपमिक भापा मे युवकों की अन्तःशक्ति जगाते हुए वे कहते हैं—"जिस प्रकार दिन जैसे उजले महानगरो मे मिलो के कारण शाम उतर आती है, वैसे ही संकल्पहीन युवक पर बुढापा उतर आता है।"

वे आज की युवापीढी से तीन अपेक्षाए व्यक्त करते है—

१. युवापीढ़ी का आचार-व्यवहार, खान-पान तथा रहन-सहन सादा तथा सात्त्विक हो।

२. युवापीढ़ी विघटनमूलक प्रवृत्तियो से ऊपर उठकर अपने सगठन-पथ को सुदृढ़ बनाए।

३ युवापीढी समाज की उन जीर्ण-शीर्ण, अर्थहीन एव भारभूत परंपराओ को समाप्त करने के लिए कटिवद्ध हो, जिसका सवध युवको से है।"[2]

युवापीढी मे बढती नशे की प्रवृत्ति से आचार्य तुलसी अत्यन्त चिंतित है। वे मानते है—"किसी भी समाज या देश को सत्यानाश के कगार पर ले जाकर छोडना हो तो उसकी युवापीढी को नशे की लत मे डाल देना ही काफी है।"[3]

वे भारतीय युवको के मानस को प्रशिक्षित करते हुए कहते हैं—प्रारम्भ मे व्यक्ति शराब पीता है, कालातर मे शराब उसे पीने लगती है। ....शराब जिस घर मे पहुच जाती है, वहा सुख, शाति और समृद्धि पीछे वाले दरवाजे से बाहर निकल जाते हैं।"[4]

आचार्य तुलसी का मानना है कि मादक पदार्थो की बढती हुई घुसपैठ

---

१. दोनो हाथ · एक साथ, पृ० १०१।

२. समाधन की ओर, पृ० १०।

३. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० १२५।

४. एक बूद : एक सागर, पृ० १३२०।

क ेनही रोका गया तो भविष्य हमारे हाथ से निकल जाएगा । राष्ट्र के नाम अपने एक विशेप सन्देश में समाज को सावचेत करते हुए वे अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए कहते है—"पशु अज्ञानी होता है, उसमे विवेक नही होता फिर भी वह नशा नही करता । मनुष्य ज्ञानी होने का दम्भ भरता हैं । विवेक की रास हाथ मे लेकर चलता है, फिर भी नशा करता है । क्या उसकी ज्ञान-चेतना सो गयी ? जान-बूझकर अश्रेयस् की यात्रा क्यो ?" उनके द्वारा रचित काव्य की ये पक्तिया आज की दिग्भ्रमित युवापीढी को जागरण का नव सन्देश दे रही है—

यदि सुख से जीना है तो, त्यागो मदिरा की बोतल ।
यदि अमृत पीना है तो त्यागो यह जहर हलाहल ॥
सोचो यह इन्द्रधनुष सा जीवन है कैसा चंचल ।
फिर तुच्छ तृप्ति के खातिर क्यों है व्यसनों की हलचल ॥

आचार्य तुलसी ने निषेध की भापा मे नही, अपितु वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक तरीके से युवा-समाज के मन मे नशीले पदार्थो के प्रति वितृष्णा पैदा की है । अणुव्रत के माध्यम से उन्होने देशव्यापी नशामुक्ति अभियान चलाया है, जिससे लाखो युवको ने व्यसनमुक्त जीवन जीने का संकल्प अभिव्यक्त किया है ।

आदर्श युवक के लिए आचार्य तुलसी पाच कसौटिया प्रस्तुत करते हैं—

- **श्रद्धाशील**—श्रद्धा वह कवच है, जिसे धारण करने वाला व्यक्ति भ्रातियो और अफवाहो के नुकीले तीरो से आविद्ध नही हो सकता ।
- **सहनशील**—सहनशीलता वह मरहम है, जो मानसिक आघातो से वने घावो को अविलम्ब भर सकती है ।
- **विचारशील**—विचारशीलता वह सेतु है, जो पारस्परिक दूरियों को पाटकर एक समतल धरातल का निर्माण करती है ।
- **कर्मशील**—कर्मशीलता वह पुरुपार्थ है, जो अधिकार की भावना समाप्त कर कर्तव्यबोध की प्रेरणा देती है ।
- **चरित्रशील**—चरित्रशीलता वह निधि है, जो सव रिक्तताओ को भरकर व्यक्ति को परिपूर्ण वना देती है ।"[1]

आचार्य तुलसी ने युवापीढ़ी का विश्वास लिया ही नही, मुक्त मन से विश्वास किया भी है । यही कारण है कि उनके हर मिशन से युवक जुड़े हुए है और उसे सफल करने का प्रयत्न करते है । युवापीढ़ी पर विश्वास व्यक्त

१. दोनो हाथ : एक साथ, पृ० १०७ ।

करने वाली निम्न पक्तिया उनके सार्वजनिक एव आत्मीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है—"युवापीढी सदा से मेरी आशा का केन्द्र रही है, चाहे वह मेरे दिखाए मार्ग पर कम चल पायी हो या अधिक चल पाई हो, फिर भी मेरे मन मे उनके प्रति कभी भी अविश्वास और निराशा की भावना नही आती। मुझे युवक इतने प्यारे लगते है, जितना कि मेरा अपना जीवन। मै उनकी अद्भुत कार्यजा शक्ति के प्रति पूर्ण विश्वस्त हू।"[1]

समाज और अर्थ

समाज से अर्थ को अलग नही किया जा सकता। क्योकि सामाजिक जीवन मे यह विनियोग का साधन है। अपरिग्रही एव अकिचन होने पर भी आचार्य तुलसी ने अपने साहित्य मे समाज के सभी विषयो पर सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अर्थ के बारे मे उनका चिंतन है कि सामाजिक प्राणी के लिए धन जीवन चलाने का साधन हो सकता है, पर जब उसे जीवन का साध्य मान लिया जाता है, तब शोषण, उत्पीड़न, अनाचरण, अप्रामाणिकता, हिसा और भ्रष्टाचार से व्यक्ति बच नही सकता।

अर्थशास्त्री उत्पादन-वृद्धि के लिए इच्छा-तृप्ति एव इच्छा-वृद्धि की बात कहते है। पर आचार्य तुलसी इच्छा-तृप्ति के स्थान पर इच्छा-परिमाण एव इच्छा-रूपान्तरण की बात सुझाते है, क्योकि इच्छाओ का क्षेत्र इतना विशाल है कि उनकी पूर्ण तृप्ति असभव है। उनके इच्छा-परिमाण का अर्थ वस्तु-उत्पादन बन्द करना या गरीब होना नही, अपितु अनावश्यक सग्रह के प्रति आकर्षण कम करना है। आचार्य तुलसी का चिंतन है कि निस्सीम इच्छाए व्यक्ति को आनंदोपलब्धि की विपरीत दिशा मे ले जाती है अतः इच्छाओ का परिष्कार ही समाज-विकास या जीवन-विकास है।

राष्ट्र-विकास के सदर्भ मे वे इच्छा-परिमाण को व्याख्यायित करते हुए कहते है—"इच्छाओ का अल्पीकरण विलासिता को समाप्त करने के लिए है। अनन्त आसक्ति और असीम दौडधूप से बचने के लिए है, न कि देश की अर्थव्यवस्था का अवमूल्यन करने के लिए।" वे इस सत्य को स्वीकार करते है कि ससारी व्यक्ति भौतिक सुखो से सर्वथा विमुख बन जाए, यह आकाश-कुसुम जैसी कल्पना है किंतु अन्याय के द्वारा धन-सग्रह न हो, अनर्थ मे अर्थ का प्रयोग न हो, यह आवश्यक है।

समाज के आर्थिक वैषम्य को दूर करने हेतु वे नई सोच प्रस्तुत करते है—"'आर्थिक वैषम्य मिटाओ' इसकी जगह हमारा विचारमूलक प्रचार कार्य यह होना चाहिए कि 'आर्थिक दासता मिटाओ'।"[2] इसके लिए आचार्य

१ एक बूद : एक सागर, पृ० १७११।
२. एक बूद : एक सागर, पृ० ३८९।

तुलसी विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के पक्षधर है। क्योंकि अधिक सग्रह उपभोक्ता सस्कृति को जन्म देता है। इस सदर्भ मे उनका मंतव्य है कि जिस प्रकार बहता हुआ पानी निर्मल रहता है, उसी प्रकार चलता हुआ अर्थ ही ठीक रहता है। "अर्थ का प्रवाह जहा कही रुकता है, वह समाज के लिए अभिशाप और पीड़ा बन जाता है।"[1] अतः स्वस्थ, सगठित, व्यवस्थित एवं सवेदनशील समाज मे अर्थ के प्रवाह को रोकना सामाजिक विकास मे बाधा है।

सग्रह के बारे मे आचार्य तुलसी का चितन है—"मेरी दृष्टि मे सग्रह भीतर ही भीतर जलन पैदा करने वाला फोड़ा है और वही जब नासूर के रूप मे रिसने लगता है तो अपव्यय हो जाता है।"[2]

सग्रह के कारण होने वाले सामाजिक वैषम्य का यथार्थ चित्र उपस्थित करते हुए वे समाज को सावधान करते हुए कहते है—"एक ओर जनता के दु:ख-दर्द से बेखबर विलासिता मे आकठ डूबे हुए लोग और दूसरी ओर जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओ से भी वचित अभावो से घिरे लोग। सामाजिक विपमता की इस धरती पर समस्याओं के नए-नए झाड़ उगते ही रहेगे।"[3]

आर्थिक वैषम्य की समस्या के समाधान मे वे अपना मौलिक चितन प्रस्तुत करते है—"मेरा चितन है कि अतिभाव और अभाव के मध्य से गुजरने वाला समाज ही तटस्थ चितन कर सकता है, अन्यथा वहा विलासिता और पीडा जन्म लेती रहती है।" इसी बात को कभी-कभी वे इस भाषा मे भी प्रस्तुत कर देते है—"गरीबी स्वय बुरी स्थिति है, अमीरी भी अच्छी स्थिति नही है। इन दोनों से परे जो त्याग या संयम है, इच्छाओ और वासनाओं की विजय है, वही भारतीय जीवन का मौलिक रूप है और इसी ने भारत को सब देशो का सिरमौर बनाया था।"[4]

अपरिग्रह के प्रबल पक्षधर होने पर भी वे पूजीपतियो के विरोधी नही है। पर पूजीवादी मनोवृत्ति पर समय-समय पर प्रहार करते रहते है—"पूजीवादी मनोवृत्ति ने जहा एक ओर मानव के वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन को विघटित कर डाला है, व्यक्ति को भाई-भाई के खून का प्यासा बना दिया है, पिता पुत्र के बीच वैमनस्य और रोष की भयावह दरार पैदा कर दी है, वहा सामाजिक और सार्वजनिक जीवन पर भी इसने करारी

१. एक बूद : एक सागर, पृ० १९१।
२ अणुव्रत के आलोक मे, पृ० ९३।
३. एक बूद . एक सागर, पृ. १५६२।
४. २१-११-५४ के प्रवचन से उद्धृत।

चोट पहुचाई है । ......जिस आवश्यकता से दूसरे का अ।वक।
है या उसमे वाधा पहुंचती है, वह आवश्यकता नही, अनविक
जाती है ।" ....यदि पूजीपति लोग अपने आपको नही वदल
सभावित भीषण परिणाम भी उन्हें अतिशीघ्र भोगने होगे ।"

जीवन के यथार्थ सत्य को वे अनुभूति के साथ जोड़कर
भाषा मे कहते है–"मै पर्यटक हू । मुझे गरीव-अमीर सभी तरह के
है, पर जव उन कोट्याधीश धनवानो को देखता हू तो वे मुझे अ
के स्थान पर हीरे-पन्ने खाते नजर नही आते । मुझे आश्चर्य ह
तव फिर क्यो वे धन के पीछे शोषण और अत्याचारो से अपने अ।
के गड्ढे में गिराते है ।"

वे अनेक वार इस वात को अभिव्यक्ति देते है—"जागृत ˎ
है, जिसके प्रत्येक सदस्य के पास अपने मूलभूत अधिकार हो,
आवश्यकताओ की पूर्ति के साधन हो और सुख दु.ख मे एक-दूसरे
समभागिता हो ।[1]

समाज की इस विपम स्थिति मे परिवर्तन लाने हेतु वे ऐसी
व्यवस्था की आवश्यकता महसूस करते है, जिसमे पैसे का नही, अपितु त्य
महत्त्व रहे ।"[2] इसके लिए वे मार्क्स की आर्थिक क्राति को असफल
वल्कि ऐसी आध्यात्मिक क्राति की अपेक्षा महसूस करते है, जो समाज मे
किसी रक्तपात एवं हिंसा के सन्तुलन वनाए रख सके । उस आ।व्य।।
क्रांति के महत्त्वपूर्ण सूत्र के रूप मे उन्होने समाज को विसर्जन क
दिया । । वे खुले शब्दो में समाज को प्रतिवोध देते रहते है—' विसर्ज
विना अर्जन दु:खदायी और नुकसान पहुचाने वाला होगा । विसर्जन
चेतना विकसित होते ही अनैतिक और अमानवीय ढग से किए जाने व
सग्रह पर स्वत' रोकथाम लग जाएगी ।"

अर्थ के सम्यक् उपयोग एवं नियोजन के वारे मे भी आचार्य तुल
ने समाज को नई दृष्टि दी है । वे लोगो की विसंगतिपूर्ण मानसिकता न
व्यग्य करते हैं—"समाज के अभावग्रस्त जरूरतमद लोगो के लिए कही अ
का नियोजन करना होता है तो दस वार सोचा जाता है और वहाने वन।।
जाते है, जवकि विवाह आदि प्रसगों मे मुक्त मन से अर्थ का व्यय कय।
जाता है ।" ' 'फैशन के नाम पर होने वाली वस्तुओ की खरीद-फरोख्त मे
कितना ही पैसा लग जाए, कभी चिन्तन नही होता और धार्मिक साहित्य
लेना हो तो कीमतें आसमान पर चढी हुई लगती है । क्या यह चिंतन का

---

१ एक वूद · एक सागर, पृ० १४९३ ।
२. जैन भारती, २६ जून १९५५ ।

दारिद्रय नही है ?"[1] उक्त उद्धरण का अर्थ यह नही कि वे समाज में सभी को संन्यासी जैसा जीवन व्यतीत करने का संदेश देते हैं। निम्न वक्तव्य उनके सन्तुलित एवं सटीक चिन्तन का प्रमाणपत्र कहा जा सकता है—"मैं सामाजिक जीवन मे आमोद-प्रमोद की समाप्ति की वात नही कहता, न उसमें रुकावट डालता हूं, किन्तु यदि हमने युग की धारा को नही समझा तो हम पिछड़ जाएंगे।"[2]

व्यवसाय

सामाजिक प्राणी के लिए आजीविका हेतु व्यवसाय करना आवश्यक है। क्योंकि उसके विना जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति नही होती। आचार्य तुलसी व्यवसाय में नैतिकता को अनिवार्य मानते हैं। इस सन्दर्भ में उनका निम्न सम्बोध अत्यन्त प्रेरक है—"व्यवसाय में नैतिक मूल्यो की अवहेलना जघन्य अपराध है। शस्त्रास्त्र द्वारा मनुष्य का विनाश कव होगा, निश्चित नही है, लेकिन मानव यदि नैतिक और प्रामाणिक नही वना तो वह स्वयं अपनी नजरो मे गिर जाएगा, यह स्थिति विनाश से भी अधिक खतरनाक होगी।"[3] सम्पूर्ण व्यापारी समाज को उनका प्रतिवोध है—" 'जाए लाख पर रहे साख' इस आदर्श की मीनार पर खड़े व्यक्ति कभी नैतिक मूल्यों का अतिक्रमण नही कर सकते। नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की खोज करने वाला समाज प्रकाश की खोज करता है, अमृत की खोज करता है और आनन्द की खोज करता है।"[4]

व्यापार के क्षेत्र में चलने वाली अनैतिकता एव अप्रामाणिकता को देख-सुनकर उनका मानस कभी-कभी वेचैन हो जाता है। इसलिए वे समय-समय पर प्रवचन-सभाओ मे इस विषय मे अपने प्रेरक विचारो से समाज को लाभान्वित करते रहते है। दक्षिण यात्रा के दौरान एक सभा को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं—"आप व्यापार करते हैं, पैसा कमाते हैं, इसमे मुझे कोई आपत्ति नही। किन्तु व्यापार मे जो वुराई है, धोखा है, उसे छुड़ाने के लिए मै उपदेश नही दू, समाज को नई सूझ न दू, यह कैसे सम्भव है ? मै आपके विरोध के भय से नैतिकता की आवाज वन्द नही कर सकता। शोषण और अमानवीय व्यवहार के विरोध मे मैं जीवन भर आवाज उठाता रहूगा।[5]

---

१. आह्वान, पृ० १२,१३।
२. एक वूंद एक सागर, पृ० १७२७।
३. वही, पृ० ८२४।
४ वही, पृ० ८३३।
५. २-७-१९६८ के प्रवचन से उद्धृत।

कभी-कभी वे मनोवैज्ञानिक तरीके से व्यापारियो की विशेषताओ को सहलाकर उन्हे नैतिकता की प्रेरणा देते है—"व्यापारी वर्ग को साहूकार का जो खिताब मिला है, वह किसी राष्ट्रपति या सम्राट् को भी नही मिला, इसलिए इस शब्द को सार्थक करने की अपेक्षा है।"

अर्थार्जन के साधन की शुद्धता पर भगवान् महावीर ने विस्तृत विवेक दिया है। आचार्य तुलसी ने उसे आधुनिक परिवेश एवं आधुनिक सन्दर्भो मे व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है। उनके साहित्य मे हिंसाबहुल एव उत्तेजक व्यवसायों की खुले शब्दो मे भर्त्सना है।

आचार्य तुलसी खाद्य पदार्थो मे मिलावट के सख्त विरोधी है। वे इसे हिंसा एव अक्षम्य अपराध मानते हैं। 'अमृत महोत्सव' के अवसर पर अपने एक विशेष सन्देश मे वे कहते है—"मिलावट करने वाले व्यापारी समाज एव राष्ट्र के तो अपराधी है ही, यदि वे ईश्वरवादी है तो भगवान् के भी अपराधी है। ··· मिलावट ऐसी छेनी है, जो आदर्श की प्रतिमा को खंड-खड कर खंडहर मे बदल देती है।"[1]

आचार्य तुलसी उस व्यवसाय एव व्यापार को समाज के लिए घातक मानते है, जो हमारी सस्कृति की शालीनता एव सयम पर प्रहार करते है, मानव की अस्मिता पर प्रश्नचिह्न खडा करते है। विज्ञापन-व्यवसाय के बारे मे उनकी निम्न टिप्पणी अत्यन्त मार्मिक है—"विज्ञापन एक व्यवसाय है। अन्य व्यवसायो की तरह ही यह व्यवसाय होता तो टिप्पणी करने की अपेक्षा नही थी। किन्तु जब इससे व्यक्ति के चरित्र और सूझ-बूझ दोनो पर प्रश्नचिह्न खड़े होने लगे, तो सचेत होना पडेगा। ·· 'साडियो के विज्ञापन मे एक युवा लडकी का चित्र देकर लिखा जाता है कि मै शादी दिल्ली में ही करूगी क्योकि यहा मुझे उत्तम साडिया पहनने को मिलेगी। पर्यटन एजेसियो का विज्ञापनदाता विवाह योग्य कन्या के मुख से कहलवाता है कि वह उसी व्यक्ति के साथ शादी करेगी, जो उसे विदेश यात्रा करा सके। इस प्रकार के विज्ञापन युवा मानसिकता को गुमराह कर देते है।"[2]

इसी सन्दर्भ मे उनका निम्न वक्तव्य भी अत्यन्त मार्मिक एव प्रेरक है—"महिलाओ के लिए खासतौर से सिगरेट बनाना और उसे विज्ञापनी चमक से जोडना महिलाओ को पतन के गर्त मे धकेलना है। सिगरेट बनाने वाली कम्पनी को उससे आर्थिक लाभ हो सकता है, पर देश की सस्कृति का इससे कितना नुकसान होगा, यह अनुमान कौन लगाएगा?"[3]

---

१ अनैतिकता की धूप : अणुव्रत की छतरी, पृ० १७९।

२. दोनो हाथ : एक साथ, पृ० ८४,८५।

३. अणुव्रत, १ अप्रैल १९९०।

विज्ञापन व्यवसाय से होने वाली हानियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण वे इन शब्दो मे करते है—"यह मानवीय दुर्वलता है कि मनुष्य किसी घटना के अच्छे पक्ष को कम पकड़ता है और गलत प्रवाह में अधिक वहता है। वच्चे तो नासमझ होते है अतः विज्ञापन की हर चीज की मांग कर वैठते हैं। खाने-पीने, पहनने-ओढने अथवा किसी अन्य काम में आने वाली नई चीज का विज्ञापन देखते ही वे उसे पाने के लिए मचल उठते है। ऐसी स्थिति मे माता-पिता के लिए समस्या खड़ी हो जाती है।"[1]

फिलम-व्यवसाय को वे राष्ट्र के चरित्रवल को क्षीण करने का वहुत वडा कारण मानते है। यद्यपि वे फिल्म-व्यवसाय पर सर्वथा प्रतिवन्ध लगाने की वात अव्यावहारिक और अमनोवैज्ञानिक मानते हैं, फिर भी उनका सुझाव है—"एक उम्र विशेष तक फिल्म देखने पर यदि प्रतिवन्ध हो तो मैं इसमें लाभ ही लाभ देखता हूं। ...... भारत की युवापीढ़ी इस प्रतिवन्ध के लिए कहां तक तैयार है, यह अवश्य ही शोचनीय प्रश्न है। किन्तु इसके सुखद परिणाम सुनिश्चित हैं।"[2] फिल्म व्यवसाय से होने वाले दुष्परिणामो की चर्चा करते हुए वे कहते है—"फिल्म के कामोत्तेजक दृश्य और गाने, वासना को उभारने वाले पोस्टर, अंग प्रत्यंगों को उभारकर दिखाने वाली या अधनंगी पोशाकें—ये सव युवापीढ़ी के चरित्र को गुमराह करती हैं। मैं मानता हू, फिल्म-व्यवसाय राष्ट्र के चारित्रिक पतन का मुख्य कारण है।"[3]

वढती वेरोजगारी का कारण आचार्य तुलसी विज्ञान द्वारा आविष्कृत नए-नए यन्त्रो को मानते है। यद्यपि आचार्य तुलसी यन्त्रों के विरोधी नही है पर उनके सामने चेतन प्राणी का अस्तित्व शून्य हो जाए, वह निष्क्रिय और अकर्मण्य वन जाए, इसके वे विरोधी है। इस सन्दर्भ में उनकी निम्न टिप्पणियां वैज्ञानिको को भी कुछ सोचने को मजबूर कर रही है—"यन्त्र का अपना उपयोग है पर यन्त्र का निर्माता और नियंता स्वयं यन्त्र वन गया तो इस दिशा मे नए आयाम कैसे खुलेंगे ?[4] "... .....प्रश्न होता है कि क्या करेंगे इतने यन्त्र मानव ? मनुष्य तो वैसे भी निकम्मा होता जा रहा है। मशीनों की कार्यक्षमता इतनी वढ रही है कि एक मशीन सैकडों-सैकड़ो मनुष्यों का काम कुछ ही समय मे निपटा देती है। मशीनी मानवों के सामने इतना कौन-सा काम रहेगा, जो उनको निरन्तर व्यस्त रख सके अन्यथा ये यंत्र मानव निकम्मे होकर आपस मे लडेंगे, मनुष्यो को तंग करेंगे या और कुछ

---

१. कुहासे मे उगता सूरज, पृ० ४९।
२. अणुव्रत : गति प्रगति, पृ० १७२।
३. वही, पृ० १७१।
४. वैसाखिया विश्वास की, पृ० १८,१९।

करेंगे। इनमें कुछ पार्ट्स गलत लग गए अथवा इनके उपयोग में कही प्रमाद रह गया तो ये मनुष्यों को मारने पर उतारू हो जाएंगे। यह क्रम शुरू भी हो चुका है। समाचार पत्रो में तो यह आशका व्यक्त की गई है कि ये अलग देश की माँग करेंगे या इन्सान पर राज करेंगे। ऐसा कुछ न भी हो, फिर भी यह तो सम्भव लगता है कि ये उत्पात मचाए विना नही रहेंगे।''[1]

इस उद्धरण का तात्पर्य उनकी भाषा मे इन शब्दों मे रखा जा सकता है—"भौतिक विकास एव यन्त्रों का विकास कभी दुःखद नही होगा यदि वह सयम शक्ति के विकास से सन्तुलित हो।"[2]

स्वस्थ समाज-निर्माण

आचार्य तुलसी के महान् एव ऊर्जस्वल व्यक्तित्व को समाज-सुधारक के सीमित दायरे मे बाधना उनके व्यक्तित्व को सीमित करने का प्रयत्न है। उन्हें नए समाज का निर्माता कहा जा सकता है। आचार्य तुलसी जैसे व्यक्ति दो-चार नही, अद्वितीय होते है। उनका गहन चिन्तन समाज के आधार पर नही, वरन् उनके चिन्तन में समाज अपने को खोजता है। उन्होंने साहित्य के माध्यम से स्वस्थ मूल्यो को स्थापित करके समाज को सजीव एव शक्तिसम्पन्न बनाने का प्रयत्न किया है। समाज-निर्माण की कितनी नयी-नयी कल्पनाए उनके मस्तिष्क मे तरंगित होती रहती हैं, इसकी पुष्टि निम्न उद्धरण से हो जाती है—"मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यदि हम समाज को अपनी कल्पना के अनुरूप ढाल पाते तो आज उसका स्वरूप इतना भव्य और सुघड होता कि मै वता नही सकता।"[3]

आचार्य तुलसी केवल व्यक्तियों के समूह को समाज मानने को तैयार नही है। उनकी दृष्टि मे समाज के सदस्यो मे निम्न विशेषताओ का होना आवश्यक है —"जिस समाज के सदस्यो में इस्पात सी दृढता, सगठन मे निष्ठा, चारित्रिक उज्ज्वलता, कठिन काम करने का साहस और उद्देश्य पूर्ति के लिए स्वयं को झोंकने का मनोभाव होना है, वह समाज अपने निर्धारित लक्ष्य तक वहुत कम समय मे पहुच जाता है।"[4]

आचार्य तुलसी समाज-निर्माण की आधारशिला के रूप मे मर्यादा और अनुशासन को अनिवार्य मानते है। उनका निम्न वक्तव्य इसका स्वयंभू साक्ष्य है —"समाज हो और मर्यादा न हो, वह समाज अधिक समय तक जीवित नही रह सकता। समाज हो और मर्यादा न हो तो विकास के नए

१ बैसाखिया विश्वास की, पृ० १८,१९।
२ मेरा धर्म केन्द्र और परिधि, पृ० ३२।
३ आह्वान, पृ० २१।
४ एक बूद · एक सागर, पृ० १३८६।

रास्ते नही खुलते । समाज हो और मर्यादा न हो तो न्याय और समविभाग नही मिल सकता । समाज को स्वस्थ और गतिशील वनाए रखने के लिए मर्यादा की अहंभूमिका रहती है ।"[1]

स्वस्थ समाज-संरचना के लिए वे सुविधावाद और विलासिता को वहुत वड़ा खतरा मानते हैं। वे स्पष्ट शब्दो मे कहते हैं—"विलास का अन्त विनाश मे होता है- पानी मे से घी निकल सके तो विलासिता मे लिप्त रहकर दुनिया सुख पा सकती है।" कभी-कभी तो वे इतने भावपूर्ण शब्दो मे यह तथ्य जनता के गले उतारते हैं कि देखते ही वनता है —"मैं आपको यह कैसे समझाऊं कि विलास मे सुख नही है । यह कोई पदार्थ होता तो आपके सामने रख देता पर यह तो अनुभव है । अनुभव विना स्वय के आचरण के प्राप्त नही हो सकता ।"

आज मानव श्रम को भूलकर यत्राश्रित हो रहा है, इसे वे उज्ज्वल समाज के भविष्य का प्रतीक नही मानते । उनका मानना है कि जीवन की धरती पर सत्य, शिव और सौन्दर्य की धाराएं प्रवाहित करने के लिए यंत्रों पर निर्भर रहने से काम नही वनेगा ।"[2]

गाधीजी ने आदर्श समाज के लिए रामराज्य की कल्पना प्रस्तुत की । आचार्य तुलसी ने आदर्श, निर्द्वन्द्व, स्वस्थ एव शोपणमुक्त समाज-सरचना के लिए अणुव्रत समाज की सकल्पना की । वे कहते है—"मेरे मस्तिष्क मे जिस आदर्श समाज की कल्पना है, वह समूचे विश्व के लिए नए सृजन की दिशा मे वर्तमान युग और युवापीढ़ी के लिए उदाहरण वन सकती है पर उस आदर्श तक पहुंचने के लिए केवल कल्पना के ताने-वाने बुनने से काम नही होगा । उसके लिए तो दृढ़ सकल्प और निष्ठा से आगे वढने की जरूरत है ।"[3] पदयात्रा के दौरान एक प्रवचन मे वे अपने सकल्प को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं—"स्वस्थ समाज की सरचना के लिए कार्य करना मेरी जीवन-चर्या का अग है । इसलिए जव-तक वैयक्तिक साधना के साथ-साथ ये सारी वातें नही होती, तव तक मेरी यात्रा सम्पन्न कैसे हो सकती है ?

स्वस्थ समाज की कल्पना आचार्य तुलसी के शब्दो मे यो उतरती है—"मेरी दृष्टि मे वह समाज स्वस्थ है, जिसमे व्यसन न हो, कुरूढ़ियां न हो, जिसकी जीवन-शैली सात्त्विक, सादगीपूर्ण और श्रम पर आधारित हो । दूसरे शब्दो में ज्ञान-दर्शन व चारित्र की त्रिवेणी से आप्लावित समाज, स्वस्थ समाज है । ज्ञान, दर्शन और चारित्र का प्रतिनिधि शब्द है—धर्म या

---

१ एक वूद : एक सागर, पृ० १४९६ ।

२. वैसाखिया विश्वास की, पृ० १८ ।

३. जैन भारती २८ अक्टूवर, १९६२ ।

अध्यात्म। जहा धर्म विकसित होता है, वहा जीवन का निर्माण होता है और समाज स्वस्थ रहता है।''[1] उनकी दृष्टि मे वह समाज रुग्ण है, जहा संग्रह, शोषण, चोरी एव छीनाझपटी चलती है। अत. जहा सब अपने अधिकारो में सन्तुष्ट तथा सहयोग और सामजस्य की भावना लिए चलते हो, वही स्वस्थ एवं आदर्श समाज हो सकता है।

अणुव्रत द्वारा वे एक ऐसे समाज का स्वप्न देखते है, जहा हिंसा व सग्रह न हो। न कानून हो और न दण्ड देने वाला कोई सत्ताधीश हो। न कोई अमीर हो न गरीब। एक का जातिगत अहं और दूसरे की हीनता समाज मे वैषम्य पैदा करती है। अत: अणुव्रत प्रेरित समाज समान धरातल पर विकसित होगा। इसके लिए वे अनुशासन और सयम की शक्ति को अनिवार्य मानते है।

अणुव्रत के द्वारा शोषण-विहीन स्वस्थ समाज-रचना के कुछ करणीय बिन्दु प्रस्तुत करते हुए व कहते हैं—

"१. वह समाज अल्पेच्छा और अपरिग्रह को पहला स्थान देगा। अल्पेच्छा से तात्पर्य है कि उसकी आकाक्षाए निरकुश नहीं होगी। आकाक्षाओ का विस्तार सग्रह या परिग्रह का कारण बनता है और संग्रह शोपण का कारण बनता है। · ·इच्छा-सयम के साथ सग्रह-संयम स्वयं हो जाएगा।

२ अणुव्रत अर्थ और सत्ता के केन्द्रीकरण को, फिर चाहे वह व्यक्तिगत स्तर पर हो या राष्ट्रीय स्तर पर, प्रश्रय नही देगा। अर्थ और सत्ता का केन्द्रीकरण ही शोषण और सग्रह की समस्याओ को जन्म देता है।

३ उस समाज मे श्रम और स्वावलम्बन की प्रतिष्ठा होगी। व्यक्ति आत्मनिर्भर बने और श्रम का मूल्याकन सामाजिक स्तर पर हो, यह प्रयत्न किया जाएगा।

४. सग्रह करने वाले को उसमे सामाजिक प्रतिष्ठा नही मिलेगी। मनुष्य बहुधा अधिक सग्रह प्रतिष्ठा पाने के लिए ही करता है। आवश्यकता पूर्ति के लिए मनुष्य को अधिक धन अपेक्षित नही होता। फिर भी धन के प्रति उसकी जो लालसा देखी जाती है, उसका एक मात्र कारण प्रतिष्ठा ही है। ·· ·· यही कारण है कि वह सब प्रकार के छल, प्रपंच, फरेब और षड्यन्त्र रचकर भी पैसा कमाना चाहता है। आज यदि अर्थ की भूमिका मे से सामाजिक प्रतिष्ठा को निकाल लिया जाए तो दूसरे ही क्षण संग्रह का महल ढह जाएगा।

---

१. आगे की सुधि लेइ, पृ० २६८।

५. उस समाज के आधार मे अहिंसा होगी। उसका यह विश्वास होगा— समस्या का सही समाधान अहिंसा मे ही है। अपनी हर समस्या को वह अहिंसा के माध्यम से ही सुलझाने का प्रयत्न करेगा।"[1]

अणुव्रत जिस आदर्श एवं शोषणविहीन समाज की रूपरेखा प्रस्तुत करता है, साम्यवाद के सामने भी वही कल्पना है पर इन दोनो की प्रक्रिया मे भिन्नता है। इस भेदरेखा को स्पष्ट करते हुए आचार्य तुलसी कहते है— "शोषण-विहीन और स्वतन्त्र समाज की रचना साम्यवाद और अणुव्रत दोनों का उद्देश्य है पर दोनो की प्रक्रिया भिन्न है। साम्यवाद व्यवस्था देता है और अणुव्रत वृत्तियो को परिमार्जित करता है। व्यवस्था की गति तीव्र हो सकती है किंतु वह उत्तरोत्तर लक्ष्य से प्रतिकूल होती जाती है। अणुव्रत की गति मद है पर वह उत्तरोत्तर लक्ष्य के अनुकूल है। त्वरित गति का उतना महत्त्व नही है, जितना लक्ष्य-प्रतिबद्ध गति का है। साम्यवादी देशों का व्यक्तिवाद की ओर बढता हुआ झुकाव देखकर यह सहज ही जाना जा सकता है कि व्यवस्था-परिवर्तन की अपेक्षा वृत्ति-परिवर्तन का क्रम प्रशस्य है।"[2]

समग्र मानव समाज के लिए गहन एव हितावह चिन्तन करने वाले युगद्रष्टा आचार्य तुलसी ने अपने आध्यात्मिक आदोलनो द्वारा जिस शोषण-विहीन एव सुखसमृद्धि से परिपूर्ण अणुव्रत समाज की कल्पना की है, उस कल्पना की पूर्ति सभी समस्याओ का निदान बनेगी, ऐसा विश्वास है।

कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी के समाज-चिंतन मे जो क्रातिकारिता, परिवर्तन एव नए दिशाबोध हैं, वे समाजशास्त्रियों को भी चिन्तन की नयी खुराक देने मे समर्थ हैं।

---

१ अणुव्रत : गति-प्रगति, पृ० १३६।
२ अणुव्रत के आलोक में, पृ० २२।

साहित्य-परिचय

"उत्तम पुस्तक महान् आत्मा की प्राणशक्ति होती है"—मिल्टन की इस उक्ति को आचार्य तुलसी की प्रत्येक पुस्तक मे चरितार्थ देखा जा सकता है। आचार्य तुलसी ने सलक्ष्य कुछ लिखा हो, ऐसा नही लगता पर सहज रूप से जो भी परिस्थिति उनके सामने आई, जो भी प्रसग उनके सामने उपस्थित हुए या जिन भावो ने उन्हे उद्वेलित किया, वही सब कुछ कलम की नोक से या वाणी की शक्ति से मुखर हो गया। यह सब इतना स्वाभाविक एव मार्मिक ढग से चित्रित हुआ है कि किसी भी सवेदनशील पाठक का हृदय तरंगित एव स्पंदित हुए बिना नही रह सकता।

सन १९५६ मे जब आचार्य तुलसी दिल्ली पहुचे, तब उनके प्रवचन को सुनकर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अपनी अनुभूति को शब्दो का जामा पहनाते हुए कहा—"आचार्य तुलसी का प्रवचन सुनकर मेरे हृदय मे श्रद्धा का स्रोत बह चला। उनके प्रवचन मे मुझे द्रष्टा की वाणी सुनाई दी। जो केवल पढ लेता है, वह ऐसा भाषण नही कर सकता। अनुभूति से ही ऐसा बोला जा सकता है। साधारण व्यक्ति आखो देखी बात कहता है, इसलिए उसकी वाणी का कोई महत्त्व नही होता। अनुभूत वाणी मे वेग होता है, उसका असर भी होता है। अनुभव तपस्या का फल है। आचार्यश्री का जीवन तपस्वी का जीवन है।"

शरच्चद्र कहते थे—"सबसे जीवत और उत्प्रेरक रचना वही है, जिसे पढने से लगे कि ग्रन्थकार अपने अन्दर की उर्वरा से सब कुछ बाहर फूल की भाति खिला रहा हो"—यह उक्ति आचार्य तुलसी के साहित्य की सफल कसौटी कही जा सकती है।

आचार्य तुलसी की पुस्तको का सबसे बडा वैशिष्ट्य यह है कि वे बृहत्तर मानव समाज की चेतना को झकृत करके उनमे सास्कृतिक मूल्यो को सप्रेषित करने मे शत-प्रतिशत सफल हुए है। इसके अतिरिक्त विचारो की नवीनता के बिना कोई भी कृति अपनी अहमियत स्थापित नही कर सकती। आचार्य तुलसी ने लगभग सभी विषयो पर अपना मौलिक चितन प्रस्तुत किया है अतः उनके द्वारा लिखित पुस्तको के अक्षरो के भीतर जो तथ्य उद्गीर्ण हुए है, उसे काल की अनेक परते भी आवृत या धूमिल नही कर सकती।

महर्षि अरविंद मानते थे—"किसी भी सद्ग्रथ की पहचान दो बातो

से होती है—प्रथम उसमे सामयिक, नश्वर, देशविशेष और कालविशेष से सवध रखने वाली बातो का उल्लेख हो तथा दूसरी शाश्वत, अविनश्वर सब कालो तथा सब देशों के लिए समान रूप से उपयोगी और व्यवहार्य हो।"[1] आचार्य तुलसी ने शाश्वत एव सामयिक का समायोजन इतनी कुशलता से किया है कि उसकी दूसरी मिशाल मिलना मुश्किल है।

बेकन की प्रसिद्ध उक्ति है—"कुछ पुस्तकें चखने की होती हैं, कुछ निगलने की तथा कुछ चवाने एव पचा जाने की।" आचार्य तुलसी की प्रत्येक पुस्तक चखने योग्य, निगलने योग्य तथा चबाकर पचाने योग्य है"—ऐसा कथन अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा।

यहा हम उनकी गद्य साहित्य की कृतियो का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे पाठक उनके साहित्य का विहगावलोकन और रसास्वादन कर सके।

पुस्तक-परिचय मे हमने सलक्ष्य सभी पुस्तको का परिचय दिया है चाहे वे पुनर्मुद्रण मे नाम-परिवर्तन के साथ प्रकाशित हुई हो। यदि पुनर्मुद्रण में पुस्तक का नाम परिवर्तित हुआ है तो उसका हमने उल्लेख कर दिया है, जिससे पाठको को भ्राति न हो। किन्तु अणुव्रत की आचार-संहिता से सम्बन्धित अनेक पुस्तके अनेक नामो से प्रकाशित हुई हैं। जैसे—'अणुव्रत आचार-सहिता', 'अणुव्रत : नैतिक विकास की आचार-सहिता', 'अणुव्रत आदोलन', 'अणुव्रत', 'अणुव्रत आदोलन . एक दृष्टि' आदि पर हमने केवल अणुव्रत आदोलन का ही परिचय दिया है।

पुस्तको के साथ कुछ विशेष सदेशो की पुस्तिकाओ का परिचय भी हमने इसमे समाविष्ट कर दिया है। 'अशांत विश्व को शाति का सदेश' आदि कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण संदेश है, जिनका अग्रेजी एवं संस्कृत मे भी रूपान्तरण मिलता है।

अणुव्रत आंदोलन

अणुव्रत एक ऐसी मानवीय आचार-संहिता है, जिसका किसी उपासना या धर्म विशेष के साथ संवंध न होकर सत्य, अहिंसा आदि मूल्यो से है। "अणुबम एक क्षण मे करोड़ो का नुकसान कर सकता है तो अणुव्रत करोडों का उद्धार कर सकता है"—आचार्य तुलसी की यह उक्ति अणुव्रत आंदोलन के महत्त्व को उजागर कर रही है। इस आंदोलन ने भारत की नैतिक-चेतना को प्रभावित कर आध्यात्मिक, सास्कृतिक एव राष्ट्रीय मूल्यो की सुरक्षा करने का प्रयत्न किया है।

'अणुव्रत आदोलन' पुस्तिका मे अणुव्रत की आचार-संहिता एवं उसके मौलिक आधार की चर्चा की गयी है। सामान्य रूप से अणुव्रत

१ गीता प्रवन्ध, भाग. १ पृ. ३।

की पृष्ठभूमि को समझने मे यह पुस्तिका सफल मार्गदर्शन करती है।

अणुव्रत के आलोक मे

"अणुव्रत ने अब तक क्या किया ? कितना किया ? और कैसे किया ? इसका पूरा लेखा-जोखा एकत्रित करना दु.संभव है। किंतु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मानवीय मूल्यो के संदर्भ मे वैचारिक क्राति की दृष्टि से भारत के धरातल पर यह एक प्रथम उपक्रम है। अणुव्रत भारत की जनता के लिए सजीवनी का कार्य करने वाला है, इस तथ्य से आज किसी को सहमति हो या न हो, पर कोई इतिहासकार जब नव भारत का इतिहास लिखेगा, तब अणुव्रत का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा।" लगभग ५० साल पूर्व अभिव्यक्त आचार्य तुलसी का यह आत्मविश्वास इसके उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है। अणुव्रत ने देश के अनैतिक वातावरण के विरोध मे सशक्त आवाज उठाई है।

अणुव्रत दर्शन को स्पष्ट करने के लिए प्रचुर साहित्य का निर्माण हुआ। उसमे "अणुव्रत के आलोक मे" पुस्तक का अपना विशिष्ट स्थान है। आलोच्य कृति मे नैतिकता का सर्वागीण विश्लेषण हुआ है। यह विश्लेषण सैद्धातिक ही नही, व्यवहारिक भी है। इसमे यह भी प्रतिपादित है कि नैतिकता देश, काल, परिवेश, वर्ग एव संप्रदाय से परिछिन्न नही, अपितु सार्वभौमिक एव सार्वकालिक है।

इसमे विषयो का स्पष्टीकरण वार्ताओ के रूप मे हुआ है। साध्वी-प्रमुखा श्री कनकप्रभाजी की जिज्ञासाए इतनी सामयिक और सटीक हैं कि हर पाठक यह अनुभव करता है मानो उसकी भीतरी समस्या को ही यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत कृति अणुव्रत की राजनैतिक, आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक महत्ता को तो स्पष्ट करती ही है साथ ही इनसे सम्बन्धित समस्याओ का समाधान भी करती है। लगभग ५१ वार्ताओ को अपने भीतर समेटे हुए यह पुस्तक अणुव्रत की आचार-सहिता एव उसके इतिहास का विस्तृत एवं वैज्ञानिक विश्लेपण प्रस्तुत करती है, साथ ही समाज की विविध विसगतियो की ओर अंगुलिनिर्देश करके उसे दूर करने की प्रेरणा भी देती है।

भारत के आध्यात्मिक एव सास्कृतिक मूल्यो को नए स्वरूप एव नए परिवेश मे प्रस्तुत करने वाली यह कृति आज की भटकती युवापीढी को नयी दिशा दे सकेगी, ऐसा विश्वास है।

अणुव्रत के संदर्भ मे

अणुव्रत एक साधना है, मानवीय आचार सहिता है पर आचार्य तुलसी

ने उसे युगबोध के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह दिग्भ्रांत मानस के लिए पुष्ट आलम्बन बन सकता है। 'अणुव्रत के संदर्भ में' पुस्तक अणुव्रत के विविध पक्षो पर प्रश्नोत्तर शैली मे प्रकाश डालती है। इसमे राष्ट्र, धर्म, नैतिकता और विज्ञान सम्बन्धी अनेक जिज्ञासाओ का अणुव्रत के परिप्रेक्ष्य मे उत्तर दिया गया है तथा प्राचीन एवं अर्वाचीन, राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय अनेक समस्याओ पर अणुव्रत-दर्शन का समाधान प्रस्तुत है। अणुव्रत दर्शन को जन-भोग्य बनाने का यह सार्थक प्रयत्न है। आज नैतिक मूल्यो मे जो गिरावट आ रही है, उसे रोकने एवं जीवन-मूल्यो के प्रति आस्था जगाने मे इस प्रकार का साहित्य अपनी अहंभूमिका रखता है।

यह पुस्तक अपने अगले सस्करण मे कुछ संशोधन एव परिवर्धन के साथ 'अणुव्रत : गति प्रगति' शीर्षक से प्रकाशित है।

अणुव्रत : गति-प्रगति

किसी भी वैचारिक क्राति को व्यापक बनाने में साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर अणुव्रत से सम्बन्धित आचार्य तुलसी की अनेक पुस्तके प्रकाश मे आई है। 'अणुव्रत : गति-प्रगति' मे 'अणुव्रत' पाक्षिक पत्र मे स्थायी स्तम्भ "अणुव्रत के सदर्भ मे" आयी वार्ताए तथा अन्य भी कुछ महत्त्वपूर्ण लेखो का संकलन है।

इस पुस्तक मे नैतिकता के विविध रूपो की बहुत सुन्दर व्याख्या की गई है। कुछ लेखो में अणुव्रत आदोलन का इतिहास एवं आचार-संहिता तथा कुछ वार्ताओ मे सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक क्षेत्र मे उत्पन्न समस्याओ का अणुव्रत द्वारा सटीक समाधान की चर्चा की गई है। 'अणुव्रत ग्राम' की सुन्दर परिकल्पना भी इसमे सन्निहित है। इसके अतिरिक्त प्रश्नोत्तरो के माध्यम से आदोलन के अनेक वैचारिक एव व्यावहारिक पक्ष भी आधुनिक शैली मे इस पुस्तक मे गुम्फित है। 'समाज व्यवस्था और अहिंसा' आदि कुछ वार्ताएं अहिंसा विषयक नवीन एव मौलिक अवधारणाओ की अवगति देती है।

इसमे कुल ६१ लेख है, जिनमे १९ प्रवचन तथा ४२ वार्ताएं है। इस पुस्तक के प्रश्न जितने सटीक, आधुनिक और मौलिक है, उत्तर भी उतने ही सजीव, क्रातिकारी और मौलिकता लिए हुए है। पूरी पुस्तक का मुख्य विषय अणुव्रत और नैतिकता है। अणुव्रत प्रेमी एव अध्यात्मजिज्ञासुओ के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।

अणुव्रती क्यो बनें ?

आज के अनैतिक एव भ्रष्ट वातावरण मे अणुव्रत सजीवनी बूटी है। अणुव्रत के माध्यम से आचार्य तुलसी ने हर धर्म के व्यक्तियो को सही मानव वर्तन की प्रेरणा दी है तथा जीर्ण-शीर्ण मानवता का पुनरुद्धार करने का प्रयत्न

किया है। इस पुस्तिका मे अणुव्रत-अधिवेशन पर दिए गए एक महत्त्वपूर्ण प्रवचन का सकलन है।

समीक्ष्य आलेख सयम एव सादगी की पृष्ठभूमि पर आधारित अणुव्रत आदोलन की महत्ता स्पष्ट करता है।

अणुव्रती संघ

"जो देश, काल की सीमा को लाघकर जीवन के शाश्वत मूल्यो का उद्घाटन करती है, वह श्रेष्ठ पुस्तक है"—'अणुव्रती सघ' पुस्तिका इसका एक उदाहरण है। इस कृति मे 'अणुव्रत आदोलन', जो अपने प्रारम्भिक काल मे 'अणुव्रती सघ' के रूप में प्रसिद्ध था, उसके विधान एव नियमावलियो की जानकारी दी गयी है। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद के अणुव्रत के वारे मे विचार अकित है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"अणुव्रती सघ की स्थापना करके और उसके काम को वढाने के लिए अपना समय लगाकर आचार्यजी देश के लिए कल्याणकारी काम कर रहे है। ·· "यह संतोष की बात है कि आचार्यजी काल और देश की परिस्थिति को हमेशा सामने रखकर कार्यक्रम निर्धारित करते है और जो भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोग हैं, उनकी भिन्न-भिन्न समस्याए होती है, उन सवमे घुसकर भिन्न-भिन्न रीति से सगठित रूप से सदाचार और चरित्र को प्रोत्साहन देने का काम कर रहे है।"

इसमें अणुव्रती संघ के ८३ नियमो का उल्लेख है, जिनका समाहार आज ११ नियमो मे हो गया है। अणुव्रत के नियमो की ऐतिहासिक जानकारी देने मे इस पुस्तक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्त मे "अणुव्रत और अणुव्रती सघ" नामक एक लेख भी प्रकाशित हैं। यह लेख 'अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिपद् के सतरहवे अधिवेशन के 'जैनदर्शन एवं प्राकृत विभाग' मे प्रेषित किया गया था। इस महत्त्वपूर्ण लेख मे अणुव्रती संघ की स्थापना का उद्देश्य तथा उसकी महत्ता का सर्वागीण विवेचन है।

मैत्री, सयम, समन्वय और त्याग पर आधारित अणुव्रत आदोलन की संक्षिप्त जानकारी देने मे इस पुस्तक का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अतीत का अनावरण

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक आचार्य तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी की संयुक्त कृति है। इसमे आगम एव उपनिषदो के आधार पर २५ शोधपूर्ण निवंधो का सकलन है। आलोच्य ग्रंथ मे इतिहास एव भूगोल से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण एव खोजपूर्ण लेखो का समाहार है। श्रमण संस्कृति की ऐतिहासिकता एव महावीर के वश के वारे मे अनेक नयी

स्थापनाओ का प्रस्तुतीकरण इस ग्रन्थ में हुआ है। इस पुस्तक में अनेक सदर्भ ग्रन्थो का भी उपयोग हुआ है। अतः शोध विद्यार्थियो के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

अतीत का विसर्जन : अनागत का स्वागत

तनावमुक्त, सार्थक एव सफल जीवन का सूत्र है—अतीत की स्मृति एव भविष्य की कल्पना से मुक्त होकर वर्तमान मे जीना। आचार्य तुलसी ने इस सूत्र को प्रायोगिक रूप मे अपने जीवन मे उतारा है। इस सूत्र को जनता तक पहुचाने के विशेष उद्देश्य से लिखे गये निबंधो का संकलन है—'अतीत का विसर्जन · अनागत का स्वागत'। इस पुस्तक मे एक ओर युवापीढी को जैन दर्शन व सस्कृति से परिचित कराया गया है तो दूसरी ओर अहिंसा के विविध रूपो को भी मौलिक सोच के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को जहां रचनात्मक दिशा मे अग्रसर होने की प्रेरणा है तो वहा समाज एवं राष्ट्र की चेतना को झकझोरने का सफल एव सार्थक प्रयत्न भी है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भिक लेख भगवान् महावीर एवं अणुव्रत आदोलन की जानकारी देते है तथा शेप लेखों मे अनेक सामयिक विषयो पर ऊहापोह किया गया है। 'समस्या के बीज : हिसा की मिट्टी' तथा 'लोकतंत्र और अहिसा' जैसे कुछ लेख अहिंसक विश्व व्यवस्था का आधार प्रस्तुत करते है एव युद्ध, हिंसा तथा आणविक नरसहार से समूची दुनिया को बचाने के लिए एक नयी सोच तथा नया दिशादर्शन देते है।

प्रस्तुत पुस्तक के ४२ लेखो मे युगबोध एवं नैतिक अवधारणाओ को युगीन संदर्भ में अभिव्यक्ति दी गयी है। इसी कारण सोच एवं व्यवहार को संस्कारो एव आदर्श मूल्यो से अनुप्राणित करने मे यह पुस्तक अच्छी भूमिका अदा करती है। हर वर्ग के पाठक को नयी सामग्री परोसने वाली यह कृति वैचारिक क्राति घटित करने मे सक्षम है।

अनैतिकता की धूप : अणुव्रत की छतरी

नैतिक आंदोलनो मे अणुव्रत का अपना महत्त्वपूर्ण एव सर्वोपरि स्थान है। इस आंदोलन ने व्यक्ति-चेतना और समूह-चेतना को समान रूप से प्रभावित किया है। इसे जनता तक पहुंचाने तथा नैतिक-मूल्यो का अवबोध कराने के लिए प्रश्नोत्तरो एव निबधो का एक संकलन 'अनैतिकता की धूप : अणुव्रत की छतरी' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक मे प्राच्य एवं पाश्चात्य आचारशास्त्र विषयक चितन की धाराओ मे कितना भेद और अभेद है, उसका सूक्ष्म विश्लेषण तथा दोनो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक आचारशास्त्र और नीतिशास्त्र का तुलनात्मक

अध्ययन प्रस्तुत करती है। समीक्ष्य ग्रन्थ मे प्राय: प्रश्न पाश्चात्य दर्शन से प्रभावित हैं पर आचार्य तुलसी ने उनमे भारतीय दर्शन के अनुसार सामञ्जस्य बिठाने का प्रयत्न किया है तथा कही-कही उन विचारो के प्रति विरोध भी प्रकट किया है। फिर भी सम्पूर्ण पुस्तक मे उत्तर देते हुए लेखक ने अनैकान्तिक दृष्टि को नही छोडा है। सामान्यत: आचार्य तुलसी सहज, सुबोध एव सरल शैली मे बोलते अथवा लिखते है पर इस पुस्तक में नैतिकता, आचारशास्त्र, पाश्चात्य-दर्शन तथा अणुव्रत के विविध पक्षो का अत्यन्त गूढ़ एव गंभीर विवेचन हुआ है। नैतिकता की नई व्याख्या एव परिकल्पना जिस रूप से इस पुस्तक मे उकेरी गई है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रारम्भिक ४२ लेखो मे प्रश्नोत्तरो के माध्यम से भारतीय एव पाश्चात्य आचार-विज्ञान का विश्लेषण है तथा द्वितीय खण्ड 'जीवन मूल्यो की तलाश' मे २४ निबधो के माध्यम से अणुव्रत एव उससे सम्बन्धित नैतिक मूल्यो का विवेचन है। इस प्रकार अणुव्रत-दर्शन को तुलनात्मक रूप से गंभीर एव प्राञ्जल भापा मे प्रस्तुत करने का सफल एव स्तुत्य प्रयास यहा हुआ है।

अमृत-संदेश

आचार्य तुलसी के आचार्यकाल के ५० वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में समाज ने अमृत महोत्सव की आयोजना कर उनका अभिनंदन किया क्योकि आचार्य तुलसी ने स्वय विष पीकर भी देश, समाज और राष्ट्र को अमृत ही बाटा है।

आलोच्य कृति का प्रारम्भ अमृत-सदेश से होता है, जो लेखक ने अपने जन्मदिन पर सम्पूर्ण देश की जनता के नाम दिया था। पुस्तक मे अमृत वर्ष के अवसर पर दिए गए विशेष पाथेय, दिशाबोध एव सदेश समाविष्ट है। इन विशिष्ट आलेखो मे मानवीय मूल्यो को उजागर करने के साथ-साथ साप्रदायिकता, कट्टरता एव जातिवाद की जडो को भी काटने का सफल उपक्रम हुआ है।

'एक मर्मान्तक पीडा : दहेज' 'व्यवसाय जगत् की बीमारी · मिलावट' आदि लेखो मे रचनात्मक एव सृजनात्मक वातावरण निर्मित करने का सफल अभियान छेडा गया है। 'समाधान का मार्ग हिंसा नही' आलेख मे लेखक ने लोगोवालजी से मिलन के प्रसग को अभिव्यक्ति दी है। मजहब के नाम पर विकृत साहित्य लिखने वालो के सामने यह कृति एक नया आदर्श प्रस्तुत करती है तथा समाज मे व्याप्त विकृतियो को धू-धूकर जलाने की शक्ति रखती है। विश्व के क्षितिज पर मानवधर्म के रूप मे अणुव्रत आदोलन का प्रतिष्ठापन करके आचार्य तुलसी ने अध्यात्म का नया सूर्य उगाया है। अणुव्रत आंदोलन के विविध रूपो को स्पष्ट करने हेतु दिए गए दिशाबोधो का

महत्त्वपूर्ण संकलन इस पुस्तक मे है। इन लेखो मे भारतीय मानसिकता मे व्याप्त विभिन्न कुरीतियों, विकृतियों एव विसंगतियो पर भी प्रभावी ढंग से प्रहार किया गया है।

३६ आलेखो मे लेखक ने सामयिक एव शाश्वत सत्यों के समन्वय का सुन्दर एव सार्थक प्रयास किया है। यह कृति लोगो को पुरुषार्थी बनकर शक्तिशाली बनने का आह्वान करती है। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं वैचारिक खुराक की दृष्टि से साहित्य-जगत् मे यह कृति अपना विशिष्ट स्थान रखती है तथा समस्या के तमस् को समाधान के आलोक मे बदलने का सामर्थ्य रखती है। अगले संस्करण मे इसके प्राय: लेख 'सफर : आधी शताब्दी का' पुस्तक मे समाविष्ट कर दिए गए हे।

अर्हत् वंदना

महावीर के प्रत्येक शब्द में वह शक्ति है, जो सोए मानस को जगा सके, घोर तिमिर मे आलोक प्रदान कर सके तथा लड़खड़ाते कदमों को अस्खलित गति दे सके। आचार्य तुलसी महावीर की परम्परा के कीर्तिधर एव यशस्वी पट्टधर है। उन्होने अनेक माध्यमो से महावीर-वाणी को दिग-दिगन्तों तक फैलाने का कार्य किया है। उसी का एक लघु एव सशक्त उपक्रम है—'अर्हत् वंदना'।

प्राय. सभी धर्म-सम्प्रदायो में प्रार्थना का महत्त्व स्वीकृत हे। इस युग के महापुरुष महात्मा गाधी कहते थे—"प्रार्थना के बिना मै कब का पागल हो गया होता। मैं कोई काम बिना प्रार्थना नही करता। मेरी आत्मा के लिए प्रार्थना उतनी ही अनिवार्य है, जितना शरीर के लिए भोजन"—ये पंक्तियां प्रार्थना के महत्त्व को स्पष्ट उजागर कर रही है। आचार्य तुलसी ने जैन दर्शन के आत्मकर्तृत्व के सिद्धात के अनुरूप प्रार्थना शब्द को स्वीकृत नही किया क्योकि उसमे याचना का भाव होता है। अत. इसका नाम दिया—'अर्हत् वदना'। अर्हत् अनन्त शक्तिसम्पन्न आत्मा का वाचक शब्द है। उनके प्रति वंदना या श्रद्धा की अभिव्यक्ति व्यक्ति के भीतर भी शक्ति जगाने मे निमित्त बन सकती है। आचार्य तुलसी कहते है—"व्यक्तित्व के निर्माण एव रूपातरण मे इसकी शक्ति अमोघ है। शक्ति से शक्ति का जागरण, यही है अर्हत् वंदना की एक मात्र प्रेरणा।"

अर्हत् वंदना आचार्य तुलसी की स्वोपज्ञ कृति नही है। महावीर-वाणी का संकलन है, पर आज लाखो-लाखों कंठ प्रतिदिन इसका सगान कर आध्यात्मिक संबल प्राप्त करते है। यह अपने आपको देखने तथा शाति प्राप्त करने का सशक्त उपक्रम है। इसका प्रत्येक पद व्यक्ति को झंकृत करता है तथा मानसिक एवं भावनात्मक पोषण देता है।

अर्हत् वदना पुस्तक की महत्ता इसलिए बढ़ गयी है कि इसका

सरल हिंदी एवं अंग्रेजी अनुवाद कर दिया गया है। साथ ही आचार्यश्री ने सब सूक्तो एव पदो की इतनी सरस एव सरल व्याख्या प्रस्तुत कर दी है कि सामान्य व्यक्ति भी उनका हार्द समझ कर उसमे तन्मय हो सकता है।

लघु होते हुए भी यह कृति अध्यात्मरसिक लोगो को अध्यात्म के नए रहस्यों का उद्‌घाटन कर उन्हें आत्मदर्शन की प्रेरणा देती रहेगी।

अशांत विश्व को शांति का संदेश

यह सदेश २९.६ ४५ को सरदारशहर से लदन मे आयोजित 'विश्व धर्म सम्मेलन' के अवसर पर प्रेपित किया गया था। इस ऐतिहासिक सदेश मे आज की विषम स्थिति का चित्रण करते हुए प्राचीन एव अर्वाचीन युद्ध के कारणो पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही शाति की व्याख्या और उसकी प्राप्ति के उपायो का विवेचन भी बहुत मार्मिक शैली मे हुआ है। अत मे विश्वशाति के सार्वभौम १३ उपायो की चर्चा है। इस कृति मे करुणा, शाति, सवेदना एव अहिंसा की सजीव प्रस्तुति हुई है।

आचार्य तुलसी के इस प्रेरक और हृदयस्पर्शी लेख को पढकर महात्मा गाधी ने अपनी टिप्पणी व्यक्त करते हुए कहा—"क्या ही अच्छा होता, जव सारी दुनिया इस महापुरुप के बताए हुए मार्ग पर चलती।"

यह सदेश निश्चित रूप से अशाति से पीडित मानव को शाति की राह दिखा सकता है तथा अणुअस्त्रो की विभीषिका से त्रस्त मानवता को त्राण दे सकता है।

अहिंसा और विश्वशांति

हिंसा और अहिसा का द्वन्द्व सनातन है। आदमी हिंसा के दुष्परिणामो से परिचित होते हुए भी हिंसा के नए-नए आविष्कारो/उपक्रमो की ओर अभिमुख होता जा रहा है, यह बहुत वडा विपर्यास है। आचार्य तुलसी ने 'अहिसा और विश्वशाति' पुस्तिका मे अहिंसा के वैज्ञानिक स्वरूप को प्रकट किया है तथा शाति प्राप्त करने के उपक्रमो को व्याख्यायित किया है। जो व्यक्ति अहिसा को कायरो का अस्त्र मानते है, उनकी भ्राति का निराकरण करते हुए वे कहते है—"कायरता अहिसा का अचल तक नही छू सकती। सोने के थाल विना भला सिंहनी का दूध कव और कहा रह सकता है? अहिंसा का वास वीर हृदय को छोड़कर और कही नही होता। वीर वह नही होता, जो मारे, वीर वह है, जो मर सके पर न मारे"। अहिंसक ही सच्चा वीर होता है, वह स्वयं मरकर दूसरे की वृत्ति को वदल देता है।"

अहिंसा के अमृत का रसास्वादन वही कर सकता है, जो उसके परिणाम को जानता है। लेखक की दृष्टि मे सद्‌भावना, मैत्री, निष्कपटवृत्ति, हृदय की स्वच्छता--ये सब अहिंसा देवी के अमर वरदान है। इस पुस्तिका

में अहिंसा के प्रभाव को नए संदर्भ मे प्रस्तुत करते हुए लेखक का कहना है—
"दूसरे की सम्पत्ति, ऐश्वर्य और सत्ता को देखकर मुंह में पानी नही भर आता, यह अहिंसा का ही प्रभाव है।"

सम्पूर्ण लेख मे अहिंसा को नए परिवेश के साथ प्रस्तुत किया गया है। आज के हिंसा-संकुल वातावरण मे यह लेख अहिंसा की सशक्त भूमिका तैयार करने मे अपनी अहम् भूमिका रखता है।

आगे की सुधि लेइ

प्रवचन-साहित्य जन-साधारण को नैतिकता की ओर प्रेरित करने का सफल उपक्रम है। 'आगे की सुधि लेइ' प्रवचन पाथेय ग्रन्थमाला का तेरहवां पुष्प है। यह १९६६ मे गंगाशहर (राज०) मे प्रदत्त आचार्य तुलसी के प्रवचनो का संकलन है। प्रवचनकार श्रोता, समय एवं परिस्थिति को देखकर अपनी बात कहते हैं, अत. उसमें विषय-वैविध्य और पुनरुक्ति होना स्वाभाविक है। पर प्रवचनकार आचार्य तुलसी का मानना है कि भिन्न-भिन्न दृष्टियो से प्रतिपादित एक ही बात अपनी उपयोगिता के आगे प्रश्नचिह्न नही लगने देती।

इन प्रवचनो मे जागरण का संदेश है, आत्मोत्थान की प्रेरणा है तथा व्यक्ति से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उभरने वाली समस्याओ का समाधान भी गुफित है। प्रवचन-साहित्य की कडी में यह एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है, जो अज्ञान के अंधेरे मे भटकते मानव को सही मार्गदर्शन देने मे सक्षम है। पुस्तक के अंत मे तीन परिशिष्ट जोडे गए है, जिससे यह ग्रन्थ अधिक उपयोगी बन गया है।

आज से २७ वर्ष पूर्व के ये ५४ प्रवचन अपनी उपयोगिता के कारण आज भी ताजापन लिए हुए है।

आचार्य तुलसी के अमर संदेश

प्रसिद्ध विद्वान् विद्याधर शास्त्री कहते हैं—"आचार्य तुलसी के अमर सदेश पुस्तक विश्व दर्शन की उच्चतम पुस्तक है।" यह सर्वोदय ज्ञानमाला का चौथा पुष्प है। इसमे चारित्रिक बल को जागृत कर आध्यात्मिक शक्ति को बढाने की चर्चा है। प्रस्तुत पुस्तक मे विशिष्ट अवसरो पर दिए प्रवचनो एव महत्त्वपूर्ण आयोजनो मे प्रेपित सदेशों का संकलन है। जैसे—लंदन में आयोजित 'विश्व-धर्म सम्मेलन' के अवसर पर भेजा गया महत्त्वपूर्ण लेख—'अशात विश्व को शांति का सदेश' आदि।

राजनीति और धर्म के अनेक अनछुए एवं महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर प्रस्तुत पुस्तक नए विचारो की प्रस्तुति देती है साथ ही अन्तश्चेतना को झकझोरने में भी पर्याप्त सहायक बनती है। ये प्रवचन पुराने होते हुए भी

वर्तमान के सदर्भ मे उतने ही सामयिक, उपयोगी, सार्थक एव प्रासगिक प्रतीत होते है। इनकी उपजीव्यता आज भी उतनी ही है, जितनी पहले थी। अहिंसा और स्वतत्रता को जिस मौलिक चिंतन के साथ इस पुस्तक मे प्रस्तुत किया गया है, वह पठनीय है।

ये लघु आलेख व्यक्ति, समाज एव देश के आसपास घूमती समस्याओ को हमारे सामने रखते हैं, साथ ही सटीक समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।

आत्मनिर्माण के इकतीस सूत्र

सन् १९४८ का चातुर्मास गुलाबी नगरी जयपुर मे हुआ। चातुर्मास के दौरान भाद्रव शुक्ला नवमी से पूर्णिमा तक सात दिन के लिए आत्म-निर्माण सप्ताह का आयोजन किया गया। उस सप्ताह के अन्तर्गत आचार्य तुलसी द्वारा उद्‌बोधित ज्ञान-कणो का संकलन इस पुस्तिका मे किया गया है। इसमे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह का आशिक पालन करने के नियमो का उल्लेख है। एक गृहस्थ अपने जीवन मे अहिंसा आदि का पालन किस प्रकार कर सकता है, इसका सुदर दिशादर्शन इस पुस्तिका मे मिलता है।

आकार मे लघु होते हुए भी यह पुस्तक मानवीय आचार-सहिता को प्रस्तुत करने वाली है। ये ३१ सूत्र वैयक्तिक दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही, सामाजिक एव राष्ट्रीय स्तर को समुन्नत बनाने मे भी इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

आह्‌वान

आचार्य तुलसी का प्रत्येक वाक्य प्रेरक और मर्मस्पर्शी होता है, पर उनके कुछ विशेष उद्‌बोधन इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि काल का विक्षेप भी उन्हें धूमिल नही कर सकता। एक धर्माचार्य होते हुए भी आचार्य तुलसी समाज के बदलते परिवेश के प्रति जागरूक है। ऐसा इसलिए सभव है क्योकि उनके पास जीवन की मार्मिकता को समझने एव व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता एवं सूक्ष्म दृष्टि है।

'आह्वान' पुस्तिका मे बगड़ी मर्यादा महोत्सव (१९९१) मे हुए एक विशेष वक्तव्य का सकलन है। इस ओजस्वी वक्तव्य ने प्रवचन-पडाल में बैठे हजारों व्यक्तियों की चेतना को झंकृत कर उन्हे कुछ सोचने के लिए मजबूर कर दिया। लोगो की माग थी कि यह प्रवचन जन-जन तक पहुचना चाहिए, जिससे अनुपस्थित लोग भी इससे प्रेरणा ले सके। इस प्रवचन का एक-एक वाक्य वेधक है। इसमे आचार्य श्री ने सामाजिक बुराइयो के प्रति समाज का ध्यान आकृष्ट किया है तथा युग को देखते हुए उन्हें रूपान्तरण की प्रेरणा भी दी है। इस प्रवचन को पढने से लगता है कि इसमे उनकी अथाह पीडा

व्यक्त हुई है, पर घुटन नही है। इसमे उनके हृदय की वेदना बोल रही है, पर निराशा नही है।

आचार्यश्री ने सफलता की अनेक सीढियो को पार किया है, पर सफलता के मद ने उनकी अग्रिम सफलता को प्राप्त करने वाले रास्ते को अवरुद्ध नही किया। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि वे अपनी असफलता को भी देखते रहते है। इस दृष्टि से लेख का निम्न अंश पठनीय है "धर्मसंघ की सफलता का व्याख्यान सिक्के का एक पहलू है। इसका दूसरा पहलू है— उन विन्दुओ को देखना, जहां हम असफल रहे है अथवा जिन बातो की ओर अब तक हमारा ध्यान नही गया है। इसके लिए हमारे पास एक ऐसी आंख होनी चाहिये, जो हमारी कमियो को, असफलताओ को देख सके और हमें अपने करणीय के प्रति सचेत कर सके।" 'संघ के एक-एक सदस्य का दायित्व है कि वह उस पृष्ठ को देखे, जो अब तक खाली है। जिन लोगो के पास चिन्तन, सूझबूझ और काम करने की क्षमता है, वे उस खाली पृष्ठ को भरने के लिए क्या करेंगे, यह भी तय करें।"

ऐश्वर्य के उच्च शिखर पर आरूढ़ प्रदर्शन एवं आडम्बरप्रिय व्यक्तियो को यह संदेश त्याग, संयम, सादगी एवं वलिदान का उपदेश देने वाला है।

उद्बोधन

अणुव्रत-आदोलन किसी सामयिक परिस्थिति से प्रभावित तात्कालिक क्रान्ति करने वाला आन्दोलन नही, अपितु शाश्वत दर्शन की पृष्ठभूमि पर टिका हुआ है। इस आदोलन के माध्यम से आचार्य तुलसी ने केवल विभिन्न वार्तमानिक समस्याओ को ही नही उठाया, वलिक सटीक समाधान भी प्रस्तुत किया है। सामयिक संदर्भो पर 'अणुव्रत' पत्रिका में प्रकाशित संक्षिप्त विचारो का संकलन ही 'उद्बोधन' है। इसमे नैतिकता के विषय में नए दृष्टिकोण से विचार किया गया है। अतः प्रस्तुत कृति व्यक्ति को प्रामाणिकता के सांचे में ढालने हेतु अनेक उदाहरणो, सुभाषितो एवं घटनाओ को माध्यम बनाकर विषय की सरस एव सरल प्रस्तुति करती है। यह पुस्तक साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता आदि विकृत मूल्यो को वदलकर समन्वय एवं समानता के मूल्यो की प्रस्थापना करने का भी सफल उपक्रम है।

इसमे अणुव्रत-दर्शन को अध्यात्म, संस्कृति, समाज और मनोविज्ञान के साथ जोड़ने का सार्थक प्रयत्न किया गया है। परिवर्धित रूप मे इसका नवीन सस्करण 'समता की आंख : चरित्र की पांख' के नाम से प्रकाशित है।

कुहासे में उगता सूरज

'कुहासे मे उगता सूरज' १०१ आलेखों का महत्वपूर्ण सकलन है। ये

विचार समय-समय पर साप्ताहिक बुलेटिन 'विज्ञप्ति' मे छपते रहे है। इस पुस्तक मे केवल धर्म और अध्यात्म की ही चर्चा नही है, अपितु दूरदर्शन, सोवियत्त महोत्सव, संयुक्तपरिवार, दक्षेससम्मेलन तथा पर्यावरण आदि अनेक सम-सामयिक विपयो पर मार्मिक एवं सटीक प्रस्तुति हुई है। ये आलेख लेखक के चौतरफी ज्ञान को तो प्रस्तुत करते ही हैं, साथ ही उनके समाधायक दृष्टिकोण को भी उजागर करने वाले है। इस कृति मे भौतिकवाद से उत्पन्न खतरे के प्रति समाज को सावधान किया गया है। पुस्तक मे समाविष्ट विपयो के बारे मे स्वय प्रश्नचिह्न उपस्थित करते हुए आचार्य तुलसी कहते है—"प्रश्न हो सकता है कि धर्माचार्यो को सामयिक प्रसंगो से क्यो जुडना चाहिए ? उनका तो काम होता है शाश्वत को उजागर करना।.... पर मेरा विश्वास है कि शाश्वत के साथ पूरी तरह अनुबधित रहने पर भी सामयिक की उपेक्षा नही की जा सकती। शाश्वत से वर्तमान को निकाला भी नही जा सकता। यदि धर्मगुरु के माध्यम से समाज को पथदर्शन न मिले, दिशाबोध न मिले, गतिशील रहने की प्रेरणा न मिले तो जागरण का संदेश कौन देगा ? जनता को जगाने का दायित्व कौन निभाएगा ?" इसी उद्देश्य से इस पुस्तक मे अनेक जागतिक समस्याओ के सदर्भ मे चिन्तन किया गया है। यह पुस्तक भौतिकता की चकाचौध मे अपनी मौलिक सस्कृति को भूलने वाली पीढी को एक नया दिशादर्शन देगी तथा असयम और हिंसा के कुहासे मे संयम और अहिंसा के तेज से युक्त नए सूरज को उगाने मे भी सहयोगी बन सकेगी।

इस पुस्तक मे चितन की मौलिकता, विवेचन की गभीरता, विश्लेषण की सूक्ष्मता एव शैली की प्रौढता सर्वत्र दृग्गोचर है। इसका प्रत्येक आलेख सक्षिप्त, सारगर्भित और अन्तःकरण को छूने वाला है। समाज एव देश के प्रत्येक क्षेत्र के अन्धकार की चर्चा कर आचार्यश्री ने भारतीय सस्कृति के अनुरूप अध्यात्म की लौ प्रज्वलित करने का प्रशस्य प्रयत्न किया है। अतः इस पुस्तक के शीर्षक को भी सार्थकता मिली है।

क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?

साहित्य ऐसा होना चाहिए, जिसके आकलन से दूरदर्शिता बढ़े, बुद्धि को तीव्रता प्राप्त हो, हृदय मे एक प्रकार की संजीवनी शक्ति की धारा बहने लगे, मनोवेग परिष्कृत हो जाए तथा आत्मगौरव की उद्भावना पराकाष्ठा तक पहुच जाए—महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा दी गई सत्साहित्य की कसौटी पर आचार्य तुलसी की कृति 'क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?' को परखा जा सकता है।

धर्म का सम्बन्ध प्राय परलोक से जोड़ दिया जाता है; जो केवल

श्रद्धालु व्यक्ति के लिए गम्य है। एक तार्किक और बौद्धिक व्यक्ति धर्म के इस रूप को स्वीकार करने में हिचकता है। आचार्य तुलसी ने अणुव्रत के माध्यम से धर्म को व्यवहार के साथ जोड़कर उसे बुद्धिगम्य बनाने का प्रयत्न किया है। पुस्तक के आत्म-वक्तव्य में वे इस बात की पुरजोर पुष्टि करते है—"जिस धर्म से इस जन्म में मोक्ष का अनुभव नही होगा, उस धर्म से भविष्य मे मोक्ष-प्राप्ति की कल्पना का क्या आधार हो सकता है?"

पुस्तक में ४१ आलेखो के माध्यम से धर्म का क्रान्तिकारी स्वरूप, अणुव्रत आंदोलन, जैन-सिद्धान्त तथा लोकतंत्र से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमे धर्म, संस्कृति एवं परम्परा के विषय मे एक नया दृष्टिकोण एवं नई सोच से विचार किया गया है तथा धर्म का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर नयी मान्यताओं को भी जन्म दिया गया है। इस पुस्तक के माध्यम से आचार्य तुलसी ने सभी धर्माचार्यों को पुनः एक बार धर्म के बारे मे सोचने के लिए बाध्य कर दिया है कि धर्म का शुद्ध स्वरूप क्या है? लेखक का स्पष्ट मन्तव्य है कि चरित्र की प्रतिष्ठा ही धर्म का सक्रिय स्वरूप है।

सम्प्रदाय को ही धर्म मानकर संघर्ष करने वालो को इसमें नया प्रतिबोध दिया गया है। यह पुस्तक निश्चय ही धर्मप्रेमी लोगो को धर्म के बौद्धिक और वैज्ञानिक स्वरूप का बोध कराने में सफल है। साथ ही धार्मिक जगत् के समक्ष एक ऐसा स्वप्न प्रस्तुत करती है, जिसको साकार करने मे मानव-समुदाय पुरुषार्थ और लगन से जुट जाए।

खोए सो पाए

वर्तमान युग की व्यस्त दिनचर्या मे आकार छोटा और निष्कर्ष बड़ा, ऐसे साहित्य की नितान्त आवश्यकता है। आचार्य तुलसी ने युगीन मानसिकता को समझा और 'खोए सो पाए' पुस्तक द्वारा इस अपेक्षा की पूर्ति की। इस पुस्तक मे नैतिकता एवं जीवन-मूल्यो की मार्मिक अभिव्यक्ति देने के साथ ही साधनापरक अनुभवों को भी नई भाषा दी गई है।

सहज ग्राह्य शैली मे लिखी गयी इस पुस्तक के ८० लेखो मे नैतिकता जीवन्त होकर मुखर हुई है, ऐसा प्रतीत होता है। साथ ही भारत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना को एक विशेष अभिव्यक्ति मिली है।

आचार्य तुलसी एक महान साधक है। उन्होंने अपने जीवन मे साधना के अनेक प्रयोग किए है। हिसार चातुर्मास १९६३ में उन्होने एकांतवास के साथ साधना के कुछ नए प्रयोग भी किए। उस अनुष्ठान के दौरान हुए अनेक अनुभवो को उन्होने अपनी डायरी मे लिखा। उसी डायरी के कुछ

पृष्ठ इस पुस्तक मे प्रतिबिम्बित है। प्रस्तुत कृति मे अनुभवो की इतनी सहज अभिव्यक्ति हुई है कि पाठक पढते ही उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है। पुस्तक के प्राय सभी शीर्षक साधनापरक है।

आचार्यश्री स्वय इस पुस्तक के प्रयोजन को अभिव्यक्ति देते हुए कहते है—'खोए सो पाए' को पढने वाला साधक अपने आपको पूर्ण रूप से खोना, विलीन करना सीख ले, यह उसके जीवन की सबसे बडी उपलब्धि हो सकती है।" सक्षेप मे प्रस्तुत कृति अपने घर को देखने, संवारने और निरन्तर उसमे रह सकने का सामर्थ्य भरती है।

गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का

भगवान् महावीर ने साधु-सस्था को जितना महत्त्व दिया, उतना ही महत्त्व गृहस्थवर्ग को भी दिया तथा उनके लिए धार्मिक आचार-सहिता भी प्रस्तुत की है। इस पुस्तक के प्रारम्भिक लेखो मे अहिंसा, सत्य आदि पांच व्रतो का विवेचन है, तत्पश्चात् धर्म और दर्शन के अनेक विषयो का सक्षेप मे विश्लेषण किया गया है। साधारणत तात्त्विक एव दार्शनिक साहित्य जन-सामान्य के लिए रुचिकर नही होता क्योकि इनका विपय जटिल और गम्भीर होता है लेकिन आचार्य तुलसी की तत्त्व-प्रतिपादन शैली इतनी सरस, सरल और रुचिकर है कि वह व्यक्ति को उबाती नही। इतने सक्षिप्त पाठो मे गम्भीर विषयो का प्रतिपादन लेखक की विशिष्ट शैली का निदर्शन है। जहा विषय विस्तृत लगा उसको उन्होने अनेक भागो मे बाट दिया है—जैसे—'श्रावक के विश्राम', 'श्रावक के मनोरथ' आदि।

आचार्य तुलसी अपने स्वकथ्य मे इस कृति के प्रतिपाद्य को सटीक एव रोचक भापा मे प्रस्तुत करते हुए कहते है—"कुछ लोगो की ऐसी धारणा है कि धर्माचरण और तत्त्वज्ञान करने का ठेका साधुओ का है। गृहस्थ अपनी गृहस्थी सभाले, इससे आगे उनको कोई अधिकार नही है। इस धारणा को तोडने के लिए तथा गृहस्थ समाज को इसकी उपयोगिता समझाने के लिए अब 'गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का' पुस्तक पाठको के हाथो मे पहुच रही है। जैन दर्शन के सैद्धातिक तत्त्वो की अवगति पाने के लिए, श्रावक की चर्या को विस्तार से जानने के लिए तथा बच्चो को धार्मिक सस्कार देने के लिए इसका उपयोग हो, यही इसके सकलन की सार्थकता है।"

इस कृति मे १११ लघु पाठो का समावेश है। प्रत्येक पाठ अपने आपमें पूर्ण है तथा 'गागर में सागर' भरने के समान प्रतीत होता है। जैनेतर पाठकों के लिए जैनधर्म एव उसके सिद्धातो को सरलता से जानने तथा कलात्मक जीवन जीने के सूत्रो का ज्ञान कराने हेतु यह पुस्तक बहुत उपयोगी

है । समग्रदृष्टि से प्रस्तुत कृति तत्त्वज्ञान एवं जीवन-विज्ञान का जुड़वा स्वाध्याय ग्रंथ है। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 'मुक्तिपथ' शीर्षक से प्रकाशित है ।

घर का रास्ता

'घर का रास्ता' प्रवचन पाथेय ग्रंथमाला की शृंखला मे सतरहवा पुष्प है । यह श्रीचन्दजी रामपुरिया द्वारा सपादित प्रवचन-डायरी भाग-३ में संकलित सन् ५७ के प्रवचनो का ही परिवर्धित एव परिष्कृत संस्करण है । ९८ प्रवचनों से युक्त इस नए सस्करण मे अनेको विषयो पर सशक्त एवं प्रभावी विचाराभिव्यक्ति हुई है । युग की अनेक समस्याओ पर गम्भीर चिन्तन एव प्रभावी समाधान है । साथ ही भारतीय सस्कृति के प्रमुख पहलुओं – धर्म, अध्यात्म, योग, सयम आदि की सुन्दर चर्चा है ।

नि सन्देह घर के रास्ते से बेखबर दर-दर भटकते मानव का पथ-दर्शन करने मे यह पुस्तक आलोक-दीप का कार्य करेगी और पथ-भटके मानव के लिए मार्गदर्शक बनकर उसके पथ मे आलोक बिखेरती रहेगी ।

इन प्रवचनो की भाषा सरल, सहज एव अन्त करण का स्पर्श करने वाली है । इसमे घटनाओ, रूपको एव कथाओ के माध्यम से शाश्वत घर तक पहुंचने के लिए कटीले पथ को साफ किया गया है । अध्यात्मचेता पाठक इस पुस्तक के माध्यम से नैतिक और आध्यात्मिक चेतना का विकास कर सकेगा, ऐसा विश्वास है ।

जन-जन से

आचार्य तुलसी ने अपने प्रवचनो में उन सब बातो का जीवन्त चित्रण किया है, जो उन्होंने अनुभव किया है, देखा एव सोचा-समझा है । 'जन-जन से' पुस्तक मे आचार्य तुलसी के १९ क्रांतिकारी युग-सन्देश समाविष्ट हैं । इन संदेशो मे समाज के विभिन्न वर्गो की त्रुटियो की ओर अगुलिनिर्देश है, साथ ही जीवन को प्रेरक और आदर्श बनाने के सूत्र भी समाविष्ट है ।

'सुधारवादी व्यक्तियो से' 'धर्मगुरुओ से' 'जातिवाद के समर्थको से' तथा 'विश्वशाति के प्रेमियो से' आदि ऐसे सन्देश हैं, जिनको पढकर ऐसा लगता है कि एक अत्यन्त तपा तथा मजा हुआ आत्मनिष्ठ और मनोबली योगी ही इस भाषा मे दूसरो को प्रेरणा दे सकता है ।

आकार मे लघु होते हुए भी इस पुस्तक की महत्ता इस बात मे है कि ये प्रवचन या सन्देश हर वर्ग के मर्म को छूने वाले तथा रूपातरण की प्रेरणा देने वाले है । सुधारवादी व्यक्तियो को इसमे कितने स्पष्ट शब्दों मे प्रेरणा दी गयी है—"जिस बात पर स्वयं अमल नही कर सके, जिसे अपने

व्यावहारिक जीवन मे स्थान नही दे सके, उसका औरो के लिए प्रवचन करना, क्या विडम्बना या धोखा नही है ?"

पुस्तक नवसमाज के निर्माण मे उत्प्रेरक का कार्य करने वाली अमूल्य सन्देशवाहिका है ।

जब जागे, तभी सवेरा

योगक्षेम वर्ष आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व निर्मित करने का एक हिमालयी प्रयत्न था, जिसमे अन्तर्मुखता प्रकट करने तथा विधायक भावो को जगाने के अनेक प्रयोग किए गए। समीक्ष्य वर्ष मे प्रज्ञा-जागरण के अनेक उपक्रमो मे एक महत्त्वपूर्ण उपक्रम था—प्रवचन । 'जब जागे, तभी सवेरा' योगक्षेम वर्ष मे हुए प्रवचनो का द्वितीय सकलन है। इसमे मुख्यत: 'उत्तराध्ययन सूत्र' पर हुए ५१ प्रवचनो का समावेश है, साथ ही तेरापथ, प्रेक्षाध्यान तथा कुछ तुलनात्मक विषयो पर विशिष्ट सामग्री भी इस कृति मे देखी जा सकती है। आज के प्रमादी, आलसी और दिशाहीन मानव के लिए यह पुस्तक पथ-दर्शक का काम करती है। व्यक्तित्व-निर्माण के साथ-साथ जीवन को समग्रता से कैसे जिया जाए, इसका समाधान भी इस ग्रन्थ मे है।

'शिक्षा के क्षेत्र मे बढता प्रदूषण' आदि कुछ लेख आज की शिक्षा-प्रणाली पर करारा व्यग्य करते है। निष्कर्षत. यह अपनी सस्कृति एव सभ्यता से जुडी एक जीवन्त रचना है। लेखक ने हजारो किलोमीटर की पदयात्रा करके इस देश की स्थितियो को बहुत नजदीकी से देखा है और उनको समाधान की रोशनी भी दी है।

इन लेखो/प्रवचनो मे प्रवचनकार ने अनेक संस्कृत श्लोको, हिन्दी के दोहो तथा सोरठो आदि का भी भरपूर उपयोग किया है तथा प्रतिपाद्य को स्पष्ट करने हेतु अनेक रोचक कथाओ तथा सस्मरणो का समावेश भी इस ग्रन्थ मे किया गया है। कहा जा सकता है कि भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित तथ्यो को आज के साचे मे ढालने का सार्थक प्रयत्न इन आलेखो मे किया गया है ।

जागो ! निद्रा त्यागो !!

मानव जीवन को सूक्ष्मता से देखने, समझने और नया बल देने की परिष्कृत दृष्टि आचार्य तुलसी के पास है। यही कारण है कि उनके प्रवचन-साहित्य मे सामाजिक, नैतिक एव मानवीय पहलुओ के साथ गंभीर दार्शनिक चितन के स्वर भी है। प्रस्तुत पुस्तक ऐसे ही ५८ प्रवचनों का संकलन है।

जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह पाठक को जागरण का सदेश देती है। इसमे विविध भावो का समाहार है। आचार, सस्कार, राष्ट्रीय-भावना, साधना, शिक्षा तथा धर्म आदि विषयो से युक्त यह पुस्तक पाठक

की दृष्टि को विशाल एव ज्ञानयुक्त बनाने मे सक्षम है। जीवन और मृत्यु इन दोनो को कलात्मक कैसे बनाया जाए, इसके विविध गुर भी इस कृति मे गुफित है।

इसमे अनेक छोटे-छोटे दृष्टात, उदाहरण, कथानक, रूपक तथा गाथाओ के द्वारा गहन विषय को सरल शैली में स्पष्ट करने का सुदर प्रयत्न हुआ है। सैद्धातिक दृष्टि से भी यह पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पडी है क्योकि इसमे सरल भाषा मे क्रिया, गुणस्थान, पर्याप्ति आदि का सुदर विवेचन मिलता है।

आलोच्य पुस्तक प्रवचन-साहित्य की कडी मे बारहवा पुष्प है। तत्त्वजिज्ञासु पाठक इससे जैन तत्त्व एवं सिद्धात के कुछ प्रत्ययो की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, ऐसा विश्वास है।

जीवन की सार्थक दिशाएं

'जीवन अनन्त संभावनाओ की कच्ची मिट्टी है'—आचार्य तुलसी के ये विचार जीवन के बारे मे एक नयी सोच पैदा करते हैं। जीवन सभी जीते है, पर सार्थक जीवन जीने की कला बहुत कम व्यक्ति जान पाते है। प्रस्तुत पुस्तक सामाजिक, राष्ट्रीय और वैयक्तिक जीवन की अनेक सार्थक दिशाएं उद्घाटित करती है। ३३ आलेखो के माध्यम से प्रस्तुत कृति मे व्यापक सदर्भों मे नवीन आध्यात्मिक मूल्यो का प्रकटीकरण हुआ है।

इस पुस्तक मे कुछ आलेख व्यक्तिगत अनुभूतियो से सबधित है तो कुछ समाज, परिवार एव राष्ट्र से जुड़ी विसंगतियो एवं विकृतियो पर भी मार्मिक प्रहार करते है। 'धर्मसंघ के नाम खुला आह्वान' लेख विस्तृत होते हुए भी आधुनिकता के नाम पर पनप रही भोगविलास एवं ऐश्वर्यवादी मनोवृत्ति पर करारा व्यग्य करता है तथा लेखक की मानसिक पीड़ा का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत कृति मानव जीवन से जुडी सच्चाइयो की सच्ची अभिव्यक्ति है। इसे पढ़ते समय व्यक्ति अपना चरित्र सामने महसूस करता है। समीक्ष्य कृति मे लीक से हटकर कुछ कहने का तथा लोगो की मानसिकता को झकझोरने का सघन प्रयत्न हुआ है। यह कृति हर वर्ग के पाठक को कुछ सोचने, समझने एव बदलने के लिए उत्प्रेरित करेगी तथा अहिंसक समाज-सरचना की दिशा मे एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करेगी, यह विश्वास है।

जैन तत्व प्रवेश भाग-१,२

जैन दर्शन के सिद्धात रूढ नही, अपितु विज्ञान पर आधारित है। इसकी तत्त्व-मीमासा भी समृद्ध है। इसमे जहा विश्व-व्यवस्था पर गहन चिंतन है, वहा आत्म-विकास के लिए उपयोगी तत्त्वो का भी गहन विवेचन

हुआ है। 'जैन तत्त्व प्रवेश भाग-१,२' मे नवतत्त्व, कर्मवाद, भाव, आत्मा आदि की प्राथमिक जानकारी मिलती है तथा अन्य स्फुट विषयो का ज्ञान भी इसमे प्राप्त होता है।

इसके दूसरे भाग मे—लेश्या, भाव, गुणस्थान आदि का विवेचन है। साथ ही आचार्य भिक्षु के मौलिक सिद्धात दान, दया आदि को भी आधुनिक भाषा मे प्रस्तुत किया गया है।

जैन तत्त्व ज्ञान मे प्रवेश पाने के लिए ये दोनो कृतिया प्रवेश द्वार कही जा सकती है। दार्शनिक और तात्त्विक विवेचन को भी इसमे सरल एव सहज भाषा मे प्रस्तुत किया गया है। ये कृतिया आचार्य भिक्षु द्वारा रचित 'तेरह द्वार' के आधार पर निर्मित की गयी है। आज भी सैकडो मुमुक्षु और तत्त्वजिज्ञासु इन दोनो कृतियो को सस्कृत श्लोको की भाति शब्दश कंठस्थ करते है तथा इनका पारायण करते है।

जैन तत्त्व विद्या

तत्त्वज्ञान जहा हमारी दृष्टि को परिमार्जित करता है, वहा जीवन रूपातरण मे भी सहयोगी बनता है। आचार्य तुलसी का मंतव्य है कि बड़े-बडे सिद्धांतो का मूल्य बौद्धिक समुदाय तक सीमित रह जाता है किंतु 'जैन तत्त्व विद्या' पुस्तक मे सामान्य तत्त्वज्ञान को बहुत सरल और सुबोध शैली मे प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत कृति शिक्षित और अल्पशिक्षित दोनो वर्गों के पाठको के लिए उपयोगी है।

यह कृति 'कालू तत्त्व शतक' की व्याख्या के रूप मे लिखी गयी है। जैन विद्या के लगभग १०० विषयो का विश्लेषण इस ग्रन्थ मे है। आकार मे छोटी होते हुए भी यह कृति ज्ञान का आकर है, इसमे कोई सदेह नही है। जैन विद्या का प्रारम्भिक ज्ञान कराने मे यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

जैन दीक्षा

भारतीय सस्कृति मे सन्यस्त जीवन की विशेष प्रतिष्ठा है। बडे-बडे चक्रवर्तियो ने भी भौतिक सुखो को तिलाञ्जलि देकर साधना के बीहड पथ पर चरण बढाए है। जैन परम्परा मे तो दीक्षित जीवन का विशेष महत्त्व रहा है। कुछ भौतिकवादी व्यक्ति दीक्षा को पलायन मानते है पर आचार्य तुलसी ने इस पुस्तिका के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि दीक्षा कोई पलायन या कर्त्तव्यविमुखता नही, अपितु स्वय, समाज व राष्ट्र के प्रति अधिक जागरूक होने का एक महान् उपक्रम है।

पुस्तिका में दीक्षा का स्वरूप, दीक्षा ग्रहण के कारण, दीक्षा-ग्रहण की अवस्था आदि अनेक विषयो का स्पष्टीकरण है। इस पुस्तिका मे मूलतः बालदीक्षा के विरोध मे उठने वाली शकाओं का समाधान देने वाले विचारो

का सकलन है। यह पुस्तिका अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यो को अपने मे समेटे हुए है।

ज्योति के कण

अणुव्रत आदोलन के माध्यम से आचार्य तुलसी ने भारतीय जनता को रचनात्मक एव सृजनात्मक जीवन का प्रेरक एवं उपयोगी संदेश दिया है। यह आदोलन जहा गरीव की झोपडी से राष्ट्रपति भवन तक पहुचा, वहा सामान्य अनपढ ग्रामीण से लेकर प्रवुद्ध शिक्षाविद् भी इससे प्रभावित हुए बिना नही रह सके। 'ज्योति के कण' पुस्तिका अणुव्रत के स्वरूप एव उसके विभिन्न पक्षो का सुन्दर विश्लेषण करती है। यह लघु कृति अणुव्रत की ज्योति को जन-जन तक पहुंचाने मे समर्थ रही है।

ज्योति से ज्योति जले

"शरीर पर जितने रोम है, उससे भी अधिक आशा और उम्मीद युवापीढी से की जा सकती है। उसे पूरा करने के लिए युवकों को इच्छाशक्ति और सकल्पशक्ति का जागरण करना होगा"—आचार्य तुलसी का यह उद्‌वोधन आज की दिशाहीन और अकर्मण्य युवापीढी को एक नया बोधपाठ पढ़ाता है। ऐसे ही अनेक बोधपाठों से युक्त समय-समय पर युवको को प्रतिवोध देने के लिए दिए गए वक्तव्यो एव निबन्धो का सकलन ग्रन्थ है—'ज्योति से ज्योति जले।' यह पुस्तक युवको के आत्मवल और नैतिकवल को जगाने की प्रेरणा तो देती ही है साथ ही 'श्रमण संस्कृति की मौलिक देन' तथा 'चद्रयात्रा . एक अनुचिन्तन' आदि कुछ लेख सैद्धातिक एव आगमिक ज्ञान भी प्रदान करते है। पुस्तक मे गुम्फित छोटे-छोटे प्रेरक उद्‌वोधनो से प्रेरणा पाकर युवासमाज निश्चित ही रचनात्मक एवं सृजनात्मक दिशा मे गति कर सकता है।

तत्त्व क्या है ?

'तत्त्व क्या है ?' 'ज्ञानकण' की शृंखला मे प्रकाशित होने वाला महत्त्वपूर्ण पुष्प है। इसमे धर्म के सदर्भ मे फैली कई भ्रातियो का निराकरण है। प्रस्तुत पुस्तिका मे धर्म का क्रान्तिकारी स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है। इसमे अध्यात्म को भौतिकता से सर्वथा भिन्न तत्त्व स्थापित किया गया है। लेखक का मानना है—"भौतिकता स्वार्थमूलक है, स्वार्थ-साधना मे सघर्ष हुए बिना नही रहते। आध्यात्मिकता का लक्ष्य परमार्थ है—इसलिए वहां सघर्षो का अन्त होता है।" उनका यह कथन अनेक भ्रातियो को दूर करने वाला है।

धर्म और राजनीति को सर्वथा पृथक् नही किया जा सकता अतः धर्म के विविध पक्षों को उजागर करते हुए आचार्य तुलसी राजनीतिज्ञों को

चेतावनी देते हुए कहते है—"मै राजनीतिज्ञो को भी एक चेतावनी देता हू कि हिंसात्मक क्राति ही सव समस्याओ का समुचित साधन है, इस भ्रांति को निकाल फेके अन्यथा उन्हे कटु परिणाम भोगना होगा। आज के हिंसक से कल का हिंसक अधिक क्रूर होगा, अधिक सुख-लोलुप होगा।" यह प्रेरक वाक्य इस ओर इंगित करता है कि राजनीति पर धर्म का अंकुश अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार आकार मे छोटी होते हुए भी यह पुस्तिका वैचारिक खुराक की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

तत्त्व-चर्चा

भारतीय संस्कृति मे तत्त्वज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महावीर ने मोक्ष मार्ग की प्रथम सीढी के रूप मे तत्त्वज्ञान को स्वीकार किया है।

आचार्य तुलसी महान् तत्त्वज्ञ ही नही, वरन् तत्त्व-व्याख्याता भी है। समय-समय पर अनेक पूर्वी एव पाश्चात्य विद्वान् आपके चरणो मे तत्त्व-जिज्ञासा लिये आ जाते है। हर प्रश्न का सही समाधान आपकी औत्पत्तिकी बुद्धि मे पहले से ही तैयार रहता है।

तत्त्वचर्चा पुस्तक मे दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० के० जी० रामाराव व आस्ट्रिया के यशस्वी पत्रकार डा० हर्वर्ट टिसि की जिज्ञासाओ का समाधान है। इसमे दोनो विद्वानो ने आत्मा, जीव, कर्म, पुद्गल, पुण्य आदि के वारे मे तो प्रश्न उपस्थित किए ही है, साथ ही साधु-जीवन की चर्या से सबधित भी अनेक प्रश्नो का उत्तर है।

यह पुस्तिका जैन तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतः तत्त्वज्ञान मे रुचि रखने वालो के लिये पठनीय एव मननीय है।

तीन संदेश

'तीन सदेश' पुस्तिका मे आचार्य तुलसी के तीन महत्त्वपूर्ण सदेश सकलित है। प्रथम 'आदर्श राज्य' जो एशियाई कान्फ्रेस के अवसर पर प्रेपित किया गया था। दूसरा 'धर्म सदेश' अहमदाबाद मे आयोजित 'धर्म परिषद्' में पढ़ा गया था तथा तीसरा 'धर्म रहस्य' दिल्ली मे एशियाई कान्फ्रेस के अवसर पर 'विश्व धर्म सम्मेलन' मे प्रेषित किया गया। लगभग ४७ वर्प पूर्व लिखित ये तीनो सदेश आज भी धर्म और राजनीति के वारे मे अनेक नई धारणाओ और विचारो को अभिव्यक्त करने वाले है। इन सदेशो मे कुछ ऐसी नवीनताए है, जो पाठको को यह अहसास करवाती है कि हम ऐसा क्यो नही सोच पाए ? प्रस्तुत कृति युग की ज्वलत समस्याओ का समाधान है तथा रूढ लोकचेतना को झकझोरने मे भी कामयाव रही है।

यह पुस्तक भारतीय दर्शन एव सस्कृति के विपय मे नया दृष्टिकोण

तथा गाधीजी के रामराज्य की आदर्श कल्पना का प्रायोगिक रूप प्रस्तुत करने वाली है।

तेरापंथ और मूर्तिपूजा

तेरापथ मूर्तिपूजा मे विश्वास नही करता। वह किसी भी व्यक्तिगत उपासना-पद्धति का खडन या आलोचना नही करता, पर सही तथ्य जनता तक पहुचाने मे उसका एव उसके नेतृत्व का विश्वास रहा है। समय-समय आचार्य तुलसी के पास मूर्तिपूजा को लेकर अनेक प्रश्न उपस्थित होते रहते है। उन सब प्रश्नो का सटीक एव तार्किक समाधान इस पुस्तिका मे दिया गया है। आगमिक आधार पर अनेक नए तथ्यो को प्रकट करने के कारण यह पुस्तिका अत्यन्त लोकप्रिय हुई है तथा लोगो के समक्ष धर्म का सही स्वरूप प्रस्तुत करने मे सफल रही है।

दायित्व का दर्पण : आस्था का प्रतिबिम्ब

यह पुस्तक दूधालेश्वर महादेव (मेवाड) मे युवको को सबोधित कर प्रेषित किए गए सात प्रवचनो का सकलन है। युवक अपनी क्षमता को पहचानकर शक्ति का सही नियोजन कर सके इसी दृष्टि से दूधालेश्वर मे साप्ताहिक शिविर का आयोजन हुआ। आचार्यश्री की प्रत्यक्ष सन्निधि न मिलने के कारण वाचिक सन्निधि को प्राप्त कराने के लिए सात प्रवचनो को ध्वनि-मुद्रित किया गया। वे ही सात प्रवचन इस कृति मे सकलित है।

ये प्रवचन भारतीय संस्कृति, जैनदर्शन, तेरापंथसंघ तथा श्रावक की आचार-सहिता की विशद जानकारी देते है। आकार-प्रकार मे छोटी होने पर भी यह कृति भाषा, भाव एव शैली की दृष्टि से काफी समृद्ध है। इसमें आधुनिक विकृत जीवन-शैली तथा पाश्चात्य संस्कृति के अधानुकरण पर तो प्रहार किया ही है, साथ ही चरित्रहीनता एवं आस्थाहीनता को समाप्त कर नैतिक एव प्रामाणिक जीवन जीने का सदेश भी दिया गया है।

अहिसा के परिप्रेक्ष्य मे कई मौलिक एव आधुनिक प्रश्नो का सटीक समाधान भी इस कृति मे प्रस्तुत है। उदाहरण के लिए इसकी कुछ पंक्तिया पठनीय है— "कई वार भावावेश मे आकार युवावर्ग कह बैठता है—"नही चाहिए हमे ऐसी अहिसा और शाति, जो समाज को दब्बू और कायर बनाती है युवावर्ग ही क्यो, मै भी कहता हू मुझे भी नही चाहिए ऐसी अहिसा और शाति, जो समाज को कायर बनाती है।"

यह कृति युवापीढी की उखडती आस्था को पुनःस्थापित करने मे अपनी विशिष्ट भूमिका निभाती है।

दीया जले अगम का

'दीया जले अगम का' ठाण सूत्र के आधार पर दिए गए प्रवचनो का सकलन है। यह योगक्षेम वर्ष मे हुए प्रवचन-साहित्य की शृखला मे चौथा पुष्प है। इस पुस्तक के ४१ आलेखो मे सैद्धातिक, दार्शनिक, व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक दृष्टियो से नए तथ्य प्रकट हुए है। आचार्य तुलसी के शब्दो मे – "इस पुस्तक मे कही धर्म और राजनीति की चर्चा है तो कही पर्यावरण-विज्ञान का प्रतिपादन है, कही क्रियावाद और अक्रियावाद जैसे दार्शनिक विषय है तो कही स्वास्थ्य की आचार सहिता है। कही चक्षुष्मान का स्वरूपबोध है तो कही व्यक्तित्व की कसौटियो का निर्धारण है। कही अहिसा की मीमासा है तो कही मरने की कला का अवबोध है। कुल मिलाकर मुझे लगा कि इस पुस्तक की सामग्री जीवन को अनेक कोणो से समझने मे सहयोगी बन सकती है। महावीर-वाणी के आधार पर प्रज्वलित यह अगम का दीया चेतना की सत्ता को आवृत करने वाले अधेरे से लड़ता रहे, यही इस पुस्तक के संकलन, संपादन और प्रकाशन की सार्थकता है।"

प्रस्तुत कृति निषेधात्मक भावो के स्थान पर विधायक भाव, भौतिक शक्तियों के स्थान पर आध्यात्मिक शक्तियो का साक्षात्कार कराने मे सार्थक भूमिका निभाती है। इसके आलेख हैवान से इन्सान तथा इन्सान से बेहतर इन्सान बनाने की दिशा मे अपना सफर जारी रखेगे, ऐसा विश्वास है।

दोनों हाथ : एक साथ

आचार्य तुलसी ने अपने आचार्यकाल मे नारी-जागरण के अनेक प्रयत्न किए है। उनका मानना है कि स्त्री को उपेक्षा या सकीर्ण दृष्टि से देखना रूढिगत मानसिकता का द्योतक है। महिला जाति को दिशादर्शन देने के साथ-साथ उन्होने युवाशक्ति को भी प्रतिबोध देकर उसे रचनात्मक दिशा में अग्रसर किया है। 'दोनो हाथ . एक साथ' पुस्तक मे आचार्य तुलसी द्वारा समय-समय पर युवको एव महिलाओ को सम्बोधित कर लिखे गए लेखों का संकलन है।

पुस्तक के प्रथम खड मे २३ निबध नारी-शक्ति से सम्बन्धित है। तथा दूसरे खड के २२ निबंधो मे युवाशक्ति को दिए गए प्रेरक उद्‌बोधन समाविष्ट है।

प्रथम खड मे नारी जीवन से जुड़ी पर्दाप्रथा, दहेज, अशिक्षा जैसी विसगतियो एवं विकृतियो पर करारा प्रहार किया गया है। नारी की आतरिक शक्ति को जागृत करने की प्रेरणा देते हुए लेखक यहां तक कह देते है-–"समाज मे लक्ष्मी और सरस्वती का जितना महत्त्व है, दुर्गा का भी

उससे कम महत्त्व नही है । केवल लक्ष्मी और सरस्वती बनने से महिलाओ का काम नही चलेगा, उन्हे दुर्गा भी बनना होगा ।'' इस खड के सभी लेख नारी-जीवन के विभिन्न पहलुओ को छूने वाले है तथा उसकी सोयी अस्मिता को जगाने वाले है ।

यह पुस्तक स्वस्थ समाज-सरचना मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है । पुस्तक मे प्रतिपादित क्रातिकारी विचार आने वाली शताब्दियो तक भी युवापीढी को दिशादर्शन देते रहेगे, ऐसा विश्वास है ।

धर्म : एक कसौटी : एक रेखा

भारतीय सस्कृति के कण-कण मे धर्म की चर्चा है, इसलिए यहा अनेक धर्म और धर्माचार्य प्रादुर्भूत हुए । समय के अतराल मे धर्म जैसे निखालिस तत्त्व मे भी कुछ अन्यथा तत्त्वो का समावेश हो जाता है, इसलिए उसकी कसौटी की आवश्यकता हो जाती है ।

आचार्य तुलसी ने धर्म को बुद्धि, तर्क और श्रद्धा की कसौटी पर कसकर उसका शुद्ध रूप जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है । 'धर्म : एक कसौटी : एक रेखा' पुस्तक मे उन्होने इसी परिप्रेक्ष्य मे चितन किया है । इसकी प्रस्तुति मे वे कहते है—''धर्म की कसौटी है—मानवीय एकता की अनुभूति । हृदय और मस्तिष्क पर अभेद की रेखा खचित होते ही धर्म परीक्षित हो जाता है । अहिसा का आधार अभेद बुद्धि है । मानवीय एकता की अनुभूति इसी की एक लय है । इसी लय मे मैने अनेक समस्याओ का समाधान देखा है ।''

सम्पूर्ण पुस्तक तीन अध्यायो मे विभक्त है । प्रथम अध्याय मे अध्यात्म के विविध परिप्रेक्ष्यो की चर्चा है । दूसरा अध्याय जैन धर्म से संबंधित है तथा तीसरा अध्याय 'विविधा' के रूप मे है । इसके प्रथम खंड मे 'पत्र एवं प्रतिनिधि' शीर्षक के अन्तर्गत अनेक शहरो मे हुई पत्रकार-वार्ताओ का समावेश है । द्वितीय खड 'व्यक्ति' मे अनेक गणमान्य एव प्रसिद्ध व्यक्तियो, श्रावको के बारे मे आचार्यश्री के उद्गार सकलित है । तृतीय 'मत-अभिमत' मे लगभग ११ पुस्तको के बारे मे लेखक की सम्मति प्रकाशित है । चतुर्थ 'सस्थान' खड मे विभिन्न संस्थानो एवं सम्मेलनो के लिए दिए गए सदेशो एव विचारो का सकलन है । इनमे कुछ सदेश सस्कृत भाषा मे भी है ।

पचम 'पर्व' खड मे कुछ विशेष उत्सवो के बारे मे तथा अतिम 'नैतिक सदर्भ' खड मे एक, दो आदि शीर्षको से नैतिक विचारो का समावेश है । पुस्तक मे समाविष्ट लेखो मे वेधकता तो है ही, कुछ नया सोचने की प्रेरणा भी है ।

मुनि दुलहराजजी द्वारा सपादित इस पुस्तक मे विविध विधाओ मे

विचारो का प्रस्तुतीकरण हुआ है। यह पुस्तक दक्षिण यात्रा के परिव्रजन काल की कुछ सामग्री हमारे सामने प्रस्तुत करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह पुस्तक अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। क्योकि अनेक व्यक्तियो के बारे में इस पुस्तक मे आचार्य तुलसी के विचारो का सकलन है।

अहिंसा मे आस्था रखने वाले पाठक को यह पुस्तक नया आलोक देगी, ऐसा विश्वास है।

धर्म और भारतीय दर्शन

आचार्य तुलसी की इस पुस्तिका मे 'भारतीय दर्शन परिषद्' के रजत जयती समारोह के अवसर पर कलकत्ते मे पठित एक विशेष लेख का सकलन है। यह लेख धर्म के शुद्ध स्वरूप का बोध तो कराता ही है साथ ही धर्म क्यो, इस पर भी दार्शनिक दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत निबन्ध तथाकथित धार्मिको को कुछ नए सिरे से सोचने को मजबूर करता है।

धर्म : सब कुछ है, कुछ भी नहीं

इस पुस्तिका में दिल्ली मे जनवरी, सन् १९५० मे हुए 'सर्वधर्म सम्मेलन' मे आचार्य तुलसी का प्रेपित प्रवचन सकलित है। इस लेख का शीर्षक ही आकर्षक नही है अपितु इसमे वर्णित धर्म का स्वरूप भी मार्मिक, हृदयस्पर्शी और नवीनता लिए हुए है। आचार्य तुलसी का मतव्य है कि यदि धर्म इस जन्म मे शाति और सुख नही देता है तो उससे पारलौकिक शाति की कल्पना व्यर्थ है। इसलिए उन्होने उपासना-परक और क्रियाकाडयुक्त धर्म को महत्त्व न देकर धर्म के संदेश को जीवन मे उतारने की बात जनता के समक्ष रखी है। इसी तथ्य की पुष्टि प्रवचन के उपसहार मे इन शब्दो मे होती है—"मै तो यही कहूगा कि यदि धर्म का आचरण किया जाए तो वह विश्व को सुखी करने के लिए सर्वशक्तिमान् है और यदि धर्म का आचरण न किया जाए तो वह कुछ भी नही कर सकता है।"

धर्म-सहिष्णुता

अणुव्रत के माध्यम से धर्मक्राति का जो स्वर आचार्य तुलसी ने बुलन्द किया है, वह भारत के इतिहास में अविस्मरणीय है। उनके ओजस्वी विचारो ने मृतप्राय धार्मिक क्रियाकाडो को नवीनता प्रदान कर उन्हे जीवित करने का प्रयत्न किया है। साप्रदायिकता एव धार्मिक असहिष्णुता को मिटा कर सर्वधर्मसमन्वय का वातावरण बनाया है।

धार्मिक सकीर्णता के दुष्परिणामो को देखकर अपनी पीडा की अभिव्यक्ति लेखक ने पुस्तिका की भूमिका मे इन शब्दो मे की है—"सब धर्मो

का समन्वय मेरा प्रिय विषय है। जब मै धर्मों में परस्पर टकराव देखता हू तो मुझे वेदना होती है। धर्म की पृष्ठभूमि मैत्री है, अहिंसा है और करुणा है।"

इसमे आचार्य तुलसी ने साहित्यिक शैली मे अनेक रूपकों द्वारा धार्मिक उदारता की प्रस्तुति दी है। उसका एक निदर्शन द्रष्टव्य है-- "समुद्र मेरे लिए है पर वह केवल मेरे लिए नही है क्योकि वह महान् है, असीम है। मेरा घडा केवल मेरा हो सकता है, क्योकि वह लघु है, ससीम है।"

इस पुस्तक मे अठारहवे अखिल भारतीय अणुव्रत सम्मेलन का दीक्षांत प्रवचन भी समाविष्ट है। इस अवसर पर प्रदत्त मोरारजी देसाई का भाषण भी इसमें सम्मिलित है। इस प्रकार यह पुस्तिका अहिंसा के विषय मे नए विचारो को प्रकट करने वाली महत्त्वपूर्ण कृति है।

धवल समारोह

जैन परम्परा की प्रभावक आचार्य-शृखला मे आचार्य तुलसी का आचार्यकाल एक कीर्तिमान् है। उनका नेतृत्व ही दीर्घकालीन नही, अपितु उस काल मे हुये नवोन्मेषो की शृखला भी बहुत लम्बी है। उनके आचार्यकाल के २५ वर्ष पूरे होने पर समाज ने 'धवल समारोह' की आयोजना की। इस अवसर पर उनका एक विशिष्ट प्रवचन 'धवल समारोह' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस लेख का तेरापंथ इतिहास की दृष्टि से ही महत्त्व नही, वरन् सम्पूर्ण मानवजाति को भी इसमे नया मार्गदर्शन दिया गया है। वे समाज से क्या अपेक्षा रखते है, इसका निर्देश इस आलेख मे स्पष्ट भाषा मे है। लेख के अन्त मे वे स्वयं अपने संकल्प की अभिव्यक्ति इन शब्दों मे करते है—"मै सकल्प करता हू कि मैंने जो किया, उससे और अधिक करूं। मैंने जो पाया, उससे और अधिक पाऊं। मुझसे जनता को जो मिला, उससे और अधिक मिले। मेरा जीवन अपने गण, राष्ट्र और समूचे विश्व के लिये हितकर हो, यही मेरी मंगलकामना है।"

सम्पादित होने के बाद इस ऐतिहासिक प्रवचन का कथ्य इतना सशक्त हो गया है कि दर्पण की भाति तेरापंथ समाज इसमे अपने चहुंमुखी विकास का दर्शन कर सकता है। ३५ साल पूर्व दिया गया यह प्रवचन आज भी उतना ही प्रासगिक एवं महत्ता लिये हुये है। इस विस्तृत प्रवचन में एक युग, एक जीवन और एक राष्ट्र अपने आपमे पूर्ण रूप से विद्यमान है।

नया मोड़

अणुव्रत आदोलन के अन्तर्गत नए मोड के द्वारा आचार्य तुलसी

ने समाज मे एक नयी क्राति लाने का प्रयास किया है। एक हाथ के घूघट मे रहने वाली महिलाओ ने 'नए मोड' के माध्यम से नयी करवट लेकर समाज मे अपनी नयी पहचान बनायी है।

'नया मोड' पुस्तिका मे आचार्य तुलसी ने सामाजिक कुरूढियो की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया है तथा जन्म, विवाह, मृत्यु के अवसर पर होने वाले आयोजन को जैन सस्कृति के अनुसार संयम से कैसे मनाए, इसका दिशानिर्देश दिया है। इस पुस्तक मे सामाजिक परम्पराओ मे आई जडता को तोडकर उनमे नवप्राण फूकने का कार्य किया गया है।

पुस्तक का वैशिष्ट्य है कि यह केवल उपदेश ही नही देती, बल्कि जन्म-सस्कार, विवाह-सस्कार एव मृत्यु-सस्कार का प्रायोगिक रूप भी प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक से प्रेरणा पाकर समाज आडम्बर एव प्रदर्शनमुक्त जीवन जीने की प्रेरणा ले सकेगा तथा नए समाज की सरचना हो सकेगी, ऐसा विश्वास है।

नयी पीढ़ी : नए संकेत

आचार्य तुलसी की आशाओ का केन्द्रबिन्दु है—'युवा समाज'। उनका मानना है कि युवको के हाथ मे यदि मशाल प्रज्वलित हो तो सामाजिक जीवन चमत्कृत हो उठता है। युवापीढी को अनुशासित और सयमी बनाए रखने के लिए वे समय-समय पर दिशाबोध देते रहते है। 'नयी पीढी नए संकेत' पुस्तक दिल्ली में आयोजित युवक-प्रशिक्षण शिविर मे प्रदत्त वक्तव्यो का सकलन है। इसमे ७ वक्तव्यो के अन्तर्गत धर्म, तेरापथ, मानसिक शाति, ईश्वर, अनेकात, विसर्जन आदि विषयो का विश्लेषण हुआ है। आकार-प्रकार मे लघु होते हुए भी यह पुस्तक धर्म, दर्शन एव सिद्धात के बारे मे नवीन सामग्री के साथ प्रस्तुत है।

नवनिर्माण की पुकार

आचार्य तुलसी धार्मिक, आध्यात्मिक एव सास्कृतिक महापुरुष है। अणुव्रत के माध्यम से उन्होने सास्कृतिक चेतना को जागृत कर मानव नवनिर्माण का बीडा उठाया है। राजधानी दिल्ली से लेकर छोटे-बडे गावो तक हजारो किलोमीटर की पदयात्राए उन्होने की है। 'नवनिर्माण की पुकार' पुस्तक मे दिल्ली यात्रा के अनुभवो एव कार्यक्रमो का सक्षिप्त विवरण है। कई यात्रा-संस्मरण भी पुस्तक मे अनायास ही जुड गए हैं। अनेक महान् राष्ट्रीय व्यक्तित्वो के विचारो एव उनके साथ हुए आचार्यश्री के वार्तालापो का समावेश भी इसमे कर दिया गया है।

आचार्य तुलसी के अनेक प्रवचनो का सकलन इसमे ऐतिहासिक क्रम

से हुआ है, अत: आचार्यप्रवर के बहुमूल्य विचारों के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस पुस्तक का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सम्पूर्ण पुस्तक तीन प्रकरणो मे विभाजित है। प्रथम प्रकरण 'आयोजन' मे अनेक महत्त्वपूर्ण विद्वद् गोष्ठियो की रिपोर्ताज है एवं आचार्य श्री के मौलिक विचारों का संकलन है। दूसरा प्रकरण 'प्रवचन' नाम से प्रकाशित है। इसमे लगभग उन्नीस विषयों पर आचार्यश्री के प्रेरक विचारो एव उद्बोधनो का संकलन है। तथा तीसरे प्रकरण 'मंथन' मे पंडित नेहरू, दलाईलामा जैसे ३४ अतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय व्यक्तियो के साथ हुए वार्तालापों की सक्षिप्त प्रस्तुति हुई है। परिशिष्ट मे आचार्यश्री से सम्बन्धित अनेक प्रेरक सस्मरणो का समावेश है। ३५ साल पूर्व मुद्रित होने पर भी यह पुस्तक साहित्यिक दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखती है।

नैतिकता के नए चरण

यह 'अणुव्रत विचार माला' का चौथा पुष्प है। इसमें ७ लघु प्रवचनो का संकलन है। इन प्रवचनो/लेखो मे अणुव्रत के विविध पक्षो का नैतिक सदर्भ मे चिंतन किया गया है। आचार्य तुलसी ने अणुव्रत के माध्यम से नैतिक क्रांति की अलख जगाई है। उनकी उदग्र उत्कंठा है कि धर्म और नैतिकता का गठबंधन हो। यदि धार्मिक होकर व्यक्ति नैतिक नही है तो वह भुलावामात्र है। अपनी इसी उत्कंठा को वे इस पुस्तक में इन शब्दो मे व्यक्त करते है—"नैतिक पुनर्निर्माण की परिकल्पना मुझे बहुत प्रिय है। उसकी क्रियान्विति को मैं अपने ही लक्ष्य की क्रियान्विति मानता हूं।"

अतिम 'भयमुक्ति' प्रवचन मे भय से मुक्त होने के ९ उपाय निर्दिष्ट हैं। वे उपाय आध्यात्मिक होने के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक भी हैं। लघुकाय होते हुए भी यह पुस्तिका अणुव्रत और नैतिकता की संक्षिप्त झांकी प्रस्तुत करने मे समर्थ है।

नैतिक-संजीवन भाग-१

मूर्च्छित मानव के लिए सजीवनी प्राणदायिनी होती है, वैसे ही मूर्च्छित मानवता नैतिक-सजीवन से ही पुनरुज्जीवित हो सकती है। आचार्य तुलसी ने अणुव्रत के माध्यम से मानवता के पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया है। 'नैतिक सजीवन' पुस्तक इसी की फलश्रुति है। आचार्य तुलसी अपने आत्मकथ्य मे इस पुस्तक की प्रस्तुति इन शब्दो मे प्रकट करते है—"नैतिक ऊर्ध्व सचार के लिए जो एक सयमप्रधान आचार संहिता प्रस्तुत की गई, उसे लोगो ने 'अणुव्रत आदोलन' कहा और उसी उद्देश्य से जो प्रेरक विचार मै देता रहा, वह 'नैतिक सजीवन' बन गया।"

प्रस्तुत कृति मे अणुव्रत आंदोलन के वार्षिक अधिवेशनो पर प्रदत्त मगल प्रवचन एव समापन-समारोह के उद्‌बोधन संकलित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रवचनो का सकलन भी है, जो अणुव्रत के विशेप समारोहो के अवसर पर दिये गए है। इस छोटी-सी कृति मे आंदोलन के इतिहास, रूपरेखा, उद्‌देश्य तथा उसकी निष्पत्तियो का ज्ञान हो जाता है। प्राचीन होने पर भी यह पुस्तक भाषा, भाव एव शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि की है।

इस कृति के सभी आलेख आज की विपम परिस्थितियो मे भी आशा, विश्वास, रचनात्मकता एवं मानवता का संदेश देते हैं। जो व्यक्ति प्रतिदिन हजारों पृष्ठ स्याही से रग देते है, जिनमे ढूढने पर भी जीवन-तत्त्व नही मिलता, उन लोगो के लिए आचार्य तुलसी की यह कृति प्रेरणा-दीप का कार्य करेगी तथा जीवन की उर्वर भूमि मे आध्यात्मिक वर्षा कर चरित्र की पौध लहलहा सकेगी।

प्रगति की पगडंडियां

लगभग ३७ साल पूर्व दिए गए प्रवचनो का एक लघु सस्करण है--'प्रगति की पगडडिया'। इस पुस्तिका के १३ आलेखो मे नैतिकता, शाति, अनुशासन और अहिसा की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही इन्हे जीवन मे उतारने की प्रेरणा भी है। इसमे औपदेशिक भाषा का प्रयोग अधिक है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धितत्त्व और हृदयतत्त्व दोनो का समन्वित रूप प्रस्तुत हुआ है।

प्रज्ञापर्व

आचार्य तुलसी प्रायोगिक जीवन जीने मे विश्वास करते है। उनके जीवन का एक बहुत बडा सामूहिक प्रयोग का वर्ष था—'योगक्षेमवर्ष' जिसे 'प्रज्ञापर्व' के रूप मे मनाया गया। इस वर्ष का प्रयोजन था - मौलिकता की सुरक्षा के साथ धर्मसघ को आधुनिकता के साथ जोडना तथा आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण करना। इस पूरे वर्ष में सैकडो साधु-साध्वियो एव श्रावक-श्राविकाओ को प्रशिक्षण दिया गया।

प्रशिक्षण देने की दृष्टि से प्रशिक्षुओं को अनेक वर्गों मे बाटा गया। जैसे—स्नातक वर्ग, प्रबुद्ध वर्ग, तत्त्वज्ञ वर्ग तथा बोधार्थी वर्ग आदि। पूरे वर्ष में साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक प्रशिक्षण का क्रम भी चला, जिसमे अनेक कार्यकर्ताओ तथा प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षको के प्रशिक्षण का कार्यक्रम भी रखा गया। इस वर्ष का प्रतीक था - 'पण्णा समिक्खए'—प्रज्ञा से देखो। साप्ताहिक बुलेटिन विज्ञप्ति में 'पण्णा समिक्खए' स्तम्भ के अन्तर्गत आचार्य तुलसी के विशेप संदेश एवं विचार प्रकाशित होते रहे। उन्ही विचारो को

सुरक्षित रखा गया है—'प्रज्ञापर्व' पुस्तक मे। इसमें अनेक सामयिक विषयों पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

इन निबन्धो का सकलन मुनिश्री सुखलालजी ने तैयार किया है। पुस्तक के परिशिष्ट मे इस वर्ष के सम्पूर्ण इतिहास को भी सुरक्षित कर दिया है। लगभग १५ शीर्षकों में 'योगक्षेमवर्ष' के पूरे इतिहास का लेखा-जोखा इसमे प्रस्तुत है। यह पुस्तक आचार्यवर के नाम से प्रकाशित है अतः यह परिशिष्ट कुछ अलग-थलग सा लगता है।

४५ लघु निबन्धो से युक्त यह पुस्तक अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक लेख आधुनिक संदर्भ मे जीवन की समस्याओ से जूझता-सा प्रतीत होता है। यह पुस्तक निःसदेह दीर्घकाल तक लोगो को प्रज्ञापर्व की स्मृति दिलाती रहेगी तथा अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की सार्थक प्रतीति कराती रहेगी।

प्रज्ञापुरुष जयाचार्य

तेरापथ की तेजस्वी आचार्य-परम्परा में जयाचार्य चतुर्थ आचार्य थे। उन्होने अपने नेतृत्वकाल मे अनुशासन और मर्यादा के विविध प्रयोग किए। राजस्थानी भाषा मे इतने विशाल साहित्य का निर्माण उनकी अनूठी प्रत्युत्पन्न मेधा का परिचायक है। जयाचार्य का जीवन बहुमुखी प्रवृत्तियों का केन्द्र था। उनके विशाल व्यक्तित्व को शब्दो की परिधि मे बाधना असंभव नही, तो दुःसभव अवश्य है। पर आचार्य श्री की उदग्र आकांक्षा ने उनकी जीवन-यात्रा को प्रस्तुत करने का निर्णय लिया और वह 'प्रज्ञापुरुष जयाचार्य' के रूप मे रूपायित हो गई।

लगभग ४४ अध्यायो मे विभक्त यह जीवनी-ग्रथ जयाचार्य के समग्र व्यक्तित्व की सक्षिप्त प्रस्तुति देने वाला है। जयाचार्य ने अपने धर्मसंघ को सविभाग और अनुशासन का उदाहरण कैसे बनाया, इसके विविध प्रयोग भी इसमे दिए गए है। इस ग्रंथ मे उनकी योग-साधना, साहित्य-साधना और सघ-साधना की त्रिवेणी बही है। यह त्रिवेणी निश्चय ही पाठकों की मानसिक शुद्धि मे उपयोगी बनेगी।

यह पुस्तक आचार्य तुलसी और युवाचार्य महाप्रज्ञ की सयुक्त कृति है। सपादन-कला मे कुशलहस्त मुनि दुलहराजजी इसके संपादक है। यह कृति जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में लिखी गयी है। जयाचार्य के योगदान की झलक को प्रस्तुत करने वाली यह कृति जीवनी साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है तथा जयाचार्य के व्यक्तित्व एव कर्तृत्व को समझने मे अहभूमिका निभाती है।

प्रवचन डायरी भाग १-३

आचार्य तुलसी एक तेजस्वी धर्मसघ के अनुशास्ता है। उनके लाखो अनुयायी है। लगभग ६० वर्षो से वे अनवरत प्रवचन दे रहे है। पदयात्रा के दौरान तो दिन मे चार-चार वार भी जनता को उद्वोधित किया है। यदि उन सबका सकलन किया जाता तो आज एक विशाल वाङ्मय तैयार हो जाता। फिर भी संकलित प्रवचन-साहित्य विशाल मात्रा मे उपलब्ध है।

सन् ५३ से ५७ तक के प्रवचनो का सपादन श्री श्रीचदजी रामपुरिया ने 'प्रवचन डायरी' के रूप मे किया है। आचार्य तुलसी ने इन प्रवचनो मे अन्तरात्मा की आवाज को मानवता के हित मे नियोजित करने का सत्प्रयास किया है। उनके विचारो का मूल है कि व्यक्ति-सुधार ही समष्टि-सुधार का मूल है अत व्यक्ति-सुधार की विविध प्रेरणाएं इन प्रवचनो मे निहित है।

प्रवचन डायरियो मे अणुव्रत आदोलन के विविध पक्षो का वर्णन भी वडे प्रभावी ढंग से किया गया है। विषय का स्पष्टीकरण अनेक उद्वोधक कथाओ से हुआ है अत ये प्रवचन अधिक सरस बन गए है। आचार्य तुलसी ने अपने प्रवचनो में धर्म के सार्वभौम स्वरूप को उजागर किया है। इन प्रवचनो मे वर्णित धर्म किसी सम्प्रदाय की सीमा मे वन्धा हुआ नही है। 'प्रवचन डायरी' में सकलित अनेक प्रवचन स्कूल एव कालेजो मे हुए है अतः इनमे शिक्षा से जुडी विसगतियो तथा धर्म एव अध्यात्म के नाम पर पनपती विकृतियो की तस्वीर को यथार्थ रूप से प्रस्तुत कर उनका स्थायी समाधान भी प्रस्तुत किया गया है।

इन प्रवचनो मे भारतीय सस्कृति की आत्मा छिपी हुई है, इसलिए इस साहित्य की मौलिकता एव महत्ता पर कभी प्रश्नचिह्न नही लग सकता। जव कभी इनको पढा जायेगा, पाठक नयी प्रेरणा एव आध्यात्मिक खुराक प्राप्त करेगा। आचार्य तुलसी ने इनमे तर्क को नही, अपितु श्रद्धा और आंतरिक प्रतिध्वनि को अभिव्यक्ति दी है। इसलिए ये प्रवचन सीधे अंतर्मन को छूते है।

प्रवचन डायरी के प्रथम भाग मे सन् ५३ एवं ५४ के, द्वितीय भाग मे सन् ५५,५६ के तथा तृतीय भाग मे सन् ५७ के प्रवचनो का संकलन है।

द्वितीय सस्करण मे प्रवचन डायरी की सामग्री 'प्रवचन-पाथेय' भाग-९ तथा ११', 'भोर भई,' 'सूरज ढल ना जाए', 'सभल सयाने !' एवं घर का रास्ता' मे परिवर्धित एव परिष्कृत रूप मे प्रकाशित हुई है।

प्रवचन-पाथेय भाग १-११

प्रवचन साहित्य जनमानस को नैतिकता एवं अध्यात्म की ओर प्रेरित करने का सफल उपक्रम है। आचार्य तुलसी के प्रवचन किसी पूर्वाग्रह या सकीर्णता से वधे हुए नही होते है, अतः उनमे सत्य, शिवं, सुन्दरं की समन्विति सहज ही हो जाती है। इन प्रवचनो मे ऐसी शक्ति निहित है, जो मोहाविष्ट चेतना को जगाने मे सक्षम है।

आचार्य तुलसी के प्रवचन-साहित्य की एक लम्वी शृखला जैन विश्व भारती लाडनू (राज०) से प्रकाशित हुई है, जो प्रवचन-पाथेय के नाम से सकलित है। महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी उनके प्रवचनों के वारे मे अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए कहती है—"उनके प्रवचनो मे एक ओर सत्य की गहराई रहती है तो दूसरी ओर व्यवहार का धरातल भी वहुत प्रशस्त रहता है। आचार्यश्री की वहुश्रुतता हर प्रवचन मे झांकती है।"

यह प्रवचन-साहित्य जीवन के विविध पहलुओ से सम्वन्धित समस्याओ को उठाता ही नही, वल्कि समाधान भी देता है। पहले उनके प्रवचनो का संकलन 'वूद वूद से घट भरे', भाग-१,२ 'मजिल की ओर' भाग-१,२ 'सोचो समझो' भाग १-३ इन नामो से प्रकाशित हुआ था। प्रवचन साहित्य को एकरूपता देने के लिए इन्हें "प्रवचन-पाथेय" नाम से कई भागों मे प्रकाशित किया गया, जिसकी सूची इस प्रकार है—

प्रवचन-पाथेय भाग-१	वूंद-वूद से घट भरे भाग-१
प्रवचन-पाथेय भाग-२	वूद-वूद से घट भरे भाग-२
प्रवचन-पाथेय भाग-३	मजिल की ओर भाग-१
प्रवचन-पाथेय भाग-४	सोचो ! समझो !! भाग-१
प्रवचन-पाथेय भाग-५	सोचो ! समझो !! भाग-२
प्रवचन-पाथेय भाग-६	सोचो ! समझो !! भाग-३
प्रवचन-पाथेय भाग-७	मंजिल की ओर भाग-२
प्रवचन-पाथेय भाग-८	स्वतत्र
प्रवचन-पाथेय भाग-९	प्रवचन डायरी भाग-१
प्रवचन-पाथेय भाग-१०	स्वतंत्र
प्रवचन-पाथेय भाग-११	प्रवचन डायरी भाग-१

आचार्यश्री ने इन प्रवचनो मे उन अनछुए पहलुओ का स्पर्श किया है, जिनका सम्वन्ध आज समग्र विश्व मे व्याप्त व्यक्तिगत, पारिवारिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओ मे है। लेखक की पैनी दृष्टि से शायद ही कोई मुद्दा छूटा हो, जिन पर उनके विचार प्रवचन के माध्यम से हमारे सामने न आए हो। किसी भी विपय का विश्लेपण करते समय वे जहां अतीत मे खो जाते हैं, वही उन्हे वर्तमान का भी भान रहता है, साथ ही भविष्य के

प्रति भी सावधान रहते है । नि संदेह प्रवचन-साहित्य की यह लम्बी शृंखला हर घर में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित कर 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का सदेश देती है। प्रवचन साहित्य की यह लम्बी शृखला जीवन की विसगतियो को दूर करके व्यक्ति-चेतना को जगाने मे महत्त्वपूर्ण कड़ी का कार्य करेगी, ऐसा विश्वास है।

प्रश्न और समाधान

प्रश्नोत्तरो के माध्यम से दिया गया वोध पाठक के लिए अधिक सहज एव हृदयग्राही होता है। 'प्रश्न और समाधान' पुस्तक मे जिज्ञासा करने वाले है—मुनिश्री सुखलालजी तथा समाधानकर्त्ता है—आचार्य तुलसी। इसमे प्रश्नोत्तरो के माध्यम से अहिंसा, सत्य आदि व्रतो का स्वरूप विश्लेषित हुआ है। लगभग प्रश्न अणुव्रत आदोलन के नियमो को व्याख्यायित करते है।

यह कृति साम्प्रदायिक मनोभूमिका से दूर हटकर घृणा, हिंसा आदि के दलदल से उबार कर मानव जाति को अखण्ड आत्मविश्वास और मैत्री के साम्राज्य मे ले जाती है। इस पुस्तक मे समाज के सच्चे चित्र को उकेरकर समष्टिगत चेतना को जगाने के उपाय निर्दिष्ट है।

प्रेक्षा : अनुप्रेक्षा

प्रेक्षा अपने द्वारा अपने को देखने की ध्यान की विशिष्ट पद्धति है। यह अशात विश्व को शाति की राह वताने का महान् उपक्रम है। प्रेक्षा की प्राथमिक जानकारी देने हेतु आचार्य तुलसी ने 'प्रेक्षासगान' की सरचना की, जिसमे ३०० पद्यो के माध्यम से प्रेक्षाध्यान की विधि, स्वरूप तथा महत्त्व को स्पष्ट किया है। इन पद्यो पर प्रश्नोत्तरो के माध्यम से व्याख्या लिखी गई, वही 'प्रेक्षा. अनुप्रेक्षा' पुस्तक के रूप मे रूपायित हुई है। इसमे लगभग ५१ आलेखो मे प्रेक्षाध्यान के उद्भव का इतिहास, उसका आधार लेश्याध्यान आदि का विस्तार से वर्णन है तथा अन्त मे 'पुलिस अकादमी', जयपुर मे हुए कुछ प्रवचनो का सकलन है।

पूरी पुस्तक प्रेक्षाध्यान की परिक्रमा करते हुए चलती हे। प्रश्नोत्तरो का क्रम भी सरल एव सुवोध है। 'प्रेक्षासगान' के पद्यो की अनुप्रेक्षा करते समय ऐसा महसूस होता है, मानो गागर मे सागर भर दिया गया हो।

प्रस्तुत कृति अस्तित्व को समझने का नया दृष्टिकोण प्रस्तुत कर आत्मशक्ति को जगाने के सूत्रो को व्याख्यायित करती है। साथ ही यह आज के परिवेश मे व्याप्त तनाव, अशाति एव कुण्ठा की सलवटो को दूर करने तथा भौतिक एवं पदार्थवादी मनोवृत्ति के अन्धकार को प्रकाश मे रूपान्तरित करने का एक रचनात्मक, सृजनात्मक एव प्रायोगिक उपक्रम है।

प्रेक्षाध्यान : प्राणविज्ञान

प्रेक्षाध्यान के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए "जीवन विज्ञान ग्रथ माला" की शृंखला में अनेक पुष्प प्रकाशित हुए हैं। उन्ही पुष्पो मे एक पुष्प है—'प्रेक्षाध्यान : प्राणविज्ञान'। इसमें प्राणशक्ति का महत्त्व तथा उसको जगाने के विविध प्रयोगों की चर्चा हुई है। आकार में लघु होते हुए भी यह पुस्तिका अनेक नए रहस्यों को प्रकट करने वाली है।

बीति ताहि विसारि दे

आचार्य तुलसी की यह उदग्र आकाक्षा है कि ससार को अध्यात्म का एक ऐसा आलोक मिले, जिससे संपूर्ण मानव जाति आलोकित हो उठे। आज हर व्यक्ति अतीत के झूले में झूल रहा है। इसका फलित है—तनाव। मानव को इस दुविधा से मुक्त करने के लिए 'बीति ताहि विसारि दे' पुस्तक अनुपम पाथेय बन कर सामने आई है। जिनका अथक श्रम इस पुस्तक के संपादन मे लगा है, वे महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी पुस्तक की प्रस्तुति में कहती हैं—'बीति ताहि विसारि दे' आचार्यश्री द्वारा समय-समय पर प्रदत्त और लिखित प्रवचनो एवं निबंधो का संकलन है। इसमें युवको और महिलाओं के सम्बन्ध मे जो सामग्री है, वह सोद्देश्य तैयार की गयी है। यह युवापीढी को दिशाबोध देने वाली है और महिला जाति को उसकी अस्मिता की पहचान करवाकर उसके पुरुषार्थ की लौ को प्रज्वलित करने वाली है……परिश्रम के पसीने से पनपी धान की सुनहरी बाली जितनी मोहक होती है, उतनी ही मोहक है आचार्यश्री की यह कृति, जिसमें नैतिक और आध्यात्मिक विचारो का अखूट पाथेय भरा पड़ा है।"

इसमें योगसाधना, धर्म, भगवान् महावीर, युवक, नारी आदि अनेक विषयो पर मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी प्रस्तुति हुई है। ३८ आलेखो से संयुक्त यह कृति सत्य का साक्षात्कार कराने तथा महान् बनने की दिशा में एक अनुपम प्रेरणा-पाथेय है।

बूंद-बूंद से घट भरे, भाग—१,२

आज के वैज्ञानिक युग मे वक्ताओ की कमी नही है, पर प्रवचनकार दुर्लभ हैं। आचार्य तुलसी धर्माचार्य हैं, पर रूढ़ प्रवक्ता नही। उनके प्रवचन में धर्म, दर्शन, विज्ञान, समाज, राजनीति एवं मनोविज्ञान आदि अनेक विषयो का समावेश होता है। सन् ६० मे 'प्रवचन डायरी' के प्रकाशन के बाद प्रवचन-साहित्य की प्रथम कड़ी 'बूंद-बूंद से घट भरे' भाग १ और २ प्रकाश में आई।

इन पुस्तकों मे सन् ६५ और ६६ के प्रवचनों का संकलन है। इन प्रवचनो मे विषयो की विविधता है पर लक्ष्य एक ही है कि व्यक्ति की

चेतना को अध्यात्म की ओर उन्मुख किया जाए।

"सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से, राष्ट्र स्वय सुधरेगा" आचार्यश्री द्वारा दिया गया यह उद्‌घोप पुस्तक के नाम की सार्थकता प्रकट करता है, जैसे बूद-बूद से घट भरता है, वैसे ही व्यक्ति-सुधार से समाज, राष्ट्र एवं विश्व का सुधार अवश्यंभावी है।

लगभग प्रवचन जैन आगमो की परिक्रमा करते हुए प्रतीत होते है, अत इनको महावीर-वाणी का आधुनिक प्रस्तुतीकरण कहा जा सकता है। इसमें भृगुपुरोहित आदि आगमिक आख्यानो के माध्यम से त्याग, संयम, अनासक्ति और सादगी आदि भावो को जागृत करने की प्रेरणा दी गयी है।

पुस्तक में समाविष्ट आध्यात्मिक सामग्री इतनी सरल एवं सरस शैली मे गुम्फित है कि पाठक कभी भी इसे पढकर अपने अशात मन को शांति की राहो पर अग्रसर कर सकता है। सपादिका महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी का विश्वास भी इन शब्दो को दोहराता है कि "जिस प्रकार एक-एक बूद को सोखता सहेजता माटी का घडा एक दिन पूरा भर जाता है, वैसे ही आचार्यप्रवर के उपदेशामृत की इन बूंदो को पीते-पीते हमारे जीवन का घट भी भर जाएगा।" इसके प्रथम भाग मे ५३ तथा द्वितीय भाग मे ५१ प्रवचनो का समाहार है। प्रवचन-पाथेय की शृखला मे भी ये भाग १ एव भाग २ के नाम से प्रसिद्ध है।

बूंद भी : लहर भी

कथा वह माध्यम है, जिसके द्वारा आम जीवन से जुडी बात सहज और सरल ढग से कही जा सकती है। कथा सुनने मे जितनी सुखद है, समझने मे उतनी ही सहज होती है। सुप्त चैतन्य के जागरण मे कथा का प्रभाव विलक्षण है। आचार्य तुलसी का यह कथा-सकलन जीवन-मूल्यो एव नैतिक प्रेरणाओ से संवलित है।

ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक, सामाजिक एव आगमिक कथाओ से युक्त यह कथाग्रथ जीवन के समग्र परिवेश को प्रस्तुति देने वाला है। ये कथाएं लोक-संस्कृति को उजागर करने वाली तथा नई प्रेरणा एव आदर्श भरने वाली है। मानव को मानव होने का वार-वार अहसास करवाकर व्यस्त जीवन मे भी अध्यात्म की ओर प्रेरित करती हैं।

प्रस्तुत कहानी-सग्रह आज की कथाओ की भाति केवल भावनाओ को जगाने वाला या सस्ता प्रेम-प्रदर्शन करने वाला नही, अपितु त्याग, स्नेह, सहानुभूति, स्वावलम्बन और सहिष्णुता का स्पर्श करने वाला है।

आचार्यश्री द्वारा कही गयी कथाओ को शब्दो का परिधान महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने दिया है। वे इस पुस्तक के वारे मे आश्वस्त

है कि इस कृति के माध्यम से पाठक सत्य की राह मे गतिशील बनेगे और स्वयं सत्य का साक्षात्कार कर सकेगे।

बैसाखियां विश्वास की

आज के यान्त्रिक युग मे मानव जिस भाग-दौड़ की जिदगी जी रहा है, उसमे ऐसे उद्‌बोधनो की अपेक्षा है, जिसमे सक्षेप मे गंभीर एव उपयोगी तत्त्व का निरूपण हो। 'बैसाखिया विश्वास की' पुस्तक मे लेखक ने गागर मे सागर भरने का प्रयत्न किया है। अतः यह पुस्तक उन लोगो के लिए विशेप उपयोगी है, जिनके पास समय की समस्या है।

आज देश मे ऐसे धर्माचार्यो की संख्या नगण्य है, जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की समस्याओ पर चिन्तन करते है और समस्या का मूल पकडकर उसको समाहित करने का प्रयत्न करते है। यह पुस्तक इस बात की साक्षी है कि इसमे विविध समस्याओ को उठाकर उसका आधुनिक सदर्भ मे समाधान दिया गया है।

इस कृति मे राष्ट्रीय, सामाजिक एव व्यक्तिगत जीवन मे नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा करने की वात बार-बार दोहरायी गयी है। आज जन-जीवन मे जो अनैतिकता, अप्रामाणिकता, चरित्रहीनता और भ्रष्टाचार फैलता जा रहा है, उसे अणुव्रत के माध्यम से मिटाकर व्यक्ति के जीवन को सृजनात्मक एवं रचनात्मक रूप मे बदलने का आह्वान किया गया है। इसके अधिकाश लेख सम-सामयिक है।

पुस्तक मे समाविष्ट प्रायः सभी शीर्षक आकर्षक एवं रहस्यमय है। शीर्पक पढ़कर ही पाठक लेख पढ़ने के लोभ का सवरण नही कर सकता। जैसे—'सपना : एक नागरिक का, एक नेता का', 'देश की बागडोर थामने वाले हाथ' 'फूट आईने की या आसपास की' आदि।

आचार्य तुलसी ने अपने जीवन से आत्मविश्वास की एक नई मशाल प्रस्तुत की है। यही कारण है कि उनके जीवन के शब्दकोश मे असम्भव जैसा कोई शब्द है ही नही। उनके लेखों मे आत्मविश्वास की जो ज्योति विकीर्ण हुई है, वह पग-पग पर देखी जा सकती है। ये लेख निराशा से प्रताडित व्यक्ति में भी नयी आशा का सचार करने वाले है।

आचार्य तुलसी स्वय इस पुस्तक के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कहते है—"अनैतिकता वढ़ रही हैं, यह चिन्ता का विषय है। इससे भी बडी चिन्ता है, नैतिक मूल्यो के प्रति विश्वास समाप्त होता जा रहा है। लोक-जीवन मे उस विश्वास को उच्छ्वसित रखने के लिए समय-समय पर कुछ छोटे-छोटे आलेख लिखे गए। उन्ही आलेखो का सकलन है—बैसाखियां विश्वास की। इस संकलन को पढ़कर कुछ लोग भी यदि नैतिक मूल्यो के प्रति

अपना विश्वास जगा पाए तो इसमे लगे क्षणो की सार्थकता है।"

इन आलेखों में आध्यात्मिक मूल्यो को पुनरुज्जीवित करने की लेखक की तड़प दर्शनीय है। ये प्रेरक सन्देश भटके व्यक्तियो को भी उजली राहों पर ले जाने मे सक्षम है तथा आज की भ्रष्ट राजनीति को सही दिशादर्शन देने वाले हैं।

११३ आलेखो का यह संकलन जन-जन के विश्वास को तो जगाएगा ही, साथ ही साथ शाश्वत और सम-सामयिक विपयों पर हमारी ज्ञान-राशि की वृद्धि भी करेगा।

भगवान् महावीर

महापुरुप देश, काल की सीमा से परे होते है। वे समय को अपने साथ वहाकर ले जाने की क्षमता रखते है तथा अपने दर्शन से जन-चेतना मे एक नई स्फूर्ति भरने का कार्य करते है। भगवान् महावीर भारतभूमि पर अवतरित एक ऐसे महापुरुष थे, जिनके व्यक्तित्व मे विकास की ऊचाई एव विचारो की गहराई एक साथ सक्रात थी। उनका अपार्थिव चिन्तन आज भी हिंसा से आक्रात भूली-भटकी मानवता को नया दिशा-दर्शन दे रहा है।

भगवान् महावीर के जीवन पर आज तक अनेको ग्रन्थ प्रकाश मे आ चुके है। उसी शृखला मे जन्म से परिनिर्वाण तक की घटनाओ को संक्षिप्त शैली मे 'भगवान् महावीर' पुस्तक मे उभारा गया है। यह पुस्तक वहुत सीधी-सरल भापा मे महावीर के जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करती है। हजारो पृष्ठों मे जो वात नही समझाई जा सकती, वह इस पुस्तक के १३६ पृष्ठो मे समझा दी गयी है। अत. महावीर के तेजस्वी व्यक्तित्व एव कर्तृत्व को समझने मे यह जीवनीग्रथ आवालवृद्ध के लिए उपयोगी है।

भोर भई

श्रीचन्द रामपुरिया को आचार्यश्री के प्रवचनो का प्रथम सकलनकर्त्ता कह सकते है। उन्होने सन् ५३ से ५७ मे हुए प्रवचनो को 'प्रवचन डायरी, भाग-१, २, ३' में सकलित किया है। 'भोर भई' प्रवचन डायरी भाग-२ का द्वितीय सस्करण है। इस द्वितीय सस्करण मे प्रवचन के शीर्पको मे भी अनेक परिवर्तन हुए है तथा सामग्री को भी परिवर्धित एव परिष्कृत कर समय के अनुरूप बनाया गया है। यह पुस्तक 'प्रवचन-पाथेय' की शृखला का चौदहवा पुष्प है।

इन प्रवचनो मे जो सजीवता, कलात्मकता एव सुवोधता उभरी है, उसका कारण है—उनकी गहरी साधना, अनुभूति की क्षमता एव जन्मजात सवेदनशील मानस।

आचार्य तुलसी के चिन्तन मे भारत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना प्रतिबिम्बित है, इसलिए उनके प्रवचन अध्यात्म की परिक्रमा करते रहते है। विविध विपयो से सम्वन्धित ये ८३ प्रवचन लोगों के आतरिक शक्ति-जागरण मे निमित्त वन सकेंगे तथा मनुष्य के खोए देवत्व को पुन. स्थापित करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर पाएंगे।

भ्रष्टाचार की आधारशिलाएं

मन मे उत्पन्न विचार जव भापा का परिधान पहनकर जनता के समक्ष उपस्थित होते है, तव वे प्रवचन, लेख या निवन्ध का रूप धारण कर लेते है। भिन्न-भिन्न विपयो पर आचार्य तुलसी की चिन्तनधारा कभी मौखिक रूप से तो कभी लिखित रूप से जनता के समक्ष अभिव्यक्त होती रही है। 'भ्रष्टाचार की आधारशिलाए' उनका ऐसा कालजयी हस्ताक्षर है, जिसकी उपयोगिता कभी धूमिल नही हो सकती। क्योंकि हर युग मे भ्रष्टाचार अपना रूप वदलता है और विविध रूपो मे अपना प्रभाव वताता है।

इस आलेख मे समाज, राष्ट्र एव व्यक्तिगत जीवन मे नैतिक मूल्यो की स्थापना एवं उसकी उपयोगिता पर खुलकर चर्चा हुई है। समाज एव देश मे जो जड़ता है, भ्रष्टाचार है उसे दूर कर सुन्दर समाज की कल्पना का चित्र इस आलेख मे प्रस्तुत किया गया है। अत. यह पुस्तिका राष्ट्र को सवारने, समाज को दिशादर्शन देने एवं व्यक्ति को नई सोच देने मे समर्थ है।

मंजिल की ओर, भाग-१,२

मजिल की खोज हर व्यक्ति को अभीष्ट है पर उसके लिए कुशल-मार्गदर्शक, सही राह तथा सही चाह की आवश्यकता रहती है। 'मंजिल की ओर' भाग-१,२ सचमुच मजिल की ओर ले जाने वाली महत्त्वपूर्ण कृतिया है। ये दोनो पुस्तकें विवेक-जागृत कराने मे मार्गदर्शक का कार्य करती है। आचार्य तुलसी कुशल प्रवचनकार है। उनके प्रवचन केवल औपचारिक नही, अपितु अनुभव की गहराइया लिए हुए होते है, इसीलिए उनके प्रवचन मे एक सामान्य व्यक्ति जितना आनन्दविभोर होता है, उतना ही एक विद्वान् भी। वच्चे यदि प्रसन्न होते है तो वृद्ध भी भाव-विभोर हो उठते है।

'मजिल की ओर, भाग-१' मे १०४ तथा द्वितीय भाग मे ८८ प्रवचनो का सकलन है। समाज, धर्म, नीति, राजनीति आदि विविध विपयो से सम्वन्धित आलेख इनमे समाविष्ट है। इन दोनो पुस्तको मे आगम के अनेक सूक्तो तथा आख्यानों की सरल, सुवोध एवं सरस शैली मे व्याख्या हुई है।

'तीन लोक से मथुरा न्यारी' इस लोकोक्ति के पीछे छिपे नए इतिहास

को नए परिप्रेक्ष्य मे जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। तात्त्विक ज्ञान की दृष्टि से भी ये दोनों पुस्तके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वन पडी है। इन पुस्तको मे सन् ७६ से ७८ तक के प्रवचन सकलित है। ये दोनो पुस्तके धर्म और अध्यात्म की नई दिशाए उद्घाटित कर हरेक व्यक्ति को मजिल की ओर ले जाने मे सक्षम है। इन दोनो पुस्तको का सपादन साध्वीश्री जिनप्रभाजी ने किया है।

मनहंसा मोती चुगे

साहित्य प्रकाश का रूपातर है। अन्त·प्रकाश को प्रकट करने वाली "मनहसा मोती चुगे" पुस्तक योगक्षेम वर्ष के प्रवचनो की शृखला मे पाचवी और अन्तिम पुस्तक है। इसमे ४६ प्रवचनो का सकलन है। प्रारम्भ के छह प्रवचन नमस्कार मत्र का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत करते है। कुछ लेख जीवन के व्यावहारिक विपयों का प्रशिक्षण देने वाले है तो कुछ अणुव्रत एव प्रेक्षाध्यान की पृष्ठभूमि को अभिव्यक्त करते है। कुछ अध्यात्म की नई दिशाए उद्घाटित करते है तो कुछ समाज की बुराइयो की ओर भी इगित करते है। कुल मिलाकर इस कृति मे पाठक को मिलेगा सत्य का साक्षात्कार तथा जीवन को सजाने-संवारने के मौलिक सूत्र।

पुस्तक का नाम जितना आकर्षक एव नवीन है, तथ्यो का प्रतिपादन भी उतनी ही सरल एव नवीन-शैली मे हुआ है। व्यक्तित्व रूपान्तरण एव विधायक दृष्टिकोण का निर्माण करने के इच्छुक पाठको के लिए यह कृति दीपशिखा का कार्य करेगी।

महामनस्वी आचार्यश्री कालूगणी : जीवनवृत्त

साहित्यिक विधाओ मे जीवनी-साहित्य का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। जीवनी साहित्य पढने मे तो सरस होता ही है, साथ ही जीवन्त प्रेरणा भी देता है। आचार्य तुलसी ने अपने दीक्षागुरु के जीवन-प्रसग को सस्मरणात्मक शैली मे लिखा है, जिसका नाम है—'महामनस्वी आचार्यश्री कालूगणी जीवनवृत्त।'

कालूगणी का जीवन ज्ञान, दर्शन और चारित्र की त्रिवेणी मे अभिस्नात था। उनका वाह्य व्यक्तित्व जितना आकर्षक और चुम्वकीय था, आतरिक व्यक्तित्व उससे हजार गुणा अधिक निर्मल और पवित्र था। वे व्यक्तित्व-निर्माता थे। तेरापन्थ मे उन्होने सैकडो व्यक्तित्वो का निर्माण किया। यही कारण है कि वे तेरापन्थ धर्मसघ को आचार्य तुलसी जैसा महनीय एव ऊर्जस्वल व्यक्तित्व दे पाए।

इस पुस्तक मे आचार्यश्री ने सर्वत्र इस वात का ध्यान रखा है कि भापा कही जटिल नही होने पाए। इसके अध्याय भी इतने छोटे हैं कि

पाठक कही ऊवता नही। पुस्तक का प्रकाशकीय इस ग्रंथ की महत्ता इन शब्दो मे प्रकट करता है—"प्रस्तुत पुस्तक एक महापुरुष के जीवन के विविध पक्षो का संक्षिप्त लेखा-जोखा हैं, जिसमे अध्यात्म की ज्योत्स्ना, साधना की आभा और ज्ञान की ज्योति सर्वत्र अनुस्यूत है। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' के अनुसार शैशव से ही निखरता आचार्यश्री कालूगणी का असाधारण व्यक्तित्व किस प्रकार उत्तरोत्तर विराट् वनता गया, युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी ने अपनी सिद्ध लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया है।" जीवनी साहित्य मे इस ग्रथ का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योकि अनेक दिलचस्प घटनाओ के कारण यह ग्रन्थ इतना रोचक वन गया है कि पाठक वार-वार इसको पढने की इच्छा रखेगा।

मुक्ति : इसी क्षण में

"मोक्ष केवल पारलौकिक ही नही है, वर्तमान जीवन मे भी जितनी शाति, जितना आनन्द और जितना चैतन्य स्फुरित होता है, वह सव मोक्ष का ही अनुभव है"। इन विचारो को अभिव्यक्ति देने वाली लघुकाय पुस्तक है—'मुक्ति : इसी क्षण मे।'

यह कृति शारीरिक, मानसिक और वैचारिक कुठाओ, तनावो एव विकृतियो को दूर करने का सक्षम माध्यम वनी है। इससे सत्य से साक्षात्कार तथा मोक्ष से तादात्म्य स्थापित करने के लिए सहज मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

द्वितीय सस्करण मे इस कृति के अधिकाश आलेख 'मजिल की ओर' भाग २ पुस्तक मे समाविष्ट कर दिए गए है। २३ प्रवचनो/लेखो से युक्त यह लघुकाय पुस्तक जीवन की अनेक सार्थक दिशाओ का उदघाटन करती है।

मुक्तिपथ

साहित्य मनुष्य को जीवन की खुराक देता है। जो साहित्य केवल शव्दजाल मे गुम्फित होता है, वह जीवन को विशेष रूप से प्रभावित नही कर सकता पर जो जीवन-चर्या को रूपातरण की प्रेरणा देकर जीवन के सही आचार का वर्णन करता है, वही साहित्य जनभोग्य हो सकता है। 'मुक्तिपथ' एक ऐसी ही कृति है, जो गृहस्थ जीवन के सामने आगमिक धरातल पर ऐसे छोटे-छोटे आदर्शो को प्रस्तुत करती है, जिससे वह सफल एवं शात जीवन जी सके।

वर्तमान के स्वच्छदताप्रिय युग मे यह कृति व्रतो का नया आलोक फैलाने वाली है तथा अहिंसा, सत्य आदि का आधुनिक सन्दर्भ मे विश्लेपण करती हे। यह जैन तत्त्व के अनेक पहलू जैसे अनेकात, रत्नत्रयी, सप्तभंगी, आत्मा, भाव आदि का सहज, सरल एव संक्षिप्त शैली मे विवेचन करती है।

पुनर्मुद्रण मे यही पुस्तक 'गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का' इस नाम से प्रकाशित हुई है। इसके नाम-परिवर्तन के बारे मे आचार्य तुलसी कहते है—'मुक्तिपथ' नाम अच्छा ही था पर नाम पढते ही यह ज्ञात नही होता था कि यह पुस्तक गृहस्थ समाज को तत्त्व-बोध देने की दृष्टि से लिखी गयी है। ' अत. पुनर्मुद्रण मे इसका नाम रखा गया है 'गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का।'

मुखड़ा क्या देखे दरपन मे

अपने जीवन के ७५वे वर्ष के उपलक्ष्य मे आचार्य तुलसी ने किसी बडे समारोह का आयोजन न करके अन्तर्मुखता जगाने, दृष्टिकोण का परिमार्जन करने तथा आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण करने हेतु साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओ को प्रशिक्षित करने का सजीव उपक्रम चलाया। 'मुखडा क्या देखे दरपन मे' पुस्तक मे योगक्षेम वर्ष मे हुए ७१ प्रवचनो का सकलन है, जिसमे अन्त.चेतना जगाने के लिए दिए गये दिशा-बोध एव दिशादर्शन है।

आचार्य तुलसी की यह कृति व्यक्ति को भाषा और तर्क मे न उलझाकर भावो की गहराई मे ले जाने मे सक्षम है। प्रस्तुत पुस्तक व्यक्ति को अपने बारे मे सोचने, अन्तःकरण मे झाकने एव स्वय का मूल्याकन करने के लिए विवश करती है। इसमे सहनशीलता एव सवेदनशीलता का ऐसा स्रोत बहा है, जो समाज के सभी कूडे-कर्कट को बहा ले जाने में सक्षम है।

पुस्तक मे महावीर के जीवन एव दर्शन के सम्बन्ध मे भी महत्त्वपूर्ण जानकारियां दी गयी हैं। लेखक ने आध्यात्मिक और वैज्ञानिक इन दो धाराओ को जोडने का जो प्रयत्न किया है, वह नि सन्देह भारत के सास्कृतिक एव चिन्तन के क्षितिज पर एक नया सूर्य उगाएगा। आज मूल्याकन का हर पैमाना वैज्ञानिक है। इस परिप्रेक्ष्य मे विज्ञान को अध्यात्म से जोडने का सशक्त प्रयास वास्तव में स्तुत्य है, दूरदर्शिता का परिचायक है और वर्तमान के अनुकूल है। यह कृति हर वर्ग के पाठक को अभिभूत और चमत्कृत करने मे सक्षम है।

मेरा धर्म : केन्द्र और परिधि

आचार्य तुलसी ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होने देश और काल की सीमा से परे होकर सार्वभौम सत्य की प्रतिष्ठा करके मानवता का पथ आलोकित किया है। वे सुलझे हुए चिन्तक हैं। उन्हें समाज मे

जो बात ठीक नही लगती, उसका वे वेहिचक प्रतिवाद करते है। फिर चाहे उन्हे कितना ही विरोध सहना पडे। 'मेरा धर्म : केन्द्र और परिधि' कृति धर्म के उस रूप को प्रकट करती है, जो क्रियाकाडों एवं जड उपासना पद्धति से अनुवधित नही, अपितु जीवन को भौतिकता की चकाचौध से निकालकर अध्यात्म की गहराइयो मे ले जाने में सक्षम है। साप्रदायिकता का जहर आज मानवता को मृतप्राय: वना रहा है। इस साप्रदायिक समस्या को समाधान देते हुए आचार्य तुलसी इस पुस्तक मे कहते हैं "सम्प्रदाय उपयोगी है यदि वह धर्म का प्रतिविम्वग्राही हो। जव सम्प्रदाय कोरा संप्रदाय रह जाये, उसमें धर्म का प्रतिविम्व ग्रहण करने की क्षमता न रहे तो वह अनिष्टकर हो जाता है।" इस प्रकार साप्रदायिकता और धर्मान्धता के विरुद्ध यह कृति ऐसा वातावरण तैयार करती है, जो धर्म या मजहव के नाम पर मानवीय एकता को तोडने वाली शक्तियो को सवक दे सके।

अडतीस लेखो के इस संकलन मे लेखक ने धर्म और सम्प्रदाय के सम्वन्ध मे न केवल अपनी अवधारणाओ को स्पष्ट किया है। वल्कि पाठको के वीच वनी धर्म एवं सम्प्रदाय सम्बन्धी भ्रातियों का निराकरण भी किया है। इसके अतिरिक्त "हिन्दू : नया चिन्तन, नयी परिभापा" में हिन्दू शव्द की नयी व्याख्या प्रस्तुत की है, जो हमारी राष्ट्रीय अखण्डता को वनाए रखने मे सक्षम है।

"धार्मिक समस्याए · एक अनुचिन्तन" लेख मे धर्म के नाम पर फैली अशिक्षा, अन्धविश्वास एव रूढिवादिता पर करारा व्यग्य किया है। तेरापंथ मे सम्वन्धित अनेक लेख तेरापन्थ के इतिहास एव उसके दर्शन की समग्र जानकारी देते है। इसके अतिरिक्त विश्वशाति, नि:शस्त्रीकरण जैसे अन्य सामयिक विपयो का भी इसमे सुन्दर आकलन किया गया है। यह पुस्तक नास्तिक व्यक्ति को भी धर्म एव अध्यात्म की ओर उन्मुख करने मे समर्थ एवं सक्षम है।

नि.सन्देह कहा जा सकता है कि इसमे समझदार, सवेदनशील एव सस्कारवान् पाठक को जीवन की नई दिशा देने का सार्थक एवं रचनात्मक प्रयास हुआ है।

राजधानी में आचार्यश्री तुलसी के सन्देश

आचार्य तुलसी का दिल्ली मे प्रथम प्रवास सन् १९५० मे हुआ। यह प्रवास अनेक दृष्टियो से ऐतिहासिक और प्रभावकारी रहा। आचार्य तुलसी ने इस प्रवास में अपने उपदेशों द्वारा अहिंसक क्राति उत्पन्न करने का अभिनव प्रयास किया। अणुअस्त्रो मे ही शाति का दर्शन करने वाले विश्व-मानस का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि अणुवम और उद्जनवम के

सहार का प्रतिकार करने वाली महाशक्ति बाहरी साधनो मे नही, मानव के अन्तर् मे ही निहित है। उसको उसी मे से जगाना होगा। इस दिव्य ध्वनि ने ससार को अपनी ओर आकृष्ट किया और ससार को कुछ सोचने के लिए मजबूर किया।

अणुबम की विभीषिका से त्रस्त मानव को अणुव्रत के सजीवन से पुनरुज्जीवित करने का सत्प्रयास आचार्य तुलसी ने किया है। दिल्ली के दो मास के अल्पप्रवास मे उन्होने अज्ञान की निद्रा मे सोते मानव को झकझोर कर खडा कर दिया। इस छोटे से प्रवास मे आचार्यश्री के सैकडो प्रवचन हुए पर इस पुस्तक मे केवल सात क्रातिकारी एव महत्त्वपूर्ण प्रवचनो को सकलित किया गया है। इन सात प्रवचनो मे प्रथम एव अन्तिम प्रवचन स्वागत एवं विदाई का है। इस पुस्तक के सपादक सत्यदेव विद्यालकार कहते है—"राजधानी के पहले भाषण की प्रभात बेला मे यदि आचार्य तुलसी ने अपने काम की रूपरेखा उपस्थित की थी तो अन्तिम विदाई के भाषण की पुण्यवेला मे अपने कर्त्तव्य का प्रतिपादन किया। आदि और अन्त तथा मध्य मे दिए गए समस्त भाषणो का समन्वय किसी एक शब्द मे किया जा सकता है तो वह है 'अहिसा।'

आज से ४४ साल पूर्व प्रदत्त इन प्रवचनो मे राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय सभी समस्याओ का हल है। आचार्य तुलसी के प्रवचनो का यह प्रथम लघु प्रवचन सकलन है। पुस्तक की भाषा प्रवचन की शैली मे न होकर साहित्यिक शैली मे गुम्फित है। ये सातो प्रवचन आचार्य तुलसी के अमर सदेश कहे जा सकते है। इनको जब कभी पढा जाएगा, दिग्भ्रमित मानव समाज एक नई प्रेरणा प्राप्त करेगा।

राजपथ की खोज

समय-समय पर लिखे गए ५४ लेखो एव ७ वार्ताओ से युक्त यह पुस्तक वैचारिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध और ज्ञानवर्धक है। प्रस्तुत पुस्तक चार खण्डो मे विभाजित है। इसके प्रथम खण्ड 'महावीर : जीवन सौरभ' मे भगवान् महावीर के जीवन एवं उनके शाश्वत विचारो से सम्बन्धित १३ लेख सकलित है। ये लेख महावीर के सिद्धांत को नवीन परिप्रेक्ष्य मे अभिव्यक्ति देते है। दूसरे 'शाश्वत स्वर' खण्ड मे १४ लेखो के अन्तर्गत अहिसा, अनेकात तथा गाधीजी के जीवन-दर्शन के बारे मे अमूल्य विचारो को सकलित किया गया है। 'जीवन-मूल्य' नामक तृतीय खण्ड लोकतन्त्र-चुनाव, अध्यात्म और धर्म आदि के विषय में नई सोच उपस्थित करता है। अतिम खड 'प्रश्न और समाधान' मे दर्शन और सिद्धात सम्बन्धी अनेक प्रश्नो का सटीक समाधान दिया गया है।

प्रस्तुत कृति आज की घिनौनी राजनीति पर तो व्यग्य करती ही है साथ ही लोकतन्त्र को स्वस्थ एवं तेजस्वी बनाने के सूत्रों का भी विश्लेषण करती है। सत्ता के इर्द-गिर्द विकृतियों को दूर कर राजनीति के क्षितिज को रचनात्मक दिशा देने का सार्थक प्रयास प्रस्तुत कृति मे हुआ है। साथ ही ऐसे स्वच्छ एवं प्रेरक राजनैतिक व्यक्तित्व की छवि उकेरी गयी है, जो लोकतन्त्र के सुदृढ आधार बन सकें।'

बहुविध विषयो को अपने भीतर समेटे हुए यह पुस्तक एक विशिष्ट कृति के रूप मे उभरी है। क्योंकि इसमे वर्तमान ही नही, आने वाला कल भी प्रतिबिम्बित है अत. ऐसी कृतियो की महत्ता सामयिक नही, अपितु त्रैकालिक है।

यह पुस्तक 'विचार दीर्घा' एवं 'विचार वीथी' में मुद्रित सामग्री का ही नया संस्करण है।

लघुता से प्रभुता मिले

हर व्यक्ति प्रभुता सम्पन्न बनना चाहता है। आचार्य तुलसी कहते हैं—"प्रभुता पाने का रास्ता है—प्रभुता पाने की लालसा का विसर्जन। क्योंकि जब तक यह लालसा मनुष्य पर हावी रहती है, वह अपने करणीय के प्रति सचेत नही रह सकता।" अत: लघुता ही एकमात्र उपाय है—प्रभुता पाने का। प्रस्तुत पुस्तक में प्रभुता सम्पन्न बनने की अनेक दिशाओं एवं प्रयोगों का उद्‌घाटन हुआ है। समीक्ष्य ग्रंथ मे पुराने सन्दर्भो, मूल्यो एवं आदर्शो को नए सन्दर्भो एवं नए मूल्यो के साथ प्रकट किया गया है।

इस पुस्तक में आचाराग के सूक्तो की गम्भीर एवं सरस व्याख्या है। सम्पादन-कुशलता के कारण इन प्रवचनों ने निबन्ध का रूप ले लिया है। 'आयारो' ग्रन्थ पर आधारित ये ५१ प्रवचन विविध विषयो को अपने भीतर समेटे हुए हैं। ये सभी प्रवचन वार्तमानिक समस्याओं से सम्बद्ध हैं तथा आगमों के आलोक में समाधान की नई दिशा प्रस्तुत करते हैं।

इस कृति के बारे में महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी का विचार है कि इस पुस्तक के द्वारा आचार्यवर ने जन-साधारण और प्रबुद्ध—दोनो वर्गो को समान रूप से उपकृत किया है ......। ऐसी भास्वर कृतियो के अध्ययन-मनन से हमारे अज्ञान तिमिर की उम्र कुछ तो घटेगी ही।

यह पुस्तक योगक्षेम वर्ष में हुए प्रवचनों का तृतीय संकलन है, साथ ही साहित्यिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक लेखो का उपयोगी संग्रह है।

विचार दीर्घा

'विचार दीर्घा' कृति आचार्यश्री के विभिन्न सन्दर्भो में व्यक्त विचारो का संकलन है। इस पुस्तक मे राजनैतिक परिवेश में व्याप्त अनैतिक स्थितियों

पर खुलकर चर्चा के साथ-साथ मर्यादा एव अनुशासन की आवश्यकता पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इसमे भगवान् महावीर के विचारो का आधुनिक सन्दर्भ मे प्रस्तुतीकरण है और जैन-दर्शन के कुछ प्रमुख सिद्धातो को मूल्यो के सन्दर्भ मे व्याख्यायित किया गया है। इस प्रकार ४७ निबधो से युक्त यह सकलन अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। इसकी भाषा सहज, सरल एव स्पष्ट है। सामान्य पाठक भी इसमे अवगाहन कर अमूल्य रत्नो को प्राप्त कर सकता है।

विचार-वीथी

वैचारिक क्राति मे साहित्य अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आचार्य तुलसी समय-समय पर प्रवचनो और लेखो के माध्यम से अपने क्रांतिकारी विचार जनता तक पहुचाते रहते है। उनके साहित्य की लम्बी कडी मे बहुरगी विषयो से युक्त 'विचार वीथी' पुस्तक अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। विध्वसात्मक कार्यो की ओर बढते मानव को संरचनात्मक दृष्टिकोण देने व शक्ति को सही दिशा मे नियोजित करने मे यह पुस्तक काफी उपयोगी है। इसमे भगवान महावीर, अणुव्रत, महिला समाज तथा तेरापन्थ आदि अनेक विषयो पर सक्षिप्त एव मार्मिक ५१ लेख समाविष्ट हैं। राष्ट्रीय एकता की भावना को जागृत करने एव नैतिकता से ओत-प्रोत जीवन जीने की प्रेरणा देने वाली इस पुस्तक मे आधुनिक समस्याओ के संदर्भ मे नए सिरे से चिन्तन किया गया है। दूसरे सस्करण मे 'विचारदीर्घा' एव 'विचार वीथी' के अधिकाश लेख 'राजपथ की खोज' मे सम्मिलित कर दिए गए है।

विश्वशांति और उसका मार्ग

यह ऐतिहासिक लेख शाति निकेतन मे होने वाले 'विश्व शाति सम्मेलन' (१९४९) मे प्रेषित किया गया था। इस लेख मे अशाति के हेतु और उसके निराकरण पर महत्त्वपूर्ण चर्चा की गयी है। इसके साथ ही सुधार का केन्द्र व्यक्ति है या समाज, इस पर गम्भीर चिन्तन प्रस्तुन किया गया है। अन्त मे शाति प्राप्त करने के १३ उपाय इस पुस्तिका मे निर्दिष्ट है, जो आज के अशात मानस को शाति की राह दिखाने में सक्षम है।

इस आलेख मे कम शब्दो मे समाज, देश और राष्ट्र को अध्यात्म की नई स्फुरणा एव विश्वशाति के महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा मिलती है।

व्रतदीक्षा

व्रत मानव समाज की रीढ है अत भगवान् महावीर ने श्रावक के लिए व्रती जीवन की महत्ता प्रतिष्ठित की। उन्होने श्रावक के लिए १२ व्रत

तथा उनके खण्डित होने के कारणों का भी वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। "व्रत दीक्षा" पुस्तिका मे आचार्य तुलसी ने २५०० वर्ष पूर्व दिए गए इन व्रतों को विस्तार से आधुनिक भाषा मे प्रकट करने का प्रयत्न किया है तथा बच्चों को भी व्रत-दीक्षा से दीक्षित करने की विधि का संकेत किया है।

यह लघु पुस्तिका संयम की महत्ता को प्रकट कर बालको को आत्मानुशासन का बोधपाठ देने वाली है।

शांति के पथ पर (दूसरी मंजिल)

'शाति के पथ पर' (दूसरी मंजिल) सर्वोदय ज्ञानमाला का पाचवा पुष्प है। ५८ छोटे-छोटे आलेखों एव प्रवचनों से युक्त यह पुस्तक विविध विषयो का सस्पर्श करती है। लगभग ४० साल पूर्व हुए प्रवचनो को इस पुस्तक मे सकलित कर सास्कृतिक, आध्यात्मिक एवं साहित्यिक परम्पराओ का सुन्दर प्रस्तुतीकरण किया गया है। यह पुस्तक त्याग और संयम की सस्कृति को उज्जीवित रखने की प्रेरणा देती है, साथ ही आज के अशांत वातावरण मे शांतिपूर्ण जीवन कैसे जीया जा सके, इसका अवबोध भी हमें इससे मिलता है। प्रवचनों मे प्रयुक्त दोहे, श्लोक सुग्राह्य एवं गहरे अर्थ लिए हुए है।

इस कृति के विचार बौद्धिक स्तर पर ही नही, अनुभूति के स्तर पर लिखे एवं बोले गए है इसलिए यह और अधिक मूल्यवान् कृति बन गई है।

श्रावक आत्मचिन्तन

आचार्य तुलसी आत्मद्रष्टा ऋषि है। वे चाहते है कि उनके अनुयायी भौतिकता में रहकर भी आत्मा की परिधि में रहें। आत्मद्रष्टा बनने के लिए आत्म-चिन्तन अनिवार्य है। 'श्रावक आत्मचिन्तन' कृति में आत्म-चिन्तन के कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओ का निर्देश है। ये चिन्तन-बिन्दु आध्यात्मिक, नैतिक व लौकिक इन तीन भागो मे विभक्त है। यदि इन प्रेरक बिन्दुओ पर व्यक्ति प्रतिदिन आत्म-चितन करे तो सुख और शांति स्वत जीवन मे अवतरित हो जाएगी।

इस कृति मे आत्म-चिन्तन के साथ-साथ व्यसन, मास, मदिरा वेश्यागमन, निरपराध हिंसा, चोरी, परस्त्रीगमन आदि विषयो पर प्रेरक सूक्तिया भी सकलित है। ये सूक्तिया सप्तव्यसनो से मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

इस लघुकाय पुस्तिका मे नवसूत्री तथा तेरहसूत्री योजना का उल्लेख भी है, जो चरित्रनिष्ठ जीवन जीने के आदर्श सूत्र है। अन्त मे कुछ प्रेरक गीत भी पुस्तिका मे संकलित है।

श्रावक सम्मेलन में

'श्रावक सम्मेलन मे' पुस्तिका आचार्य तुलसी के क्रातिकारी विचारो का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। यह आचार्यश्री का ऐतिहासिक प्रवचन है, जो लगभग ४००० श्रावको के मध्य हासी में दिया गया। इसमे तेरापन्थ धर्मसघ मे किए गए अनेक परिवर्तनों का स्पष्टीकरण है तथा उनकी युगीन महत्ता को स्पष्ट किया गया है। तेरापन्थ के विकास-क्रम का इतिहास इस पुस्तिका के माध्यम से भलीभाति जाना जा सकता है। मौलिक सिद्धातों को सुरक्षित रखते हुए लेखक ने जिन युगीन परिवर्तनो का सूत्रपात किया है, वह क्रांतिकारी एवं सामयिक है।

इस प्रवचन मे एक धर्मनेता का अमित आत्मबल और साहस मुखर हो रहा है। चूहे-बिल्ली के रूप मे प्रसिद्ध तेरापन्थ आज जैन धर्म का पर्याय बन गया है, इसका राज भी इसमे विश्लेषित है। आचार्यश्री ने धर्मसघ मे किए गए महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो का स्पष्टीकरण भी इसमे किया है।

संदेश

'सन्देश' आत्मदर्शन माला का दूसरा पुष्प है। इसमे तत्त्वज्ञान तथा भारतीय सस्कृति के तत्त्वो को उजागर किया गया है। इस कृति मे धर्म के कुछ मौलिक सिद्धातो का विश्लेषण भी है। पुस्तक के परिशिष्ट मे कवि सम्मेलन मे हुआ आचार्य तुलसी का उद्‌घाटन भाषण तथा अन्य साधु-साध्वियो की संस्कृत आशु कविताएं हिंदी अर्थ के साथ प्रकाशित हैं। अतः संस्कृत भाषा के प्रेमी लोगो के लिए भी यह पुस्तक विशेष महत्त्व रखती है। अन्त मे स्वाधीनता दिवस पर गाए गए गीतो का सकलन है।

आकार मे लघु होने पर भी यह कृति हमारी ज्ञान-पिपासा को शात करने मे सक्षम है।

संभल सयाने !

आचार्य तुलसी के प्रवचन ज्ञान और भावना—इन दोनो गुणो से समन्वित है। ज्ञानप्रधान प्रवचन जहा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, उचित-अनुचित का बोध कराते है, वहा भावनाप्रधान प्रवचन पाठक के मन मे बल और पौरुष का सचार करते है।

'सभल सयाने !' एक ऐसा ही प्रवचन सकलन है, जिसमे बुद्धि और हृदय का समन्वय हुआ है। इसमे सन् १९५४ मे बबई मे हुए प्रवचनो का सकलन है। यह कृति अपने प्रथम सस्करण मे प्रवचन डायरी, भाग-२ के रूप मे प्रकाशित थी।

समीक्ष्य कृति मे समाज, देश एव राष्ट्र को नया दिशाबोध तथा

अनेक विपयो पर चिन्तन-मनन प्रस्तुत किया गया है। प्रवचनो का संकलन होने के कारण पुस्तक की शैली औपदेशिक अधिक है तथा आकार में भी कई प्रवचन अत्यन्त लघु और कई अत्यन्त विस्तृत है। अधिकाश प्रवचनो मे स्थान एव दिनाक का निर्देश है, इस कारण ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस कृति का विशेप महत्त्व है।

११५ प्रवचनो से सवलित यह कृति समाज के विभिन्न वर्गो का मार्ग-दर्शन करने मे सक्षम है। विशेप रूप से इसमे अणुव्रत आंदोलन का स्वर अधिक मुखरित हुआ है, क्योकि इसी आदोलन के माध्यम से आचार्यश्री ने देश के आध्यात्मिक एव नैतिक उत्थान का बीड़ा उठाया है। ४० साल पुराने होते हुए भी ये प्रवचन आज भी समीचीन एव पाठक की चेतना को उद्बुद्ध करने मे उपयोगी बने हुए है।

सफर : आधी शताब्दी का

'सफर . आधी शताब्दी का' पुस्तक मे आचार्य तुलसी ने अपनी पचास वर्प की उपलब्धियों एव अनुभूतियो का सरस आकलन किया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक एव राजनैतिक अनेक समस्याओ का समाधान भी प्रस्तुत किया है। 'रचनात्मक प्रवृत्तिया' जैसे कुछ लेखों मे उन्होंने अपने भावी कार्यक्रमो का विवरण प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त युवको एव महिलाओ को लक्ष्य करके लिखे गये कुछ प्रेरक लेख भी इसमे समाविष्ट है। इस पुस्तक मे 'राजस्थान की जनता के नाम' शीर्पक आलेख एक नए समाज एव राज्य की सरचना के सूत्र प्रस्तुत करता है तथा राजस्थान की जनता की सुप्त चेतना को जागृत करने की अर्हता रखता है।

यह पुस्तक लेखक के जीवन, चिंतन, दर्शन एव उपलब्धियो का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। इसमे कुल ३७ लेखों मे जैन-धर्म के मूलभूत सिद्धांत तथा भारतीय सस्कृति के अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यो का अनावरण हुआ है। संक्षेप मे कहें तो इसका सिहावलोकन वर्तमान क पर्यालोचन एव भविष्य का दिशानिर्धारण है। 'अमृत-सदेश' के प्राय सभी लेखो का समाहार इस पुस्तक मे कर दिया गया है।

समण दीक्षा

'समण दीक्षा' आचार्य तुलसी के क्रातिकारी अवदानो की एक महत्त्वपूर्ण कडी है। इसे आधुनिक युग का नया सन्यास कहा जा सकता है। सन् १९८० मे आचार्य तुलसी ने विलक्षण दीक्षा देने की उद्घोपणा की। इस नए पथ पर चलने का साहस छह वहिनो ने किया। दीक्षा के अवसर पर इस श्रेणी का नाम 'समण श्रेणी' रखा गया। 'समण दीक्षा' पुस्तिका मे

समण दीक्षा की पृष्ठभूमि, उसका इतिहास तथा आचार-सहिता का वर्णन है। इसके परिशिष्ट मे मुमुक्षु श्रेणी की आचार-सहिता भी सलग्न है।

लघुकाय होते हुए भी यह पुस्तिका समण दीक्षा के प्रारम्भिक इतिहास की जानकारी देने मे पर्याप्त है। इस पुस्तक मे समण दीक्षा का स्वरूप साहित्यिक शैली मे प्रस्तुत किया गया है। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

- समण दीक्षा है, अपने आप की पहचान का एक अमोघ सकल्प।
- समण दीक्षा है, मन को निर्ग्रन्थ बनाने का एक छोटा-सा उपक्रम।
- समण दीक्षा है, जीवन का वह विराम, जहा से एक नए छद का प्रारम्भ होता है।
- समण दीक्षा है, अध्यात्मविद्या को सीखने और मुक्तभाव से वाटने का एक नया अभिक्रम।
- समण दीक्षा है, समय के भाल पर उदीयमान नये निर्माण का एक सकेत।

अनेक ऐतिहासिक चित्रो से युक्त यह कृति आचार्य तुलसी की नयी सोच एव क्रियान्विति की साक्षी बनी रहेगी।

समता की आंख : चरित्र की पांख

'उद्बोधन' का तृतीय सस्करण 'समता की आख चरित्र की पाख' के रूप मे प्रकाशित है। नए सस्करण मे कुछ लेखो को और जोड दिया गया है। इस पुस्तक मे अति सक्षिप्त शैली मे छोटी-छोटी घटनाओ, सस्मरणो, रूपको या कथाओ के माध्यम से अणुव्रत के विभिन्न पहलुओ को स्पष्ट किया गया है तथा नैतिक सन्दर्भो का समाज के साथ कैसे सामजस्य विठाया जा सकता है, इसका सरस और व्यावहारिक विवेचन है। पुस्तक मे प्रयुक्त प्राय कथाए और घटनाए ऐतिहासिक, सामाजिक एव लोक-जीवन से जुडी हुई है। अनेक कथाओ मे जीवन की किसी समस्या एव उसके समाधान का निरूपण है। इन कथाओ का उपयोग केवल मनोरजन हेतु नही, अपितु सरलता से तत्त्वबोध कराने के लिए हुआ है। ये जीवन्त कथाए व्यक्ति को नए सिरे से सोचने के लिए वाध्य करती है।

पुस्तक को पढकर ऐसा लगता है कि आचार्यश्री ने मौखर्य या विस्तार की अपेक्षा मौन को अधिक महत्व दिया है। इमे अभिव्यक्ति का सयम कहा जा सकता है। इसमे कम शब्दो मे वहुत कुछ कहने का अद्भुत कौशल प्रकट हुआ है। सम्पूर्ण कृति विविध शीर्षको मे गुम्फित होते हुए भी अणुव्रत-दर्शन से प्रभावित है तथा उसे ही व्याख्यायित करती है।

समाधान की ओर

जिज्ञासा व्यक्ति को सत्य की यात्रा करवाती है और समाधान लक्ष्य-प्राप्ति का साधन है। 'समाधान की ओर' पुस्तक मे युवको की जिज्ञासाए एवं आचार्यश्री तुलसी के सटीक समाधान गुम्फित है। यह पुस्तक युवापीढी से जुडी समस्त समस्याओ के समाधान का अभिनव उपक्रम है। प्रश्नोत्तरो मे धर्म की वैज्ञानिक परिभाषा एव आज के सन्दर्भ मे उसकी उपयोगिता पर भी खुलकर चर्चा की गई है। समाधायक आचार्य तुलसी ने उत्तर मे सर्वत्र अनेकात शैली का प्रयोग किया है अत: समाधान मे कही भी ऐकातिकता का दोप नही दिखाई पड़ता।

आचार्य तुलसी का मंतव्य है कि समस्याए मनुष्य की सहजात है। अत समस्याएं रहेगी, पर उनका रूप बदलता रहेगा। कोई भी समस्या ऐसी नही है, जिसका समाधान प्रस्तुत न किया जा सके। 'समाधान की ओर' पुस्तक इसी बात की पुष्टि करती हुई केवल व्यक्तिगत ही नही, सम्पूर्ण मानव जाति के सामने खड़ी समस्याओ का समाधान करती है। इसमे जीवन के व्यावहारिक पथ को समाधान की वर्णमाला मे पिरोने का प्रशस्य प्रयत्न किया है अतः बहुविध समस्या एवं समाधानों को अपने भीतर समेटे हुए यह पुस्तक विशिष्ट कृति के रूप मे समाज को प्रकाश दे सकेगी।

साधु जीवन की उपयोगिता

देश के नैतिक और चारित्रिक उत्थान मे साधु-संस्था का विशेष योगदान रहता है। वह देश सम्पन्न होते हुए भी विपन्न है, जहा साधु-संस्था के प्रति जन-मानस मे सम्मान का भाव नही होता। पुस्तक मे साधु-संस्था का सामाजिक और राष्ट्रीय महत्त्व प्रतिपादित है, साथ ही वैयक्तिक स्तर पर जीवन-निर्माण की बात भी साधु-सस्था द्वारा ही सभव है, यह तथ्य भी स्पष्ट हुआ है।

इस कृति मे आचार्य तुलसी ने साधु-सस्था को भार समझने वाले लोगो के समक्ष यह स्पष्ट किया है कि देश के विकास मे केवल कृषि उत्पादन ही महत्त्वपूर्ण नही, चरित्रबल का उत्थान अधिक आवश्यक है। साधु देश के चरित्रबल को ऊचा उठाते है। अतः देश मे उनकी सर्वाधिक आवश्यकता है। एक सच्चा साधु मौन रहकर भी अपने आभामण्डल के शुद्ध परमाणुओ से जगत् के विकृत वातावरण को शुद्ध बना सकता है अतः साधु-सस्था की उपयोगिता के सामने कभी प्रश्नचिह्न नही लग सकता।

सूरज ढल ना जाए

आचार्य तुलसी ने राजनेता की भाति केवल बाह्य परिस्थितियो

को ही अभिव्यक्ति नही दी अपितु 'गहरे पानी पैठ' इस आदर्श के साथ विचारो को प्रस्तुति दी है। 'सूरज ढल ना जाए' ऐसे ही १४८ महत्त्वपूर्ण प्रवचनो का सकलन है।

यह पुस्तक सन् १९५५ मे विविध स्थानों मे दिए गए प्रवचनो/वक्तव्यो का सकलन है। आचार्य तुलसी यायावर है अत प्रतिदिन नए-नए श्रोताओ के लिए उनके प्रवचन विविधता लिए हुए होते है। प्रस्तुत सकलन मे अणुव्रत से सम्बन्धित लेख अधिक है। आचार्य तुलसी ने गाव-गाव, नगर-नगर घूमकर अणुव्रत आदोलन द्वारा देश के कोने-कोने मे व्याप्त अन्धभक्ति, व्यसन, दुराचार, भ्रष्टाचार आदि विकृतियो को दूर कर स्वस्थ समाज-सरचना की प्रेरणा दी है। इस प्रकार प्रस्तुत कृति मे भारतीय सस्कृति एव आध्यात्मिक मूल्यो को जीवन्त बनाए रखने का भरसक प्रयास किया गया है।

ये प्रवचन आध्यात्मिक क्षितिज पर खडे होकर समूची दुनिया और उससे जुड़ी परिस्थितियो को गम्भीरता से समझने मे सहयोगी बनते है। प्रवचन अति प्राचीन होने पर भी सीधे हृदय का स्पर्श करते हे।

यह ग्रन्थ प्रवचन डायरी, भाग २ का नवीन सस्करण है तथा प्रवचन पाथेय के १५ वे पुष्प के रूप मे प्रकाशित है।

सोचो ! समझो !! भाग-१-३

मानव और पशु के बीच एक महत्त्वपूर्ण भेदरेखा है— सोचना और समझना। प्रकृति द्वारा प्रदत्त इस क्षमता को पाकर भी व्यक्ति उसका सही उपयोग नही करता। सोचो ! समझो !! के तीनो भाग व्यक्ति की दृष्टि को परिमार्जित कर उसे नए ढग से सोचने-समझने एव करने की प्रेरणा देते है। जीवन को उन्नत बनाने वाले मूल्यो का जीवन मे अवतरण कैसे करे, इसका सुन्दर विवेचन इन कृतियो मे मिलता है।

द्वितीय संस्करण मे सोचो ! समझो !! भाग १ प्रवचन-पाथेय भाग ४ के रूप मे, सोचो ! समझो !! भाग दो प्रवचन पाथेय भाग ५ के रूप मे तथा सोचो ! समझो !! भाग तीन स्वतत्र रूप से भी प्रकाशित है तथा प्रवचन-पाथेय की श्रृखला मे यह भाग ६ के रूप मे प्रसिद्ध है।

अनेक प्रवचनो से सवलित ये कृतिया अनेक कथाओ एव रूपको से सवद्ध होने के कारण बालक, युवा एव वृद्ध सबके लिए पठनीय बन गयी है।

संकलित एवं संपादित साहित्य

आचार्य तुलसी के साहित्य से सकलन किया गया साहित्य भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है । यहा हम उन पुस्तको का परिचय दे रहे है, जो निबध या प्रवचन के रूप मे प्रकाशित नही है, वरन् दूसरो के द्वारा सकलित सपादित है । साथ ही आचार्यश्री के नाम से प्रकाशित उन पुस्तको का परिचय भी दिया जा रहा है, जिनमे विचारो की अभिव्यक्ति स्फुट रूप से हुई है जैसे हस्ताक्षर, सप्त व्यसन आदि । शैक्षशिक्षा आचार्यश्री की स्वोपज्ञ कृति नही है, वरन् सकलन के रूप मे इसका प्रणयन किया गया है अतः इसे मूल साहित्य के परिचय के अन्तर्गत नही दिया है ।

अणुव्रत अनुशास्ता के साथ

इसमे मुनि सुखलालजी ने २६ विषयो पर आचार्य तुलसी के साथ हुई वार्ताओ का सकलन किया है । इसमे प्रश्नकर्त्ता मुनि सुखलालजी है । उत्तर आचार्य तुलसी के है पर उनको भाषा मुनिश्री ने दी है अत. सकलित एव सपादित ग्रंथ सूची मे इसका परिचय दे रहे है ।

समाज, राष्ट्र, धर्म, शिक्षा एव सस्कृति आदि से सम्बन्धित अनेक व्यावहारिक जिज्ञासाओ का सटीक समाधान इसमे प्रस्तुत है । प्रश्नोत्तरो के माध्यम से आचार्यश्री के मौलिक विचारो की अवगति देने वाली यह पुस्तक अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है ।

अनमोल बोल आचार्य तुलसी के

मुनि मधुकरजी द्वारा सकलित इस लघु पुस्तिका मे यद्यपि सूक्तों की सख्या वहुत कम है पर इन सुभाषितो मे एक वक्रता है, जिससे उनमे मर्म-भेदन की कला प्रकट हो गयी है । उक्ति-वैचित्र्य के कारण ये सभी वाक्य मानव को कुछ सोचने, समझने एव वदलने को मजवूर करते है ।

लघु आकार की इस पुस्तिका को हर क्षण अपना साथी वनाया जा सकता है तथा तनाव से वोझिल मन को शात करने के लिए कभी भी पढकर शांति प्राप्त की जा सकती है ।

एक बूंद : एक सागर (भाग १-५)

साहित्य के मूल्यपरक. दिशासूचक एव सारपूर्ण वाक्य का नाम सूक्ति है । सूक्तियो में मर्म का स्पर्श करने की शक्ति होती है । सूक्ति साहित्य का प्राचीन काल से अपना विशिष्ट महत्त्व रहा है, क्योकि इसमे नीति और

उपदेश की प्रेरणा गागर मे सागर की भाति निहित रहती है। सूक्त/सुभाषित की एक बूद मे भी चेतना का अथाह सागर लहराता है, जो अन्तर् एव बाह्य को आमूलचूल वदलने की क्षमता रखता है। रामप्रताप त्रिपाठी का मंतव्य है कि विधाता की इस मानव-सृष्टि मे सूक्तिया कल्पतरु के समान है। इनकी सुविस्तृत सघन छाया मे जीवनपथ की थकान को ही दूर करने की शक्ति नही, प्रत्युत् भविष्य की दुर्गम यात्रा को सुखपूर्वक सम्पन्न करने का अक्षय तथा दैवी सम्वल इनमे निहित रहता है।

आचार्य तुलसी अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग की दिव्य मशाल है। उन्होने प्रयत्नपूर्वक सूक्तियां नही लिखी पर उनकी तप.पूत एव अनुभवपूत वाणी ने स्वतः ही सूक्तियो का रूप धारण कर लिया है। इनमे उनके जीवन के अनुभवो का अमृत निहित है। वे ६० वर्षो से अनवरत प्रवचन दे रहे है। अनेक सदेश एव पत्र भी उन्होने प्रदत्त किए है। उन सव प्रवचनो/लेखो/सदेशो एव काव्यो का स्वाध्याय कर पाच खडो मे लगभग २२०० पृष्ठों में सूक्तियो का संकलन तैयार गया किया है, जिसका नाम है—एक वूद : एक सागर। आज के तीव्रगामी युग मे इतने विशाल वाङ्मय का समग्र अध्ययन सवके लिए संभव नही है अत पाच खडो मे प्रकाशित यह सूक्ति-सकलन पाठको की इस समस्या का हल करने वाला है। इसकी हर वूद मे पाठक को अस्तित्व की पूर्णता का अनुभव होगा तथा साथ ही आचार्यवर की वहुश्रुतता का दिग्दर्शन भी।

किसी अन्य लेखक ने ४००० से अधिक विपयो पर ज्ञानामृत की वर्पा की हो, विपय की आत्मा का स्पर्श कर उसे जनभोग्य एव विद्वद्भोग्य वनाया हो, यह शोध का विषय है। किसी एक ही लेखक की २५ हजार सूक्तियो का संकलन भी आश्चर्य का विपय है।

इसके प्रत्येक खड मे मूर्धन्य विद्वान् एव समालोचक का मतव्य भी प्रकाशित है। इसके प्रथम खड मे विजयेन्द्र स्नातक कहते है—"आचार्य तुलसी के सार्थक प्रयोगो को सकलित करने का समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने स्तुत्य प्रयास किया है। यह प्रयास असाधारण है, श्रमसाध्य है, मंगलमय है, स्थायी महत्त्व का है। यह ग्रथ केवल पढने और मनोरजन का विपय न होकर मननीय, विचारणीय, वदनीय, सग्रहणीय और दैनन्दिन जीवन के पग-पग पर हमारा पथ प्रशस्त करने वाला है। मैंने इस ग्रथ की एक-एक वूद मे जीवन-ज्योति का प्रकाश विकीर्ण होते देखा है। एक-एक विन्दु में अमृत-विन्दु का आह्लाद रस पाया है। जीवन-जागृति, वल और वलिदान की भावना का जैसा आलोक इस ग्रथ की पक्ति-पक्ति मे समाया हुआ है, वैसा मुझे अन्यत्र मुलभ नही हुआ।"

दूसरे खड मे आचार्य विद्यानदजी तथा डा० रामप्रसाद मिश्र, तीसरे

मे पडित दलसुखभाई मालवणिया, चौथे खंड मे विश्वम्भरनाथ पाडे तथा पाचवे खड मे डा० नागेन्द्र तथा डा० निजामुद्दीन की समालोचना सलग्न है।

ये पाचो खड सभी वर्गो के व्यक्तियो को जीवन की खुराक दे सकेंगे, ऐसा विश्वास है।

तुलसी-वाणी

आचार्य तुलसी के प्रवचनों से मुनिश्री दुलीचंदजी ने एक सकलन तैयार किया, जिसका नाम है–'तुलसी वाणी'। इस पुस्तक मे लगभग ६८ शीर्षको पर विचार सकलित हैं। सकलयिता ने न इसे सूक्ति का आकार दिया है और न पूरे प्रवचन का, पर विचारो की दृष्टि से यह पुस्तक छोटी होते हुए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन प्रवचनाशो में विशुद्ध अध्यात्म की पुट है तो साथ ही सामयिक समस्याओ का समाधान भी है।

पथ और पाथेय

पथ पर चलने वाले हर पथिक को पाथेय की अपेक्षा रहती हैं। छोटी सी यात्रा मे भी पथिक अपने पाथेय के साथ चलता है फिर ससार के अनत पथ को पार करने के लिए तो पाथेय की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

'पथ और पाथेय' पुस्तक मुनिश्री श्रीचदजी द्वारा सकलित की गयी हैं। इसमे लगभग २३ विपयो पर आचार्य तुलसी की सूक्तियो एवं प्रेरक वाक्यों का सकलन है। पॉकेट वुक के रूप में इस पुस्तक को पाठक हर वक्त अपना साथी वनाकर प्रेरणा प्राप्त कर सकता है। आचार्य तुलसी की आध्यात्मिक गगरी से छलकने वाली ये वूदे पाठक के लिए पाथेय का कार्य करती रहेंगी।

सप्त व्यसन

व्यसन जीवन के लिए अभिशाप है। एक व्यसन भी जीवन के सारे सुखो को लील जाता है फिर सात व्यसनो से ग्रस्त मनुष्य का तो कहना ही क्या ? आचार्य तुलसी पिछले ६० सालो से व्यसनमुक्ति का अभियान छेड़े हुए है और उसमे कामयावी भी हासिल की है।

'सप्त व्यसन' नामक लघु पुस्तिका मे सात व्यसनो के ऊपर प्रेरक सूक्तियो का संकलन है। यह निवन्ध के रूप मे स्वतत्र रचना नही, अपितु संकलनात्मक है। अत्यन्त प्राचीन संग्रह होने पर भी इसके वाक्य भाषा की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध एवं प्रेरक है। उदाहरण के लिए निम्न सूक्तो को प्रस्तुत किया जा सकता है—

१. व्यसन आत्मा का अभिशाप है।

२. जुआ एक अग्नि है, उसकी ज्वाला व्यक्ति को साथ-साथ कर जला देती है ।
३. मास-भक्षण आत्मदुर्बलता का सूचक है ।
४. शराब एक व्यसन है, जिससे मनुष्य अपने ज्ञान और चेतना सब कुछ खो देता है ।

सीपी सूक्त

साहित्य जीवन के अनुभवो की सरस अभिव्यक्ति है । आचार्य तुलसी के साहित्य मे अनेक ऐसे वाक्य है, जिन्हें प्रेरक, मर्मस्पर्शी और जीवन्त कहा जा सकता है । उनके साहित्य से सूक्ति-सकलन का कार्य अनेक रूपो मे प्रकाशित हुआ है । उन्ही मे एक प्राचीन सकलन है— सीपी सूक्त ।

ये सूक्तिया किसी एक विषय से सम्बन्धित नही, पर समय-समय पर सन्त-मन मे उठने वाले विचारो की अभिव्यक्तिया है । इन वाक्यो मे मानवता का दिव्य सदेश है । ये विचार पाठक की सवेदनाओ को तो जागृत करते ही है साथ ही जनता को उद्‌बोधित करने का व्यग्य भी इनमे समाहित है ।

हस्ताक्षर

'हस्ताक्षर' आचार्य तुलसी के विचारो का नवनीत है । इसमे प्रतिदिन लिखे गए प्रेरक वाक्यो का संकलन है । ये विचार दिनांक एवं स्थान के साथ प्रस्तुत है, इसलिए इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व भी बढ़ जाता है । इसमे मुख्यत: सन् ७०,७१,८३,८४ एवं ८५ में लिखे गए अनुभूत वाक्यो का समाहार है । अनेक वाक्य महावीर एव आचार्य भिक्षु की वाणी के अनुवाद है—

खण जाणाहि—क्षण को पहचानो (बालोतरा ९ अग १९८३)

तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ?

महान् समुद्र को तर गया तो फिर तीर पर आकर क्यो रुका ?

(रायपुर, १० सित० १९७०)

कही कही सस्कृत के सुभाषितो को भी प्रतिदिन के विचार मे लिख दिया गया है । जैसे—

अग्निदाहे न मे दुःखं, न दुःख लोहताड़ने ।
इदमेव महद्‌दुःखं, गुञ्जया सह तोलनम् ।।

(पर्वतसर १८ जन० १९७१)

अवर वस्तु में भेल हुवै, दया में हिंसा रो नहि भेलो ।
पूरब नै पश्चिम रो मारग, किणविध खावै मेलो रे ।।

(भादलिया, २१ जन० १९७१)

इस प्रकार इसमे विविधमुखी सूक्तियों का सकलन है। इस कृति का महत्त्व इसलिए अधिक बढ जाता है चूंकि यह आचार्यप्रवर के हाथ से लिखे गए सूक्तो का सकलन है, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा चयनित सूक्त उसमे नही है।

शैक्षशिक्षा

आचार्य तुलसी एक जागरूक अनुशास्ता है। अपने अनुयायियो को विविध प्रेरणाए देने के लिए वे नई-नई विधाओं मे साहित्य-सर्जना करते रहते हैं। उन्होने लगभग १००० व्यक्तियों को अपने हाथों से संन्यास के मार्ग पर प्रस्थित किया है। अत· नवदीक्षित साधु-साध्वियो को संयम, अनुशासन, सहिष्णुता आदि जीवन-मूल्यो की प्रेरणा देने हेतु उनकी एक महत्त्वपूर्ण सकलित कृति है- 'शैक्षशिक्षा'।

सोलह अध्यायो मे विभक्त इस कृति मे आगम तथा आगमेतर अनेक ग्रथो के पद्यो का सानुवाद उद्धरण है तथा आचार्य भिक्षु, जयाचार्य द्वारा रचित महत्त्वपूर्ण गेय गीतो का समावेश भी है। इस ग्रंथ मे अनेक विषयों से सम्वन्धित जानकारी भी एक ही स्थान पर मिल जाती है। जैसे स्वाध्याय से सम्वन्धित प्रकरण मे स्वाध्याय, उसके भेद, स्वाध्याय का महत्त्व आदि। अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यो का समाहार होने से यह संकलित कृति प्रवचनकारो के लिए भी महत्त्वपूर्ण वन गयी है।

यह अप्रकाशित कृति जीवन को सुन्दर बनाने एवं मानवीय मूल्यों को लोकचित्त मे संचरित करने मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

आचार्य तुलसी के जीवन से संबंधित साहित्य

आचार्य तुलसी ने स्वय तो मानव-चेतना को जगाने के लिए विपुल साहित्य की सर्जना की ही है, पर दूसरो द्वारा उनके जीवन पर लिखा गया साहित्य भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। उन पर लिखे गए साहित्य को हम चार भागो मे बाट सकते है—

१ जीवनी-साहित्य
२ यात्रा-साहित्य।
३ सस्मरण-साहित्य।
४ अभिनन्दन ग्रथ. पत्र-पत्रिकाओ के विशेपाक एव स्वतत्र पत्रिकाए।

यहा हम उन पर लिखे गए ग्रन्थो एव पुस्तिकाओ का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे शोध विद्यार्थी उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को जानने के लिए प्रामाणिक स्रोतो का ज्ञान कर सके।

जीवनी-साहित्य

आचार्य तुलसी ने अपने प्रत्येक क्षण को जिस चैतन्य एव प्रकाश के साथ जीया है, वह भारतीय ऋषि परम्परा के इतिहास का महत्त्वपूर्ण अध्याय है। उन्होने स्वय ही प्रेरक जीवन नही जीया, लोकजीवन को ऊचा उठाने का जो हिमालयी प्रयत्न किया है, वह भी अद्भुत एव आश्चर्यकारी है। अपनी कलात्मक अगुलियो से उन्होने इतने नए इतिहासो का सृजन किया है कि उन सबका प्रस्तुतीकरण किसी एक ग्रंथ मे करना समुद्र को बाहो से तरने का प्रयत्न जैसा होगा। आचार्यश्री के जीवन पर बहुत साहित्य लिखा गया है उनमे जीवनीग्रन्थो का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने अपनी पुस्तक living with purpose मे भारत के १४ महापुरुपो का जीवन अकित किया है। उसमे एक नाम आचार्यश्री तुलसी का है। इसमे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन चौदह व्यक्तियो मे वर्तमान मे एकमात्र आचार्य तुलसी ही अपने कर्तृत्व एव नेतृत्व से देश और समाज को लाभान्वित कर रहे है। राष्ट्रपति जी ने उनके अणुव्रत अनुशास्ता रूप को ही अधिक उभारा है।

आचार्यश्री तुलसी (जीवन पर एक दृष्टि)

आचार्यश्री के जीवन पर लिखा गया संभवतः यह प्रथम जीवनी ग्रंथ है। इसके लेखक मुनिश्री नथमलजी (वर्तमान युवाचार्य महाप्रज्ञ) हैं। आज से ४२ वर्ष पूर्व (१९५२) लिखी गयी यह पुस्तक मुख्यतः तीन भागो मे विभक्त है—बालजीवन, मुनिजीवन एवं आचार्य जीवन।

प्रथम दो खड संस्मरण प्रधान अधिक है किन्तु तीसरे 'आचार्य' खंड मे उनके विराट् व्यक्तित्व का आकलन प्रस्तुत है। इसमें केवल प्रशस्ति नही, अपितु उनके व्यक्तित्व के विविध पहलुओ की विचारात्मक अभिव्यक्ति है। कहा जा सकता है कि लेखक ने केवल श्रद्धा के बल पर नही, अपितु उनके व्यक्तित्व को विचारात्मक प्रस्तुति दी है। प्रस्तुत जीवनी ग्रन्थ में आचार्य तुलसी के जीवन से सम्बन्धित अनेक संस्मरणों का समावेश कर देने से अत्यन्त रोचक हो गया है। इसकी भूमिका में प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रजी आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व को निम्न शब्दों मे प्रस्तुति देते है—"तुलसीजी को देखकर लगा कि यहां कुछ है, जीवन मूर्च्छित और परास्त नही है। व्यक्तित्व मे सजीवता है और एक विशेप प्रकार की एकाग्रता। वातावरण के प्रति उनमें ग्रहणशीलता है और दूसरे व्यक्तियो एवं समुदायों के प्रति सवेदनशीलता।"

आचार्यश्री तुलसी : जीवन और दर्शन

यह मुनि नथमलजी (वर्तमान युवाचार्य महाप्रज्ञ) का आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व को प्रस्तुति देने वाला दूसरा जीवनी ग्रन्थ है। लगभग ३१ वर्ष पूर्व लिखा गया यह जीवनी ग्रन्थ १० अध्यायों में विभक्त है।

इस ग्रंथ में श्रद्धा एव तर्क का समन्वय देखा जा सकता है। लेखक स्वयं प्रस्तुति में अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहते हैं—"मैं आचार्यश्री को केवल श्रद्धा की दृष्टि से देखता तो उनकी जीवन-गाथा के पृष्ठ दस से अधिक नही होते। उनमें मेरी भावना का व्यायाम पूर्ण हो जाता। आचार्य श्री को मैं केवल तर्क की दृष्टि से देखता तो उनकी जीवन-गाथा सुदीर्घ हो जाती, पर उसमे चैतन्य नही होता।" इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमे आचार्यश्री के व्यक्तिगत डायरियो से अनेक स्थल उद्धृत है डायरियो के उद्धरणो मे अनेक नई जानकारियां प्राप्त होती हैं।

धर्मचक्र का प्रवर्त्तन

यह युवाचार्य महाप्रज्ञ द्वारा लिखित तीसरा जीवनी ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें 'आचार्यश्री तुलसी . जीवन और दर्शन' के काफी अशो का समाहार कर लिया गया है, फिर भी ३१ वर्षो के बीच आचार्यश्री ने अपनी

कर्तृत्वशक्ति से जो भी अवदान समाज एव राष्ट्र को दिए हैं, उनका समावेश भी इसमे कर दिया गया है। साहित्यिक शैली मे लिखा गया यह जीवनीग्रन्थ आचार्यश्री के व्यक्तित्व एव कर्तृत्व की कुछ रेखाओ को खीचने मे समर्थ हो सका है, क्योकि स्वय युवाचार्यश्री इस वात को स्वीकारते है—"इतना लम्वा मुनि जीवन, इतना लम्बा आचार्यपद, इतना आध्यात्मिक विकास, इतना साहित्य-सृजन, इतने व्यक्तियो का निर्माण वस्तुत ये सव अद्भुत हैं। आचार्यश्री की जीवन-गाथा आश्चर्यो की वर्णमाला से आलोकित एक महालेख है।" ऐसे विराट् व्यक्तित्व को मात्र ३७१ पृष्ठो मे बांधना संभव नही है पर वर्तमान मे उनके जीवन पर प्रकाश डालने वाले जीवन-वृत्तो मे यह सर्वोत्कृष्ट जीवनीग्रन्थ कहा जा सकता है।

यह ग्रन्थ मुख्यत· ७ अध्यायो मे विभक्त है। अध्याय अनेक शीर्षको में विभक्त है। परिशिष्ट मे उनके साहित्य की सूची तथा चातुर्मास एव मर्यादा महोत्सव के स्थान एवं समय का भी उल्लेख हैं।

इसमे स्थान-स्थान पर आचार्यश्री के उद्धरणो का प्रयोग हुआ है, इस कारण यह वैचारिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध हो गया है।

आचार्यश्री तुलसी "जैसा मैंने समझा"

सीताशरण शर्मा द्वारा लिखी गयी यह जीवनी वहुत सरल एव सहज भाषा मे निबद्ध है। सम्पूर्ण ग्रन्थ छह भागो मे विभक्त है—

- जव वालक थे
- जव मुनि वने
- जव आचार्य वने
- जव व्यापक वने
- जनता की नजरो मे
- नेताओ की नजरो मे

इस ग्रन्थ की एक विशेषता है कि इसका लेखक कोई जैन या उनका अनुयायी नही, अपितु सनातन धर्म मे आस्था रखने वाला है। भाषा मे साहित्यिकता नही है, पर श्रद्धा से पूरित हृदय से लिखी जाने के कारण इसमे स्वाभाविकता है तथा वच्चो को सम्वोधित करके लिखी जाने के कारण उसमे सरलता एव सरसता का समावेश हो गया है।

आचार्य तुलसी : जीवन दर्शन

मुनिश्री वुद्धमलजी आचार्य तुलसी के प्रारम्भिक छात्रो में प्रतिभाशाली छात्र रहे है। मुनिश्री द्वारा लिखी गयी यह जीवनी दस अध्यायो मे विभक्त है। अध्याय भी अनेक उपशीर्षको मे वंटे हुए है। इसमें मुनिश्री ने वहुत सरस, सरल एव प्राञ्जल भाषा मे आचार्यश्री के व्यक्तित्व को प्रस्तुति दी

है। इसमे उनके कर्तृत्व के अनेक आयाम जैसे पदयात्राएं, साहित्य-सृजन, अणुव्रत आदोलन, नया मोड आदि का भी विवेचन प्रस्तुत किया है। उनके जीवन के अनेक प्रेरक संस्मरणो को जोडने से यह जीवनीग्रथ अत्यन्त उपयोगी वन गया है। ग्रन्थ के अन्त मे तीन महत्त्वपूर्ण परिशिष्ट भी जोडे गए हैं।

आज से ३१ वर्ष पूर्व लिखित यह पुस्तिका उनके जीवन-दर्शन को समझने मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आचार्य तुलसी : जीवन-यात्रा

पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित इस जीवनवृत्त मे आचार्य तुलसी के महनीय व्यक्तित्व की सक्षिप्त झाकी प्रस्तुत की गयी है। इसमे महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी की कलम ने तो उनके सतरगे व्यक्तित्व को उभारा ही है साथ ही अनेक रगीन चित्रो को देने से उनका व्यक्तित्व अधिक मुखर हो उठा है। आहार, विहार, प्रवचन, स्वाध्याय, ध्यान, आसन आदि अनेक क्रियाओ से सम्वन्धित रंगीन चित्रो को देने से यह पुस्तक नयनाभिराम एव हृदयग्राही वन पडी है। अपने दूसरे सस्करण (१९९२) में यह पुस्तक विना चित्रो के केवल जीवनी रूप में छपी है।

अमृत पुरुष

आचार्य काल के ५० वर्ष सम्पन्न होने पर उनके अभिनंदन मे विशालस्तर पर अमृत महोत्सव की आयोजना की गयी। समाज के गरल को पीने वाले इस अमृत पुरुप के जीवन के विविध आयामो की जीवन्त प्रस्तुति 'अमृत पुरुप' पुस्तक मे हुई है। क्योकि इस पुस्तक मे शव्द कम, पर चित्र अधिक वोल रहे है। विशिष्ट व्यक्तियो से राष्ट्रीय एवं सामाजिक सदर्भ मे चिन्तन-विमर्श करते हुए तथा विभिन्न मुद्राओ मे कार्य करते हुए उनके चित्र दर्शक को वाध लेते है। साथ ही इसमें अन्य विचारकों के विचारो को भी उद्धृत किया है। ये विचार उनको सम्पूर्ण मानव जाति के महान् उद्धारक के रूप मे प्रतिष्ठित करते है। निःसंदेह एक अपरिचित व्यक्ति भी इस पुस्तक मे उनकी छवि को देखकर श्रद्धा से अभिभूत हुए विना नही रह सकेगा।

आचार्यश्री तुलसी : जीवन झांकी

छगनलाल शास्त्री द्वारा लिखी गयी यह लघु पुस्तिका आचार्यश्री के अणुव्रत अनुशास्ता रूप को उजागर करने वाली है। इस आलेख मे शास्त्रीजी ने उनकी पदयात्राओ का भी सक्षिप्त व्यौरा प्रस्तुत किया है।

एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व : आचार्यश्री तुलसी

इस पुस्तिका की लेखिका साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी है। उन्होने

इस आलेख मे संक्षेप मे उनके कर्तृत्व को उजागर करने का प्रयत्न किया है। आचार्यकाल के पचास वर्ष पूरे होने पर 'अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति' द्वारा उनके जीवन को उजागर करने का यह लघु प्रयास किया गया।

आचार्यश्री तुलसी : कलम के घेरे में

इस बुकलेट की लेखिका साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी है। इसमे मुख्य रूप से आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण पहलू—साहित्य-सृजन को उजागर किया गया है। यह पुस्तिका अखिल भारतीय तेरापथ युवक परिषद् के 'सत्संस्कार माला' का आठवां पुष्प है।

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी

वच्चो को आचार्यश्री के जीवन से परिचित कराने के लिए मुनिश्री विजयकुमारजी द्वारा लिखी गयी यह जीवनी कामिक्स के रूप मे है। ५० पृष्ठो मे इसमे आचार्यश्री के सम्पूर्ण जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओ को रेखाचित्रो के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। वालको मे सत्सस्कार भरने तथा एक महापुरुष के जीवन से परिचित कराने की दृष्टि से यह कृति वहुत उपयोगी है।

इन स्वतत्र जीवनी ग्रन्थो एव लघु पुस्तिकाओ के अतिरिक्त अन्य स्रोतो से भी उनके जीवन-दर्शन को जाना जा सकता है। मुनिश्री नवरत्नमलजी ने तेरापथ मे दीक्षित सभी साधु-साध्वियो के इतिहास को शासन-समुद्र ग्रंथमाला के रूप मे निवद्ध कर दिया है, उसमे आचार्यश्री का जीवन चौदहवे भाग में है। मुनिश्री वुद्धमल्लजी ने 'तेरापथ का इतिहास' पुस्तक मे आचार्यश्री के जीवनवृत्त को प्रस्तुत किया है।

साध्वी सघमित्राजी के 'जैन धर्म के प्रभावक आचार्य' पुस्तक से सरस शैली मे उनके जीवन के वारे मे जानकारी प्राप्त की जा सकती है। साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी की साहित्यिक कृति 'दस्तक शब्दो की' पुस्तक मे अनेक लेख आचार्यश्री के विविध आयामी व्यक्तित्व को साहित्यिक शैली मे उजागर करते है।

आचार्य तुलसी केवल भारत के लिए ही नही, विदेशी लोगो के लिए भी आकर्षण एव श्रद्धा के केन्द्र है। अत अग्रेजी भाषा मे मुनि वुद्धमलजी की Acharya Shri Tulsi, मुनि महेन्द्रकुमारजी की Light of India, सोहनलाल गाधी की Acharya Tulsi (A peacemaker par Excellence), Acharya Tulsi (Fifty years of Selfless Dedication) आदि जीवनी ग्रंथ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

यात्रा-साहित्य

पदयात्रा जैन मुनियो की जीवन-शैली का अनिवार्य तत्त्व है। यह केवल पद-घर्षण नही, अपितु उनकी साधना और तपस्या का जीवन्त रूप है। पदयात्रा से दृष्टि ही पैनी नही बनती, अनुभव का खजाना भी समृद्ध होता है तथा अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क से मानव-स्वभाव के विश्लेपण में सहायता मिलती है।

पदयात्रा के अनेक उद्देश्य हो सकते है। कुछ लोग केवल पर्यटन के लिए यात्रा करते है। कुछ लोग राजनैतिक एव व्यावसायिक दृष्टि से यात्रा करते है तो कुछ कीर्तिमान् स्थापित करने के लिए भी। जैन मुनियो की यात्रा सस्कृति को उज्जीवित करने वाली होती है, क्योंकि उनका एक मात्र उद्देश्य होता है—आत्म-साधना एव सम्पूर्ण मानवता का कल्याण।

आचार्य तुलसी इस सदी के कीर्तिधर यायावर है, जिन्होने भारत के लगभग सभी प्रांतो की पदयात्रा की है। गांव-गाव, नगर-नगर एवं प्रात-प्रांत में घूमते हुए उन्होने मैत्री, समन्वय एव सद्भाव की प्रतिप्ठा करने मे अपूर्व योगदान दिया है तथा लाखो-लाखों लोगो से सीधा सम्पर्क स्थापित कर उन्हे व्यसनमुक्त जीवन जीने की प्रेरणा दी है। उनके इस चरैवेति-चरैवेति जीवनक्रम को देखकर निम्न वेदमन्त्र की सहसा स्मृति हो उठती है—**'पश्य सूर्यस्य श्रेमाणं, यो न तन्द्रयते चरन्'** अर्थात् सूर्य चिरकाल से श्रमण कर रहा है पर कभी थकता नही, चलता ही जाता है।

आचार्य तुलसी अपनी पदयात्रा के मुख्य तीन उद्देश्य मानते है—धर्मक्राति, धर्म-समन्वय तथा मानवता का विकास। साध्वीप्रमुखाजी के शब्दों में आचार्य तुलसी की यात्रा स्वार्थ और परार्थ दोनो भूमिकाओ से ऊपर परमार्थ की यात्रा है। अपनी यात्रा का प्रयोजन बताते हुए एक प्रवचन मे आचार्य तुलसी स्वय कहते है—'भापा, रग एव भौगोलिकता मे बटी मानव जाति क्या सचमुच एक है, इस तथ्य की शोध करने के लिए मैं गांव-गांव मे घूम रहा हू।' इस उद्धरण से स्पष्ट है कि उनके मन मे मानव जाति की एकता की कितनी तडप है?

डा० निजामुद्दीन आचार्यश्री की यात्रा के वारे मे अपनी विचाराभिव्यक्ति इन शब्दो मे करते है—'आचार्यश्री की यात्रा धर्मयात्रा है, मैत्रीयात्रा है, प्रेमयात्रा है, समतायात्रा है और सेवायात्रा है।' दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य विद्यानन्दजी कहते है—'आचार्य तुलसी ने अल्पकाल मे ही सम्पूर्ण भारत की पदयात्रा कर अध्यात्म से प्रेरित लोक कल्याणकारी भावनाओ का सकलन किया है और भारतीय जीवन मे नैतिकशक्ति का संचार किया है।'

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी आचार्य तुलसी की लम्वी यात्राओ मे सहयात्री रही है। उन्होंने यात्रा के सस्मरणो एव अनुभवो को अपनी कलम की नोक से उतारने का प्रयत्न किया है। यात्रा मे घटित घटनाओ एवं तथ्यो को इतिहास की भाति नीरस नही, अपितु कहानी की भाति सरस शैली मे प्रस्तुत किया है। यात्रावृत्तो मे उन्होने भौगोलिक एव सास्कृतिक जानकारी तो दी ही है साथ ही आचार्य तुलसी एव विशिष्ट व्यक्तियो के वक्तव्यो का साराश भी जोड दिया है, जिससे कि यात्राग्रन्थ वैचारिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। उनकी लेखनी इतनी सजीव है कि इन ग्रन्थो को पढ़ते समय पाठक स्वय उन स्थानो की यात्रा करने लगता है।

विद्वानो ने यात्रा-साहित्य मे निम्न तत्त्वो का होना अनिवार्य माना है—स्थानीयता, तथ्यपरकता, आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पनाप्रियता और रोचकता। यात्रा साहित्य के ये सभी तत्त्व उनके साहित्य मे प्रचुर मात्रा मे मिलते है।

इन यात्रा ग्रन्थो का वैशिष्ट्य आचार्य तुलसी की निम्न पक्तियो को पढ़कर समझा जा सकता है—"यात्रा ग्रन्थो के शब्दो का सयोजन, भापा का माधुर्य एव भावो की सहज सजावट जन-जन के लिए मनोहारी है। ···साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा के यात्रा-साहित्य ने हमारे धर्मसघ की साहित्यिक गतिविधियो मे एक नया पृष्ठ जोडा है।"

इन ग्रन्थो मे परिशिष्ट जोड़ने से ये ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हो गए है। पदयात्रा के दौरान आए गाव, उनकी दूरी तथा उन गावों मे पडाव डालने की तारीख का उल्लेख भी इनमे है।

दक्षिण के अंचल मे

यह महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी द्वारा लिखित प्रथम यात्राग्रन्थ है। इस वृहत्काय ग्रन्थ मे मुख्यतः आचार्य तुलसी की दक्षिण प्रदेश की यात्रा का वर्णन है। यह ग्रन्थ लगभग १००० पृष्ठो को अपने भीतर समेटे हुए हैं।

यात्रा का क्रम राजस्थान से प्रारम्भ होकर गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आध्रप्रदेश, उड़ीसा और मध्यप्रदेश से होता हुआ पुन. राजस्थान मे सम्पन्न होता है। अत. लेखिका ने इन सव प्रातों के आधार पर इस यात्रा ग्रन्थ को अनेक खण्डो मे वाट दिया है। इसमे तीन महत्त्वपूर्ण परिशिष्ट भी जुडे हुए है। प्रथम परिशिष्ट मे सम्पूर्ण दक्षिण यात्रा के दौरान समय-समय पर आचार्य तुलसी द्वारा आशुकवित्व के रूप मे रचित दोहो का संकलन है।

दूसरे परिशिष्ट मे इस यात्रा मे भारत सरकार के संस्थानो से मिले सहयोगात्मक राजकीय निर्देश-पत्र है। तीसरे परिशिष्ट मे गावों के नाम,

उन गावों मे पहुचने की तारीख तथा कितने मील की पदयात्रा हुई, इसकी सूचनाए है।

पांव-पांव चलने वाला सूरज

पजाव भारत का उर्वर क्षेत्र है। क्षेत्र की भांति यहा का मानस भी उर्वर है। पजाव यात्रा के दौरान आचार्य तुलसी ने जो अध्यात्म और सयम की पौध लगाई, उसे सिंचन दिया, उस सवका आलेखन हुआ है—'पाव पाव चलने वाला सूरज' मे। यात्रापथ मे घटित घटना-प्रसंगो को लेखिका ने जिस सूक्ष्मता के साथ उकेरा है, वह पठनीय है। यात्राग्रन्थ की शृंखला मे यह दूसरा ग्रन्थ है।

५०४ पृष्ठों का यह ग्रन्थ पंजावी भाइयों को सदैव एक महापुरुष द्वारा की गयी ऐतिहासिक यात्रा की स्मृति कराता रहेगा।

जब महक उठी मरुधर माटी

इस ग्रन्थ मे मारवाड़-यात्रा का वर्णन है। लगभग ४०५ पृष्ठों की इस पुस्तक मे अनेक सन्देश, वक्तव्य एवं संस्मरणों का समावेश है। साथ ही कुछ दुर्लभ चित्र देने से यह ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हो गया है। इसमे कुल ३३७ दिनो की यात्रा का विवरण है। सम्पूर्ण पुस्तक अनेक छोटे-छोटे आकर्पक शीर्पको मे वंटी हुई है।

बहता पानी निरमला

इसमे आचार्य तुलसी की एक वर्प की यात्रा का जीवन्त चित्र उकेरा गया है। प्रस्तुत यात्राग्रन्थ मे मुख्यत· गुजरात, मरुधर एव थोड़ी-सी थली यात्रा का वर्णन है। ३८१ पृष्ठो की यह पुस्तक राजस्थान और गुजरात इन दो भागो मे वंटी है। जैसा कि इस कृति का नाम है—'वहता पानी निरमला' वैसा ही इसमे यात्रा का प्रवाहपूर्ण वर्णन गुंफित है। कही भी नीरसता वोझिलता या उवाऊपन दृग्गोचर नही होता।

परस पांव मुसकाई घाटी

मेवाड की पावनधरा पर आचार्य तुलसी द्वारा हुए चरणस्पर्श की सजीव प्रस्तुति है—'परस पाव मुसकाई घाटी'। इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक एव सांस्कृतिक दृष्टि से अतिरिक्त महत्त्व है, क्योंकि इसमे अमृत-महोत्सव के दो चरणो का वर्णन है। आचार्यकाल के पचास साल पूर्ण होने के अवसर पर अमृत कलश पदयात्रा की आयोजना हुई, जिसमे लाखो लोगों ने संकल्प-पत्र[1]

---

१ अमृत सकल्पपत्र मे पाच नियम थे—
(१) मद्य-निपेध (२) दहेज-उन्मूलन (३) मिलावट-निरोध
(४) अस्पृश्यता-निवारण (५) भावात्मक एकता।

को भरकर अपनी श्रद्धा आचार्यश्री के चरणो मे अर्पित की। ४८५ पृष्ठो के इस यात्रावृत्त मे पाठक को मेवाड़ी जनता के उत्साह, आस्था एव सकल्प के साथ एक महापुरुष की तेजस्विता, पुरुषार्थ एव प्रभावकता का सशक्त एव जीवन्त दिग्दर्शन भी मिलेगा।

अमरित बरसा अरावली में

आचार्यकाल के ५० वर्ष पूर्ण होने पर समाज ने अमृत महोत्सव की आयोजना की। चूकि आचार्य तुलसी मेवाड की पुण्यधरा गगापुर मे पट्टासीन हुए थे, अतः मेवाड़ी लोगो को सहज ही यह महत्त्वपूर्ण आयोजन मनाने का अवसर मिल गया। अमृत महोत्सव के इस आयोजन को चार चरणो मे बाटा गया था, जो मेवाड के विशिष्ट क्षेत्रो मे मनाया गया तथा समापन उत्सव 'लाडनू' मे मनाया गया। इस यात्राग्रन्थ मे आचार्य तुलसी की उसी मेवाड-यात्रा का सजीव चित्र खचित हुआ है। एक दृष्टि से इसे 'जब महक उठी मरुधर माटी' का ही पूरक यात्रा ग्रन्थ कहा जा सकता है। ३८१ पृष्ठो मे निबद्ध यह ग्रन्थ ऐतिहासिक, सास्कृतिक, भौगोलिक आदि अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण सामग्री पाठको के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी ने लगभग ३१०० से अधिक पृष्ठो मे यात्रावर्णन लिखकर एक कीर्तिमान् स्थापित किया है। उनसे पूर्व भी कुछ लेखको ने आचार्यश्री की अमर यात्राओ के इतिहास को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। उनमे प्रमुख लेखक है—मुनि मधुकरजी, मुनि श्रीचंदजी 'कमल', मुनि सुखलालजी, मुनि सागरमलजी, मुनि गुलाबचदजी 'निर्मोही', मुनि किशनलालजी, मुनि धर्मरुचिजी, साध्वी कानकुमारीजी आदि। मुनि श्रीचंदजी 'कमल' एवं मुनि सुखलालजी द्वारा लिखित यात्राएं प्रकाशित हो चुकी है, जिनका सक्षिप्त विवरण हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं पर शेष लेखको की यात्राए जैनभारती के 'आखो देखा कानो सुना' तथा 'मेवाड़ पाद विहार का प्रथम सप्ताह, द्वितीय सप्ताह आदि शीर्षको मे पढ़ी जा सकती है, जो अभी तक प्रकाशित नही हो पाई हैं।

जनपद विहार

आचार्य तुलसी की प्रथम दिल्ली यात्रा इतनी प्रभावी एव सफल रही कि उसने अग्रिम यात्राओ के लिए सशक्त भूमिका तैयार कर दी। साथ ही अणुव्रत आदोलन को भी इतनी व्यापक प्रसिद्धि मिली कि उसकी गूंज विदेशो तक पहुंच गई। 'जनपद विहार, भाग-२' मे आचार्य तुलसी की प्रथम दिल्ली-यात्रा का इतिहास सुरक्षित है। मात्र दो महीनो के दिल्ली-प्रवास के विविध कार्यक्रम, अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो से हुई भेंट-वार्ता तथा उनके

वक्तव्यो का सुन्दर समाकलन प्रस्तुत पुस्तक मे हुआ है।

जन-जन के बीच, आचार्य तुलसी भाग १,२

मुनि सुखलालजी द्वारा लिखित इन दो लघु यात्रावृत्तो मे राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा बगाल (कलकत्ता) की यात्रा का वर्णन है। लगभग ३६ वर्ष पूर्व प्रकाशित ये दोनों पुस्तकें ऐतिहासिक दृष्टि से अनेक तथ्यो एव सस्मरणो को अपने भीतर समेटे हुए हैं। यह यात्रा अणुव्रत आदोलन को जन-जन तक पहुंचाने में काफी कामयाब रही, ऐसा इन ग्रन्थो मे स्पष्ट है।

बढ़ते चरण

मुनि श्रीचंदजी 'कमल' को गुरुचरणो मे रहने का अलभ्य अवसर मिलता रहा है। 'बढते चरण' ग्रन्थ मे उन्होने आचार्य तुलसी की ४० दिनो की यात्रा का वर्णन प्रस्तुत किया है। सन् १९५९ मे बंगाल और बिहार की पदयात्रा के दौरान घटी घटनाओ, अनुभवो एव सस्मरणों को इस पुस्तक मे सरल एवं सरस भाषा में प्रस्तुत किया है।

पदचिह्न

मुनि श्रीचद 'कमल' द्वारा लिखित इस पुस्तक मे १९६२,६३ की यात्रा का वर्णन है। यह यात्रा देशनोक से प्रारम्भ होकर राजनगर मे सम्पन्न होती है। लगभग ४०० पृष्ठों की इस पुस्तक मे मुनि श्रीचंदजी ने अनेक कार्यक्रमो, घटनाओ एव क्रातिकारी प्रवचनो का भी समावेश किया है। पुस्तक के नाम की सार्थकता इस बात से है कि आचार्यश्री के 'पदचिह्न' न केवल इस धरती पर अपितु यात्रा के दौरान लोगो के दिलों मे भी अंकित हुए हैं।

जोगी तो रमता भला

मुनि सुखलालजी द्वारा लिखित यह यात्रावृत्त सन् १९८१ से १९८६ तक के यात्रापथ की घटनाओ को अपने भीतर समेटे हुए है। आचार्यश्री के आस-पास प्रतिदिन अनेको संस्मरण घटित हो जाते है पर इस दृष्टि से मुनिश्री ने संभवत: इतना ध्यान नही दिया। यदि इस ग्रन्थ मे उनके संस्मरणों की पुट रहती तो यह ग्रन्थ और भी अधिक रोचक एवं प्रेरक रहता। बीच-बीच में कुछ महत्त्वपूर्ण भेंटवार्ताएं तथा विशेष कार्यक्रमो की रिपोर्ट भी संकलित है। लेखक ने इस ग्रन्थ को यात्रावृत्त न बनाकर विचारप्रधान अधिक लिखा हैं, जैसा कि स्वकथ्य मे वे स्वयं स्वीकारते है। आचार्य तुलसी के विचारो की सरस प्रस्तुति लेखक ने की है, उसमे कोई सन्देह नही है।

कहा जा सकता है कि सभी यात्रा-लेखको ने यात्रा-काल मे आचार्य तुलसी के साहस, आत्मविश्वास, मनोबल एवं प्रतिकूल परिस्थिति को अपने अनुकूल बना लेने की क्षमता एव धैर्य का सजीव एवं यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

आचार्य तुलसी पदयात्रा-मान-चित्रावली

धर्मचंदजी संचेती (सरदारशहर) द्वारा अत्यन्त श्रमपूर्वक आचार्यश्री की पदयात्रा को मानचित्र (नक्शा) के द्वारा दरसाया गया है। इसमें सन् १९८५ तक की हुई यात्राओ का सकेत है। यद्यपि इस ग्रन्थ को यात्रावृत्त नही कहा जा सकता पर आचार्यश्री के यात्रापथ को दरसाने वाला यह ग्रथ ऐतिहासिक दृष्टि से संग्रहणीय एवं उपयोगी है।

संस्मरण-साहित्य

महापुरुष के एक दिन का महत्त्व सामान्य व्यक्ति के सैकडो दशको से भी अधिक होता है। उनके आसपास इतनी प्रेरणाए विखरी रहती है कि उनका प्रत्येक आचरण, प्रत्येक शब्द एक संस्मरण का रूप धारण कर लेना है।

साहित्य की सबसे रोचक एवं सरस विधा सस्मरण है। यह जीवन्त प्रेरणा देती है। अत हर वर्ग का पाठक इससे लाभान्वित होता है। वैसे तो हर व्यक्ति के जीवन मे सस्मरण घटित होते है, पर महापुरुषो का जीवन तो सस्मरणो का अखूट खजाना ही होता है।

आचार्य तुलसी के ऊर्जस्वल जीवन के प्रतिदिन के सस्मरणो का आकलन यदि सलक्ष्य किया जाता तो उनकी सख्या हजारो मे होती। क्योकि उनकी पकड, उनकी प्रेरणा, उनके शब्द तथा घटना को विधायक भाव से देखने की विलक्षण दृष्टि—ये सब ऐसे तत्त्व हैं, जो प्रतिदिन अनेक सस्मरणो को उत्पन्न करते रहते है। आचार्य तुलसी के कुछ सस्मरणो का संकलन महाश्रमण मुनि मुदित कुमारजी, मुनि मधुकरजी, मुनि श्रीचदजी, मुनि गुलावचदजी तथा साध्वी कल्पलताजी आदि ने किया है। मुनि मधुकरजी की अभी तक कोई स्वतंत्र पुस्तक प्रकाशित नही हुई है पर जैन भारती मे 'मेवाड यात्रा के मधुर सस्मरण' एव तेरापंथ टाइम्स मे 'कुछ देखा : कुछ सुना' नाम से वे सैकडो सस्मरणो का सकलन कर चुके है। इसके अतिरिक्त यात्रा-ग्रन्थो एव जीवनवृत्तो मे भी अनेक सस्मरण सकलित हैं।

प्रकाशित सस्मरणों की अपेक्षा अभी अप्रकाशित सस्मरणो की सख्या अधिक है, इतना होने पर भी यह वात नि संकोच कही जा सकती है कि यदि सलक्ष्य जागरूकता के साथ इस महापुरुष के जीवन से जुडे सस्मरणो को कलम की नोक से उतारा जाता तो भावी पीढी को एक नयी रोशनी मिलती। सस्मरण साहित्य के अन्तर्गत निम्न पुस्तके रखी जा सकती हैं—

१ रश्मिया—मुनि श्रीचद 'कमल'
२. वोलते चित्र—मुनि गुलावचद
३ आचार्य श्री तुलसी : अपनी ही छाया मे—मुनि सुखलाल

४. संस्मरणों का वातायन—साध्वी कल्पलता।
५. आस्था के चमत्कार।[1]

अभिनन्दन ग्रंथ एवं पत्र-पत्रिका विशेषांक

आचार्यश्री के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को उजागर करने वाले साहित्य का चौथा स्रोत अभिनंदन ग्रंथ, विशिष्ट सामयिक स्मारिकाएं तथा पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक हैं। किसी एक व्यक्ति पर उनके जीवन-काल में ही समाज ने इतने विशेषांक निकाले हों या खुले शब्दों मे उनके कर्तृत्व का इतना मूल्यांकन किया हो, यह इतिहास का दुर्लभ दस्तावेज है। अब तक उनके अभिनंदन मे जैन भारती, अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, युवादृष्टि, तुलसी प्रज्ञा, तेरापंथ टाइम्स तथा विज्ञप्ति के सैकड़ों विशेषांक निकल चुके हैं। उन सबका ब्यौरा प्रस्तुत करना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। अनेक राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पत्र-पत्रिकाओं ने भी आचार्य तुलसी को विशेषांक के रूप मे अपनी श्रद्धा अर्पित की है। यहां गद्य रूप मे प्रकाशित मुख्य अभिनंदन-ग्रंथों एवं कुछ मुख्य स्मारिकाओं का परिचय दिया जा रहा है—

आचार्यश्री तुलसी अभिनंदन ग्रंथ

आचार्यकाल के २५ वर्ष पूर्ण होने पर धवल समारोह के अवसर पर एक विशालकाय अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित किया गया। यह अभिनंदन ग्रंथ चार अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय मे आचार्यश्री के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर अनेक मूर्धन्य विचारकों एवं साधु-साध्वियों के विचारों का समाहार है। इसमे आचार्यश्री के ऊर्जस्वल एवं तेजस्वी व्यक्तित्व की परिक्रमा अनेक लेखों, कविताओं, गीतों, संस्मरणों एवं अनुभूतियों के माध्यम से हुई है।

दूसरा अध्याय 'जीवनवृत्त' नाम से है, जो मुनिश्री बुद्धमलजी द्वारा लिखित 'आचार्यश्री तुलसी : जीवन दर्शन' पुस्तक का ही संक्षिप्त रूप है। तृतीय 'अणुव्रत' अध्याय में अणुव्रत आंदोलन के बारे में अनेक विद्वानों, राजनेताओं एवं साहित्यकारों के विचार एवं प्रतिक्रियाएं संकलित हैं।

चतुर्थ 'दर्शन और परंपरा' खंड मे दार्शनिक और जैन परम्परा के इतिहास से संबंधित अनेक शोधपूर्ण निबंधों का समावेश है।

यह अभिनंदन ग्रंथ उपराष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्लि राधाकृष्णन् द्वारा १ मार्च १९६२ को गंगाशहर की पुण्यधरा पर आचार्यश्री को समर्पित किया गया।

---

१. इस पुस्तक को पूर्ण रूप से संस्मरण-साहित्य के अन्तर्गत नहीं रख सकते पर आचार्य तुलसी के नाम-स्मरण से होने वाली चामत्कारिक घटनाओं का उल्लेख है, अतः इसे संस्मरण साहित्य के अन्तर्गत रखा है।

अभिनंदन ग्रथो की परंपरा में यह ग्रंथ अपना विशिष्ट स्थान रखता है। क्योकि इतना जीवन्त एवं मुखर कर्तृत्व वहुत कम अभिनंदन ग्रथो मे देखने को मिलता है।

आचार्यश्री तुलसी षष्टि पूर्ति अभिनंदन पत्रिका

आचार्य तुलसी के गौरवशाली जीवन के ६० वे वसन्त के प्रवेश पर देश ने षष्टिपूर्ति अभिनंदन का कार्यक्रम वडे उल्लास के साथ मनाया। इस अवसर पर एक पुस्तकाकार स्मारिका का प्रकाशन किया गया, जिसमे देश के मूर्धन्य साहित्यकार, राजनेता तथा धर्मगुरुओ के लेखो का संकलन है, जो उन्होंने आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व को लक्ष्य करके लिखे है। इस पत्रिका के संपादक मण्डल मे भी देश के मूर्धन्य साहित्यकारो का नाम है। जैसे—हरिवंशराय वच्चन, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, राजेन्द्र अवस्थी, अक्षयकुमार जैन, प्रभाकर माचवे, जैनेन्द्रकुमारजी, श्री रतनलाल जोशी तथा डॉ० शिव-मगलसिह 'सुमन' आदि।

यह अभिनंदन ग्रंथ चार भागो मे विभक्त है। प्रथम मे राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आदि अनेक गणमान्य व्यक्तियो के शुभकामना सदेश है। दूसरे मे विभिन्न विद्वानो ने अपनी लेखनी से उनके व्यक्तित्व एवं विचारो को प्रस्तुति दी है। तीसरा खड 'प्रश्न हमारे : उत्तर आचार्यश्री के' नाम से है। इसमे अनेक विशिष्ट व्यक्तियो से हुई वार्ताओ का सकलन है तथा चौथे परिशिष्ट 'भारतदर्शन' मे उनकी यात्राओ का सजीव चित्रण है, जो साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी द्वारा लिखा गया है।

सम्पूर्ण पत्रिका आचार्यश्री के व्यापक एव विराट् व्यक्तित्व को प्रस्तुति देती है। साथ ही उनके यशस्वी कर्तृत्व की रेखाएं भी इसमे खचित हुई है।

इस ग्रथ का समर्पण तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम फखरुद्दीन अली अहमद के द्वारा नई दिल्ली, अणुव्रत विहार मे किया गया।

अणुविभा

यह अन्तर्राष्ट्रीय शाति एवं अहिंसा की प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से निकाली गयी महत्त्वपूर्ण स्मारिका है। इसमे आचार्य तुलसी के अहिंसक व्यक्तित्व, अहिसक कार्यक्रम एवं उनके अहिंसा सम्वन्धी विचारो की प्रस्तुति है। साथ ही उनके सान्निध्य मे हुए दो अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा सम्मेलनो का संक्षिप्त विवरण तथा अन्य विद्वानो के लेखो का समाहार भी है। अनेक ऐतिहासिक चित्रो से युक्त २०० पृष्ठो की यह स्मारिका अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यो को अपने भीतर समेटे हुए है।

अमृत महोत्सव

आचार्य तुलसी की धर्मशासना के ५० वर्ष पूर्ण होने पर समाज द्वारा विशाल स्तर पर 'अमृत महोत्सव' की आयोजना की गयी। इस संदर्भ में हुए विविध रचनात्मक कार्यक्रमों का लेखा-जोखा तथा आचार्य तुलसी के विविध विषयों पर क्रान्त विचारों की प्रस्तुति इस पत्रिका में है। यह केवल पत्रिका नही, वल्कि इसे रचनात्मक एव संग्रहणीय ग्रंथ कहा जाए तो अत्युक्ति नही होगी। इसकी संयोजना मे भाई महेन्द्र कर्णावट का अथक श्रम वोल रहा है।

उपसंहार

अनेक ग्रंथ लिखे जाने के बावजूद भी ऐसा लगता है कि आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व के अनेक पहलू ऐसे हैं, जो अभी तक अनछुए है। आचार्य तुलसी को जानने और समझने की ललक उत्तरोत्तर वढ़ती जा रही है।

आचार्य तुलसी का हर क्षण एक अलौकिक नवीनता, पवित्रता और कल्याणवाहिता से अनुप्राणित है, इसीलिए उनकी रमणीयता हर क्षण प्रवर्धमान है। उनकी भावधारा मे शख सी धवलिमा, मधु सी मधुरिमा और आदित्य सी अरुणिमा एक साथ दर्शनीय है। उनके चिन्तन और विचारो मे अमाप्य ऊंचाई और अतल गहराई है। भीष्म के व्यक्तित्व को प्रतिध्वनित करने वाली दिनकर की निम्न पंक्तियो को कुछ अंतर के साथ आचार्य तुलसी के लिए उद्धृत किया जा सकता है—

ब्रह्मचर्य के व्रती, धर्म के महास्तंभ वल के आगार।
परम विरागी पुरुष, जिसे गाकर भी गा न सके[1] संसार॥

---

१ पाकर भी पा न सका (कुरुक्षेत्र)

आचार्य तुलसी के जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियां

२० अक्टूबर १९१४ · जन्म, लाडनूं (राज०)
५ दिसम्बर १९२५ : दीक्षा, लाडनूं (राज०)
२१ अगस्त १९३६ : युवाचार्यपद, गगापुर (राज०)
२७ अगस्त १९३६ आचार्यपद, गगापुर (राज०)
२ मार्च १९४९ अणुव्रत-प्रवर्त्तन, सरदारशहर (राज०)
१२ अप्रैल १९४९ : अणुव्रत यात्रा-प्रारंभ, रतनगढ (राज०)
८ जुलाई १९६० · तेरापथ द्विशताब्दी समारोह, केलवा (राज०)
१८ सितम्बर १९६१ धवल-समारोह, बीकानेर (राज०)
८ फरवरी १९६५ : मर्यादा महोत्सव शताब्दी, बालोतरा (राज०)
४ फरवरी १९७१ · युगप्रधान आचार्य के रूप मे सम्मान, बीदासर (राज०)
१९७२ : प्रेक्षाध्यान का शुभारभ, जयपुर (राज०)
१३ जनवरी १९७२ · साध्वीप्रमुखा मनोनयन, गंगाशहर (राज०)
१६ नवम्बर १९७४ . षष्टिपूर्ति समारोह, दिल्ली
१८ नवम्बर १९७४ महावीर पचीसौवी निर्वाण शताब्दी, दिल्ली
२३ दिसम्बर १९७५ : पचासवां दीक्षा-कल्याणक, लाडनूं (राज०)
२० फरवरी १९७७ कालू जन्म शताब्दी, छापर (राज०)
४ फरवरी १९७९ उत्तराधिकारी का मनोनयन, राजलदेसर (राज०)
९ नवम्बर १९८० · जैन शासन में संन्यास की अभिनव श्रेणी—समण-दीक्षा,
११ फरवरी १९८१ जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष मे अनुशासन वर्ष का प्रारम्भ, सरदारशहर (राज०)
२६ अगस्त १९८१ · जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह, दिल्ली
२२ सितम्बर १९८५ · अमृत महोत्सव
१४ फरवरी १९८६ भारत ज्योति अलंकरण, राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह द्वारा राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर का सर्वोच्च अलकरण
२१ फरवरी १९८९ से ११ जनवरी १९९० योगक्षेमवर्ष, लाडनूं (राज०)
१९९२-९३ : भिक्षु चेतना वर्ष
१४ जून १९९३ : वाक्पति अलंकरण
३१ अक्टूबर १९९३ : इंदिरा गाधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार
१९९३-९४ : अणुव्रत चेतना वर्ष
१८ फरवरी १९९४ · आचार्यपद का विसर्जन, नए आचार्य की नियुक्ति

विषय-वर्गीकरण

अध्यात्म

अध्यात्म

१. १८-३-६६ हनुमानगढ़ । २. १९-५-७६ छापर ।

१. २२-११-७६ चूरू।
२. ८-३-५६ अजमेर।
३. १९-३-५६ बोरावड़।
४. १२-८-७८ गंगाशहर।
५. २९-१२-५६ दिल्ली।
६. १९-९-५२ रोटरी क्लब जोधपुर
७. २३-७-५३ जोधपुर।
८. २-८-५३ जोधपुर।
९. १६-६-७८ जोरावरपुरा।
१०. १९-४-५३ गंगाशहर।
११. ३०-६-७६ राजलदेसर।
१२. ६-१०-७६ सरदारशहर।

१. १९-९-५३ जोधपुर।
२. ४-९-७७ लाडनूं।
३. १७-५-७७ छापर।
४. २-२-७८ सुजानगढ़।
५. २९-१-७८ सुजानगढ़।
६. १५-५-७८ लाडनूं, अध्यापकों के अध्यात्मयोग एवं नैतिक शिक्षा प्रशिक्षण शिविर।
७. ३१-३-७९ दिल्ली।
८. १-४-७९ दिल्ली।
९. १४-२-६६ भादरा।
१०. २३-२-६६ नोहर।
११. २६-२-६६ सिरसा।
१२. १८-२-५५ खण्डाला।
१३. ९-१-५५ मुलुंद।
१४. ११-५-५५ जलगांव।
१५. १५-५-५५ जलगांव।
१६. १६-५-५५ जलगांव।

वैभव सपदा की भूलभुलैया[1]	सूरज	१२३
आत्मार्थी के लिए प्रेरणा[2]	सूरज	१३७
जीवन का लक्ष्य[3]	सूरज	१४१
आत्मजागरण[4]	सूरज	१४२
जीवन के श्रेयस्[5]	सूरज	१९९
अध्यात्म पथ पर आए[6]	भोर	४४
बुराइयो के साथ युद्ध हो[7]	भोर	८५
आत्मजयी कौन ?[8]	बूद बूद २	५९
आत्मरक्षा के तीन प्रकार[9]	सोचो ! ३	१९४
आतरिक सौन्दर्य का दर्शन[10]	मंजिल १	१३४
शाति का पथ[11]	प्रवचन ११	७८
जीवन विकास के चार साधन[12]	प्रवचन ११	२३६
हृदय-परिवर्तन[13]	प्रवचन ५	४८
दासता से मुक्ति[14]	प्रवचन ९	२४७
शाश्वत सुख का आधार : अध्यात्म[15]	प्रवचन ५	२९
अध्यात्मवाद की प्रतिष्ठा[16]	प्रवचन ११	२०८
अनिच्छु बनो[17]	प्रवचन ४	२०
प्रतिस्रोत की ओर[18]	प्रवचन ११	१००
कल्याण अपना भी, औरों का भी[19]	प्रवचन ९	५३
आत्मदर्शन ही सर्वोत्कृष्ट दर्शन है[20]	प्रवचन ४	१८६
आनद के ऊर्जाकण	समता/उद्बो	१३८/१४०

---

१. १९-५-५५ गुजर पीपला।
२. २९-५-५५ वडाला।
३. ६-६-५५ डांगुरना।
४. ८-६-५५ दोंडाइचा।
५. २५-८-५५ उज्जैन।
६. २२-६-५४ माटुंगा (बम्बई)।
७. २७-७-५४ बम्बई।
८. २४-७-६५ दिल्ली।
९. २७-५-७८ लाडनूं।
१०. ११-४-७७ लाडनूं।
११. १८-११-५३ जोधपुर।
१२. ३०-५-५४ सूरत।
१३. २७-११-७७ लाडनूं।
१४. १५-९-५३ जोधपुर।
१५. १३-११-७७ लाडनूं।
१६. ४-५-५४ माण्डल।
१७. २७-७-७७ लाडनूं।
१८. १२-१२-५३ ब्यावर।
१९. २४-३-५३ बीकानेर।
२०. ७-१०-७७ लाडनूं।

---

१. ३०-९-७७ लाडनूं।
२. ५-१-७९ डूंगरगढ।
३. १९-६-७८ नोखामंडी।
४. १९-९-५३ जोधपुर।
५. २७-११-५३ छितर पैलेस, जोधपुर।
६. ८-७-५४ माडवी बंदर (बम्बई)।
७. पार्लियामेंट सदस्यो के बीच।
८. १७-३-६५ सरदारशहर।
९. २७-४-६६ गजसिंहपुर।
१०. २-८-५३ जोधपुर।

अनुभव के स्वर

अनुभव के स्वर

१. अमृत महोत्सव पर प्रदत्त संदेश ।
२. भेंटवार्ता पत्रकार से ।
३. वगड़ी मर्यादा महोत्सव सन् १९९१ एक विशेष उद्‌बोधन ।
४. ६-९-५४ बम्बई ।
५. ६-९-६५ दिल्ली ।
६. १२-८-७६ सरदारशहर ।

१. आमेट मे संत लोगावाल से वार्ता।

२. १३-११-७७ लाडनूं, जन्मदिन।

३. १२-११-७७ जैन विश्व भारती, चौंसठवां जन्मदिन।

४. ३०-१२-७७ जैन विश्व भारती तेपनवें दीक्षा दिन पर।

५. ११-१२-७६ चूरू, इक्यावनवां दीक्षा दिवस।

६. धवल समारोह पर प्रदत्त विशेष संदेश (पुस्तिका)।

७. ५-९-६५ दिल्ली, पट्टोत्सव।

८. ९-९-५१ दिल्ली, पट्टोत्सव।

९. १७-९-५३ जोधपुर, पट्टोत्सव।

१०. १८-९-५३ जोधपुर, पट्टोत्सव।

११. २६-१०-६५ बावनवा जन्मदिन।

१२. १-६-७८ लाडनूं।

१३. १२-६-५६ सरदारशहर।

१४. पट्टोत्सव पर प्रदत्त।

१५. ११-९-७८ गंगानगर, तैंयालीसवां पट्टोत्सव।

१६. १७-९-५३ जोधपुर, पट्टोत्सव।

१७. २१-२-७७ छापर।

१८. ५-४-५५ औरंगाबाद, महावीर जयंती।

ऐसे मिला मुझे अहिंसा का प्रशिक्षण	जीवन	१
एक साधक का जीवन[1]	प्रवचन ११	६०
अपूर्व रात विलक्षण बात	मेरा धर्म	१८७
आत्म-गवेषणा के क्षणों में[2]	सोचो ! १	१४३
खोना और पाना	खोए	११६
प्रतीक का आलम्बन	खोए	१६३
साधना बनाम शक्ति	घर	२०४
आत्मचिंतन[3]	घर	२१६
आत्मानुशीलन का दिन[4]	घर	२२८
साधना में बाधाएं	खोए	१००
साधना और विक्षेप में द्वन्द्व	खोए	१०७
पहला अनुभव	खोए	२०
आनन्द का रहस्य	समता/उद्बो	१०४/१५८
एक अमोघ उपचार	खोए	१०६
भारहीनता का अनुभव	खोए	११७
नकारात्मक चिन्तन	कुहासे	१८१
निंदक नियरे राखिये	कुहासे	२१५
ऊर्ध्वगमन की दिशा	कुहासे	२१०
सिंहावलोकन[5]	सूरज	२०७
एक विवशता का समाधान	खोए	१०५
जीवन की रमणीयता	खोए	११८

१. जोधपुर, जन्मदिन के अवसर पर।
२. २१-९-७७ जैन विश्व भारती, लाडनूं।
३. १६-१०-५७, सुजानगढ़।
४. २४-१०-५७, लाडनूं।
५. २९-८-५५ उज्जैन।

अहिंसा

- अहिंसा
- अहिंसक शक्ति
- अहिंसा : विविध संदर्भों में
- युद्ध और अहिंसा
- हिंसा

अहिंसा

---

१. वि स. २००६ दिल्ली।

२. १५-२-६६ भादरा।

३. ८-९-५१ अहिंसा दिवस के अवसर पर, दिल्ली।

बड़ा और छोटा	नया धर्म	६४
अहिंसक जीवन शैली	कुहासे	१४
अहिंसा का रहस्य[1]	प्रवचन-४	८१
अहिंसा का मूल्य	उद्बो/समता	६९/६९
अहिंसा सार्वभौम सत्य है[2]	घर	९९
क्रान्ति के स्वर	घर	१५२
शाश्वत धर्म	गृहस्थ/मुक्तिपथ	६/५
अहिंसा की संभावना	गृहस्थ/मुक्तिपथ	११/९
अहिंसा का पराक्रम	गृहस्थ/मुक्तिपथ	१३/११
अहिंसा का अभिनय	गृहस्थ/मुक्तिपथ	१५/१३
अहिंसा	गृहस्थ/मुक्तिपथ	२१/१९
अहिंसा के तीन मार्ग	अनैतिकता	२१९
अहिंसा के तीन मार्ग	वि. वीथी	५९
धर्म की आत्मा: अहिंसा[3]	प्रवचन-९	८८
धर्म की आत्मा: अहिंसा	गृहस्थ/मुक्तिपथ	२६/२४
धर्म की आत्मा: अहिंसा[4]	सूरज	१७५
अहिंसा दर्शन[5]	शांति के	८०
शांति का सच्चा साधन	सूरज	४८
अहिंसा का चमत्कार	खोए	९८
समस्या का स्थायी समाधान: अहिंसा[6]	प्रवचन-९	२७३
धर्माराधना का सच्चा सार[7]	सूरज	५
सच्चा विज्ञान	सूरज	४२
जीवन निर्माण का महत्त्व[8]	सूरज	६२
अहिंसा के तत्त्व[9]	प्रवचन ११	७२
लोक जीवन अहिंसा की प्रयोगशाला बने[10]	भोर	१६५
अल्पहिंसा : महाहिंसा	गृहस्थ/मुक्तिपथ	१७५/१५८

---

१. २३-८-७७ लाडनूं।
२. २०-५-५७ लाडनूं।
३. ३-५-५३ बीकानेर।
४. १७-७-५५ उज्जैन।
५. ५-३-५२ सरदारशहर।
६. २८-२-५५ पूना।
७. २-१०-५३ जोधपुर।
८. ७-१-५५ मुलुन्द।
९. ११-३-५५ नारायणगांव।
१०. १६-११-५३ जोधपुर।

---

१. ७-१-५४ ब्यावर।
२. अहिसा दिवस, लाडनूं
३. २४-३-५५ राहता।
४. ४-५-५३ बीकानेर।
५. १४-५-५३ बीकानेर।
६. २६-५-५५ आमलनेर।
७. ३०-१-५४ देवरग्राम।
८. २५-९-५५ उज्जैन।
९. ११-४-५५ संतोषबाड़ी।
१०. १९-९-५४ बम्बई।
११. ७-११-५४ बम्बई।
१२. १५-१२-६६ लाडनूं।
१३. ९-१२-५४ बम्बई।
१४. २-८-५३ केवलभवन, जोधपुर।
१५. ४-१०-५३ बम्बई, जीवदया मंडल का विशेष अधिवेशन।
१६. १५-११-५३ अहिंसा दिवस कंस्टीट्यूशन क्लब, दिल्ली।
१७. २७-७-६५ दिल्ली

आत्मधर्म क्या है[1] ?	सोचो ! १	१२६
कर्तव्यबोध	नैतिकता के	१
युग चुनौती दे रहा है[2]	शांति के	१०१
दयाप्रेमियों का दायित्व	प्रगति की	१५
अहिंसा : एक विमर्श	संभल	१३४
दया का मूल मंत्र	भोर	११३
अहिंसा की अपेक्षा क्यों ?	ज्योति के	२२
अनर्थदण्ड से बचें[3]	प्रवचन ५	३६
संवेदनहीन जीवन शैली	कुहासे	११
हिंसा और अहिंसा के प्रकम्पन	बैसाखियां	३०
हिंसा और अहिंसा[4]	प्रवचन १०	१०
आलोक और अंधकार[5]	प्रवचन ११	४९
हिंसा का प्रतिकार अहिंसा ही है	प्रज्ञापर्व	३
शांति के दो पथ[6]	शांति के	२२३
हिंसा और अहिंसा का द्वन्द्व[7]	शांति के	३६
हिंसा और अहिंसा का द्वन्द्व	आलोक में	४९
हिंसा और अहिंसा	गृहस्थ/मुक्तिपथ	२३/२१
आज के युग की समस्याएं[8]	राजधानी	१४
हिंसा और अहिंसा को समझें	प्रज्ञापर्व	५
समाधान के आईने में युग की समस्याएं	अमृत	४३
समाजवादी व्यवस्था और हिंसा का अल्पीकरण	अणुगति	९०
अहिंसा विवेक[9]	जागो !	२८
शांति और क्रांति का भ्रम[10]	शांति के	६७
वर्तमान युग और जैनधर्म[11]	शांति के	४५

१. ९-९-७७ जैन विश्व भारती, लाडनूं
२. ६-१२-५३ डूंगरगढ़, अहिंसा दिवस।
३. ८-१२-७७ जैन विश्व भारती
४. २७-४-७९ चंडीगढ़।
५. अहिंसा दिवस, जोधपुर।
६. २०-९-५३ साधना मंडल जोधपुर द्वारा आयोजित विचार परिषद् में।
७. दिल्ली, अहिंसा दिवस।
८. १६-४-५० भारतीय पार्लियामेंट दिल्ली के सदस्यों के सम्मुख कोंस्टीट्यूशन क्लब में।
९. २५-९-६५ दिल्ली।
१०. २०-१०-५२ जामनगर, सांस्कृतिक सम्मेलन में प्रेषित।
११. १६-५-४९ दिल्ली।

अहिंसक शक्ति

अहिंसा : विविध संदर्भों में

---

१. ८-६-५० राजधानी से विदाई के अवसर पर।
२. १३-११-६५ दिल्ली।
३. ९-४-५३ बीकानेर।
४. २०-११-५३ जोधपुर।
५. ४-२-५४ राणावास।
६. २३-५-५५ एरण्डोल।
७. २१-४-५० संपादक सम्मेलन, दिल्ली
८. १६-७-६७ अहमदाबाद।
९. २०-६-५४ अंधेरी (बम्बई)
१०. १६-८-६९ आकाशवाणी, बेंगलोर

समाज व्यवस्था और अहिंसा	अणु गति	१३३
अहिंसा और नैतिकता	गृहस्थ/मुक्तिपथ	९/७
समाजवाद, व्यक्तिवाद और अहिंसा	जब जागे	२०६
लोकतंत्र और अहिंसा	अतीत का	१०५
अहिंसा और अनासक्ति[1]	आगे	२३०
अहिंसा और स्वतंत्रता	भगवान्	९७
अहिंसा और कषायमुक्ति	भगवान्	९८
अहिंसा और समन्वय	भगवान्	१०१
अहिंसा से ही संभव है विश्वशांति[2]	संभल	२१३
अहिंसा और सह-अस्तित्व	भगवान्	९९
अहिंसा और समता	भगवान्	९७
समाजवाद और अहिंसा	अणु गति	१६४
अहिंसा और वीरत्व	अणु गति	१४६
खादी और अहिंसा	अणु गति	१९४
समाज और अहिंसा	मनहंसा	१०२
अहिंसा और दया का ऐक्य[3]	शांति	२३९
अहिंसा और दया[4]	प्रवचन ९	२७९
वैचारिक अहिंसा	गृहस्थ/मुक्तिपथ	१७/१५
अहिंसा और सर्वोदय[5]	भोर	१४२
अहिंसा और समता[6]	सूरज	१४५
अहिंसा और दया[7]	प्रवचन ११	२१६
समाजवाद, कांग्रेस और अहिंसा	अणु संदर्भ	७३
खादी और अहिंसा	अणु गति	१६१
खादी : उसका गिरता हुआ मूल्य और अहिंसा	अणु संदर्भ	६५
समाज व्यवस्था और अहिंसा	अणु संदर्भ	२४
अहिंसा और विश्वशांति[8]	आ. तु	१४४
अहिंसा और विश्वशांति	अहिंसा	१
अहिंसा और विश्वशांति	प्रश्न	६६

१. ३०-४-६६ रायसिंहनगर।
२. ४-१२-५६ अणुव्रत सेमीनार, दिल्ली।
३-४. ४-१०-५३ जोधपुर।
५. १९-९-५४ बम्बई।
६. १२-६-५५ शहादा।
७. १४-५-५४ साबरमती आश्रम।
८. १७-१२-४८ लाडनूं।

युद्ध और अहिंसा

---

१. २३-९-५४ बम्बई।
२. २-१०-५४ बम्बई।
३. २०-९-५३ जोधपुर।
४. १४-४-५४ बाव।
५. लंदन में आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर प्रेषित, आषाढ़ कृष्णा ४ वि. सं. २००१।
६. चूरू

हिंसा

१. २-४-५३ बीकानेर। २. २२-५-५७ सुजानगढ़।

आगम

१. १-५-७६ छापर ।
२. २०-११-६५ दिल्ली ।
३. २३-१०-५१ दिल्ली में आयोजित विचार परिषद् के अवसर पर ।
४. ३-५-५७ लाडनूं ।
५. २९-४-७८ लाडनूं ।
६. २८-४-७८ लाडनूं ।
७. ३०-९-७३ हिसार ।

१. ७-९-८० ।
२. २-८-७६ सरदारशहर ।
३. १८-४-७८ लाडनूं ।
४. १९-८-७६ सरदारशहर ।
५. २३-११-७६ चूरू ।
६. ७-८-७७ लाडनूं ।
७. ८-७-७८ गंगाशहर ।
८. ७-४-७८ लाडनूं ।
९. ३०-५-७८ लाडनूं ।
१०. १८-३-६५ समदड़ी ।
११. १-५-६५ जयपुर ।
१२. २०-५-६५ जयपुर ।
१३. १३-६-६५ अलवर ।
१४. ७-७-६५ दिल्ली ।
१५. ८-७-६५ दिल्ली ।
१६. १७-७-६५ दिल्ली (हिंदूसभा भवन)।
१७. ९-७-६५ दिल्ली ।
१८. १२-७-६५ दिल्ली ।
१९. २०-७-६५ दिल्ली ।
२०. ६-७-६५, दिल्ली ।

१. १-५-७६ छापर।
२. ३-५-७६ छापर।
३. ४-९-८०।
४. १६-१०-६५ दिल्ली।
५. ३-५-७६ छापर।
६. २६-९-६५ दिल्ली।
७. १४-१०-६५ दिल्ली।
८. १५-१०-६५ दिल्ली।
९. २४-२-७७ छापर।
१०. ७-१२-७७ लाडनूं।
११. १८-१२-५६ दिल्ली।
१२. जितशत्रु राजा की कथा।
१३. २२-४-७८ लाडनूं।
१४. २२-२-५३ लूणकरणसर, भावदेव नागला कथानक।
१५. २०-३-५३ बीकानेर।
१६. ९-५-७७ चाड़वास।

आचार

आचार

१. १३-४-६५ सदाचार समिति गोष्ठी, अजमेर।
२. १५-११-६५ दिल्ली।
३. १४-९-५३ जोधपुर।
४. १२-३-५५ पीपल।
५. १५-५-७७ चाड़वास।
६. २९-५-५६ पडिहारा।
७. १२-५-५४ अहमदाबाद।

ज्ञान का उद्देश्य[1]	मंजिल १	१२६
सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा	मुक्तिपथ/गृहस्थ	८३/८८
ज्ञान का सम्यग् उपयोग[2]	मंजिल १	१७५
सम्यग्ज्ञान का विषय	मुक्तिपथ/गृहस्थ	८५/९०
अज्ञानम् खलु कष्टम्[3]	प्रवचन १०	५४
विकास का सही पथ[4]	प्रवचन ११	२१९
अच्छे और बुरे का विवेक[5]	आगे	२०७
ज्ञान प्रकाशप्रद है	घर	२२४
ज्ञानी भटकता नही	जब जागे	५१
ज्ञान और ज्ञानी[6]	प्रवचन ५	१९८
ज्ञान के दो प्रकार है[7]	प्रवचन ५	१०५
ज्ञान के दो प्रकार[8]	प्रवचन ४	६९
मतिज्ञान के प्रकार[9]	प्रवचन ८	१७०
श्रुतज्ञान . एक विश्लेषण[10]	प्रवचन ८	१७४
श्रुतज्ञान के भेद[11]	प्रवचन ८	१७९
अवधिज्ञान के दो प्रकार[12]	प्रवचन ८	१८६
मन पर्याय के प्रकार[13]	प्रवचन ८	१९१
केवलज्ञान[14]	प्रवचन ८	१९९
केवलज्ञान के आलोक मे[15]	मजिल २	२३६
केवलज्ञान की उत्कृष्टता[16]	वूंद वूद २	७७
आठ प्रकार के ज्ञानाचार[17]	सोचो ! ३	५२

---

१. ४-४-७७ लाडनूं ।
२. १०-५-७७ चाड़वास ।
३. २०-८-७८ गंगानगर ।
४. १२-५-५४ वम्बई ।
५. २५-४-६६ पदमपुर ।
६. ६-१-७८ लाडनूं ।
७. १७-१२-७७ लाडनूं ।
८. ११-८-७७ लाडनूं ।
९. १४-८-७८ गंगाशहर ।
१०. १५-८-७८ गंगाशहर ।
११. १६-८-७८ गंगाशहर ।
१२. १७-८-७८ गंगाशहर ।
१३. १८-८-७८ गंगाशहर ।
१४. १९-८-७८ गंगाशहर ।
१५. १८-१०-७८ गंगाशहर ।
१६. ३१-७-६५ दिल्ली ।
१७. २१-१-७८ लाडनूं ।

सम्यग्दर्शन

---

१. २०-५-७६ पडिहारा
२. ३१-२-७७ लाडनूं ।
३. ३०-७-६५ दिल्ली ।
४. १३-८-७८ गंगाशहर ।
५. २२-८-५३ जोधपुर ।
६. ४-८-७७ लाडनूं ।
७. १-१-७८ लाडनूं ।
८. १९-७-५३ पाटवा ।
९. २२-१-५३ सरदारशहर ।
१०. २९-८-७७ लाडनूं ।
११. ५-१२-७७ लाडनूं ।
१२. २-५-७७ चाड़वास ।
१३. २२-९-६५ दिल्ली ।
१४. २४-६-७८ नोखामण्डी ।
१५. १२-४-७७ बीदासर ।
१६. २४-१-७८ लाडनूं ।

---

१. १३-६-५७ वीदासर ।
२. लाडनूं ।
३. ४-१२-५६ दिल्ली ।
४. १६-११-६५ दिल्ली ।
५. २२-१२-७७ लाडनूं ।
६. २१-८-७८ गंगाशहर ।
७. १०-१२-७७ लाडनूं ।
८. ९-१२-७७ लाडनूं ।
९. १२-१२-७७ लाडनूं ।
१०. ३१-३-६६ गंगानगर ।
११. सुजानगढ़, अहिंसा दिवस पर प्रदत्त ।

---

१. ११-८-५४ वम्वई (चींच बंदर)।
२. ११-७-५४ वम्वई (सिक्का नगर)।
३. २४-४-५४ बम्बई।
४. २०-८-५४ बम्बई (सिक्का नगर)।
५. ७-१२-५४ बम्बई (कुर्ला)।
६. २४-४-६६ पद्मपुर।
७. १७-११-६५ दिल्ली।
८. २०-१२-७७ लाडनूं।
९. १४-६-५५ जूलवानिया।
१०. २५-३-५४ शिवगंज।
११. ७-४-५४ खिमतगांव।
१२. जोधपुर।
१३. ११-११-६५ दिल्ली।
१४. १३-९-६५ दिल्ली।
१५. १५-४-६५ मदनगंज।
१६. २१-६-५४ वम्वई (अंधेरी)।
१७. २५-४-५३ गंगाशहर।

---

१. २८-४-६५ जयपुर।
२. ३०-४-६५ जयपुर।
३. ५-७-६५ दिल्ली।
४. ५-५-६५ जयपुर।
५. १८-३-५७ लाडनूं।
६. बीदासर।
७. १०-४-७८ लाडनूं।
८. २४-५-७८ लाडनूं।
९. २३-५-७८ लाडनूं।
१०. १९-९-६५ दिल्ली।
११. १६-९-६५ दिल्ली।
१२. २०-९-६५ दिल्ली।
१३. ६-१०-६५ दिल्ली।
१४. ९-१०-६५ दिल्ली।
१५. ५-१०-६५ दिल्ली।
१६. ३०-९-६५ दिल्ली।

---

१. १४-४-५६ लाडनूं।
२. १९-५-७३ दूधालेश्वर महादेव।
३. २०-५-७३ दूधालेश्वर महादेव।

श्रावक का दायित्व[1]	प्रवचन ९	२०७
सामायिक[2]	प्रवचन ५	१०८
अर्हन्नक की आस्था	गृहस्थ/मुक्तिपथ	१७३/१५६
श्रावक समाज को कर्त्तव्यबोध[3]	मुक्ति इसी	८५
सामायिक[4]	प्रवचन ९	१९
भय का हेतु : दुःख[5]	मंजिल २	१५७
आचार और मर्यादा[6]	आगे	२६५

तप

तपस्या का कवच	कुहासे	१६५
तप है आतरिक बीमारी की औषधि	जब जागे	२८
बहिरग योग की सार्थकता	जब जागे	३१
सम्यक् तप	गृहस्थ/मुक्तिपथ	९६/९१
तप साधना का प्राण है[7]	ज्योति से	७३
प्रदर्शन बनाम दर्शन[8]	मजिल १	१
तपस्या स्वय ही प्रभावना है[9]	प्रवचन ४	१३६
अनुत्तर तप और अनुत्तर वीर्य[10]	बूंद बूंद २	१९०
तप[11]	सूरज	१६८
तप और उसका आचार[12]	जागो !	१९७

रात्रिभोजन विरमण

रात्रिभोजन का औचित्य	गृहस्थ/मुक्तिपथ	७२/६९
रात्रिभोजन त्याग : एक तप[13]	प्रवचन ९	१२४

समाधिमरण

अनशन किसलिए ?	मेरा धर्म	८०
मृत्युञ्जयी बनने का उपक्रम . अनशन[14]	सोचो ! ३	१७२

---

१. ८-८-५३ जोधपुर ।
२. १८-१२-७७ लाडनूं ।
३. श्रावक सम्मेलन ।
४. २५-२-५३ लूणकरणसर ।
५. २१-५-७८ लाडनूं ।
६. १५-५-६६ पीलीबंगा ।
७. १-८-७० रायपुर ।
८. १०-१०-७६ सरदारशहर ।
९. १६-९-७७ लाडनूं ।
१०. १४-९-६५ दिल्ली ।
११. ७-७-५५ उज्जैन ।
१२. १६-५ ५३ बीकानेर ।
१३. १८-११-६५ दिल्ली ।
१४. २-४-७८ लाडनूं ।

---

१. १-४-७८ लाडनूं।
२. २३-३-८३ अहमदाबाद।
३. ५-८-५५ उज्जैन।
४. १-४-७८ लाडनूं।
५. ४-१०-६५ दिल्ली।
६. २८-९-७७ लाडनूं।
७. २३-६-७८ नोखामण्डी।
८. २८-२-६६ सिरसा।
९. २-१२-७७ लाडनूं।
१०. २१-४-५४ वाव।
११. २२-३-५४ खींवेल।
१२. २-९-७७ लाडनूं।
१३. ५-५-७६ छापर।
१४. १७-५-६५ दिल्ली।
१५. २१-९-५४ बम्बई।

प्रायश्चित्त

सत्य

---

१. ३-९-६५ दिल्ली ।
२. लाडनूं
३. ७-५-५३ बीकानेर ।
४. ५-५-७६ छापर ।
५. २६-४-६५ जयपुर ।
६. २१-९-६५ दिल्ली ।
७. १०-४-५६ सुजानगढ़ ।
८. ११-१०-७६ सरदारशहर ।
९. १८-१०-७६ सरदारशहर ।
१०. २२-५-७८ लाडनूं ।
११. १९-३-७७ लाडनूं ।
१२. १९-१०-६५ दिल्ली ।
१३. २१-३-७७ लाडनूं ।
१४. २९-६-७७ लाडनूं ।
१५. २४-६-७७ लाडनूं ।

अस्तेय

ब्रह्मचर्य

---

१. ६-८-६५ दिल्ली।
२. ६-५-५३ बीकानेर।
३. १८-१२-७६ रतनगढ़।
४. २२-७-५६ सरदारशहर।
५. २२-४-५७ चूरू।
६. ८-५-५३ बीकानेर।
७. २५-८-६५ दिल्ली।

अपरिग्रह

---

१. ८-५-५३ बीकानेर।
२. २५-११-६५ दिल्ली।
३. १९-९-६५ दिल्ली।
४. २३-६-५२ चूरू, नागरिक स्वागत समारोह।
५. २२-७-५४ बम्बई।
६. १-९-५४ बम्बई।
७. २०-४-६६ हनुमानगढ़।
८. १५-४-७७ बीदासर।
९. ९-४-७७ लाडनूं।
१०. १०-५-५३ बीकानेर।
११. १५-६-५४ बोरीवली (बम्बई)।

---

१. १९-७-६५ दिल्ली।
२. २२-४-६६ श्री कर्णपुर।
३. १-५-७८ लाडनूं।
४. ४-१२-७७ जैन विश्व भारती, लाडनूं।
५. २०-१०-७६ सरदारशहर।
६. १५-५-५५ जलगांव।
७. १५-६-७५ दिल्ली।
८. २४-४-६६ पद्मपुर।
९. २८-५-५० दिल्ली, साहित्य गोष्ठी।
१०. २८-२-६६ सिरसा।
११. २-४-५६ लाडनूं।

६. आहार और स्वास्थ्य

१. १२-८-६५ दिल्ली ।

२. ८-२-७९ राजलदेसर ।

३. १२-१२-५६ ।

४. २१-१०-७८ गंगाशहर ।

५. १०-६-७८ सांडवा ।

६. सुजानगढ़ ।

७. ४-५-७७ चाड़वास ।

८. ५-५-७७ चाड़वास ।

९. १६-३-७८ लाडनूं ।

१. ८-१२-५४ बम्बई ।

जीवनसूत्र

- अनासक्ति
- अनुशासन
- क्षमा और मैत्री
- त्याग
- पुरुषार्थ
- मानवजीवन
- शांति
- संकल्प
- संयम
- संस्कारनिर्माण
- समता
- सेवा
- स्वतन्त्रता

जीवनसूत्र

१. १०-४-७७ लाडनूं ।

२. ७-१२-५६ पहाड़गंज ।

३. २२-१-५६ जालमपुरा ।

अपभाषण सुनना भी पाप है	कुहासे	१८५
सम्बन्धों की मिठास	कुहासे	२१२
नया युग : नया जीवन दर्शन	कुहासे	३
मुसकान की मिठास	खोए	१०४
जन साधारण का आदर्श क्या है ?[1]	प्रवचन ११	१७८
जीवन को संवारें[2]	गूंज	१३०
मूल्यांकन विनय का	जब जागे	१८७
अमृत क्या है ? जहर क्या है ?[3]	जागो !	८४
वाणी की महत्ता[4]	प्रवचन ९	३५
जीवन निर्माण के दो सूत्र[5]	प्रवचन १०	२१२
सोचो ! समझो !![6]	प्रवचन ८	१
जीवन और लक्ष्य[7]	संभल	८८
शुद्ध जीवन चर्या[8]	संभल	१०१
सफलता के साधन[9]	भोर	१८०
जीवन विकास का मार्ग[10]	गूंज	११
जीवन का निर्माण[11]	प्रवचन ११	९०
क्रोध के दो निमित्त	सोचो ! ३	१६०
प्रमाद ही भय	प्रज्ञापर्व	७६
आत्म प्रशंसा का सूत्र	खोए	४०
कसौटी के क्षण	खोए	९१
मानव धर्म अपनाए[12] (अप्रमाद)	भोर	४३
समय का मूल्य[13]	प्रवचन ९	१९४
सार्थक जीवन[14]	प्रवचन ९	१७४
कसौटी[15]	शांति के	९३

१. ३१-३-५४ आबू ।
२. २५-५-५५ हाकरखेड़ा ।
३. ११-१०-६५ दिल्ली ।
४. १७-२-५३ कालू ।
५. २१-४-७९ शाहबाद ।
६. २१-७-७७ लाडनूं ।
७. २९-३-५६ डीडवाना ।
८. ५-४-५६ लाडनूं ।
९. ७-१२-५४ कुर्ला (बम्बई) ।
१०. १४-१-५५ मुलुन्द ।
११. ३०-३-७८ लाडनूं ।
१२. २१-६-५४ (अंधेरी) बम्बई ।
१३. २४-७-५३ जोधपुर ।
१४. ९-७-५३ बड़लू ।
१५. ७-७-५२ बीदासर, नागरिक सम्मेलन के अवसर पर ।

---

१. १९५२ सरदारशहर ।
२. १०-९-६५ दिल्ली ।
३. २३-३-५६ बोरावड़ ।
४. २५-७-६५ दिल्ली ।
५. १२-५-५५ जलगांव ।
६. १६-४-६५ किशनगढ़ ।
७. २४-९-७८ गंगाशहर ।
८. १०-३-५५ नारायणगांव ।

क्षमा और मैत्री

त्याग

---

१. २-५-६६ रायसिंहनगर।
२. ३०-१०-७६ सरदारशहर।
३. ११-४-५३ गंगाशहर।
४. ३०-११-५६ सप्रू हाऊस, दिल्ली।
५. सुजानगढ़।
६. १२-९-६५ दिल्ली।
७. १९-९-७७ लाडनूं।
८. १२-९-७७ लाडनूं।
९. ३-९-५४ बम्बई।
१०. १३-९-५३ क्षमापना दिवस।
११. ४-६-७८ चाड़वास।

पुरुषार्थ

---

१. ११-७-५४ बम्बई।
२. ३-४-७९ (कीर्तिनगर) दिल्ली।
३. जोधपुर।
४. २९-११-७७ लाडनूं।
५. ११-७-५३ पींपाड़।
६. १५-२-५३ उदासर।
७. २८-१२-७७ लाडनूं।
८. जोधपुर।
९. ५-५-५४ चिरमगांव।
१०. २८-५-५६ पडिहारा।
११. ६-३-६६ भटिण्डा।
१२. १०-११-३६ सरदारशहर।
१३. १८-७-६५ दिल्ली।
१४. ११-१-७८ जैन विश्व भारती।

श्रमनिष्ठा और कर्त्तव्यनिष्ठा को जगाएं[1]	प्रवचन ४	१४६
कल्याण का सूत्र[2]	प्रवचन ११	९९
पुरुषार्थवाद[3]	संभल	१३८
विकास का दर्शन[4]	घर	२१०
प्रतिरोधात्मक शक्ति जगाएं[5]	सोचो ! ३	१६
भाग्य और पुरुषार्थ[6]	मंजिल १	१२०
नियति और पुरुषार्थ[7]	सोचो ! १	१६२
नियति और पुरुषार्थ[8]	आगे की	३५
प्रकृति और पुरुषार्थ[9]	प्रवचन ५	२०२
समाज और स्वावलम्बन	मनहंसा	९८
स्वावलम्बन[10]	सोचो ! ३	१३
अपना भविष्य अपने हाथ में	जीवन की	१५०
कर्तृत्व अपना	कुहासे	१५५
धैर्य और पुरुषार्थ का योग[11]	सोचो ! १	१४९
श्रम और सयम[12]	घर	१०८
पुरुषार्थ के भेद[13]	घर	६३

मानव जीवन

अनूठी दुकान : अनोखा सौदा	राज/वि दीर्घा	१६०/१६१
मानवता की परिभाषा[14]	सूरज	१७१
मनुष्य महान् कब तक[15]	सोचो ! ३	२३३
मनुष्य जीवन का महत्त्व[16]	प्रवचन ११	१५७
जीवन और लक्ष्य	प्रश्न	४८
समय को पहचानो[17]	प्रवचन ११	९३

---

१. २३-९-७७ जैन विश्व भारती।
२. ९-१२-५३ निमाज।
३. १५-७-५६ सरदारशहर।
४. १०-१०-५७ सुजानगढ़।
५. १५-१-७८ जैन विश्व भारती।
६. २०-३-७७ जैन विश्व भारती।
७. २९-९-७७ जैन विश्व भारती।
८. २१-२-६६ नोहर।
९. ७-१-७८ जैन विश्व भारती।
१०. १४-१-७८ जैन विश्व भारती।
११. २५-९-७७ जैन विश्व भारती।
१२. २६-५-५७ लाडनूं।
१३. लाडनूं।
१४. १०-७-५५ उज्जैन।
१५. ५-६-७८ बीदासर।
१६. १२-३-५४ जोजावर।
१७. ३-१२-५३ सिलारी।

---

१. ९-७-५३ बडलू ।
२. ६-३-५३ चाड़वास ।
३. १६-१-५४ दूधालेश्वर ।
४. १२-१२-५४ कुर्ला (बम्बई) ।
५. २८-६-६५ दिल्ली ।
६. ४-७-५५ उज्जैन ।
७. ८-४-५७ सूर ।
८. २४-१०-५७ सूर ।
९. ६-४-६५ ब्यावर ।
१०. २२-१०-७८ गंगानहर ।
११. १२-२-६६ फिराडा ।
१२. ८-१२-५३ गरणी ।
१३. ६-६-७८ चीनागर ।
१४. ७-११-५४ बम्बई ।
१५. २५-२-५५ पूना ।
१६. ३-६-७८ टापर ।
१७. २१-६-५५ धामनोद ।

---

१. ४-४-५६ लाडनूं।
२. २३-३-५३ बीकानेर।
३. शांति निकेतन में आयोजित विश्व शांति सम्मेलन के अवसर पर।
४. ५-११-७७ लाडनूं।
५. ८-१-७८ लाडनूं।
६. ३१-१-७७ राजलदेसर।

१. ७-५-७८ लाडनूं।
२. बम्बई।
३. २०-४-७७ बीदासर।
४. १८-३-५५ राहता।
५. २९-५-५६ पड़िहारा।
६. २-१२-५६ वाई. एम. सी ग्राउण्ड दिल्ली।
७. १-१०-५४ बम्बई।
८. २१-१२-६६ लाडनूं।
९. जोधपुर।
१०. २६-१२-७७ लाडनूं।
११. ४-३-५४ सुधरी।
१२. १०-१-५४ जैन सांस्कृतिक परिषद् कलकत्ता में प्रेषित।
१३. २२-५-५५ एरण्डोल।
१४. ३०-७-७८ गंगाशहर।
१५. २६-१२-५४ (माण्डूप) वम्बई।

सेवा

स्वतंत्रता

---

१. २९-५-६६ सरदारशहर
२. २-९-६५ दिल्ली
३. ९-१-५४ राजियावास
४. २०-६-७७ लाडनूं
५. २१-१०-८६ सरदारशहर
६. ५-४-५५ औरंगाबाद
७. २२-७-७७ लाडनू
८. २४-२-५४ सिरियारी
९. १९-८-५६ सरदारशहर, (अणुव्रत प्रेरणा समारोह)

८

जैनदर्शन

- भारतीय दर्शन
- दर्शन के विविध पहलू
- तत्त्व मीमांसा
- द्रव्य गुण पर्याय
- सृष्टि
- ईश्वर
- आत्मा
- कर्मवाद
- शरीर
- कालचक्र
- अनेकांत

जैनदर्शन

१. ३-९-७७ लाडनूं

२. २६-९-५३ राजपूताना विश्व-विद्यालय के दर्शन विभाग की ओर से आयोजित व्याख्यानमाला का उद्घाटन भाषण।

३. १९५२ में मैसूर में आयोजित फिलोसोफिकल कांग्रेस मीटिंग मे।

४. आषाढ़ शुक्ला १४, सं० २००७, भिवानी

५. २३-२-५६ भीलवाड़ा

६. २४-५-७३

७. ४-१२-५३ पिचाग

---

१. १७-५-५४ वरकाणा
२. ८-८-७८ गंगाशहर
३. २४-५-५५ एरण्डोल
४. २-४-५५ औरंगाबाद
५. १४-२-५५ पनवेल
६. ९-१-७९ डूंगरगढ़
७. १-३-६६ सिरसा
८. १७-२-७९ चूरू
९. लंदन में आयोजित जैन धर्म सम्मेलन के अवसर पर प्रेषित संदेश
१०. २७-२-५५ पूना
११. ४-११-७७ लाडनूं
१२. १२-१-७८ लाडनूं

तत्त्व मीमांसा

---

१. २-१०-६५ दिल्ली
२. २६-१०-६८
३. २४-६-७७ लाडनूं
४. २३-६-७७ लाडनूं
५. १९-११-६५ दिल्ली
६. १९-१०-७८ गंगाशहर
७. २३-१०-७८ गंगाशहर
८. १०-१०-७८ गंगाशहर
९. १०-८-७७ लाडनूं
१०. ९-१०-७८ गंगाशहर
११. ११-८-७८ गंगाशहर
१२. ३०-४-७७ बीदासर
१३. के० जी० रामाराव तथा हर्दर्टटिसि के प्रश्नों का उत्तर
१४. १-१०-७७ लाडनूं

१. २६-३-७८ दिल्ली
२. ३१-७-७८ गंगाशहर
३. २-८-७८ गंगाशहर
४. २२-७-७८ गंगाशहर
५ २३-७-७८ गंगाशहर
६. १९-१-७८ लाडनूं
७. २४-७-७८ गंगाशहर
८. १८-२-५३ कालू
९. २५-७-७८ गंगाशहर
१०. २७-७-७८ गंगाशहर
११. २७-७-७८ गंगाशहर
१२. २८-७-७८ गंगाशहर
१३. २९-७-७८ गंगाशहर
१४. ३-८-७८ गंगाशहर
१५. २०-९-८५ गंगाशहर
१६. ३१-३-७८ लाडनूं
१७. १-८-७७ लाडनूं
१८. ४-४-७८ लाडनूं
१९. १८-७-७८ गंगाशहर
२०. ८-६-७६ राजलदेसर

कर्मवाद

---

१. ६-५-७७ चाड़वास
२. ३०-६-६५ दिल्ली
३. ६-४-७८ लाडनूं
४. २८-७-६५ दिल्ली
५. ३१-८-५४ बम्बई
६. ५-२-५४ राणावास
७. २७-११-७७ लाडनू
८. ११-१०-७८ लाडनू
९. २३-३-७८ लाडनू
१०. १४-४-७८ लाडनू
११. १५-४-७८ लाडनू
१२. १६-४-७८ लाडनू
१३. १७-४-७८ लाडनूं
१४. ५-१०-७६ सरदारशहर

शरीर

---

१. १२-१०-६५ दिल्ली
२. ५-४-७८ लाडनूं
३. २२-८-७७ लाडनूं
४. ३०-८-७७ लाडनूं
५. ३-१-७८ लाडनूं
६. २६-८-७७ लाडनूं
७. २३-७-७७ लाडनूं
८. २५-१०-७७ लाडनूं
९. २६-८-७८ गंगाशहर
१०. २६-३-७८ लाडनूं
११. ३०-५-७७ लाडनूं
१२. २७-३-७८ लाडनूं
१३. १५-३-७७ लाडनूं
१४. ११-५-७७ चाड़वास
१५. १८-५-७८ पड़िहारा
१६. २-१-७८ लाडनूं
१७. ९-१-७८ लाडनूं

कालचक्र

अनेकांत

---

१. १२-२-७७ छापर
२. ९-८-७७ लाडनू
३. २-८-६५ दिल्ली
४. ५-१०-७७ लाडनू
५. १२-१-७८ लाडनू
६. २६-९-५३ जोधपुर
७. १०-८-५४ बम्बई (सिक्कानगर)
८. १९-१-५६ बिड़ला विद्याविहार, पिलाणी
९. राजपूताना विश्वविद्यालय, दार्शनिक व्याख्यानमाला, जोधपुर
१०. २९-४-६६ रायसिहनगर

१. २०-५-७८ लाडनूं
२. १३-६-६५ दिल्ली
३. सरदारशहर
४. १५-१-५६ मन्दसौर
५. ८-४-७७ लाडनूं
६. २८-३-६५ पाली
७. २२-४-६५ जोबनेर
८. २२-३-५३ बीकानेर
९. २८-२-५५ पूना

तेरापंथ

- 0 तेरापंथ
- 0 तेरापंथ के मौलिक सिद्धांत
- 0 तेरापंथ : मर्यादा और अनुशासन
- 0 मर्यादा महोत्सव
- 0 योगक्षेम वर्ष

तेरापंथ

१. १०-६-७५ नई दिल्ली।
२. २१-१-७८ जैन विश्व भारती,
३. ३१-५-५६ रतनगढ़।
४. १४-६-७५ दिल्ली।

तेरापथ की मंडनात्मक नीति[१]	प्रवचन ११	२२६
जहा विरोध है, वहा प्रगति है	संदेश	३८
सघ का गौरव[२]	आगे	२७८
श्रम और सेवा का मूल्याकन	मुखडा	१८३
सघ मे कौन रहे ?	मुखड़ा	१८८
भेद मे अभेद की खोज	मुखड़ा	१४३
वैयक्तिक और सामूहिक साधना का मूल्य[३]	प्रवचन ५	१४४
रचनात्मक प्रवृत्तिया	सफर	२१
सगठन के तत्त्व	मुखडा	१८१
नई पीढी और धार्मिक संस्कार[४]	सोचो ! ३	८
शरीर को छोड दे, धर्मशासन को नही	अतीत का	६८
स्थिरवास क्यो ?[५]	घर	२६९
एक स्वस्थ पद्धति चिन्तन और निर्णय की[६]	मजिल १	७७
दायित्वबोध के सूत्र	अतीत का	७४
सघ और हमारा दायित्व[७]	मजिल १	२१२
सघ, सघपति और युवा दायित्व[८]	दायित्व का	४९
श्रावक अपने दायित्व को समझे	वि० दीर्घा	१३६
युगबोध : दिशाबोध . दायित्वबोध[९]	ज्योति से	१५३
सर्वोत्तम क्षण	कुहासे	१३८
यस्य नास्ति स्वय प्रज्ञा	जब जागे	१९३
संस्कार से जैन बने[१०]	प्रवचन १०	११४
कर्त्तव्यबोध जागे[११]	प्रवचन १०	७९
अमृत संसद	कुहासे	२३५
सीमा मे असीमता	कुहासे	१८९
पुण्य स्मृति	प्रवचन ११	१४२
सस्कृत भाषा का विकास	मंजिल १	९२

१. १५-५-५४ अहमदाबाद ।
२. ३०-५-६६ सरदारशहर ।
३. २७-१२-७७ जैन विश्व भारती,
४. १३-१-७८ जैन विश्व भारती,
५. लाडनूं, स्थिरवास शताब्दी महोत्सव
६. १३-१-७७ राजलदेसर ।
७. २७-५-७७ लाडनूं ।
८. २२-५-७३ दूधालेश्वर महादेव ।
९ १६-२-७५ डूंगरगढ़ ।
१०. ५-२-७९ राजलदेसर ।
११. १२-९-७८ गंगाशहर ।

तेरापंथ के मौलिक सिद्धांत

---

१. १८-४-७८ लाडनूं ।
२. १२-६-६५ अलवर ।
३,४. ३०-६-६८ टाइम्स ऑफ इण्डिया के संवाददाता किशोर डोसी के साथ वार्ता ।
५. १६-६-७८ जोरावरपुरा ।
६. २३-२-५४ सिरियारी ।
७. १४-२-५६ भीलवाड़ा ।
८. २८-६-७८ नोखामण्डी ।
९. ५-१२-५५ बड़नगर ।
१०. २३-२-५५ पूना ।
११. २१-७-७८ गंगाशहर ।
१२. २०-१२-७६ राजलदेसर ।

---

१. १२-६-५४ बम्बई (बोरीवली)।
२. १८-११-६६ तेरापंथ भवन लाडनूं का उद्घाटन समारोह।
३. ९-२-७९ राजलदेसर।
४. २३-१-७८ जैन विश्व भारती
५. १७-६-७८ नोखामण्डी।
६. ६-५-७८ लाडनूं।
७. १७-२-७७ छापर।
८. १७-५-७७ चाड़वास।
९. ३१-५-७७ लाडनूं।
१०. १५-७-७७ लाडनूं।
११. २६-९-७७ जैन विश्व भारती,
१२. ३०-१०-७७ जैन विश्व भारती,
१३. ३-८-७७ जैन विश्व भारती,
१४. १८-३-७७ जैन विश्व भारती,
१५. ७ २-७९ राजलदेसर।

---

१. सरदारशहर।
२. १९-५-७६ पड़िहारा।
३. १०-२-५४ राणावास, मर्यादा महोत्सव।
४. २१-१-५३ सरदारशहर, मर्यादा महोत्सव।
५. ३०-१-५५ वम्बई, मर्यादा महोत्सव।
६. १४-२-५६ भीलवाड़ा।

धर्म

- 0 धर्म
- 0 धर्म और जीवन व्यवहार
- 0 धर्म और राजनीति
- 0 धर्मसंघ
- 0 धर्म और सम्प्रदाय
- 0 धर्मक्रान्ति
- 0 धर्म : विभिन्न सन्दर्भो में
- 0 धार्मिक
- 0 संन्यास
- 0 साधु संस्था
- 0 पंचपरमेष्ठी

धर्म

१-२. सन् १९५०, सर्वधर्म सम्मेलन, दिल्ली ।

३. ५-४-६५ ब्यावर ।

४. २७-३-७९ दिल्ली (महरौली) ।

५. १२-१-५६ जावरा ।

६. १०-३-५६ अजमेर ।

७. १३-३-५६ पुष्कर ।

१-२. हिन्दी तत्त्वज्ञान प्रचारक समिति अहमदाबाद द्वारा ११-३-४७ को आयोजित 'धर्म परिषद्' में प्रेषित।
३-४. दिल्ली एशियाई कांफ्रेंस के अवसर पर सरोजनी नायडू की अध्यक्षता में २१-३-४७ को आयोजित 'विश्व धर्म सम्मेलन' में प्रेषित।
५. १४-३-५६ ईडवा।
६. १८-१-५६ जावद।
७. २१-७-५६ सरदारशहर।
८. ६-२-६६ डावड़ी।
९. २२-२-६६ नौहर।
१० १०-३-६५ टापरा।
११. ८-४-५४ धानेरा।
१२. २२-४-५४ बाव।
१३. २३-४-७९ अम्बाली।
१४. २७-७-७७ लाडनूं।
१५. ७-१०-५३ जोधपुर।
१६. २३-६-५३ नागौर।
१७. २९-६-५३ मूंडवा।

---

१. १-४-५४ आबू ।
२. २२-२-७९ सादुलपुर ।
३. १४-४-७७ बीदासर ।
४. २९-१-७८ जसवंतगढ़ ।
५. ८-६-७८ सांडवा ।
६. २७-१-७८ लाडनूं ।
७. १९-१२-५६ दिल्ली ।
८. ५-९-७८ गंगाशहर ।
९. १४-३-७
१०. ४-४-५
११. सुजानगढ़, अणुव्रत प्रेरणा दिवस ।
१२. २७-११-६५ दिल्ली ।
१३. २१-११-६५ दिल्ली ।
१४. १९-१०-६५ दिल्ली ।
१५. वम्बई मे आयोजित अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन में प्रेषित ।
१६. कलकत्ता में डा० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में आयोजित 'भारतीय दर्शन परिषद्' की रजत जयंती [illegible] षित ।

१. ६-१२-५५ बड़नगर ।
२. ६-१०-५३ जोधपुर ।
३. ५-८-७७ लाडनूं ।
४. २०-३-७९ दिल्ली (महरौली) ।
५. १४-११-६५ दिल्ली ।
६. सुजानगढ़ ।
७. १९५०, दिल्ली ।
८. २९-१२-५४ बम्बई ।
९. २८-४-६६ रायसिंहनगर ।
१०. २०-४-६६ श्रीकर्णपुर ।
११. ७-१०-५३ केवलभवन, मोती चौक, जोधपुर ।
१२. १-८-७७ लाडनूं ।
१३. ५-८-७७ लाडनूं ।
१४. २७-६-५५ इंदौर ।
१५. १९-३-५७ चूरू ।
१६. २३-४-७८ लाडनूं ।
१७. कठौतिया भवन, दिल्ली ।

---

१. ६-११-५४ बम्बई ।
२. २८-९-५४ बम्बई ।
३. १२-१-५५ मुलुन्द ।
४. २७-१०-५३ जोधपुर, विचार-गोष्ठी ।
५. १२-४-५४ थराद ।
६. १८-२-७९ चूरू ।
७ १२-२-५३ कालू ।
८. ३०-१२-७६ राजलदेसर ।
९. २०-६-७८ नोखामण्डी ।
१० २६-६-५५ इन्दौर ।
११. २७-६-५५ इन्दौर ।
१२ १३-८-५४ बम्बई ।
१३ ९-७-७८ गंगाशहर ।
१४ ७-७-७८ गंगाशहर ।
१५. १८-५-५५ पालधी ।
१६. ३१-७-७७ लाडनूं ।
१७. ११-३-५५ नारायणगांव ।
१८. २-५-६५ जयपुर ।

धन से धर्म नही[1]	सूरज	२२९
गुमराह दुनिया[2]	सूरज	१४
धर्म की व्यापकता[3]	प्रवचन ९	७२
धर्म से मिलती है शांति[4]	प्रवचन ९	१७३
धर्म और मनुष्य[5]	प्रवचन ९	७
धर्माराधना क्यो[6] ?	प्रवचन ५	४०
धर्म का स्थान[7]	मजिल १	६८
अंतर्मुखी बनो[8]	मंजिल १	४०
निःस्वार्थ भक्ति[9]	मंजिल १	२०५
सघर्ष का मूल स्वार्थ चेतना[10]	बूंद बूंद १	१४८
अमरता का दर्शन[11]	मजिल १	५०
धर्माचरण कब करना चाहिए[12] ?	मंजिल १	६१
धर्म और अधर्म[13]	प्रवचन ९	१४५
जीवन शुद्धि के दो मार्ग[14]	बूंद बूंद १	८१
धन नही, धर्मसग्रह करे[15]	प्रवचन ११	१७५
नर से नारायण[16]	प्रवचन ११	१७४
जीवन मे धार्मिकता को प्रश्रय दे[17]	प्रवचन ११	१६
बुराइयो की भेंट[18]	प्रवचन ११	१८४
सही दृष्टिकोण[19]	प्रवचन ११	२१०
धर्म के चार द्वार	समता	२४९
धर्म की शरण[20]	प्रवचन ९	८६

---

१. ५-१२-५५ बड़नगर।
२. १८-१-५५ मुलुन्द।
३. १०-४-५३ गंगाशहर।
४. ९-७-५३ बड़लू।
५. ९-२-५३ घडसीसर।
६. २६-११-७७ लाडनूं।
७. १९-१२-७६ रतनगढ़।
८. १९-११-७६ रतनगढ़।
९. १८-५-७७ सुजानगढ़।
१०. २५-४-६५ जयपुर।
११. २५-११-७६ चूरू।
१२. १५-१२-७६ राजलदेसर।
१३. २८-६-५३ नागौर।
१४ ८-४-६५ ब्यावर।
१५. २४-३-५४ सुमेरपुर।
१६. २३-३-५४ सांडेराव।
१७. २१-३-५४ राणाग्राम।
१८. ९-४-५४ धानेरा।
१९. ९-५-५४ अहमदाबाद।
२०. ३०-४-५३ नाल।

---

१ २५-३-६५ पाली।
२. ६-९-६५ दिल्ली।
३. २०-२-६६ नोहर, व्यापारी सम्मेलन।
४. १-१२-७६ रामगढ़।
५. ३-७-५३ रूण।
६. ९-६-७५ दिल्ली।
७ २४-७-५५ उज्जैन।
८. १०-६-६५ अलवर।
९. ११-६-६५ अलवर।
१०. ९-१२-५६ दिल्ली।
११ १४-२-५६ भीलवाड़ा।
१२. १२-३-६५ अजमेर।

---

१ ४-५-७८ लाडनूं।
२ ८-११-७८ भीनासर।
३. २७-३-६६ गंगानगर।
४. २७-९-५३ जोधपुर।
५. ९-९-६५ दिल्ली।
६. २२-८-६५ दिल्ली।
७. १८-१०-६५ दिल्ली।

धर्मक्रांति

धर्म : विभिन्न संदर्भों मे

---

१. २८-११-५३ जोधपुर।
२. ११-७-७८ गंगाशहर।
३. ४-५-५४ माण्डल।
४. १९-१-५६ जावद।
५. २८-५-५७ लाडनूं।
६. २७-३-८३ अहमदाबाद।
७. १९-१२-५४ बम्बई (घाटकोपर)
८. १८-५-५७ लाडनूं।
९. ६-१२-७६ चूरू।
१०. १-१२-५६ माडॅन हायर स्कूल, दिल्ली।
११. १३-१२-६६ लाडनूं।

धार्मिक

संन्यास

१. २०-१२-६७ लाडनूं ।
२. २४-४-५७ चूरू ।
३. २३-२-७९ राजगढ़ ।
४. २६-८-६५ दिल्ली ।
५. १३-४-७९ सोनीपत ।
६. ११-११-५१ दीक्षा समारोह, दिल्ली ।
७. ७-६-७६ राजलदेसर ।
८. १९-६-७७ लाडनूं, दीक्षांत प्रवचन ।
९. २४-२-७९ राजगढ़
१०. १६-१०-७६ सरदारशहर ।
११. २३-५-७६ पड़िहारा ।
१२. ६-६-७६ राजलदेसर ।
१३ २३-५-७६ पड़िहारा ।

---

१. १६-१०-७८ गंगाशहर ।
२. १७-१०-५७ सुजानगढ़ ।
३. ३-१-५४ ब्यावर ।
४. १-११-५३ जोधपुर ।
५. १८-१०-५३ जोधपुर ।
६. १०-४-६६ अबोहर ।
७. २-५-६६ रायसिहनगर ।
८. ११-५-७८ लाडनूं ।
९. २६-२-५३ लूणकरणसर, दीक्षांत भाषण ।
१०. २९-४-६५ जयपुर ।
११. ६-७-७८ भीनासर ।
१२. १७-६-७७ लाडनूं ।

१. १-४-६६ गंगानगर।
२. ७-९-७७ लाडनूं।
३. २६-३-५६ खाटू (छोटी)।
४. ७-२-५७ सरदारशहर।
५. २२-२-५३ लूणकरणसर।
६. ५-७-५४ बम्बई (सिक्कानगर)।
७. ८-१-७९ श्रीडूंगरगढ़।
८. ८-१०-६५ दिल्ली।
९. २६-१२-६५ दिल्ली।
१०. २०-११-६५ दिल्ली।
११. २७-१२-६५ भिवानी।
१२. २२-१-५६ जालमपुरा।
१३. १२-४-५६ सुजानगढ़।

नैतिकता और अणुव्रत

- व्रत
- अणुव्रत
- अणुव्रती
- अणुव्रत के विविध रूप
- अणुव्रत-अधिवेशन
- नैतिकता
- नैतिकता : विभिन्न सन्दर्भो मे

नैतिकता और अणुव्रत

१. १२-१०-७६ सरदारशहर।
२. २२-७-६५ दिल्ली।
३. २१-७-६५ दिल्ली।
४. सरदारशहर
५. ९-१-५६ रतलाम।
६. सरदारशहर।

१. २२-५-६५ जयपुर ।
२. १२-१०-५७ सुजानगढ़ ।
३. १५-१०-५७ सुजानगढ़ ।
४. ८-४-६६ अबोहर ।
५. ८-५-६९ सूरतगढ़ ।
६. १४-५-६६ पीलीबंगा ।
७. १२-५-६६ पीलीबंगा ।

---

१. २८-५-६६ सरदारशहर।
२. १४-१०-५७ सुजानगढ़।
३. १८-५-५७ फतेहपुर।
४. सुजानगढ़।
५. ७-७-५७ सुजानगढ़।
६. २३-४-५७ चूरू।
७. ४-४-५७ सरदारशहर।

१. २-१०-५६ सरदारशहर, अणुव्रत विचार शिविर।

२. १-१२-५६ प्रेस कांफ्रेंस, दिल्ली।

३. २-२-५७ अणुव्रती कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर, सरदारशहर।

१. १६-९-५६ सरदारशहर ।
२. ६-४-५६ सुजानगढ़ ।
३. १८-७-५४ बम्बई ।
४. २७-६-५४ बम्बई (माटुंगा) ।
५. १३-६-५४ बम्बई (बोरीवली) ।
६. १७-१०-५४ बम्बई ।
७. २९-१२-५४ बम्बई (थाना) ।
८. ६-९-५३ जोधपुर ।
९. २३-१-५५ मुलुन्द ।
१०. २०-११-५५ उज्जैन ।
११. १४-५-५५ जलगाँव ।
१२. २८-८-५५ उज्जैन ।
१३. २५-१-५५ बंबई ।
१४. २३-२-५५ पूना ।
१५. २३-३-५५ राहता ।
१६. ३-४-५५ औरंगाबाद ।
१७. २७-२-५५ पूना ।

१. ९-५-७७ चाड़वास ।
२. १७-४-८३ अहमदाबाद ।
३. ८-१०-७८ गंगाशहर ।
४. १५-२-५३ कालू, अणुव्रत प्रचार दिवस ।
५. ११-५-५३ बीकानेर ।
६. ११-५-५३ बीकानेर ।
७. ७-५-६५ जयपुर ।
८. ८-१-५६ रतलाम ।
९. १-१-५६ पेटलावद ।
१०. १५-१०-५३ जोधपुर ।
११. १४-५-५४ अणुव्रत प्रेरणा दिवस, अहमदाबाद ।
१२. २८-५-५४ भड़ौच ।
१३. ३०-५-५४ सूरत ।
१४. २०-१२-५३ ब्यावर ।
१५. ८-२-५४ राणावास ।
१६ २१-१२-५३ अजमेर ।
१७. २५-२-५४ कंटालिया ।
१८. २०-३-५४ राणीस्टेशन ।
१९. १६-४-५३ गंगाशहर ।

१. १७-४-५४ बाव।
२. १-३-५४ सुधरी।
३. ७-७-५६
४. १-१-५६
५. ११-३-५६ अजमेर।
६. १९-९-७५ जयपुर।

१. १३-१२-६५ सप्रू हाऊस, दिल्ली ।
२. ९-१-५६ रतलाम ।
३. १२-५-५५ जलगांव ।
४. १०-४-५५ सतोषबाड़ी ।
५. ११-१२-५५ वदनावट ।
६. २१-१०-५४ बम्बई ।

१. १४-१०-६५ मैक्समूलर भवन, दिल्ली।
२. १०-७-६५ दिल्ली।
३. १२-४-५५ संतोषवाड़ी।
४. ३०-१-५५ बम्बई।
५. ३०-११-६६ लाडनूं।

अणुव्रत अधिवेशन

१. १-३-४९ सरदारशहर में अणुव्रती संघ का उद्घाटन।
२. ३०-४-५० दिल्ली में अणुव्रती संघ का प्रथम वार्षिक अधिवेशन।
३. २४-९-५० हांसी में अणुव्रती संघ का अर्धवार्षिक अधिवेशन।
४. २-५-५१ लुधियाना (पंजाब) में अणुव्रती संघ का द्वितीय अधिवेशन।
५. ३-५-५२ लुधियाना (पंजाब) में अणुव्रती संघ का द्वितीय अधिवेशन।
६. २३-९-५१ सरदारशहर, अणुव्रत आंदोलन का तृतीय वार्षिक अधिवेशन।
७. १७-१०-५३ अणुव्रती संघ द्वारा आयोजित चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन के अन्तर्गत कवि सम्मेलन।
८. १५-१०-५३ जोधपुर, अणुव्रत का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन।
९. १८-१०-५३ जोधपुर, अणुव्रत का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन।
१०. १४-५-५४ अहमदाबाद, गुजरात प्रादेशिक भारत सेवक समाज द्वारा आयोजित प्रेरणा दिवस।
११. १७-१०-५४ बम्बई, अणुव्रत का पंचम वार्षिक अधिवेशन।
१२. २०-१०-५५ उज्जैन, अणुव्रत का छठा वार्षिक अधिवेशन।
१३. २५-१०-५५ उज्जैन, अणुव्रत का छठा वार्षिक अधिवेशन।
१४. १९-८-५६ सरदारशहर, अणुव्रत प्रेरणा दिवस।

१. १०-१०-५६ सरदारशहर, अणुव्रत के सातवें वार्षिक अधिवेशन पर युवक सम्मेलन ।
२. १२-११-५६ सरदारशहर, अणुव्रत समिति का सप्तम अधिवेशन ।
३. २-१२-५६ दिल्ली, अणुव्रत सेमिनार ।
४. ३-१२-५६ दिल्ली, अणुव्रत सेमिनार ।
५ २-१२-५६ अणुव्रत सेमीनार ।
६. ४-१२-५६ अणुव्रत सेमीनार ।
७ १२-१०-५६ सरदारशहर, अणुव्रत का सातवां वार्षिक अधिवेशन ।
८. १४-१०-५६ सरदारशहर, अणुव्रत का सातवां वार्षिक अधिवेशन ।
९. २६-१०-५६ सरदारशहर, अणुव्रत प्रेरणा समारोह ।
१०. २-२-५७ सरदारशहर, अणुव्रती कार्यकर्ता शिक्षण शिविर ।
११. १९-१०-५८ कानपुर, अणुव्रत का नवम वार्षिक अधिवेशन ।
१२. १६-१०-५९ कलकत्ता, अणुव्रत का दशम वार्षिक अधिवेशन ।
१३. १८-१०-५९ कलकत्ता, अणुव्रत का दशम वार्षिक अधिवेशन ।
१४. १-१०-५६ राजनगर, अणुव्रत का ग्यारहवां अधिवेशन ।
१५. अणुव्रत का सतरहवां अधिवेशन ।

नैतिकता

---

१. अठारहवां अखिल भारतीय अणुव्रत सम्मेलन, अहमदाबाद।

२. अणुव्रत का बीसवां अधिवेशन।

३. अणुव्रत का अट्ठाइसवां वार्षिक अधिवेशन।

४. अहमदाबाद, अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद् के सतरहवें अधिवेशन में 'जैनदर्शन व प्राकृ[illegible] विभाग' मे पठित।

५. ७-८-७७ अखिल भारतीय अ[illegible] कार्यकर्ता शिविर।

६. २१-५-६५ राजस्थान प्र[illegible]। अणुव्रत सम्मेलन।

---

१. १४-३-५६ थांवला।
२. ५-६-५७ बीदासर।
३. ५-३-६५ बाड़मेर।
४. १-१२-५६ नई दिल्ली, संसद सदस्यों के बीच प्रदत्त प्रवचन।
५. २२-२-५६ भीलवाड़ा।
६. २७-६-५५ इन्दौर।

नैतिकता और अणुव्रत

नैतिकता का अनुबंध	समता/उद्‌बो	
नैतिकता का विस्तार	समता/उद्‌बो	
नैतिक मन का जागरण	समता/उद्‌बो	
मूल्यो में श्रद्धा रखें[1]	सभल	
जीवन के आवश्यक तत्त्व[2]	संभल	
नैतिक मूल्यो की यात्रा	समता/उद्‌बो	
अनैतिकता का चक्रव्यूह	समता/उद्‌बो	
सत्य की चाबी : नैतिकता	समता/उद्‌बो	
नैतिकता का प्रयोग	समता/उद्‌बो	
आत्मप्रेरणा	समता/उद्‌बो	
नैतिकता का प्रकाश	समता/उद्‌बो	
स्वत्व का विस्तार	समता/उद्‌बो	
मूल्यांकन का दृष्टिकोण	समता/उद्‌बो	
सयम का मूल्य	समता/उद्‌बो	
परिस्थितिवाद एक बहाना	समता/उद्‌बो	
श्रद्धाहीनता सबसे बडा अभिशाप है[3]	सभल	
मानवता का आधार	समता/उद्‌बो	
पकड किसकी ?	समता/उद्‌बो	
पहला सोपान	समता/उद्‌बो	
चरित्रनिष्ठा . एक प्रश्नचिह्न	अणु गति	
सफलता का प्रथम सूत्र	वैसाखिया	
नीति और अनीति	प्रश्न	
सुख और उसके हेतु	अनैतिकता	
विश्वास का आधार	समता	
मूल्याकन का दृष्टिकोण[4]	प्रवचन ५	
जब मुख्य गौण हो जाए	समता	
समाज और व्यक्ति की सफलता[5]	सूरज	
चरित्रनिष्ठा	उद्‌बो/समता	१५९/
प्रेम की जीत	मुक्तिपथ	

---

१ १८-१-५६ जावद
२. २६-१-५६ हमीरगढ़
३. ८-३-५६ अजमेर।
४. २४-१२-७७ लाडनूं।
५. २-२-५५ लाडनूं।

नैतिकता : विभिन्न सन्दर्भो में

---

1 २०-१०-६०

१२

मनोविज्ञान

- 0 मनोविज्ञान
- 0 भाव
- 0 लेश्या
- 0 इन्द्रिय

मनोविज्ञान

---

१. २४-८-७८ गंगाशहर
२. १-९-७७ लाडनूं
३. १८-४-७८ लाडनूं
४. १-५-७६ छापर
५. ११-६-७५ दिल्ली

लेश्या

---

१. २९-५-७६ पड़िहारा
२. ८-४-५३ बीकानेर
३. ४-९-५५ उज्जैन
२४-२-५६ भीलवाड़ा
५. १९-५-५७ लाडनूं
६. १६-६-७७ लाडनूं
७. २८-८-६५ दिल्ली
८. २९-८-७८ गंगाशहर

---

१. १२-८-७७ जैन विश्व भारती
२. २८-८-७८ गंगाशहर
३. २७-८-७८ गंगाशहर
४. ३१-८-७८ गंगाशहर
५. १-९-७८ गंगाशहर
६. २३-८-७८ गंगाशहर
७. २२-८-७८ गंगाशहर
८. २०-१७८ लाडनूं
९. २२-३-७८ लाडनूं

१३

योगसाधना

योगसाधना

शीर्षक	पुस्तक	पृष्ठ
ध्यान		
खोज अपने आपकी	दीया	७८
निर्विचारता · ध्यान की उत्कृष्टता	मनहसा	१२९
परम पुरुपार्थ	खोए	२५
आलम्वन से होता है ध्यान का प्रारम्भ	जव जागे	६४
सफल जीवन की पहचान भाव विशुद्धि	जव जागे	७५
ध्यान का प्रथम सोपान धर्म्यध्यान	अतीत	७९
द्रष्टा की आख का नाम है प्रज्ञा	लघुता	७२
क्या जैन धर्म मे ध्यान की परम्परा है ?	प्रेक्षा	३९
भगवान् महावीर के वाद ध्यान की परम्परा	प्रेक्षा	४
ध्यान परम्परा का विच्छेद क्यो ?	प्रेक्षा	४
ध्यान की भूमिका	प्रेक्षा	५
ध्यान-साधना और गुरु	प्रेक्षा	६
ध्यान का गुरुकुल	प्रेक्षा	६
ध्यान प्रशिक्षण की व्यवस्था	प्रेक्षा	६
ध्यान की मुद्रा	प्रेक्षा	९
चौवीसी मे ध्यान के तत्त्व	जीवन	१४
ध्यान के पूर्व तैयारी	प्रेक्षा	८
परिवर्तन की प्रक्रिया	प्रेक्षा	७
ध्यान क्या है ?[1]	प्रवचन १०	६
धर्मध्यान : एक अनुचितन[2]	सोचो ! ३	२
तपस्या और ध्यान[3]	वूद-वूद १	१
प्रयोग . प्रयोग के लिए	खोए	१

१. २-९-७८ गंगाशहर।

२. १६-१-७८ लाडनूं।

३. १९-५-६५ जयपुर।

साधना

---

1. १६-८-६५ दिल्ली ।

---

१. १७-१०-७८ गंगाशहर ।
२. १६-२-६६ भादरा ।
३. २७-२-६६ सिरसा ।
४. १६-१२-७७ लाडनूं ।
५. ५-१-७८ लाडनूं ।
६. १-२-७८ सुजानगढ ।
७. ४-१-७८ लाडनूं ।
८. २५-७-७७ लाडनूं ।
९. २-६-७८ सुजानगढ़ ।
१०. १-७-७८ रासीसर ।
११. ८-६-७८ सांडवा ।
१२. २१-२-६६ नोहर ।
१३. १५-६-७७ लाडनूं ।
१४. २३-३-७८ लाडनूं ।

---

१. १३-१०-६५ दिल्ली ।
२. ३०-४-७८ लाडनूं ।
३. १६-२-७७ छापर ।
४. ५-८-६५ दिल्ली ।
५. ३-५-६५ जयपुर ।
६. २९-७-६५ दिल्ली ।
७. १६-३-५४ राणीस्टेशन ।
८. २७-९-५४ बम्बई ।
९. २७-११-७७ लाडनूं ।
१०. २३-३-७९ दिल्ली ।
११. ५-४-७९ दिल्ली ।
१२. १३-२-७९ रतनगढ़ ।
१३. २३-१०-६५ दिल्ली ।
१४. २३-७-५३ जोधपुर ।
१५. २५-४-५३ बीकानेर ।
१६. १५-६-७७ लाडनूं ।
१७ १४-५-५५ चावलखेड़ा ।
१८. ३-४-८३ अहमदाबाद ।

नए द्वार का उद्घाटन[1]	सोचो ! ३	२६
साधना की आयोजना	वि. वीथी	९
वैयक्तिक साधना का अधिकारी[2]	मजिल १	१
आदर्श साधक कौन ![3]	भोर	२
दो प्रकार के साधक[4]	प्रवचन १०	
स्थितात्मा : अस्थितात्मा[5]	प्रवचन १०	
आत्मोदय होता है आस्था, ज्ञान और पुरुषार्थ से	लघुता	
मौन से होता है ऊर्जा का संचय	लघुता	
सबल कौन ?[6]	मुक्ति· इसी/मजिल २	
आत्मानुभव की प्रक्रिया	राज	
श्रेय और प्रेय	खोए	
वृत्तियो का शोषण · विचारो का पोषण	खोए	
आत्मसाक्षात्कार की दिशा	खोए	
वर्तमान मे जीना	वि वीथी	
चैतन्य विकास की प्रक्रिया	मुक्ति . इसी	
आगे की सुधि लेइ[7]	आगे	
जीवन विकास के क्रम	प्रवचन ११	
अकर्म से निकला हुआ कर्म	खोए	
आत्मदर्शन का पथ[8]	प्रवचन १०	
साधना की सफलता का रहस्य	आगे	
उपासक संघ : एक नया प्रयोग	बूंद बूंद	
अस्तित्व की जिज्ञासा	प्रेक्षा	
जागो ! निद्रा त्यागो[9]	जागो !	
जागरूकता से बढती है सभावनाएं	लघुता	
प्रारम्भ सरस, अन्त विरस[10]	बूंद बूंद १	
चार[11]	धर्म . एक	

---

१. १८-६-७८ नोखामण्डी ।
२. १७-३-७७ लाडनूं ।
३. ३०-१२-५४ थाना ।
४. २-४-७९ दिल्ली ।
५. २४-३-७९ दिल्ली (महरौली) ।
६. २६-५-७६ पडिहारा ।
७. १०-५-६६
८. १२-२-७९
९. १-१०-६५
१०. १-७-६५
११. मृगसिर

---

१. २-११-७७ लाडनूं ।
२. १०-४-८३ अहमदाबाद, प्रेक्षाध्यान शिविर का उद्‌घाटन ।
३. ११-१२-७७ लाडनूं, प्रेक्षाध्यान शिविर का समापन समारोह ।
४. १८-३-७८ जैन विश्व भारती, चतुर्थ प्रेक्षाध्यान शिविर का समापन समारोह ।
५. ४-९-७८ गंगानगर ।
६. ३०-६-७६ राजलदेसर ।

दीर्घश्वास प्रेक्षा

शरीर प्रेक्षा

चैतन्य केन्द्रप्रेक्षा

---

१. १-९-७० रायपुर ।
२. ३१-१०-७७ जैन विश्व भारती ।
३. १-११-७७ लाडनूं ।
४. १३-२-७७ छापर ।
५. २४-११-६५ दिल्ली ।

लेश्याध्यान

अनुप्रेक्षा

१. १९-३-७९ दिल्ली (महरौली)।

१४

राष्ट्र चिंतन

- 0 राष्ट्र-चिंतन
- 0 संसद
- o राष्ट्रीय चरित्र (विधायक)
- 0 चुनावशुद्धि
- 0 लोकतंत्र/जनतंत्र
- 0 राष्ट्रीय एकता
- 0 नागरिकता

राष्ट्र चिंतन

१. २३-३-४७ दिल्ली में पं० नेहरू के नेतृत्व में आयोजित एशियाई कांफ्रेंस में प्रेषित।
२. २७-९-५३ कुमार सेवा सदन, जोधपुर की ओर से आयोजित 'विचार परिषद्' मे पठित।
३. ६-८-५५ उज्जैन।
४. १५-८-७७ जैन विश्व भारती।
५. २६-१-५१ हासी।

---

१. २१-५-५४ बड़ौदा।
२. ५-८-७७ लाडनू।
३. ४-४-७९ संसद भवन, दिल्ली।
४. २६-४-५७ चुरू।

लोकतंत्र/जनतंत्र

राष्ट्रीय एकता

---

१. २१-४-६६ श्री कर्णपुर ।
२. २३-५-६५ जयपुर ।
३. २०-१-५७ पिलाणी ।
४-५. अणुव्रत भवन, दिल्ली ।
६. २६-१-७८ लाडनूं ।
७. राष्ट्रीय एकता परिषद् के लिए प्रेषित संदेश ।

नागरिकता

---

१. २-१०-६८ ।
२. २२-८-५४ वम्वई (सिक्कानगर) ।
३. २-४-५५ औरंगावाद ।
४. व्यावर, नगरपालिका में ।
५. १८-१-५४ मगरा ।

विज्ञान

शीर्षक	पुस्तक	पृष्ठ
विज्ञान		
आदमी का आदमी पर व्यग्य	कुहासे	३७
मशीनी मानव के खतरे	वैसाखिया	१९
विज्ञान के सही सयोजन की आवश्यकता	अणु सदर्भ	११२
विज्ञान और अध्यात्म	अणु गति	१८०
वैज्ञानिक प्रगति से मानव भयभीत क्यो ?	राज/वि दीर्घा	९४/२३३
चंद्रयात्रा : एक अनुचितन[1]	ज्योति से	१२५
चंद्रयात्रा और शास्त्रप्रामाण्य	अणु सदर्भ	१२४
शक्ति के उपयोग की सही दिशा	वैसाखिया	१८५
सूक्ष्म जीवो की सवेदनशीलता	लघुता	५८
वनस्पति का वर्गीकरण	अतीत	१७१
अल्फा तरगो का प्रभाव[2]	खोए	७२
पर्यावरण		
वनस्पति की उपेक्षा · अपने सुख की उपेक्षा	लघुता	५३
मानव के अस्तित्व को खतरा	वैसाखियां	४५
पर्यावरण व सयम	वैसाखिया	४७
पर्यावरणविज्ञान	दीया	१११
धीरे वोलने का अभ्यास करे	प्रज्ञापर्व	८१

१. १-८-६९ बेंगलोर।

२. १९-३-७९ दिल्ली (महरौली)।

विविध

विविध

१. २४-४-७७ बीदासर ।
२. २४-७-७७ लाडनूं ।
३. ६-९-५४ वम्बई ।
४. २५-१-५४ देवगढ़ ।
५. ३-१०-५३ आमलनेर मे आयोजित खानदेश का त्रैवार्षिक अधिवेशन ।
६. २३-८-७६ सरदारशहर ।
७. १९-१२-६६ लाडनू ।

स्वाध्याय

समन्वय

१. २२-५-६६ पडिहारा।
२. २१-५-७६ पडिहारा।
३. २२-५-७६ पडिहारा।
४. २९-८-७७ लाडनूं।
५. ६-११-६६ लाडनूं।
६. २२-५-५३ गंगाशहर।
७. १-७-७० रायपुर।
८. ५-४-६५ बाड़मेर।
९. ४-५-४९ जैन निशी मंदिर, दिल्ली।

सुख-दुःख

---

१. ९-१२-५५ बड़नगर।
२. ६-८-७८ गंगाशहर।
३. १-३-५५ पूना।
४. १४-११-६५ दिल्ली।
५. २७-१०-६५ दिल्ली।
६. २३-१०-६० राजसमन्द।
७. २७-८-५४ बम्बई।
८. ३-१०-७७ लाडनूं।
९. २८-७-७७ लाडनूं।
१०. २-६-५५ धूलिया।

---

१. २१-४-५५ मोकरधन ।
२. १२-७-५५ उज्जैन ।
३. नोखा ।
४. ११-९-८० लाडनूं ।
५. २७-६-५४ वम्बई (माटूंगा) ।
६. २१-११-५३ जोधपुर ।
७. २-१-५५ वम्बई (मुलुन्द) ।
८. ५-७-५५ उज्जैन ।
९. ६-९-५४ वम्बई ।
१०. ११-२-५४ राणावास ।
११. २३-९-५६ सरदारशहर ।
१२. १९-८-५६ सरदारशहर ।
१३. २२-७-५३ जोधपुर, नागरिक स्वागत समारोह ।
१४. २७-१२-५५ पेटलावद ।
१५. १७-११-५३ जोधपुर ।
१६. आषाढ कृष्णा ८, गुरुवार, दिल्ली (करौलवाग) ।

---

१. ८-२-५५ बम्बई ।
२. ११-११-५४ बम्बई ।
३. १३-६-७८ जसरासर ।
४. ३०-११-५५ विदाई संदेश, उज्जैन ।
५. ७-११-७६ सरदारशहर ।
६. २५-३-५६ खाटू (छोटी)
७. १६-७-५६ सरदारशहर ।
८. २०-१-५६ जावद ।
९. २७-५-५७ लाडनूं ।

व्यक्ति एवं विचार

- तीर्थंकर ऋषभ एवं पार्श्व
- महावीर : जीवन-दर्शन
- आचार्य भिक्षु : जीवन-दर्शन
- जयाचार्य
- अन्य आचार्य
- विशिष्ट संत
- महात्मा गांधी : जीवन-दर्शन
- विशिष्ट व्यक्तित्व

व्यक्ति एवं विचार

शीर्षक	पुस्तक	पृष्ठ
तीर्थंकर ऋषभ एवं पार्श्व		
तीर्थंकर ऋषभ[1]	प्रवचन ९	११८
उपयुक्त समय यही है	मुखड़ा	११७
राजतंत्र का उदय	मुखडा	१२०
समाज-व्यवस्था का परिवर्तन क्यो ?	मुखडा	१२३
धर्मचक्र का प्रवर्त्तन	मुखड़ा	१२६
एक मार्ग : दो समाधान	मुखडा	१२९
विजय और पराजय के बाद की विजय	मुखडा	१३२
श्रमण परम्परा और भगवान् पार्श्व	भगवान्	१
महावीर : जीवन-दर्शन		
निर्वाणवादी भगवान् महावीर	दीया	१४०
अंगारो पर खिलते फूल	मुखडा	७५
सत्य के प्रयोक्ता भगवान् महावीर	वि वीथी/राज	२१/७
अनुभूत सत्य के प्रयोक्ता . भगवान् महावीर	बीती ताहि	५२
सामाजिक क्राति के सूत्रधार : भगवान् महावीर	बीती ताहि	४४
वैज्ञानिक धर्म के प्रवक्ता . भगवान् महावीर	मेरा धर्म	५९
मंडनात्मक नीति के प्रवक्ता : भगवान् महावीर	मुखडा	५६
भूख और नीद के विजेता · भगवान् महावीर	मुखडा	६०
महान् वैज्ञानिक भगवान् महावीर	बीती ताहि	४०
चेतना के केन्द्र मे विस्फोट	वि वीथी/राज	१/१०
महावीर कर्म से या जन्म से ?[2]	मजिल २	१२१
महावीर सम्प्रदायातीत थे[3]	मजिल २	१३५
महावीर स्वयं आकर देखे	बीती ताहि	३६
आज फिर एक महावीर की जरूरत है	वि दीर्घा/राज	१२/३८

१. १६-५-५३ बीकानेर।
२. २१-४-७८ महावीर जयंती, लाडनूं।
३. २४-४-७८ लाडनूं।

१. २८-३-५३ महावीर जैन मंडल द्वारा आयोजित महावीर जयन्ती, बीकानेर।
२. २१-४-७८ महावीर जयंती, लाडनू।
३. १६-४-५४ बाव।
४. ६-१-७९ महावीर कीर्तिस्तम्भ का उद्घाटन समारोह, डूंगरगढ़।
५. २८-२-५३ बीकानेर।
६. २३-४-७८ लाडनू।
७. २८-६-५७ बीदासर।
८. १६-५-७६ पड़िहारा।
९. १६-५-७६ पड़िहारा।
१०. २१-६-५४ बम्बई (अन्धेरी)।

१. ६-१२-७७ महावीर दीक्षा कल्याण दिवस, लाडनू ।
२. ३-४-६६ महावीर जयंती, गंगानगर ।
३. ८-४-७९ दिल्ली ।
४. १-९-७४ दिल्ली ।
५. १४-९-७८, १७६ वां भिक्षु चरमोत्सव, गंगाशहर ।

पौरुष का प्रतीक	मुखडा	१७५
आचार्य भिक्षु का दार्शनिक अवदान	मेरा धर्म	११८
सत्यशोध के लिए समर्पित व्यक्तित्व : आचार्य भिक्षु[1]	सोचो ! १	१५२
आत्मशुद्धि की सत्प्रेरणा ले[2]	संभल	१६६
आचार्य भिक्षु : संगठन और आचार के सूत्रधार[3]	संभल	१७८
आदर्श विचार पद्धति	घर	२४४
अवधूत का दर्शन और एक विलक्षण अवधूत	लघुता	२०८
अठारहवी सदी के महानतम महापुरुष : आचार्य भिक्षु[4]	सोचो १	१५७
वलिदान की लंवी कहानी : आचार्य भिक्षु[5]	प्रवचन ५	१३१
आचार्य भिक्षु : एक क्रान्तद्रष्टा आचार्य[6]	बूंद-बूंद २	१६४
असीम आस्था के धनी : आचार्य भिक्षु[7]	मंजिल १	६४
सत्य के प्रति समर्पण[8]	मंजिल १	२०७
आध्यात्मिक क्रांतिकारी सन्त[9]	प्रवचन ११	२६
आचार्य भिक्षु की जीवन-गाथा[10]	भोर	१३२
आचार्य श्री भिक्षु[11]	सूरज	२०९
आचार्य भिक्षु और तेरापथ[12]	प्रवचन १०	३०

जयाचार्य

वहुआयामी व्यक्तित्व के धनी	वीती ताहि	५४
भविष्यद्रष्टा व्यक्तित्व	वि दीर्घा	४९
श्रीमद्जयाचार्य[13]	मजिल १	१४
जयाचार्य: व्यक्तित्व एव कर्तृत्व[14]	सोचो ! १	१३९
वे अनुपमेय थे	वीती ताहि	५७
आत्म साधना के महान् साधक[15]	प्रवचन ९	२३८

---

१. २५-९-७७ लाडनूं ।
२. १७-९-५६ सरदारशहर।
३. वीदासर ।
४. २७-९-७७ लाडनूं ।
५. २४-१२-७७ लाडनूं ।
६. ८-९-६५ दिल्ली ।
७. १६-१२-७६ राजलदेसर ।
८. ९-४-७७ लाडनूं ।
९. १९५३ भिक्षु चरमोत्सव, जोधपुर ।
१०. १०-९-५४ बम्बई ।
११. ३१-८-५५ उज्जैन ।
१२. २०-७-७८ गंगाशहर ।
१३. २१-८-७६ सरदारशहर ।
१४. १०-९-७७ लाडनूं ।
१५. ५-९-५३ जोधपुर।

अन्य आचार्य

विशिष्ट संत

महात्मा गांधी : जीवन दर्शन

---

१ २८-३-७८ लाडनूं
२. १९-९-७७ लाडनूं
३. २०-२-७७ छापर
४. ११-२-७७ छापर
५. १५-४-५६ लाडनूं
६. २३-१-७७ लाडनूं
७. १२-८-७८ गंगाशहर
८. १५-१०-६७ अहमदाबाद
९. २०-९-६८ मद्रास

विशिष्ट व्यक्तित्व

---

१. २०२४ कार्तिक शुक्ला ९, अहमदाबाद ।
२. १-३-६३ ।
३. २०२४ मार्गशीर्ष कृष्णा १३ ।
४. ८-६-६९ चिकमंगलूर ।
५. ९-१-७४ बम्बई ।
६. २-१०-६६ बीदासर ।
७. १४-२-६८ पूना ।
८. २०-१०-७४ अहमदाबाद ।

---

१. २०-३-६६ हनुमानगढ़।
२. १२-३-६६ चुटाला।
३. ३-८-६६ बीदासर।
४. ११-६-६३ लाडनूं।
५. १-९-६६ बीदासर।
६. २३-१०-७७ लाडनूं।

शिक्षा और संस्कृति

- शिक्षा
- शिक्षक
- शिक्षार्थी
- संस्कृति
- भारतीय संस्कृति
- श्रमण संस्कृति
- सत्संगति
- गुरु
- पर्व
- दीपावली
- होली
- अक्षय तृतीया
- पर्युषण पर्व
- पन्द्रह अगस्त

शिक्षा और संस्कृति

१. ५-१२-५६ दिल्ली।
२. २-१२-५६ दिल्ली।
३. १-७-५६ सरदारशहर
४ १५-९-५३ जोधपुर।
५. २५-३-५४ शिवगंज।

---

१. ५-४-६६ विद्यार्थी सम्मेलन, गंगानगर।
२. १८-१-५५ मुलुन्द।
३. २७-७-५५ उज्जैन।
४. १५-११-७७ लाडनूं।
५. ३-११-७७ ब्राह्मी विद्यापीठ का उद्घाटन समारोह, लाडनूं
६. २४-८-५४ बम्बई।
७. १९-८-५४ बम्बई।
८. १२-११-५३ टी० सी० टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल, जोधपुर।
९. १०-९-७८ गंगानगर।
१० फाल्गुन शुक्ला १२, वि० स० २००५ गंगा गोल्डन जुबली हाई स्कूल, सरदारशहर।
११. २१-५-५५ धरणगाव।
१२. १५-६-५४ बम्बई (बोरीवली)।
१३. ४-८-५३ जोधपुर।
१४. ७-८-५५ उज्जैन।
१५. १७-६-५४ बम्बई (मलाड)।
१६. ७-८-५५ उज्जैन।
१७. १८-१-५७ पिलाणी।

शिक्षक

---

१ ३-१०-७८ गंगाशहर ।
२. १९-१-५७ विडला विहार इजीनियरिंग कालेज, पिलाणी ।
३. २०-८-५५ उज्जैन ।
४. १५-४-५५ सन्तोषवाडी ।
५. २८-८-५३ मारवाड़ टीचर्स यूनियन जोधपुर की ओर से आयोजित शिक्षक सम्मेलन
६. ३१-१२-७७ लाडनूं ।
७ ९-४-५४ देलवाड़ा ।
८. ११-३-५५ नारायणगांव ।
९. २३-८-५३ जोधपुर ।
१०. २३-३-५६ बोरावड़ ।
११. अजमेर मेयो कालेज ।
१२. ८-४-५७ चूरू ।
१३ २१-४-५७ चूरू ।

जीवन का आभूषण[1]	घर	४६

शिक्षार्थी

जीवन विकास और विद्यार्थी गण[2]	शांति के	१७४
रुचि-परिष्कार की दिशा	आलोक में	११७
विद्यार्थी जीवन : एक समस्या एक समाधान	धर्म एक	८८
पूजा पुरुषार्थ की	समता	२६३
विलक्षण परीक्षण	कुहासे	९३
मेधावी कौन ?[3]	नवनिर्माण	१५६
उत्कृष्ट विद्यार्थी कौन ?[4]	सूरज	२०१
विद्यार्थी जीवन का महत्त्व	नवनिर्माण	१६३
विद्यार्थियो के रचनात्मक मस्तिष्क का निर्माण	अणु सन्दर्भ	६९
विद्यार्थी और जीवन-निर्माण की दिशा[5]	आगे	५५
नैतिकता और जीवन व्यवहार[6]	नवनिर्माण	१७६
विद्यार्थी वर्ग का नैतिक जीवन	सूरज	५३
विद्यार्थी का जीवन[7]	सूरज	५७
लक्ष्य : एक कवच	घर	२६७
विद्यार्थी जीवन : जीवन-निर्माण का काल[8]	भोर	९७
राष्ट्र-निर्माण और विद्यार्थी[9]	सूरज	२४०
विद्यार्थी का चरित्र	प्रवचन ९	८१
संस्कार-निर्माण की वेला[10]	प्रवचन ११	१५६
विद्यार्थी दृढप्रतिज्ञ बने[11]	प्रवचन ११	१
विद्यार्थी कौन होता है ?	प्रवचन ९	१३२
छात्रो का दायित्व[12]	प्रवचन ९	३८

---

१. २८-४-५७ चूरू।
२. २६-८-५३ उम्मेद हाई स्कूल, जोधपुर।
३. २१-१२-५६ कठौतिया भवन दिल्ली।
४. २५-८-५५ उज्जैन।
५. २३-२-६६ नोहर।
६. १९-१-५७ बालिका विद्यापीठ बिड़ला विद्या विहार, पिलाणी।
७. १०-३-५५ नारायणगांव।
८ १६-८-५४ बम्बई।
९. १०-१२-५५ ढोलाना।
१०. ६-३-५४ सोजतरोड़।
११. ४-१०-५३ जोधपुर।
१२ २०-२-५३ छात्र सम्मेलन, कालू।

१. १६-१-५७ बिड़ला माटेसरी पब्लिक स्कूल, पिलाणी।
२. ४-९-५३ जसवंत कालेज, जोधपुर।
३ १-१-५४ ब्यावर।
४. २६-८-५३ जोधपुर।
५. ४-३-५६ गुलाबपुरा।
६. ५-१२-५६ माडर्न हायर सैकेण्डरी स्कूल, दिल्ली।
७. १७-३-५३ वरकाणा।
८. २५-१२-७७ नैतिक शिक्षा और अध्यात्म योग शिविर का ७५ लाडनूं।
९. १८-८-५३ जोधपुर।
१० ३०-३-५५ राहता।
११. २३-३-५५ राहता।
१२. ७-१२-५५ वड़नगर।
१३ १-३-५५ पूना।
१४. २९-८-५४ वम्बई।
१५. २०-१-५६ जावद।
१६. सरदारशहर

---

१. २१-१०-५३ अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, जोधपुर की ओर से विद्यार्थी सम्मेलन।
२. १६-९-५३ महाराजकुमार कालेज, जोधपुर।
३. ४-१०-५३ जोधपुर (केवल भवन)।
४. १९५३, जोधपुर
५. १७-८-५४ बम्बई (सिवकानगर)
६. १७-१-५७ पिलाणी।
७. १९-१२-५३ ब्यावर।
८. २७-५-५५ आमलनेर।
९. १०-५-७७ चाड़वास।
१०. १९-१२-५३ संस्कृति सम्मेलन, गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर।
११. १३-९-४९ हांसी।

शिक्षा और संस्कृति

भारतीय संस्कृति[1]	सूरज
एक गौरवपूर्ण सस्कृति[2]	प्रवचन १०
भारतीय सस्कृति के जीवन तत्त्व[3]	भोर
भारतीय सस्कृति का आदर्श	प्रवचन ११
पर्यटको को भारतीय सस्कृति से परिचित किया जाए	अणु सदर्भ
भारतीय पूजी	ज्योति के
भारतीय सस्कृति मे बुद्ध और महावीर	अतीत
जीवन क्या है ?	कुहासे
भारतीय सस्कृति की पहचान	समता
क्या जैन हिन्दू है ?[4]	प्रवचन ४
हिन्दू नया चिंतन नयी परिभाषा	मेरा धर्म
क्या हिन्दू जैन नही है ?[5]	दायित्व/अतीत
कृषिप्रधान देश[6]	नवनिर्माण
एलोरा की गुफाएं[7]	सूरज
अजन्ता की गुफाए[8]	सूरज
साढे पच्चीस आर्य देशो की पहचान	अतीत
अध्यात्म-प्रधान भारतीय सस्कृति[9]	संभल
भारतीय सस्कृति के जीवन-तत्त्व[10]	संभल
त्याग और सयम की सस्कृति[11]	सभल
भारतीय सस्कृति की एक पावनधारा	सभल

श्रमण संस्कृति

श्रमण संस्कृति[12]	भोर
श्रमण सस्कृति	राज/वि वीथी
श्रमण संस्कृति का प्रागवैदिक अस्तित्व	अतीत

---

१. १२-६-५५ शहादा।
२. ६-१-७९ भारत जैन महामडल द्वारा आयोजित जैन सस्कृति सम्मेलन, डूंगरगढ़।
३. २१-७-५४ बम्बई।
४. २-८-७७ लाडनूं।
५. २३-५-७३।
६ १६-१-५७ पिलाणी।
७. ३०-३-५५ एलोरा।
८. २३-४-५५ अजन्ता।
९ १७-१-५६ नीमच।
१०. १२-३-५६ अजमेर।
११. १४-३-५६ थांदला।
१२. ३-१०-५४ बम्बई।

सत्संगति

१. ३०-११-५६ दिल्ली।
२. ३०-८-५४ बम्बई।
३ १-२-५६ बौद्ध प्रतिनिधि सम्मेलन, दिल्ली।
४. २५-३-६६ कलरखेड़ा।
५. १०-७-७८ गंगाशहर।
६. २१-५-५४ वड़ौदा।
७. १५-३-५५ कनाना।
८. ४-७-५३ असावरी।
९. रुणियां सिवेरेरां।
१०. ८-१-५४ राजियावास।
११. ३१-५-५४ सूरत (हरिपुरा)।
१२. २१-७-५३ गोगोलाव।
१३. २-४-६६ गंगानगर।
१४. १७-३-५६ डेगाना।

गुरु

पर्व

दीपावली

होली

अक्षय तृतीया

१. ५-५-५३ बीकानेर।
२. ५-५-५३ बीकानेर।
३. १४-८-७७ लाडनूं।
४. चूरू।
५. ६-११-५३ जोधपुर।
६. ११-११-७७ लाडनूं।
७. २४-१०-६५ दिल्ली।
८. १९५७, भगवान् .हाव॰ दिवस, सुजानगढ़।
९. ५-३-७७ सुजानगढ़।
१०. २९-३-७८ लाडनूं।

अक्षय तृतीया	गृहस्थ/मुक्तिपथ	२१५/१९९
अक्षय तृतीया[1]	बूंद बूंद १	१६९
अक्षय तृतीया	वि वीथी	१२०
चैतन्य जागृति का पर्व : अक्षय तृतीया	प्रज्ञापर्व	५९
अंधकार को मिटाने का प्रयास[2]	घर	५०
पर्युषण पर्व		
अपने घर मे लौट आने का पर्व	जीवन	७२
चेतना की जागृति का पर्व	प्रज्ञापर्व	१९
पर्युषण पर्व : एक प्रेरणा	वि दीर्घा	११३
पर्युषण पर्व[3]	मंजिल १	१६
दो रत्ती चदन	कुहासे	१४७
मन की ग्रंथियो का मोचन	कुहासे	१४९
पर्युषण पर्व : प्रयोग का पर्व	कुहासे	२१८
स्वास्थ्य का पर्व	कुहासे	२४०
विश्वमैत्री का पर्व : पर्युषण	अतीत का	१५१
पर्युषण क्षमा और मैत्री का प्रतीक है[4]	भोर	१११
सवत्सरी[5]	धर्म एक	२३५
पर्युषणा	धर्म एक	२३६
मैत्री का पर्व	गृहस्थ/मुक्तिपथ	२११/१९३
आत्मशोधन का पर्व[6]	प्रवचन ९	२४३
जीवन का सिंहावलोकन[7]	आ० तु	१८०
आराधना मंत्र	गृहस्थ/मुक्तिपथ	२१३/१९५
खमतखामणा : एक महास्नान[8]	प्रवचन १०	६९
पर्युषण पर्व	प्रवचन ९	२३९
अपेक्षा है एक सगीति की[9]	राज/वि दीर्घा	२०४/२३६
त्रिवेणी स्नान	शांति के	२०५
संवत्सरी कब ? सावन मे या भाद्रपद मे[10]	अमृत	८२

१. ४-५-६५ जयपुर।
२. २-५-५७ लाडनूं।
३. २२-८-७६ सरदारशहर।
४. २५-८-५४ बम्बई (सिक्कानगर)।
५. १९६७, अहमदाबाद।
६. १३-९-५३ जोधपुर।
७. ७-९-५० हांसी।
८. ७-९-७८ गंगानगर।
९. ५-८-५३ जोधपुर।
१०. ५-९-५३ पर्युषण पर्व समारोह, जोधपुर।

---

१. १६-९-५६ सरदारशहर।
२. १५-८-५३ स्वतन्त्रता दिवस, जोधपुर।
३. २६-१-६८ बम्बई।
४. १५-८-७८ गंगाशहर।
५. १५-८-५३ जोधपुर।
६. १५-८-४७ प्रथम स्वाधीनता दिवस, रतनगढ़।
७. १५-८-४८ द्वितीय स्वाधीनता दिवस, छापर।
८. १५-८-४८ द्वितीय स्वा। दिवस, छापर।
९. १५-८-४९ तृतीय स्वतन्त्रता। जयपुर।
१०. १५-८-५० चतुर्थ स्वाधीनता हांसी।
११. १५-८-५१ पंचम स्वाधीनता।द दिल्ली।

समसामयिक

१. २१-४-६५ जोवनेर।

समाज

१. २५-५-६६ सरदारशहर ।
२. १५-६-५४ बम्बई (बोरीवली)।
३. २८-४-७९ चंडीगढ ।
४. २-३-७७ सुजानगढ़
५. ७-१०-७३ हिसार ।
६. २९-४-५४ २। ७५

शोपणमुक्त समूह चेतना	आलोक मे	२
शोपणविहीन समाज-रचना	अणु संदर्भ/अणु गति	२१/१३५
शोषणविहीन समाज का स्वरूप	अणु सदर्भ/अणु गति	१४१/१३२
दोनो हाथ : एक साथ[1]	दोनों	३
शोषण : सामाजिक बुराई	उद्बो/समता	६७/६७
महावीर के शासनसूत्र	मेरा धर्म	६७
पहल कौन करे ?	घर	१०५
परिष्कार का प्रथम मार्ग[2]	घर	२२९

सामाजिक रूढ़ियां

सामाजिक परम्परा . रूढि से कुरूढि तक	आलोक मे	७८
एक मर्मान्तिक पीडा : दहेज	अनैतिकता/अमृत	१७६/६८
सतीप्रथा आत्महत्या है	कुहासे	६१
अपव्यय	ज्योति से	१११
सग्रह और अपव्यय से मुक्त जीवन-वोध	आलोक मे	९३
प्रदर्शन	राज/वि. वीथी	२००/१११
परम्परा, आस्था और उपयोगिता	आलोक में	७३
अनुकरण किसका ?	उद्बो/समता	१२३/१२२
एकादशी व्रत	वि दीर्घा	२२९
पर्दाप्रथा[3]	घर	८४

संस्थान

सस्थाएं : अस्तित्व और उपयोगिता	कुहासे	२०२
चरित्र के क्षेत्र में विरल उदाहरण : पारमार्थिक शिक्षण संस्था	सफर/अमृत	१०५/१४१
सयुक्त राष्ट्र संघ	वैसाखियां	१२९
एक तपोवन, जहां सात सकारों की युति है	कुहासे	२५५
जैन विश्व भारती	प्रेक्षा	५२
विश्व का आलोक स्तम्भ[4]	प्रवचन ४	१९५
विश्व भारती · कामधेनु[5]	मंजिल १	२०९

१. महिला एवं युवक का संयुक्त अधिवेशन, दिल्ली।

२. सुजानगढ़।

३. १४-५-५७ लाडनूं।

४. १४-८-७७ लाडनूं।

५. २३-५-७७ लाडनूं।

परम्परा और परिवर्तन

परिवार

---

१. १-१२-७७ लाडनू ।
२. ९-११-७७ सेवाभावी कल्याण केन्द्र का उद्घाटन समारोह ।
३. २६-३-६५ पाली ।
४. ४-१०-७८ गंगाशहर ।
५. ७-४-६५ ब्यावर ।
६. २-३-६५ बाडमेर ।
७. १८-९-६५ दिल्ली ।
८. १६-७-७७ लाडनूं ।
९. १८-८-७६ सरदारशहर ।
१०. २१-५-५३ गगाशहर ।

१. १५-४-५५ संतोषबाड़ी।
२. २७-८-५५ उज्जैन।
३. २४-१०-५५ उज्जैन।

---

१. २६-१०-७७ अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मंडल का पांचवां वार्षिक अधिवेशन, जैन विश्व भारती
२. २१-७-५४ बम्बई।
३. ९-३-५५ नारायणगांव।
४. योगक्षेम वर्ष, नारी अधिवेशन।
५. १४-१०-७८ गंगाशहर।
६. १३-१०-७८ गंगाशहर।
७. १५-१०-७८ गंगाशहर।
८. ४-१०-७७ जैन विश्व
९. २८-१-५४ देवगढ़।
१०. ६-११-५५ उज्जैन।
११. ४-४-५३ 'महिला-जागृति' बीकानेर की ओर से आयोजित महिला सम्मेलन।

१. २९-५-५६ पडिहारा ।

२. १४-४-५७ चूरू ।

३. २७-१०-७७ अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मंडल का पांचवां वार्षिक अधिवेशन, जैन विश्व भारती

४. २८-१०-७७ अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मंडल का पांचवां वार्षिक अधिवेशन, जैन विश्व भारती ।

५. २९-१०-७७ अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मंडल के पांचवें वार्षिक अधिवेशन का समापन समारोह, जैन विश्व भारती ।

६. ४-४-५५ औरंगाबाद ।

७. १०-१०-५३ जोधपुर ।

८. १६-३-५५ संगमनेर ।

९. ८-१०-५५ बड़नगर ।

१०. ३-६-५५ धूलिया ।

११ ५-१०-५५ उज्जैन ।

१२. २५-१-७८ जैन विश्व भारती ।

१३. ४-४-५३ बीकानेर ।

१४. २०-२-५६ भीलवाड़ा ।

समाज

महिलाए जीवन को सही दिशा मे मोड़े[1]	संभल
जितनी सादगी; उतना सुख[2]	दोनो
महिलाओ मे धर्मरुचि[3]	प्रवचन ९
जीवन को सजाए[4]	सूरज
महिलावर्ष की उपलब्धि	दोनो
वहिनो से	जन जन

स्त्री शिक्षा

संतान का कोई लिंग नही होता	कुहासे
शिक्षा और स्वावलम्बन	वीती ताहि
मानविकी पर्यावरण मे असतुलन	कुहासे
आत्मविकास का अधिकार सबको है[5]	सदेश
शिक्षा की पात्रता	समता
दक्षेस : वालिका वर्ष	कुहासे
महिलाए आंतरिक सौन्दर्य को निखारे[6]	सभल

मां

मा का स्वरूप[7]	मंजिल १
माता का कतव्य[8]	सूरज
जहा माताए सस्कारी होती है[9]	प्रवचन ९
वच्चो के सस्कार और महिलावर्ग	आलोक में
जरूरत है ऐसी मा की	दोनो

युवक

युवक कौन ?	बीती ताहि
युवक शक्ति का प्रतीक[10]	ज्योति से
युवापीढी की सार्थकता[11]	दोनो/ज्योति से

---

१. ५-४-५६ लाडनू ।
२. मेवाड़ प्रदेश में आयोजित महिला सम्मेलन ।
३. १८-५-५३ गंगाशहर ।
४. ८-६-५५ दोंडाइचा ।
५. महारानी गायत्री देवी गर्ल्स हाई स्कूल, जयपुर ।
६. १०-४-५६ सुजानगढ़ ।
७. १९-१०-७६ [illegible]
८. २६-५-५५ [illegible]
९. १६-५-५३ [illegible]
१०. १५-१०-७२ अधिवेशन, चूरू ।
११. १-१०-७६ [illegible] अधिवेशन, [illegible]

सफलता के पांच सूत्र[1]	ज्योति से	१
युवाशक्ति : समाज की आशा[2]	ज्योति से	१३
युवापीढी निराश क्यों ?[3]	ज्योति से	१९
युवकों का दायित्वबोध[4]	ज्योति से	२५
दायित्वबोध के मौलिक सूत्र[5]	ज्योति से/दोनों	३३/१०९
युवापीढी कितनी सक्षम ?[6]	ज्योति से	५१
ज्योति से ज्योति जले[7]	सोचो १	१९०
मेरी आशा का केन्द्र युवापीढ़ी[8]	सोचो १	१८८
युवकों का सर्व सुरक्षित मंच[9]	प्रवचन ४	१९३
आदर्श युवक के पंचशील	दोनों	१०४
युवापीढ़ी कितनी सक्षम ?	दोनों	१२४
सस्कार : विकास और परिमार्जन	दोनो	११८
युवापीढ़ी और संस्कार	बीती ताहि/दोनों	७९/१४७
इक्कीसवी सदी के निर्माण मे युवकों की भूमिका	सफर/अमृत	१६१/१२७
युवापीढी का दायित्व	अतीत का	५१
युवापीढ़ी का उत्तरदायित्व[10]	दायित्व	११
युवापीढी और मूल्यबोध	दोनो	११३
युवको का दिशाबोध[11]	ज्योति से	५९
युवक यंत्र नही, स्वतत्र बनें	दोनो	१७०
युग की चुनौतियां और युवाशक्ति[12]	जीवन	१२२

---

१. २७-९-७१ पांचवां वार्षिक युवक अधिवेशन, लाडनूं।

२. १७-१०-७२ छठा वार्षिक युवक अधिवेशन, दीक्षान्त प्रवचन, चूरू।

३. १२-१०-७३ सातवां वार्षिक युवक अधिवेशन, हिसार।

४. १५-२-७५ आठवां वार्षिक युवक अधिवेशन, डूगरगढ़।

५. ५-१०-७६ नवां वार्षिक युवक अधिवेशन, जयपुर।

६. २१-१०-७७ ग्यारहवां वार्षिक युवक अधिवेशन, लाडनूं।

७. २२-१०-७७ ग्यारहवां वार्षिक युवक अधिवेशन, जैन विश्व भारती।

८. २१-१०-७७ ग्यारहवां वार्षिक युवक अधिवेशन, जैन विश्व भारती।

९. २३-१०-७७ अखिल भारतीय युवक परिषद् के इग्यारहवें वार्षिक अधिवेशन का समापन समारोह, जैन विश्व भारती।

१०. १८-५-७३।

११. १४-१२-७३ हांसी युवक दिवस (आ. तु. का जन्म दिवस)।

१२. योगक्षेम वर्ष, युवक अधिवेशन।

---

१. १-१०-७८ गंगाशहर ।
२. १-१-७३ सरदारशहर ।
३. १-३-७२ सरदारशहर ।
४. १-१२-७२ सरदारशहर ।
५. १६-६-७४ युवक प्रशिक्षण शिविर, दीक्षान्त प्रवचन, दिल्ली ।
६. २-११-५२ सरदारशहर ।
७. ४-५-५२ युवक
८. ५-७- ४ बम्बई
९. २७-७-५३ ज
१०. १३-५-५३ [illegible]
११. २१-५-७३ [illegible]
१२. १-२-७४ [illegible]

जातिवाद

---

१. १२-६-५६ सरदारशहर।
२. २६-५-५६ पड़िहारा।
३. ५-१०-७६ सरदारशहर।
४. २-१०-७६ सरदारशहर।
५. ३-१०-७६ सरदारशहर।
६. ३-४-५६ युवक सम्मेलन, लाडनूं।
७ ३-२-७८ सुजानगढ़।
८. ६-१०-७७ जैन विश्व भारती।
९. ८-८-७७ हरिजन महिला का तप अभिनन्दन समारोह।
१०. १-१-५५ बम्बई (थाना)।

समाज

मानव एकता : भावी दिशा और प्रक्रिया	अणु गति
जातिवाद अतात्त्विक है[1]	प्रवचन ४
जीवन बदलो[2]	प्रवचन ९
जातिवाद के समर्थको से	जन जन
पालघाट केरल	धर्म एक
प्रतिक्रिया का घेरा	उद्बो/समता
उच्चता का मानदण्ड	उद्बो/समता

व्यसन

बुराइयो की जड : मद्यपान	अमृत
अनेक बुराइयो की जड : मद्यपान	अनैतिकता
मादक पदार्थ निषेध का आधार	आलोक मे
सभ्यता के नाम पर	कुहासे
कौन किसको कहे ?	कुहासे
मनुष्य और बन्दर	बैसाखिया
नशे की सस्कृति	बैसाखिया
मद्यपान एक घातक प्रवृत्ति[3]	आगे
मद्यपान राष्ट्र की ज्वलन्त समस्या[4]	सोचो ! १
स्वर्णपात्र मे धूलि	समता
अधेरी खोह	बैसाखिया
मद्यपान औचित्य की कसौटी पर[5]	सोचो ! ३
नशा एक भयकर समस्या	प्रज्ञापर्व
मार्गान्तरीकरण की प्रक्रिया[6]	मजिल २
नशाबन्दी, राजस्व और नैतिकता	अणु गति/अणु
व्यसनमुक्ति मे जैन धर्म का योगदान	अनैतिकता

व्यवसाय

पूजीवाद बनाम साम्यवाद[7]	सूरज
व्यापार और सच्चाई[8]	सूरज

---

१. ९-११-५३ जोधपुर ।
२. १-५-५३ बीकानेर ।
३. २९-३-६६ गंगानगर ।
४. १२-९-७७ जैन विश्व भारती ।
५. ३०-५-७८ जैन
६. ५-१०-७८ [illegible]
७. १५-३-५५ [illegible]
८. १२-४-५५ [illegible]

१. २८-२-५५ पूना ।
२. १६-१२-५४ बम्बई (कुर्ला) ।
३. २५-७-५५ उज्जैन ।
४. २२-८-५६ सरदारशहर, व्यापारी सम्मेलन ।
५. ७-१-५६ रतलाम ।
६. ६-७-५७ सुजानगढ़ ।
७. २५-६-५३ नागौर ।
८. २०-८-६५ दिल्ली ।
९. २०-८-६५ दिल्ली ।
१०. ७-१-७९ डूंगरगढ़ ।
११. कार्यकर्ता सम्मेलन ।

साहित्य

0 साहित्य
0 भाषा
0 हिन्दी
0 संस्कृत
0 काव्य
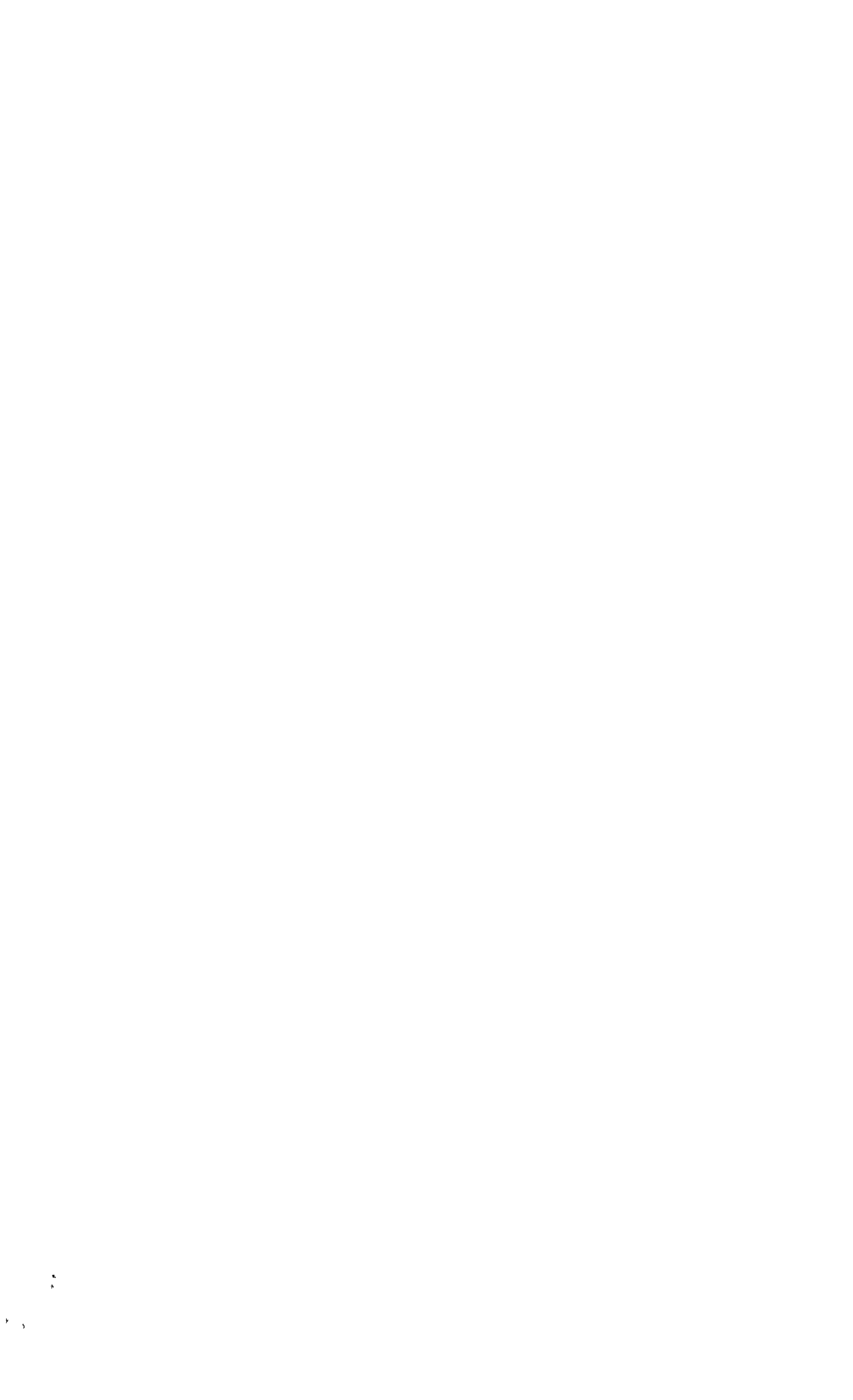
साहित्य

शीर्षक	पुस्तक
साहित्य	
साहित्य और कला का सामाजिक मूल्य	आलोक मे
साहित्य साधना का लक्ष्य[1]	शाति के
साहित्य मे नैतिकता को स्थान[2]	प्रवचन ११
राजस्थानी साहित्य की धारा[3]	शाति के
आदर्श पत्रकारिता की कसौटी[4]	प्रवचन ५
लेखक की आस्था[5]	बूद बूद २
भाषा	
भाषा है व्यक्तित्व का आईना	मनहसा
जैन साहित्य मे सूक्तिया	अतीत
शब्दो के ससार मे	अतीत
जैन आगमो मे कुछ विचारणीय शब्द	अतीत
हिन्दी	
हिन्दी का आत्मालोचन	अतीत
अतीत के आलोक मे हिन्दी की समृद्धि	अतीत
संस्कृत	
सस्कृत ऋषिवाणी है[6]	शाति के

१. ३०-८-५३ प्रेरणा संस्थान द्वारा आयोजित साहित्यगोष्ठी।

२. १७-१०-५३ जोधपुर।

३. ९-४-५३ राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर की ओर से आयोजित राजस्थानी साहित्य परिषद्।

४. १-२-७८ जैन का उद्घाटन

५. २९-८-६५ ,

६. २२-५-५३ भारतवर्षीय सम्मेलन के प्रेषित।

परिशिष्ट : १. पुस्तकों के लेखों की ,

परिशिष्ट : २. पत्र-पत्रिका के लेखों की

परिशिष्ट : ३. प्रवचन-स्थलों के नाम

परिशिष्ट : ४. पुस्तक संकेत सूची

परिशिष्ट १

(शोध विद्यार्थियो की सुविधा हेतु इस
पुस्तकों मे आए प्रवचनो/लेखों की अनुक्रमि

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

ऋ

ए

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

ख

ग

परिशिष्ट १

ध

परिशिष्ट १

न

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

परिशिष्ट १

परिशिष्ट–२

(आचार्य तुलसी के लेख राष्ट्रीय स्तर की अनेक पत्र-पत्रिकाओ में छपते रहते हैं—जैसे धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, हिंदुस्तान, नवभारत टाईम्स, राजस्थान पत्रिका कादम्बिनी, नवनीत आदि। पर वे सभी अंक उपलब्ध न होने से इस परिशिष्ट में हम उनका समावेश नहीं कर सके। इसमे केवल तेरापंथ संघ से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाओं के लेखों की सूची ही दी जा रही है। यहां केवल सन् ८४ तक आए लेखों का विवरण ही दिया जा रहा है क्योंकि सन् ८४ से आगे की पत्र-पत्रिकाओं के प्राय: सभी लेख पुस्तकों में आ चुके है। अतः पुनरुक्तिभय से हमने उन लेखों का समावेश नहीं किया है।

'प्रेक्षाध्यान' पत्रिका जो कि पहले 'प्रेक्षा' नाम से निकलती थी, उसका प्रकाशन सन् ७८ से प्रारम्भ हुआ है। उसके कुछ लेखों के अतिरिक्त प्रायः सभी लेख 'प्रेक्षा अनुप्रेक्षा' पुस्तक में है। इसी प्रकार 'तुलसी प्रज्ञा' में भी पुस्तकों के अतिरिक्त नए लेख कम है अतः इन दोनों पत्रिकाओं के आलेखों का एक साथ निर्देश कर दिया गया है। यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से पत्र-पत्रिकाओं के सभी लेखो की सूची देनी चाहिए थी पर उन लेखों की संख्या हजारो में हो गयी अतः हमने सूची बनाने के बाद भी पुस्तक मे आए सभी लेखों को इस अनुक्रमणिका से निकाल दिया है।

कहीं-कहीं शीर्षक परिवर्तन के साथ जो लेख पुस्तक मे छपे है, उनका पृथक्करण सम्भव न होने से वे पुनरुक्त हो सकते है।

इसमे सर्वप्रथम साप्ताहिक पत्रिका 'जैन भारती' के लेखों की सूची है, जो वर्तमान में मासिक पत्रिका है। इसके साथ ही प्राचीन 'विवरण पत्रिका' के आलेख भी इसमें आबद्ध

है क्योंकि पहले जैन भारती ही 'विवरण पत्रिका प्रकाशित होती थी।

जिन लेखो के आगे तारीख का उल्लेख मासिक पत्रिका से सम्बन्धित है क्योकि सन् ४७ जैन भारती मासिक पत्रिका के रूप मे प्रकाशित `. सन् ६७ से ७१ मे मासिक तथा साप्ताहिक दोन जैन भारती का प्रकाशन होता रहा।

अणुव्रत के साथ जनपथ के लेखों का क्योंकि अणुव्रत अपने पूर्वरूप मे जनपथ के रूप मे होता था। अणुव्रत पाक्षिक पत्र है, प्रेक्षाध्यान, मासिक तथा तुलसीप्रज्ञा त्रैमासिक पत्रिका है।)

जैन भारती

१. १९५२ सरदारशहर
२. सोलहवां वार्षिक अणुव्रत अधिवेशन
३. ११-३-५६ अजमेर
४. अणुव्रत विचार परिषद्, सरदारशहर
५. २०-११-५५ उज्जैन

अणुव्रत : एक औषधि	जन० ६९
अणुव्रत और व्यक्ति सुधार	१५ दिस० ६८
अणुव्रत का अभियान : जीवन शुद्धि का मध्यम मार्ग	८ मार्च ५९
अणुव्रत की अपेक्षा	१७ सित० ६७
अणुव्रत की पृष्ठभूमि	२४ फर० ८०
अणुव्रत धर्म का आदोलन है या नही ?	१३ दिस० ७०
अणुव्रत ने क्या किया ?	१६ अक्टू० ६६
अणुव्रत भावना और वैयक्तिक स्वातत्र्य का मूल्य[1]	१५ अग० ५४
अणुव्रत : विश्वधर्म	५ सित० ७१
अणुव्रती जीवन का आदर्श	१४ अग० ६६
अणुव्रती संघ : आध्यात्मिक दृष्टिकोण	११ जुलाई ५४
अणुव्रती संघ और जीवन विकास	अप्रैल से अक्टू० ५०
अध्यात्म और विज्ञान[2]	१६ मार्च ६९
अध्यात्म का गूढ़ रहस्य	फर० ६८
अध्यात्म—भारत की सम्पत्ति	अक्टू० ६९
अध्यापकों और छात्रो से	१६ मई ७१
अध्यापकों का जीवन छात्रों के लिए खुली किताव	११ जन० ५८
अनशन : पुरुषार्थ का प्रतीक	जन०-फर० ७१
अनशन या लम्बी तपस्या	२७ अक्टू० ६८
अनासक्त योग	२१ अप्रैल ६३/९ जन० ६६
अनासक्ति	११ अग० ७४
अनासक्ति : एक प्रयोग[3]	२९ नव० ७०
अनासक्ति के विविध प्रयोग	३१ जन० ७१
अनुभव और चिंतन का योग	फर० ६९
अनुशासन	१६ फर० ५८/१३ एवं २० जून ७१
अनुशासन और एकता : संघ के दो आधार	२ मार्च ७५
अनुशासन और विवेक	२२ सित० ८४
अनेकांतवाद	२६ मई ६८
अनेकांतवाद—समन्वयवाद	२ मार्च ६९
अन्तर् अनुप्रेक्षा का दर्शन	१३ जुलाई ८०

१. स्वतंत्रता दिवस

२. ३१-७-६७ अहमदावाद

३. १३-९-६८ मद्रास

१. ३१-१०-६७ अहमदाबाद २. ४-८-६८ मद्रास

---

१. अहिंसा दिवस, सुजानगढ़
२. १५-२-६६ भादरा, स्वागत समारोह।
३. २६-७-६७ अहमदाबाद ।
४. बम्बई, मर्यादा महोत्सव ।
५. २२-८-६७ अहमदाबाद ।
६. १-९-६८ मद्रास ।

१. ७-८-६७ अहमदाबाद।
२. १६-९-५३ जोधपुर।
३. १-९-६७ अहमदाबाद।
४. ९-११-६८ मद्रास।
५. २-४-५३ बीकानेर।
६ ५-८-६८ अहमदाबाद।
७. २८-१२-५७
८. १०-११-६८ मद्रास।

१. २७-१०-६८ मद्रास ।
२. २००९ कार्तिक बदी सप्तमी सरदारशहर ।
३. ५-१०-६७ अहमदाबाद ।
४. १२-४-५६ सुजानगढ़ ।
५. २८-९-६७ अहमदाबाद ।
६. १७-७-६७ अहमदाबाद ।

परिशिष्ट २

---

१. ७ मई, छोटी खाटू।

२. ९-११-६७ अहमदाबाद।

३. ३०-८-६८ मद्रास।

४. चूरू, कार्यकर्त्ता

५. ३०-१०-६८ मद्रास।

---

१. २०-९-६६ बीदासर।
२. ४-११-६८ मद्रास।
३. २५-७-५३ जोधपुर।
४. १६-७-५७ सरदारशहर।

१. ४-७-६५ दिल्ली।
२. ९-२-८१।
३. १०-१२-६८ मद्रास।
४. १९-९-६७ अहमदाबाद।
५. १८-७-७० रायपुर

१. १५-१२-६८ मद्रास
२. २७-९-६७ अहमदाबाद
३. विदाई समारोह
४. ११-७-५४ बम्बई
५. २८-११-६८ मद्रास
६. ३१-८-५४ पर्युषण पर्व, बम्बई

जैन दर्शन की भूमिका पर अनेकात[1]	३ दिस०
जैन धर्म की महत्ता	३ मई
जैन धर्म के दो चरण . अहिंसा और साम्य	१५ अग०
जैन धर्म पुरुषार्थ प्रधान है	मई
जैन धर्म में व्यक्ति का नही, गुण का महत्त्व है	२८ सित०
जैन युवकों से	जुलाई
जैन शासन एक शृंखला मे आबद्ध हो	२४ जन०
जैन समाज एकत्व के धागे मे बधे[2]	२७ सित०
जैन समाज के लिए तीन सुझाव	६ दिस०
जैनों का कर्त्तव्य	९ जून
जैनों की सख्या	२५ अग०
जैसा करो, वैसा कहो	२५ जून
जो समता को नही खोता, सही माने मे वही योगी है	१८ अप्रैल
ज्ञान अत्यत आवश्यक है	१८ मई
ज्ञान का उद्भव[3]	१३ अप्रैल
ज्ञान का फल[4]	२० अप्रैल
ज्ञान दिव्य चक्षु	१३ अग०
ज्ञान प्रकाशकर है	१० नव०
ज्ञान प्रकाशप्रद है	१४ अक्टू०
ज्ञान प्राप्ति का सार	२६ जुलाई
ज्वलत अहिंसा[5]	२९ अग०
तट पर सजगता[6]	२६ अक्टू०
तत्त्वज्ञान	२६ अग०
तप के बिना आत्मिक प्रभुता संभव नही	वि० ९ अग०
तपस्या का महत्त्व	५ अक्टू०
तपस्या मे ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ	२६ अक्टू०
तीन चेतावनी	नव०
तीन शक्तिया और तीन अकुश	५ जुलाई
तीर्थंकर महावीर का अनेकान्त और स्याद्वाद दर्शन	१४ अक्टू०

---

१. २९-९-५३ जोधपुर,
२. पट्टोत्सव के अवसर पर
३. ३-७-६७ अहमदाबाद
४. ४-७-६७ अहमदाबाद
५. पर्युषण पर्व
६. २९-८-६७ अहमदाबाद ।

तीर्थस्थल	१५ फर० ७०
तेरापंथ एक जैन सम्प्रदाय है	१५ जुलाई ६२
तेरापंथ का विकास	३ जुलाई ६०
तेरापंथ क्या है ?	११ जुलाई ८२
तेरापंथ दिवस की प्रेरक शक्ति	४ जुलाई ७१
त्याग ऊंचा रहा है और रहेगा	७ मई ६१
त्याग : नैतिक चेतना	१२ जुलाई ७०
त्याग बनाम भोग	११ जुलाई ६१
त्याग और भोग[1]	१९ अक्टू० ६९
त्रिवेणी	२७ अग० ६७
दंभ जीवन का अभिशाप	दिस० ६९
दक्षिण भारत	जून-जुलाई ६९
दक्षिण भारत धर्म-प्रधान	१ मार्च ७०
दक्षिण भारत मे जैन धर्म	१५ सित० ६८ ४ दिस० ६६
दया का मूल	७ नव० ५४
दर्शन और विज्ञान	१४ फर० ६५
दर्शन और संस्कृति	अप्रैल ५२
दर्शन का मूल क्या है	१ नव० ६४
दर्शन का स्वरूप	१८ जून ७२
दान से संयम श्रेष्ठ है ?	१६ अप्रैल ६१
दिशा बोध[2]	३० मार्च ६९
दीक्षा : एक अनुचिंतन	३१ मई ७१
दीक्षा : त्यागमूलक संस्कृति का प्रतीक	७ मार्च ७१
दीपावली कैसे मनाए ?[3]	२८ अक्टू० ७१
दु:ख और दु:ख विमुक्ति	जुलाई ६९
दु ख से मुक्ति	१८ जन० ७०
दुनिया सराय है	१३ अप्रैल ६९
दुश्चिन्तन भी हिंसा है	६ अप्रैल ६१
देश का नया नक्शा	७ अप्रैल ६८
देश का नैतिक पतन	३० नव० ६९

---

१. २६-८-६७ अहमदाबाद ।

२. १-८-६७ अहमदाबाद ।

३. २१-१०-६८ मद्रास ।

देश, काल, भाव के अनुसार परिवर्तन[1]	२३ नव० ६९
देश, धर्म और धर्माचार्य	१३ अक्टू० ६८
दो धारा[2]	६ मार्च ६०
धन बनाम सयम	५ मई ६८/२९ मई ६६
धर्म · अनुभूति का तत्त्व	३ नव० ६
धर्म अफीम नही, संजीवनी है	१४ सित० ५
धर्म आत्म-वृत्तियो को सुधारने मे है	११ मई ५
धर्म आत्मशुद्धि मे है	वि० १९ जून ५
धर्म-आराधना का पर्व	२२ अग० ६'
धर्म उत्कृष्ट मंगल है	१३ दिस० ६
धर्म · एक वस्तु चिंतन	६ अग० ६'
धर्म एक है	२७ अप्रैल ६
धर्म और अनुशासन	१५ अप्रैल ७
धर्म और उसका प्रभाव	वि० मई ४
धर्म और कर्त्तव्य	वि० दिस० '
धर्म और जीवन	१ सित०
धर्म और जीवन-निर्माण	वि० १ मई
धर्म और धार्मिक	२९ जुलाई '
धर्म और मनोविज्ञान[3]	२९ मार्च
धर्म और राजनीति	१६ अग० ।
धर्म और राष्ट्र-निर्माण	९ दिस०
धर्म और राष्ट्रीयता	अग०
धर्म और विकार	वि० जून
धर्म और विज्ञान	१७ मई
धर्म और व्यवस्था का योग	१० सित०
धर्म और समाज	२० दिस०
धर्म और समाज-विकास[4]	९ मार्च
धर्म और सम्प्रदाय	१९ दिस०
धर्म का अनुशासन	५ नव
धर्म का उत्स : पवित्रता	१० अक्टू

१. ६-११-६९ बेंगलोर।

२. त्रिवेणी संगम पर प्रदत्त।

३. ५-७-६८ मद्रास।

४. २७-७-६७ अहमदाबाद।

धर्म का उद्देश्य : कर्म निर्जरण, आत्मशुद्धि	२५ जन० ५९
धर्म का पालन	६ जुलाई ६९
धर्म का राष्ट्रीय महत्त्व	२७ अप्रैल ५८
धर्म का वास्तविक स्वरूप	२९ मार्च ६४
धर्म का विभाजन : क्षमता का मूल्यांकन	२१ सित० ८०
धर्म का सच्चा लक्ष्य[1]	१२ फर० ५३
धर्म का स्वरूप	१७ जुलाई ६६
धर्म की अनिवार्यता	१ जून ६९
धर्म की आत्मा अहिंसा है	१३ अक्टू० ६८
धर्म की आवश्यकता	२५ मई ६९
धर्म की पहचान[2]	१९ दिस० ७१
धर्म की प्रयोगशाला निरंतर खुली रहे	१७ जून ७३
धर्म की बुनियाद : मैत्री	१७ मार्च ६८
धर्म की भावना	१५ दिस० ५७
धर्म की व्यापकता[3]	२७ अक्टू० ५७
धर्म की सच्ची परिभाषा	२८ अग० ६६
धर्म कृत्रिम बंधनों से ऊपर की चीज	८ जुलाई ७३
धर्म के तीन प्रकार	९ मई ७१
धर्म के दो पक्ष : लौकिक और पारलौकिक[4]	१७ जन० ५४
धर्म के दो पहलू	३० अग० ६४
धर्म केवल चिंतन का विषय नही है	४ मई ५८
धर्म क्या ?	वि० मार्च ४८
धर्म क्या, कब और कहां ?	३१ अग० ८०
धर्म क्या देता है[5] ?	७ दिस० ६९
धर्म क्या है ?	अक्टू० ६९/वि० १८ दिस० ५२
धर्म क्या है[6]	३० जन० ६६
धर्म क्षेत्र में नयी क्रांति	२८ सित० ६९
धर्म : जीने की एक कला	१० अग० ८०

---

१. १६-१-५३ सरदारशहर ।
२ २९-७-७१ लाडनूं ।
३. जन्म दिवस, अणुव्रत प्रेरणा परिषद् ।
४. ७-१०-५४ बम्बई ।
५. २७-१०-६७ अहमदाबाद ।
६. १९-६-६६ ।

धर्म : जीने की कला[1]	१२ अप्रैल ७०
धर्म तुम्हे शाति देगा, सुख देगा	१८ जुलाई ७१
धर्म तर्क नही, आचरण है	११ अग० ५
धर्म तेजस्वी कब बनेगा ?	६ सित० ७
धर्म दर्शन को समझने के लिए	३ फर० ७
धर्म : निषेधात्मक दृष्टि	१२ मई ६
धर्म प्रधान देश मे नैतिकता का अभाव क्यों ?[2]	१५ मई ६
धर्म बुद्धि, विज्ञान और शक्ति से ऊपर हो	२४ जुलाई ६
धर्म या अधर्म प्रधान देश	२९ जून ६
धर्म व्यापक सार्वजनीन तत्त्व है	२५ अग० ७
धर्म शाति देता है[3]	१३ दिस०
धर्मसंघ की चतुर्दिक् प्रगति	१८ मई
धर्म : सत्य और अहिंसा	३० जुलाई
धर्म सर्वशक्तिमान् कब ?	जन०
धर्म ही शरण है	१६ अप्रैल
धर्मे जय पापे क्षय	११ अप्रैल
धार्मिक कैसे बने ?	१५ मार्च
धार्मिक कौन ?	२० जुलाई
धार्मिक कौन ?[4]	१ फर०
धार्मिक क्रांति की आवश्यकता	नव०
धैर्य	दिस०
ध्यान का महत्त्व	१९ अप्रैल
ध्वस नही, निर्माण	१८ नव०
नए वर्ष का शुभ सदेश	४ जन०
नकारात्मक दृष्टिकोण	१६ फर०
न दाता, न याचक	१७ नव०
नया वर्ष—नया चिंतन	३ जन०
नया-पुराना	२७ फर०
नरक स्वयं स्वर्ग मे बदल जायेगा	१ मार्च
नवनिर्माण की रूपरेखा	वि० सित

---

१. २६-९-६८ मद्रास ।
२. २१ अप्रैल श्रीकरणपुर, रोटरी क्लब ।
३. १-१२-७० बेतूल ।
४. २०-९-६७ अहमदाबाद ।

---

१. ३-११-६८ मद्रास ।
२. २७-१०-५२ सरदारशहर ।
३. ८ अग०, दिल्ली, अणुव्रत विचार-परिषद् ।
४. पत्रकारो के बीच, बम्बई ।
५. ७-३-५२ रतनगढ़ ।

---

१ १०-८-६७ अहमदाबाद ।
२. मर्यादामहोत्सव शताब्दी समारोह, अणुव्रत प्रेरणा दिवस ।
३. १-१२-६८ मद्रास ।
४. २२-८-६८ मद्रास ।
५. २४-७-६७ अह [illegible]

१. १६-८-६७ अहमदाबाद।
२. १४-८-६७ अहमदाबाद।
३. १३-४-६५ महावीर जयन्ती, अजमेर

१. १९-९-५३ जोधपुर
२. १२-११-६८ मद्रास
३. ५-६-५७ बीदासर

१. पत्रकार सम्मेलन में
२. २३-९-६७ अहमदावाद
३. १८-९-६७ अहमदावाद
४. ४-११-६७ अहमदाबाद
५. २३-८-६८ मद्रास

१. ५-१०-६७ अहमदाबाद।
२. १०-८-६९।
३. २५-७-७० रायपुर।
४. २-९-६७ अहमदावाद

---

१. ५-९-६७ अहमदाबाद ।

१. २५-६-६७ अहमदाबाद।
२. १८-१-८१ ।
३. ९-१०-६७ अहमदाबाद।
४. २४-१२-५८ काशी बनारस।

१. २८-६-६३ ।
२. ७-९-६७ अहमदाबाद ।
३. ३०-८-६७ अहमदाबाद ।
४. १०-८-५६ अणुव्रत प्रेरणा समारोह, सरदारशहर ।
५. २३-६-७३ सुजानगढ़ ।

१. १४-९-६७ अहमदाबाद ।
२. १४-२-६६ स्वागत समारोह, भादरा ।
३. ३१-३-५६ ।
४. १९-१०-६७

---

१. चिदम्बरम्, महासभा का छप्पनवां अधिवेशन।
२. १६-४-५६ ।
३. २०-९-६९ मद्रास।
४. ४-१०-६८ अखिल भारतीय तेरापंथी युवक सम्मेलन, मद्रास।
५. २१-९-६७ अहमदाबाद।

परिशिष्ट २

संयम : आत्मविकास की राह[1]
संयम : एक कसौटी
संयमः खलु जीवनम्
संयम की सहचरी मर्यादाएं
संयम जीवन की मर्यादा है
संयम से ही शान्ति और प्रगति संभव
संवत्सर प्रतिलेखन
संवत्सरी मानवता का पर्व है
संवेग और उसका परिणाम
संसार की दशा
संसार चरित्र को भूलता जा रहा है
संसार परिवर्तनशील है
संस्कार डालने की कला
संस्कार ही मूल है
सच्च लोयम्मि सारभूय[2]
सच्चा अहिंसक
सच्ची आजादी : धर्ममय जीवन १४ मार्च
सच्ची शान्ति त्याग मे
सच्चे श्रावक
सतयुग की अपेक्षा क्या है ?[3]
सत्य एक है
सत्य और अहिंसा व्यवहार मे आए
सत्य और जीवन
सत्य का व्यावहारिक प्रयोग
सत्य की उपासना
सत्य की साधना
सत्य के बिना काम नही चल सकता
सत्यग्राही दृष्टि
सत्यवादी कौन ?
सत्य विजयी नही, सत्य सार है

---

१. २१-८-६८ मद्रास।
२. २४-७-५३ जोधपुर।
३. १४-११

---

१. १९-९-६७ अहमदाबाद।
२. ४-१०-६७ अहमदाबाद।
३. ९-९-७० रायपुर।
४. अणुव्रत आंदोलन के १३वें वार्षिक अधिवेशन पर।

---

१. १०-२-५४, राणावास ।
२ ५-४-८३ ।
३. २५-८-६७ अहमदाबाद ।
४. ३०-१०-६७
५. १८-१०-७०

साम्ययोग की साधना[1]	२६ दिस० ७१
साम्ययोग के बिना अन्य कलाएं अधूरी है	३ सित० ६७
साम्य-संदेश	२८ अप्रैल ६८
सिंहपुरुष आचार्य भिक्षु के जीवन की स्मृति	३ अक्टू० ५४
सुन्दर-सात्त्विक जीवन	१५ जून ६९
सुख और शान्ति	५ अप्रैल ७०
सुख का स्रोत—आत्म-विसर्जन	२५ अप्रैल ७१
सुख का हेतु—धर्म	२ मई ७१
सुख-दुःख की कुंजी मनुष्य के हाथो में	३० अक्टू० ६६
सुख बनाम दुःख	१७ मई ६४
सुख संयम से आता है	२३ मार्च ५८
सुधरने के तीन मार्ग	८ जून ६९
सुधरो और सुधारो	२९ नव० ६४
सुधार का प्रारभ स्वयं से हो[2]	२१ जून ७०
सुधार का सूत्र[3]	१८ अग० ५७
सृष्टि की विचित्रता का हेतु[4]	११ मई ६९
सेवा	१४ मई ५३
सोचो, समझो और सही प्रयोग करो[5]	९ मई ७१
स्थिरयोगी और गुरुभक्त	१४ सित० ६९
स्याद्वाद	मई ४९
स्वतन्त्रता	वि० जुलाई १९४७
स्वतन्त्रता का आनन्द[6]	९ अग० ७०
स्वतन्त्रता का महत्त्व	अग० ५०
स्वतन्त्र भारत और जीवन	जुलाई-अग० ४९
स्वप्न साकार बने	७ सित० ८०
स्वयं की शक्ति का ज्ञान कर कृत्रिम बंधनो का परित्याग करे	२२ नव० ५९
स्वय पर अनुशासन	२ नव० ६९
स्व शक्ति का जागरण	११ अप्रैल ७१
स्वस्थ परम्परा को निभाना अन्धानुकरण नही	२३ मई ७१

१. ३०-८-७० रायपुर।
२. १-१-७० बल्लारी।
३. १०-७-५७ सुजानगढ़।
४. ९-८-६७ अहमदाबाद।
५. २३-१०-६८ मद्रास।
६. १५-८-६७ अहमदाबाद।

---

१. १५-८-४७ स्वतंत्रता
रतनगढ़।

२. ९-१२-६५ विश्व हिन्दू ९

---

१. १-८-६५ अणुव्रत विहार, दिल्ली ।

---

१. ११-९-४८ छापर। २. पट्टोत्सव पर प्रदत्त

१. जन्मदिन पर प्रदत्त ।

परिशिष्ट २

परिशिष्ट २

---

१. २-१०-४८, छापर।

---

१. १८-७-४९ जयपुर ।

युवादृष्टि

(युवादृष्टि पहले युवाशक्ति एवं युवालोक के नाम से प्रकाशित होती थी। अतः हमने उन अंकों को युश तथा युलो से अंकित किया है।)

प्रेक्षाध्यान एवं तुलसी-प्रज्ञा

(इसमें प्रे उल्लेख वाले प्रेक्षाध्यान के लेख हैं बाकी तुलसीप्रज्ञा के है)।

प्रवचन-स्थलों के

आचार्यश्री के
प्रवचनों में स्थल एवं दिनांक
उपलब्ध हैं उसका हमने
लेखो में टिप्पण के साथ
प्रवचनो में दिनांक का
संकेत है, कहीं केवल स्थान

इस परिशिष्ट के
वहां हुए प्रवचनो के दिनांक
ताकि कोई भी पाठक क्षेत्रीय
का संकलन या ज्ञान कर सके

परिशिष्ट में अनेक
दो-तीन या कहीं-कहीं चार
कारण है—

१. एक ही दिन में कई
'संभल सयाने' मे एक ही तारीख
उल्लेख मिलता है।

२. कहीं-कहीं शीर्षक
एक ही प्रवचन भिन्न-भिन्न पुस्त
है। जैसे 'मुक्तिः इसी क्षण मे' के
की ओर भाग २' में है, तथा 'शांति के
के कई प्रवचन शीर्षक परिवर्तन
वर्तन के साथ 'प्रवचन पाथेय भाग ६' मे
की पुनरुक्ति हुई है।

इस परिशिष्ट मे दिनांक के
है वह इसी पुस्तक की है, क्योकि
फुटनोट मे यह दिनांक देखकर
पुस्तक का नाम खोज सकेंगे।

पुस्तकों के नाम देने से अनावश्यक विस्तार हो जाता।

यदि दो भिन्न-भिन्न पृष्ठों पर एक ही लेख है तो हमने उन दोनों पृष्ठो का उल्लेख किया है तथा जहां एक ही पृष्ठ पर दो बार वही दिनांक है तो पृष्ठ का उल्लेख एक ही बार किया है।

आचार्य श्री तुलसी के कुछ महत्त्वपूर्ण लेख या संदेश विशेष अवसरों पर प्रेषित भी किए गए हैं उनके सामने हमने 'प्रेषित' का संकेत कर दिया है जिससे पाठक को भ्रम न हो कि इस सन् में आचार्य तुलसी अमुक स्थान पर कैसे पहुंच गए, क्योंकि हमने प्रेषित स्थान का उल्लेख किया है।

जहां दिनांक एवं सन् का उल्लेख नहीं है वहां हमने (—) का निशान दे दिया है। जहां प्रवचन में केवल काल का निर्देश है स्थान का नहीं है उनको हम इस परिशिष्ट में सम्मिलित नहीं कर सके।

दिल्ली, बम्बई जैसे बड़े शहरों के उपनगरों में हुए प्रवचनों को हमने उस शहर के अन्तर्गत ही रखा है। जैसे बगला, सिक्का नगर, थाला आदि को बम्बई में तथा कीर्तिनगर, महरौली, सब्जी मंडी आदि को दिल्ली मे।

टिप्पण में दिए गए सन् एवं महीने में यदि कहीं त्रुटि रही है तो उसे हमने उस परिशिष्ट में सुधार दिया है लेकिन दिनांक का सुधार नहीं किया क्योंकि इससे पाठक को देखने में असुविधा रहती। इसी प्रकार पुस्तक के टिप्पण में ५-७ स्थानों पर सन् ७८ में गंगा-शहर के स्थान पर गंगानगर छप गया है उसे भी हमने परिशिष्ट मे 'गंगाशहर' में ही प्रकाशित किया है।

इसके अंत में इसी परिशिष्ट में विशिष्ट प्रवचनों की सूची भी दी है।

९ अक्टू० ६७
१० अक्टू० ६७
१३ अक्टू० १७९
१४ अक्टू० १५३,१७९
१५ अक्टू० १७९
१६ अक्टू० ९५
१७ अक्टू० १२७
१८ अक्टू० ३२
१९ अक्टू० ६७
२० अक्टू० ६६
२१ अक्टू० ४५
२२ अक्टू० ५५
२३ अक्टू० ६७
२६ अक्टू० ७०
३१ अक्टू० ६६

गजसिंहपुर
१९६६ २७ अप्रैल ७

गरणी
१९५३ ८ दिस० ५५

गुजरपीपला
१९५५ १९ मई ६

गुलाबपुरा
१९५६ ४ मार्च १६४

गोगोलाव
१९५३ २१ जुलाई १६८

घड़सीसर
१९५३ ९ फर० ९०

चंडीगढ़
१९७९ २७ अप्रैल २०
२८ अप्रैल १७५

चाड़वास
१९५३ ६ मार्च ५५

१९७७ २ मई
३ मई
४ मई
५ मई
६ मई
९ मई
१० मई
११ मई
१२ मई
१४ मई
१५ मई
१७ मई
१९७८ ४ जून

चावलखेड़ा
१९५५ १४ मई

चिकमंगलूर
१९६९ ८ जून

चिदम्बरम्
— —

चिरमगांव
१९५४ ५ मई

चुटाला
१९६६ १२ मार्च

चूरू
१९५२ २३ जून
१९५७ १९ मार्च
८ अप्रैल
१४ अप्रैल
२१ [illegible]
२२ अप्रैल
२३ अप्रैल
२४ [illegible]
२६ [illegible]

१६४

२१ दिस० ४

२९ दिस० १०४

१९५७ ५ जन० ३९

१९६५ १७ मई ७४

१३ जून ५५

२८ जून ६८

२९ जून ७१

३० जून १२९

१ जुलाई ३०१

४ जुलाई ३६

५ जुलाई २६

६ जुलाई २६

७ जुलाई २६

८ जुलाई २६

९ जुलाई ११०

१० जुलाई २६

१२ जुलाई २६

१७ जुलाई ५३

१८ जुलाई ४३

१९ जुलाई २६

२० जुलाई ९९

२१ जुलाई ९९

२२ जुलाई ६

२४ जुलाई ५१

२५ जुलाई १९

२७ जुलाई ७१

२८ जुलाई १२८

२९ जुलाई ३३

३० जुलाई ३२

३१ जुलाई ३२४

१ अग० ७०,७३

२ अग० १२८

४ अग०

६ अग०

८ अग०

१२ अग०

१६ अग०

२० अग०

२२ अग०

२५ अग०

२६ अग०

२८ अग०

२९ अग०

२ सित०

३ सित०

५ सित०

६ सित०

८ सित०

९ सित०

१०

१२

१३

१४

१५

१६

१८

१९

२०

२१

२२

२

२

२

	३० सित०	३६
	१ अक्टू०	५८,१२९
	२ अक्टू०	६७
	३ अक्टू०	६६
	४ अक्टू०	३९
	५ अक्टू०	३६
	६ अक्टू०	३६
	८ अक्टू०	९६
	९ अक्टू०	३६
	११ अक्टू०	५०
	१२ अक्टू०	७२
	१३ अक्टू०	१२८
	१४ अक्टू०	२७,११०
	१५ अक्टू०	२७
	१६ अक्टू०	२७
	१७ अक्टू०	५८
	१८ अक्टू०	६६,९२
	१९ अक्टू०	४०,८७
	२१ अक्टू०	६६
	२३ अक्टू०	१२८
	२४ अक्टू०	१६९
	२६ अक्टू०	१३
	२७ अक्टू०	१४५
	३० अक्टू०	१०६
	३१ अक्टू०	१०६
	१० नव०	३८
	११ नव०	३५
	१३ नव०	२१
	१४ नव०	८८,१४५
	१५ नव०	३१
	१६ नव०	३४
	१७ नव०	३५
	१९ नव०	६७
	२० नव०	२५,९६
	२१ नव०	८७,१०६
	२४ नव०	१३१
	२५ नव०	४२
	२७ नव०	८७
	२८ नव०	१०६
	९ दिस०	३२३
	१३ दिस०	१०९
	२६ दिस०	९६
१९७४	१ फर०	१८३
	१६ जून	१८३
	१ सित०	१५३
१९७५	९ जून	९१
	१० जून	७७
	११ जून	११९
	१२ जून	७०
	१४ जून	७७
	१५ जून	४३
१९७९	१९ मार्च	१३२,१३९
	२० मार्च	८८
	२१ मार्च	६८
	२२ मार्च	७०
	२३ मार्च	१२८
	२४ मार्च	१२९
	२६ मार्च	६९
	२७ मार्च	८५
	३१ मार्च	५
	१ अप्रैल	५
	२ अप्रैल	१२९
	३ अप्रैल	५३
	४ अप्रैल	१३६
	५ अप्रैल	१२८

७ जून ९४
८ जून ६९
३० जून ४,१३०
१५ दिस० ९०
१६ दिस० १५४
२० दिस० ७९
३० दिस० ८९
१९७७ ९ जन० १०४
१३ जन० ७८
३१ जन० ५६
१९७९ ५ फर० ७८
७ फर० ८०
८ फर० ४५
९ फर० ८०

राजसमन्द

१९६० २० अक्टू० ११८
२३ अक्टू० १४५

राजियावास

१९५४ ८ जन० १६८
९ जन० ५९

राधनपुर

१९५४ २९ अप्रैल १७५

रामगढ़

१९७६ १ फर० ९१

रायपुर

१९७० १ जुलाई १४४
१८ जुलाई ३०१
२५ जुलाई ३१३
१ अग० ३८
३० अग० ३२२
१ सित० १३१
९ सित० ३२०
१८ अक्टू० ३२१

रायसिंहनगर

१९६६ २८ अप्रैल
२९ अप्रैल
३० अप्रैल
२ मई

रासीसर

१९७८ १ जुलाई

राहता

१९५५ १८ मार्च
२३ मार्च
२४ मार्च
३० मार्च

रूण

१९५३ ३ जुलाई

रूणियां सिवेरेरां

१९५३ —

लाडनूं

१९४८ १७ दिस०
१९५२ ४ मई
१९५६ २ अप्रैल
३ अप्रैल
४ अप्रैल
५ अप्रैल
१४ अप्रैल
१५ अप्रैल
१९५७ १८ मार्च
२ मई
३ मई
१४ मई
१८ मई
१९ मई
२० मई
२१ मई

२९ अग०	३३,१४
३० अग०	७२
१ सित०	१११
२ सित०	३९
३ सित०	६३
४ सित०	५
७ सित०	१६
९ सित०	२०
१० सित०	१५४
११ सित०	५२
१२ सित०	१८५
१६ सित०	३८
१८ सित०	५२
१९ सित०	१५५
२१ सित०	१४
२३ सित०	५४
२५ सित०	५४,१५४
२६ सित०	८०
२७ सित०	१५४
२८ सित०	३९
२९ सित०	५४
३० सित०	७
१ अक्टू०	६७
२ अक्टू०	१०४
३ अक्टू०	१४५
४ अक्टू०	१७९
५ अक्टू०	७३
६ अक्टू०	१८४
७ अक्टू०	६
२१ अक्टू०	१८२
२२ अक्टू०	१८२
२३ अक्टू०	१५७,१८२
२५ अक्टू०	७२

२
३
४
५।
६।
७।
८ वि
९ वे

आचार्य तुलसी प्रखर प्रवक्ता है। उन्होंने अपने ६0 साल के जीवन में केवल धर्मसभाओं को ही संबोधित नहीं किया, अनेक सामाजिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक सभाओं को भी उन्होंने अपनी अमृतवाणी से लाभान्वित किया है। डाक्टर, वकील, सांसद, इंजीनियर, पुलिस, पत्रकार, साहित्यकार, व्यापारी, शिक्षक, मजदूर आदि अनेक गोष्ठियों एवं वर्गों को उन्होंने प्रतिबोधित किया है। यदि उन सबका इतिहास सुरक्षित रखा जाता तो यह विश्व का प्रथम आश्चर्य होता कि किसी धर्मनेता ने समाज के इतने वर्गों को उद्बोधित किया हो।

जितनी जानकारी मिली, उतने विशिष्ट प्रवचनों की सूचि यहां प्रस्तुत है। वैसे तो उनका हर प्रवचन विशेष प्रेरणा से ओतप्रोत होता है पर विशेष अवसर से जुड़ने पर उसका महत्त्व और ऐतिहासिकता बढ़ जाती है अतः विशेष अवसरों एवं स्थानों पर दिए गए प्रवचनों का संकेत इस परिशिष्ट में दिया जा रहा है।

इसमें जन्मोत्सव और पट्टोत्सव के संकेत आचार्य तुलसी के जन्मदिन एवं अभिषेक दिन से संबंधित हैं।

अणुव्रत अधिवेशन

१९५०, २४ सित. अर्धवार्षिक
१९५०, ३० अप्रैल प्रथम
१९५१, २ मई द्वितीय वार्षिक
१९५१, ३ मई द्वितीय वार्षिक
१९५१, २३ सित. तृतीय वार्षिक
१९५३, १५ अक्टू. चतुर्थ वार्षिक
१९५३, १८ अक्टू. चतुर्थ वार्षिक
१९५४, १७ अक्टू. पंचम वार्षिक
१९५५, २० अक्टू. छठा वार्षिक
१९५५, २५ अक्टू. छठा वार्षिक
१९५६, १० अक्टू. सातवां वार्षिक
१९५६, १२ अक्टू. सातवा वार्षिक
१९५६, १४ अक्टू. सातवां वार्षिक
१९५६, १२ अक्टू. सातवा वार्षिक
१९५८, १९ अक्टू. नवम वार्षिक
१९५९, १६ अक्टू दशम वार्षिक
१९६०, १ अक्टू. ग्यारहवां वार्षिक
१९६३, तेरहवां वार्षिक अधिवेशन,
१९६५, ३० अक्टू. सोलहवां वार्षिक
१९६५, ३१ अक्टू. सोलहवा वार्षिक
१९६६, सतरहवां वार्षिक अधिवेशन,
१९६७, अठारहवा वार्षिक अधिवेशन,
१९६७, अठारहवां वार्षिक अधिवेशन,
१९६९, बीसवां वार्षिक अधिवेशन
— अठाइसवां वार्षिक अधिवेशन

महिला अधिवेशन

१९७७, २६ अक्टू. पाचवा अधिवेशन, लाडनूं
१९७७, २७ अक्टू. पांचवां अधिवेशन, लाडनूं
१९७७, २८ अक्टू. पाचवा अधिवेशन, लाडनूं
१९७७, २९ अक्टू. पांचवा अधिवेशन, लाडनूं
१९८७, महिला एव युवक का संयुक्त अधिवेशन,
१९८९, योगक्षेम वर्ष, महिला अधिवेशन, लाडनूं

युवक अधिवेशन

पत्रकारों के मध्य

विचार परिषद् (सेमिनार)

अणुव्रत सेमिनार (विचार परिषद्)

राजस्थानी साहित्य परिषद्

विचार परिषद्

१९५१, २३ अक्टू० दिल्ली
१९५३, २० सित० साधना मडल, जोधपुर द्वारा आयोजित
१९५३, २७ सित० कुमार सेवा सदन, जोधपुर द्वारा

विश्व हिन्दू परिषद्

१९६५, ९ दिस० दिल्ली, विज्ञान भवन

संस्कृत साहित्य परिषद्

१९५३, २९ मार्च राजस्थान प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित, बीकानेर

पर्व-प्रसंग

जन्मोत्सव

१९५३ जोधपुर
१९५४ बम्बई
१९६५, २६ अक्टू० दिल्ली
१९७३, १४ दिस० (युवक दिवस) हांसी
१९७७, १२-१३ नव० लाडनूं
१९७७, १४ नव० लाडनू
— —

पट्टोत्सव

१९५१, ९ सित० दिल्ली
१९५३, १७ सित० जोधपुर
१९५३, १८ सित० जोधपुर
— — पच्चीसवां पट्टोत्सव (धवल समारोह)
१९६५, ५ सित० दिल्ली
१९७८ ११ सित० गगाशहर
— — पचासवा पट्टोत्सव (अमृत महोत्सव)
—

भिक्षु चरमोत्सव

१९५३ जोधपुर
१९७८, १४ सित० गगाशहर

प्रेषित संदेश

— शान्ति निकेतन में आयोजित विश्व शान्ति

१९४७, ११ मार्च, हिन्दी तत्त्व ज्ञान प्रचारक समिति द्वारा धर्म परिषद्, अहमदाबाद

— डा० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता मे आयोजित 'भा परिषद्' का रजत जयन्ती समारोह, कलकत्ता

लंदन में आयोजित जैन धर्म सम्मेलन

१९५२, ३१ जून, विश्व धर्म सम्मेलन, लंदन

१९५२, २० अक्टू० सांस्कृतिक सम्मेलन, जामनगर

१९५२ फिलोसोफिकल कांग्रेस मीटिंग, मैसूर

१९५३, २२ मई अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य स वीसवां अधिवेशन, ऋषिकेश

१९५३, ३ अक्टू० खानदेश का त्रैवार्षिक अधिवेशन

१९५४, १५ नव० लोकसभा के अध्यक्ष जी. वी. म अध्यक्षता मे अहिंसा दिवस कस्टीट्यूशन

१९५४, १० जन०, जैन सांस्कृतिक परिषद्, क

— राष्ट्रीय एकता परिषद के लिए प्रेषित

— अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन,

१९७३, १९ मई, युवक प्रशिक्षण शिविर, डू

१९७३, २० मई, युवक प्रशिक्षण शिविर, डूंग

१९७३, २१ मई, युवक प्रशिक्षण शिविर, डूग

१९७३, २२ मई, युवक प्रशिक्षण शिविर, डू

१९७९, ७ जन० भारत जैन महामंडल द्वारा सम्मेलन, डूगरगढ

अखिल भारतीय प्राच्य विद्या . अहमदाबाद

विशिष्ट . ४.

अहिंसा दिवस

१९५० दिल्ली

१९५१, ६ सित०, दिल्ली

१९५३, ६ दिस०, डूगरगढ़

१९५३ जोधपुर

१९५७ सुजानगढ

— सुजानगढ

परिशिष्ट ३

आकाशवाणी

१९६९, १६ अग०, आकाशवाणी, बेंगलोर

विशिष्ट आलेख एवं वार्ता

अग्नि परीक्षा काड : एक विश्लेषण
युवाचार्य पद की नियुक्ति
साध्वी प्रमुखा का मनोनयन
डा० राजेन्द्र प्रसाद के प्रति उद्गार
सत विनोबा से मिलन
संत लोंगोवाल से वार्ता
के. जी. रामाराव एवं हर्बर्टटिसि से वार्ता

शिविर

अणुव्रती कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर

१९५७, २ फर० सरदारशहर
१९७७, ७ अग० लाडनू

अणुव्रत विचार शिविर

१९५६, २ अक्टू० सरदारशहर

प्रेक्षाध्यान शिविर

१९७७, ११ दिस० समापन समारोह, लाडनू
१९७८, १८ मार्च समापन समारोह, लाडनू

युवक प्रशिक्षण शिविर

१९७४, १६ जून दीक्षान्त प्रवचन, दिल्ली

संसद-सदस्यों के

१९५०, १६ अप्रैल कंस्टीट्यूशन क्लब, ।द।।
१९५६, १ दिस० दिल्ली
१९६५, २८ नव० दिल्ली
१९७९, ४ अप्रैल संसद भवन, दिल्ली
सासद सेठ गोविंददासजी से वार्ता

शिक्षण संस्थान

१९५३, २६ अग० उम्मेद हाई स्कूल,

समारोह

१९५३, २२ जुलाई, जोधपुर
१९६६, १४ फर० भादरा
१९६६, १५ फर० भादरा

विदाई समारोह

१९५५, ८ जून दिल्ली
१९५५, ३० नव० उज्जैन

— —

शताब्दी समारोह

मर्यादा महोत्सव शताब्दी समारोह (अणुव्रत प्रेरणा दिवस)
स्थिरवास शताब्दी समारोह, लाडनू

सम्मेलन

अणुव्रत सम्मेलन

१९६५, २१ मई राजस्थान प्रादेशिक अणुव्रत सम्मेलन, जयपुर

कवि सम्मेलन

१९४९, १५ अग० जयपुर
१९५३, १७ अक्टू० अणुव्रती सघ द्वारा आयोजित, जोधपुर

कार्यकर्त्ता सम्मेलन

१९५७, चूरू

नागरिक सम्मेलन

१९५२, ७ जुलाई बीदासर

बौद्ध प्रतिनिधि सम्मेलन

१९५६, १ फर० दिल्ली

महिला सम्मेलन

— मेवाड़
१९५३, ४ अप्रैल महिला जागृति परिषद् बीकानेर द्वारा आ योजि

युवक सम्मेलन

१९५२, ४ मई, लाडनू
१९५६, ३ अप्रैल, लाडनूं
१९६८, ४ अक्टू०, मद्रास

विशिष्ट व्यक्तियों से भेंट-वार्ताएं

(विशेष अवसरों पर प्रदत्त प्रवचनों की सूची के अतिरिक्त यहां विशिष्ट व्यक्तियो से हुई वार्ता की जानकारी भी प्रस्तुत की जा रही है। आचार्य तुलसी के विराट् व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करने एवं विचार-विनिमय हेतु समय-समय पर देश-विदेश की महान् हस्तिया उनके चरणों में उपस्थित होती रहती हैं। उन सारी भेट-वार्ताओं की यदि सुरक्षा रहती तो वह भारत की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहर होती। साथ ही वह साहित्य परिमाण में इतना विशाल होता कि उसे कई खडों मे प्रकाशित करना पड़ता।

परिशिष्ट के इस भाग मे हमने 'जैन भारती', 'नवनिर्माण की पुकार', 'जनपद विहार' तथा 'आचार्यश्री तुलसी षष्टिपूर्ति

अभिनंदन पत्रिका'—इन चार ग्रंथों मे आई वार्ताओ क
दिया है। 'नवनिर्माण की पुकार' एवं 'जनपद विहार' में
बहुत संक्षिप्त दी गयी है, पर इतिहास की सुरक्षा हेतु हमने
वार्ताओं का भी संकेत दे दिया है। 'आचार्यश्री तुलसी
अभिनंदन पत्रिका' के तीसरे खंड में वार्ताए है अतः ह
सख्या तीसरे खंड की दी है। कही-कही वार्ताओं की पुन
हुई है, पर उनके निर्देश का कारण भी हमारे सामने
क्योंकि 'नवनिर्माण की पुकार' मे जो बौद्ध भिक्षु नारद
वार्ता है, वह अत्यन्त संक्षिप्त है लेकिन वही 'षष्टिपूर्ति
पत्रिका' में काफी विस्तृत है। इसके अतिरिक्त दोनो
होने से शोधार्थी को जो पुस्तक आसानी से उपलब्ध
से अपने कार्य को आगे बढ़ा सकेगा।

यद्यपि सक्षिप्त वार्ताएं तो अन्य पत्रिकाओं,
जीवनवृत्तों एवं पुस्तकों में भी प्रकाशित है, पर
संभव नहीं हो सका। पाठक इस सूची को देखते
विशाल सूची को नजरंदाज नही करेगे, जिनकी
सुरक्षा नहीं हो सकी है अथवा हम अपनी असमर्थता
प्रस्तुत नही कर सके है।

एक बात स्पष्ट कर देना और आवश्यक है कि
हमने मुक्त-चर्चाओं एवं सामान्य वार्ताओं का
है क्योंकि उनकी संख्या परिमाण में बहुत अधिक थी

इस परिशिष्ट मे जैन, षष्टि, नव तथा
सांकेतिक पद है। ये क्रमशः 'जैन भारती', 'अ
षष्टिपूर्ति अभिनंदन पत्रिका', 'नवनिर्माण की पुक
विहार' के वाचक है। हमने इन वार्ताओ को
पर कुछ शीर्षकों में बांट दिया है, जिससे
सके। 'मंत्रिमंडल के सदस्यों से' शीर्षक में केन्द्रीय
मंत्रियों के साथ हुई वार्ताओं का उल्लेख है। इस
चार बातों का संकेत दे रहे हैं। वार्ता की
एवं वह संदर्भ ग्रंथ, जिसमें वार्ता उपलब्ध है
एवं समय का उल्लेख नही मिला, उसे हमने

साधु-संन्यासियों से

६-४-५० दिल्ली, बौद्ध भिक्षु भदन्त आनंद कौसल्यायन (जनपद पृ० ७)
२९-११-५६ बौद्ध भिक्षु नारद थेरो (षष्टि २५, नव पृ० १८५)
२-१२-५६ दिल्ली, दलाईलाभा (नव पृ० १९३)
५-१२-५६ दिल्ली, वौद्धभिक्षु-मडल के प्रधान
महास्थविर 'धर्मेश्वर' (नव पृ० १९४)
— स्वामी करुणानद जैन २२-४-६२)
५-१-६३ वम्वई, साध्वियो से मिलन प्रसग (जैन २६-११-६७)
२२-१-६८ मद्रास, इटालियन फादर वेंलोजिया (जैन २९-१२-६८)
२०-९-६८ दक्षिणभारत, बौद्ध भिक्षु कामाक्षीराव (जैन ६-१०-६८)
२५-३-६९ हिरिऊर (कर्नाटक), त्रिवेन्द्रम् क्रिश्चियन
हाई स्कूल के पादरी (जैन ४-५-६९)
२-४-७० गोपुरी, सत विनोवा (जैन १९-४-७०, २६-४-७०)
३-४-७० गोपुरी, संत विनोवा (जैन १७-५-७०)
२८-१०-७४ दिल्ली, फूजी गुरुजी (जैन १७-११-७४)

राष्ट्रपति एवं प्रधानमन्त्री से

२९-४-५० दिल्ली, राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद (जनपद पृ० ९४)
— राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद (जैन सित० अक्टू० ५०)
४-१२-५६ दिल्ली, राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद (नव पृ० २५३)
८-१२-५६ दिल्ली, प्रधानमंत्री श्री नेहरू (नव पृ० २०६)
१५-१२-५६ उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् (नव पृ० २३०)
— जयपुर, राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद (जैन १-११-५९)
— दिल्ली, राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद (जैन २६-२-६१)
२०-४-६४ दिल्ली, प्रधानमंत्री पं० नेहरू (जैन २४-५-६४)
३०-११-६५ दिल्ली, राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् (जैन १३-२-६६)
३१-१-६८ उपप्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई (जैन ३०-६-६८,
षष्टि पृ० ११)
६-७-६८ मद्रास, भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् (जैन ४-८-६८,
षष्टि पृ० १९)
१९-६-७४ दिल्ली, प्रधानमत्री श्रीमती इंदिरा गाधी (षष्टि पृ० ३)
५-४-७९ दिल्ली, प्रधानमत्री श्री मोरारजी देसाई (जैन २४-६-७९)

राज्यपाल

१८-५-६५ राजस्थान के राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्द (जैन २०-६-६५)

२७-७-६७	गुजरात के राज्यपाल नित्यानद कानूनगो	(पण्टि
१५-१-६८	वम्वई, महाराष्ट्र के राज्यपाल	(जैन
	श्री पी० वी० चैरियन	' ।
२८-११-६८	मद्रास, विहार के राज्यपाल	
	श्री आर० आर० दिवाकर	(जैन
२९-१०-६९	वेगलोर, मैसूर के राज्यपाल धर्मवीर	(जैन

मन्त्रिमण्डल के सदस्यो से

१२-४-५०	दिल्ली, वीकानेर राज्य के मुख्यमत्री श्री	
	मनुभाई मेहता तथा सासद जयश्रीराय	(ज
१४-४-५०	दिल्ली, जोधपुर राज्य के	
	शिक्षामत्री श्री मथुरादास 'माथुर'	(·
१५-४-५०	दिल्ली, संयुक्त राजस्थान के भूतपूर्व	
	मुख्यमंत्री तथा सासद श्री	
	माणिक्यलाल वर्मा	(
—	राजस्थान के उद्योगमत्री श्री	
·	वलवन्तसिह मेहता	(
—	भारत के गृहमंत्री कैलाशनाथ काटजू	
९-१२-५६	दिल्ली, केन्द्रीय योजना मंत्री	
	श्री गुलजारीलाल नंदा	
१३-१२-५६	दिल्ली, केन्द्रीय योजना मत्री	
	श्री गुलजारीलाल नंदा	
२९-१२-५६	दिल्ली, केन्द्रीय श्रम उपमंत्री	
	श्री आविद अली	
—	गृहमत्री गुलजारीलाल नदा	
२२-८-६७	भूतपूर्व गृहमत्री गुलजारीलाल नदा	
२३-१-६८	बम्बई, भूतपूर्व केन्द्रीय मत्री	
	श्री एस० के० पाटिल	
२९-४-६८	वैकुठधाम, मैसूर के गृहमत्री श्री ' टि	
९-७-६८	मद्रास, तमिलनाडु के भूतपूर्व मुख्यमंत्री	
	श्री भक्तवत्सलम्	
१५-७-६८	मद्रास, मुख्यमत्री भक्तवत्सलम् तथा	
	न्यायाध्यक्ष श्री एन० के० कृष्ण रेडी	
१७-८-६८	मद्रास, यातायात विभाग मत्री	
	श्री बलरामय्या अपलेट	

१७-३-६९	त्रिवेन्द्रम्, केरल के मुख्यमत्री नम्बुद्रीपाद	(जैन २७-४-६९)
२०-३-६९	मणम्बूर, भूतपूर्व विदेश राज्यमंत्री श्रीमती लक्ष्मी मेनन	(जैन २७-४-६९)
२९-४-७०	मध्यप्रदेश के मुख्यमत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल	(पष्टि २०, जैन ७-६-७०)
२४-६-७४	रक्षामत्री श्री स्वर्णसिंह	(पष्टि ६)

राजनयिक

१२-४-५०	दिल्ली, सासद श्री जयनारायण व्यास तथा राज्य के भूतपूर्व सदस्य मत्री श्री कुम्भाराम आर्य	(जनपद पृ० ३७)
१६-४-५०	दिल्ली, लोकसभा अध्यक्ष अनतशयनम् आयंगर	(जनपद, पृ० ६०)
१६-४-५०	दिल्ली, सासद मिहिरलाल चट्टोपाध्याय	(जनपद, पृ० ५७)
२०-४-५०	दिल्ली, सासद नेमिशरण जैन	(जनपद, पृ० ६७)
२३-४-५०	दिल्ली, सांसद श्री ब्रजेश्वरप्रसाद	(जनपद, पृ० ८२)
२२-५-५०	दिल्ली, राष्ट्रपति के सैनिक सचिव श्री बी० चटर्जी	(जनपद, पृ० २०९)
१२-४-५०	दिल्ली, कांग्रेस कमेटी के मत्री श्री के० पी० शकरन्	(जनपद, पृ० ३९)
२२-४-५०	दिल्ली, काग्रेस अध्यक्ष श्री पट्टाभिसीतारमैया	(जनपद, पृ० ७५)
१-१२-५६	दिल्ली, सासद श्रीमती सावित्री निगम	(नव पृ० १९०)
६-१२-५६	दिल्ली, श्री मोरारजी देसाई	(नव पृ० २०२)
१०-१२-५६	दिल्ली, कांग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी श्री महेन्द्र मोहन चौधरी	(नव पृ० २१५)
१६-१२-५६	दिल्ली, लोकसभा-अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम् आयगर	(नव पृ० २३४)
—	मध्यप्रदेश विधानसभा के सदस्य	(जैन ६-५-६२)
२१-८-६५	दिल्ली, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामत्री श्री टी० मनयन	(जैन ५-९-६५)
२६-७-६८	मद्रास, श्री सी० सुब्रह्मण्यम्	(जैन ३-१-७१)
	जयप्रकाश नारायण	(जैन १५-९-६८)
१५-११-६८	मद्रास, राजनीति के चाणक्य श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य	(जैन २२-११-६८, पष्टि पृ० १२)

न्यायविदो से

२४-८-६८ मद्रास, उच्च न्यायालय के न्यायधीश सौन्दरम् कैलासम् (

७-९-६८ मद्रास, हाईकोर्ट के जज श्री वेकटादरी (ज

२४-७-६९ उच्चन्यायालय मद्रास के न्यायाधीश श्री कैलास एव श्रीमती सुन्दरम् कैलासम् (

२१-९-८० लाडनू, उच्चन्यायालय के न्यायाधीश गुमानमल लोढा (जै

राजदूतो से

८-४-५० दिल्ली, पूर्व चीन मे भारत के राजदूत श्री के० एम० पणिक्कर (

२७-४-५० दिल्ली, फिनलैण्ड के भारत स्थित राजदूत मि० हुगो वेलवाने (

१-५-५० दिल्ली, फिनलैण्ड के राजदूत की धर्मपत्नी ब्रिगेटा वेलवाने (ज

६-५-५० दिल्ली, फिनलैण्ड राजदूत की पत्नी ब्रिगेटा (ज

१३-१२-५६ जर्मन दूतावास के श्री वाल्टर लाइफर और श्री वार्नहार्ट हाइवेच

५-१-५७ दिल्ली, फ्रास के राजदूत ल-कोम्स स्तानिस्लास ओस्त्रोराग

२८-७-६५ दिल्ली, अमरीका के भारतस्थित राजदूत चेस्टर वोल्स के सहयोगी श्री डगलस वेनेट (

५-८-६५ दिल्ली, जापान के भारत स्थित कार्यवाहक राजदूत श्री टेनेटानी (

शिक्षाविदों से

३-५-५० दिल्ली, पडित दलसुखभाई मालवणिया (

३-६-५० दिल्ली, यूनिवर्सिटी के उपकुलपति श्री एस० एन० सेन (

२५-९-५१ डा० महादेवन तथा डा० निकम (

२२-१-५५ वम्बई, विल्सन कालेज के प्रिंसिपल श्री केलॉक

१३-१०-६८ मदुराई विश्वविद्यालय के उपकुलपति (

साहित्यकारो से

९-४-५०	जैन साहित्यकार परिषद् के कार्यकर्त्ता	(जनपद पृ० २७)
१-५-५०	श्री जैनेन्द्रकुमारजी	(जनपद पृ० १३२)
२८-८-५२	सरदारशहर, श्रीरामकृष्ण भारती, एम० ए० बी० टी०	(जैन १९-२-५३)
१-१२-५६	दिल्ली, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त	(नव पृ० १८८)
२१-१२-५६	दिल्ली, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त	(नव पृ० २४५)
११-११-५९	सुमित्रानदन पंत तथा श्री हरिवंशराय बच्चन	(जैन २६-२-६१)
—	मद्रास, तमिल साहित्यकार वर्ग	(जैन ६-१०-६८)

पत्रकारो से

१३-४-५०	दिल्ली, नवभारत के सहसम्पादक अक्षयकुमार व ब्रह्मदत्त विद्यालकार	(जनपद पृ० ४३)
४-५-५०	दिल्ली, 'स्टेट्स मैन' के सम्पादक सर आर्थर मूर	(जनपद पृ० १४९)
२२-५-५०	दिल्ली, 'प्रेस ट्रस्ट आफ इडिया' के सह-सम्पादक ज्योतिसेन गुप्ता तथा नैयर	(जनपद पृ० २०८)
२-६-५०	दिल्ली, 'आजकल' के सम्पादक श्री देवेन्द्र सत्यार्थी	(जनपद पृ० २२३)
२५-३-५३	बीकानेर, प्रेस कान्फ्रेन्स	(जैन १६-४-५३)
१-१२-५६	दिल्ली, यूनेस्को के प्रेस-प्रतिनिधि श्री एलविरा	(नव पृ० १९२)
६-१२-५६	दिल्ली, 'इंडियन एक्सप्रेस' के सम्पादक श्री चमनलाल सूरी	(नव पृ० २०१)
१२-१२-५६	दिल्ली, 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया' के डाइरेक्टर श्री सी० सरकार	(नव पृ० २१६)
१२-१२-५६	दिल्ली, 'टाइम्स आफ इण्डिया' के मुख्य सवाददाता श्री रामेश्वरन्	(नव पृ० २१८)
१५-१२-५६	दिल्ली, 'स्टेट्समैन' दिल्ली सस्करण के सम्पादक श्री क्रोश लैन	(नव पृ० २३३)
२१-१२-५६	दिल्ली, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक श्री दुर्गादास	(नव पृ० २४२)
३०-१२-५६	दिल्ली, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक श्री दुर्गादास	(नव पृ० २५०)

२८-८-६८	मद्रास, प्रधान सम्पादक श्री शिवरामन	(
—	'युवादृष्टि' के सम्पादक कमलेश चतुर्वेदी	
८-४-६९	केरल, 'इण्डियन एक्सप्रेस' के सवाददाता	
—	'दैनिक हिन्दुस्तान' के सम्पादक श्री रतनलाल जोशी	
५-८-७०	एक पत्रकार से धर्म और राजनीति विपयक वार्ता	
—	जैन भारती के प्रतिनिधि	(
—	राजेन्द्र मेहता	
—	ललित गर्ग 'वसन्त'	(
—	'नवज्योति' के प्रधान सम्पादक कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी	(

विशिष्ट व्यक्तियों से

१८-४-५०	अनेक मिल मैनेजर
१२-५-५०	दिल्ली, आकाशवाणी के देहाती कार्यक्रमो के व्यवस्थापक
१४-५-५०	दिल्ली, कुमारी राकेशनन्दिनी
९-१२-५६	दिल्ली, समाजवादी नेता श्री अशोक मेहता
१७-१२-५६	दिल्ली, राष्ट्रपति के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री विश्वनाथ वर्मा
१८-१२-५६	दिल्ली, हिन्दू महासभा के अध्यक्ष श्री एन० सी० चटर्जी तथा महामंत्री श्री वी० जी० देशपाडे
२८-१२-५६	दिल्ली, नैतिक प्रचारक श्री मोहन शकलानी
—	मद्रास, गाधी सेवक
२-५-६३	राजस्थान विश्वविद्यालय के विद्यार्थी
—	विश्वयात्री श्री कपिलेश्वर शर्मा तथा आदित्य प्रसाद दीक्षित[1]
१३-११-६८	बेंगलोर, सेनाध्यक्ष जनरल करिअप्पा
२९-११-६८	खादी वोर्ड के अध्यक्ष यू० एन० ढेवर

---

१. ७ वर्षो से १२० देशो की शाति यात्रा करने वाले

२७-१२-६८	पाण्डिचेरी, पाण्डिचेरी आश्रम के सचिव श्री नवजात	(जैन २६-१-६९)
९-४-७०	नागपुर, राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के संचालक सदाशिव गोलवलकर	(जैन १४-६-७०, षष्टि पृ० ३४)

उद्योगपतियों से

१४-४-५०	दिल्ली, श्री रामकृष्ण डालमिया	(जनपद पृ० ४५)
१९५६	दिल्ली, सेठ जुगलकिशोर बिड़ला	(नव पृ० २५८)
—	तमिलनाडु के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री महालिगम्	(जैन २५-८-६८)
—	उद्योगपति साहू श्रेयासप्रसादजी जैन	(जैन २२-३-७०)

पाश्चात्य विद्वानो से

९-४-५०	दिल्ली, हगरी के प्राच्य विद्या विशेपज्ञ डा० फैलिक्स वैली	(जनपद पृ० २३) (जैन १-१-१९५१)
९-४-५०	अमेरिकन औद्योगिक परामर्शदाता श्री ट्रोन	(जनपद पृ० १८)
१०-४-५०	दिल्ली, सेंट स्टीफन्स कालेज के अमेरिकन प्रो० डा० बुशनल	(जनपद पृ० ३०)
—	अमेरिकन विद्वान श्री जे० आर० वर्टन तथा श्री डब्ल्यू० डी वेल्स	(जैन २८-११-५४)
१२-५-५५	जलगाव, केनेडियन दम्पत्ति	(जैन २९-५-५५)
—	अतर्राष्ट्रीय शाकाहारी मडल के उपाध्यक्ष तथा यूनेस्को के प्रतिनिधि श्रीवुडलैण्ड केलर	(जैन २०-२-५५)
२९-११-५६	दिल्ली, हाजीमे नाकामुरा और सोसन मियो मोटो	(नव पृ० १८७)
५-१२-५६	विदेशी नैतिक आंदोलन के सदस्य मि० डब्ल्यू० इ० पार्टर, मि० जी० एफ० स्टीफेन्स तथा मि० जे० एस० हडसन	(नव पृ० १९८)
७-१२-५६	दिल्ली, जर्मन विद्वान् श्री अल्फ्रेड वायर, फ्रेल्ड वाल्टर तथा लाइफर हाईवेच	(नव पृ० २०५)
१४-१२-५६	दिल्ली, अमेरिकन महिलाए	(नव पृ० २२५)
१९-१२-५६	परराष्ट्र मत्री डॉ० सैयद महमूद	(नव पृ० २४१)

४-८-६१	वीदासर, वर्जीनिया यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर इ० यन स्टीवेन्शन एव एन० बनर्जी
२९-६-६५	दिल्ली, कनाडा के हाईकमिश्नर श्री एच० ई० डोलेण्ड मेचनर
१८-७-६५	दिल्ली, अर्जेन्टाइनावासी श्रीमती आरगोलिया
२५-७-६५	यहूदी धर्म के प्रधान अमेरिकन श्री मेसिङ्ज
२७-७-६५	दिल्ली, जापान दूतावास के प्रथम कौंसिलर श्री हकसा कबायसी
२९-७-६५	दिल्ली, मेक्समूलर भवन के डायरेक्टर जर्मनवासी श्री हाइमोराड
९-८-६५	दिल्ली, फ्रेंच विद्यार्थियो के साथ
—	अर्जेण्टाइनावासिनी श्रीमती आरगोलिया डी० वरविया
१२-१-६८	वम्बई, डा० डब्ल्यू० नार्मन व्राउन
—	शोधकर्ता डॉ० ट्रेड
२९-१०-६९	बेंगलोर, कनाडा निवासी श्रीरीड
८-७-८०	अमेरिका-निवासी शोधविद्यार्थी डुगलस

पुस्तक संकेत-सूची

भूमिका में प्रयुक्त संदर्भ-ग्रंथ-सूची

(पुनरुक्ति के भय से इस सूची में हमने आचार्यश्री की उन पुस्तकों का उल्लेख नहीं किया है, जो हम विषय-वर्गीकरण की सूची में दे रहे हैं।)

अणुविभा (सं-सोहनलाल गांधी, अणुव्रत विश्व भारती, १९८९)
अणुव्रत (पाक्षिक) (अखिल भारतीय अणुव्रत समिति)
अणुव्रत अनुशास्ता के साथ (मुनि सुखलाल, आदर्श साहित्य सघ)
अमरित वरसा अरावली में (साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा, आदर्श साहित्य सघ)
अमृत महोत्सव, स्मारिका (सं०-महेन्द्र कर्णावट, अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
आचार्य तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ (श्री जैन श्वेतांवर तेरापंथी महासभा)
आधुनिक गद्य एव गद्यकार (जेकव पी० जार्ज, कानपुर ग्रंथम्, रामवाग)
आधुनिक निवध (रामप्रसाद किचलू, द्वादश सं १९७४ राजकिशोर प्रकाशन)
आह्वान (आचार्य तुलसी, जैन विश्व भारती, लाडनू)
एक बूद . एक सागर (सं०- समणी कुसुमप्रज्ञा, जैन विश्व भारती, लाडनूं)
कवीर (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)
कवीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन (डा० आर्या प्रसाद त्रिपाठी, किताव घर-दिल्ली)
कला और संस्कृति (डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य भवन, प्रयाग)
जव महक उठी मरुधर माटी (सा० प्रमुखा कनकप्रभा, आदर्श साहित्य संघ)
जैन भारती[1] (पत्रिका) (श्री जैन श्वेतांवर तेरापथी महासभा)
तुलसीदास (डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिंदी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय)
तेरापंथ टाइम्स (समाचार पत्र) (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्)
तेरापंथ दिग्दर्शन (सं०-मुनि सुमेरमल, जैन विश्व भारती)
दिनकर के पत्र (सं०-कन्हैयालाल फूलफगर, दिनकर शोध संस्थान)
दक्षिण के अंचल मे (साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा, आदर्श साहित्य संघ)

१ सन् १९८४ तक यह पत्रिका साप्ताहिक थी, किंतु अव मासिक है।

धर्म और भारतीय दर्शन (श्री जैन श्वेतावर तेरापंथी ,हा ˜
धर्मचक्र का प्रवर्त्तन (युवाचार्य महाप्रज्ञ, अमृत महोत्सव ˎ ९८
पथ और पाथेय (सं०-मुनि श्रीचद, अजता प्रिंटर्स, जयपुर)
पाव-पाव चलने वाला सूरज (साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, आदर्श
प्रवचन डायरी (आचार्य तुलसी, श्री जैन श्वेतावर तेरापंथी म
प्रेमचंद (नरेन्द्र कोहली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली)
प्रेमचंद के कुछ विचार (प्रेमचंद)
Problems of style (M. Murre)
वहता पानी निरमला (साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा, आदर्श सा
भरतमुक्ति (आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य सघ, द्वितीय स०
मा वदना (आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य सघ)
मेरे सपनो का भारत (महात्मा गाधी)
युवादृष्टि (पत्रिका) (अखिल भारतीय तेरापथ युवक परिषद्)
रश्मिया (मुनि श्रीचद 'कमल', आदर्श साहित्य संघ)
रसज्ञ रजन (महावीरप्रसाद द्विवेदी)
रामराज्य (पत्रिका) (कानपुर से प्रकाशित)
विचार और तर्क (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी)
विचार और विवेचन (डॉ० नगेन्द्र)
विज्ञप्ति (समाचार बुलेटिन) (आदर्श साहित्य सघ)
विवरणपत्रिका (पत्रिका) (श्री जैन श्वेतावर तेरापन्थी मह स
व्यावहारिक शैली विज्ञान (डॉ० भोलानाथ तिवारी, श०दक १
सस्मरणो का वातायन (साध्वी कल्पलता, आदर्श साहित्य स
समीक्षात्मक निवध (विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग ह
साहित्य और समाज (सं० जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, राज्यपाल
साहित्य का उद्देश्य (प्रेमचद)
साहित्य का मर्म (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी)
साहित्य का श्रेय और प्रेय (जैनेन्द्र कुमार)
साहित्य विवेचन (क्षेमचन्द्र सुमन तथा योगेन्द्र कुमार मल्लिक)
साहित्य समाज शास्त्रीय सदर्भ (सं०-डा० विश्वम्भरदयाल
साहित्यालोचन (डा० श्यामसुन्दरदास इडियन प्रेम लि० प्रय
सिद्धात और अध्ययन (वावू गुलावराय)
हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रथावली भाग-७ (राजकमल प्रकाशन,
हस्ताक्षर (आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य संघ)
हिंदी साहित्य का इतिहास (आचार्य रामचंद्र शुक्ल)
हिंदी साहित्य मे राष्ट्रीय काव्य (डा० के० के० शर्मा)

(विषय-वर्गीकरण में प्रयुक्त ग्रन्थ संकेत-सूची

अणु आन्दो	अणुव्रत आदोलन का प्रवेश द्वार (आदर्श साहित्य सघ)
अणु · गति	अणुव्रत : गति-प्रगति (वही, तृतीय सं० १९८६)
अणुव्रती	अणुव्रती क्यों बने ? (अणुव्रत समिति, कलकत्ता)
अणुव्रती संघ	अणुव्रती सघ और अणुव्रत (वही)
अणु संदर्भ	अणुव्रत के संदर्भ मे ((आदर्श साहित्य सघ, प्र० सं० १९७१)
अतीत	अतीत का अनावरण (भारतीय ज्ञानपीठ, प्र० सं० १९६९)
अतीत का	अतीत का विसर्जन : अनागत का स्वागत (आदर्श साहित्य संघ, द्वि० सं० १९९१)
अनैतिकता	अनैतिकता की धूप : अणुव्रत की छतरी (वही, द्वि० सं० १९८७)
अमृत	अमृत-संदेश (वही, प्र० सं० १९८६)
अशात	अशांत विश्व को शाति का संदेश (श्री जैन श्वेतांवर तेरापन्थी महासभा, कलकत्ता)
अहिंसा और	अहिंसा और विश्व शाति (श्री जैन श्वेतांवर तेरापथी महासभा)
आगे	आगे की सुधि लेइ (जैन विश्व भारती, प्र० सं० १९९२)
आ० तु०	आचार्य तुलसी के अमर सदेश (आदर्श साहित्य संघ, प्र० सं० १९५०)
आलोक मे	अणुव्रत के आलोक मे (वही, द्वितीय स० १९८६)
उद्बो	उद्बोधन (वही, द्वितीय सं० १९८७)
कुहासे	कुहासे मे उगता सूरज (वही, प्रथम सं० १९८९)
क्या धर्म	क्या धर्म बुद्धिगम्य है ? (वही, प्रथम स० १९८८)
खोए	खोए सो पाए (वही, तृतीय स० १९९१)
गृहस्थ	गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का (वही, चतुर्थ सं० १९९२)
घर	घर का रास्ता (जैन विश्व भारती, प्र० स० १९९३)
जन-जन	जन-जन से (अणुव्रत समिति, कलकत्ता)
जब जागे	जब जागे, तभी सवेरा (आदर्श साहित्य संघ, द्वि० स० १९९०)
जागो !	जागो ! निद्रा त्यागो ! ! (जैन विश्व भारती, प्र० स० १९९१)
जीवन	जीवन की सार्थक दिशाएं (आदर्श साहित्य सघ, द्वि०स० १९९२)
जैन	जैन दीक्षा (आदर्श साहित्य सघ)

ज्योति के	ज्योति के कण (अ० भा० अणुव्रत समिति, प्र०
ज्योति से	ज्योति से ज्योति जले (अ० भा० तेरापथ युवक प्र
तत्त्व	तत्त्व क्या है ? (आदर्श साहित्य सघ)
तत्त्व चर्चा	तत्त्व-चर्चा (वही)
तीन	तीन संदेश (वही, द्वि० स० १९५३)
दायित्व	दायित्व का दर्पण आस्था का प्रतिबिम्व (अ० भा० तेरापथ युवक परिषद्, प्र०
दीया	दीया जले अगम का (आदर्श साहित्य सघ, प्र०
दोनो	दोनो हाथ : एक साथ (वही, द्वि० स० १९९२)
धर्म : एक	धर्म : एक कसौटी, एक रेखा (वही, प्र० स० १
धर्म और	धर्म और भारतीय दर्शन (श्री जैन श्वे० तेरा
धर्म सव	धर्म सब कुछ है, कुछ भी नही (वही)
धवल	धवल समारोह (आ० तु० धवल समारोह समिति,
नयी	नयी पीढी : नए सकेत (अ० भा० तेरापथ युवक
नवनिर्माण	नवनिर्माण की पुकार (आदर्श साहित्य सघ, प्र०
नैतिक	नैतिक-सजीवन भाग-१ (आत्माराम एण्ड सन्स,
नैतिकता के	नैतिकता के नए चरण (अ० भा० अणुव्रत समिति
प्रगति की	प्रगति की पगडडिया (अणुव्रत समिति, कलकत्ता)
प्रज्ञा	प्रज्ञापर्व (जैन विश्व भारती, प्र० स० १९९२)
प्रवचन	प्रवचन-पाथेय, भाग १-११ (जैन विश्व भारती,
प्रश्न	प्रश्न और समाधान (आत्माराम एण्ड सन्स,
प्रेक्षा	प्रेक्षा : अनुप्रेक्षा (आदर्श साहित्य सघ, द्वि० स०
वीती ताहि	वीती ताहि विसारि दे (आदर्श साहित्य सघ, प्र०
वूद-वूद	बूद-बूद से घट भरे, भाग १,२ (जैन विश्व भारती, लाडनू प्र०
वैसाखिया	बैसाखिया विश्वास की (आदर्श साहित्य सघ, प्र०
भगवान्	भगवान् महावीर (जैन विश्व भारती, लाडनू)
भोर	भोर भई (जैन विश्व भारती, द्वि० स० १९९२)
मजिल १	मजिल की ओर, भाग १ (वही, प्र० स० १९८६)
मजिल २	मंजिल की ओर, भाग २ (वही, प्र० स० १९८८)
मनहंसा	मनहसा मोती चुगे (आदर्श साहित्य सघ, प्र० स०
मुक्ति · इसी	मुक्ति इसी क्षण मे (अ० भा० ते० युवक परिषद्,
मुक्तिपथ	मुक्तिपथ (आदर्श साहित्य सघ, प्र० स० १९७८)
मुखडा	मुखडा क्या देखे दरपन मे (आदर्श साहित्य सघ, १

मेरा धर्म	मेरा धर्म : केन्द्र और परिधि (वही, प्रथम सं० १९८८)
राजधानी	राजधानी मे आचार्य तुलसी के संदेश (मारवाड़ी प्रकाशन)
राजपथ	राजपथ की खोज (आदर्श साहित्य सघ, द्वि० स० १९८८)
वि दीर्घा	विचार दीर्घा (वही, प्र० सं० १९८०)
वि वीथी	विचार वीथी (वही)
विश्व शांति	विश्वशाति और उसका मार्ग (श्री जैन श्वे० तेरापथी महासभा)
शाति के	शांति के पथ पर/दूसरी मजिल (आदर्श साहित्य सघ)
सदेश	सदेश (वही)
सभल	सभल सयाने ! (जैन विश्व भारती, द्वि० सं० १९९२)
सफर	सफर : आधी शताब्दी का (आदर्श साहित्य सघ, १९९१)
समता	समता की आख . चरित्र की पांख (वही, प्र० स० १९९१)
समाधान	समाधान की ओर (अ० भा० तेरापंथ युवक परिषद्)
साधु	साधु जीवन की उपयोगिता (श्री जैन श्वे० तेरापथी महासभा)
सूरज	सूरज ढल ना जाए (जैन विश्व भारती, द्वि० सं० १९९२)
सोचो !	सोचो ! समझो ! ! १-३ (जैन विश्व भारती, प्र० सं० १९८८)

पुस्तकों का ऐतिहासिक क्रम

विषय वर्गीकरण में हम लेखो या प्रवचनो
क्रम से नही दे सके, इसके पीछे सबसे बड़ा का र
आचार्यश्री के सभी प्रवचनो एव निबधों मे दिनाक
मिलता है। यहां हम कालक्रमानुसार पुस्तको की
रहे है, जिससे शोध-विद्यार्थी किसी भी विषय पर
से उनके विचारों का अध्ययन कर सके। समय
व्यक्ति का चिंतन बदलता है। आचार्य तुलसी जै
प्रखर चितक ने समय के अनुसार अपने चिंतन को
को भी बदला है।

यहां हमने पुस्तको का ऐतिहासिक क्रम व
के आधार पर निश्चित नही किया है क्योंकि
पुस्तकों में प्रवचन बहुत पुराने है पर प्रकाशन बहुत
अत: जिन पुस्तकों में प्रवचनों की दिनांक आदि का
हमने उसी के आधार पर समय-निर्धारण किया
निबंधों की पुस्तके है, जिनमें समय का उल्ले
प्रकाशन के प्रथम संस्करण के आधार पर रखा है।
प्रवचनों की छह पुस्तकों में यद्यपि दिनांक ८ दि
है किंतु योगक्षेम वर्ष से सम्बन्धित होने के का
वर्ष के अन्तर्गत रखा है।

यद्यपि यह सूची पूर्ण नही कही जा स
किसी पुस्तक में अनेक वर्षो के प्रवचन संकलित है
पथ पर', 'खोए सो पाए'। इसके अतिरिक्त कही
बहुत पहले की पुस्तक में आए है, वे ही बाद की
समाविष्ट है। जैसे 'धर्म : एक कसौटी, एक रेखा'
प्रकाशित हुई थी। उसके अनेक लेख 'अतीत का
का स्वागत' में है। फिर भी स्थूल रूप से पाठक
विचारों की यात्रा ऐतिहासिक क्रम से कर सकेगे,

१९४५	अशांत विश्व को शांति का संदेश
१९४८	तीन संदेश
१९४८	आत्मनिर्माण के इकतीस सूत्र
१९४९	साधु जीवन की उपयोगिता
१९४९	विश्वशांति और उसका मार्ग
१९४९	संदेश
१९४९	जैन दीक्षा
१९४९	तत्त्व क्या है ?
१९५०	राजधानी मे आचार्य तुलसी के सदेश
१९५०	धर्म सब कुछ है, कुछ भी नही
१९५०	अणुव्रती संघ और अणुव्रत
१९५०	आचार्य तुलसी के अमर सदेश
१९५१-५३	शांति के पथ पर (दूसरी मंजिल)
१९५१	अणुव्रत आंदोलन, अणुव्रत आदोलन का प्रवेश द्वार
१९५३	अणुव्रती क्यों बनें ?
१९५३	प्रवचन डायरी, भाग-१/प्रवचन पाथेय, भाग-९ एव ११
१९५४	प्रवचन डायरी, भाग-२/भोर भई
१९५५	प्रवचन डायरी, भाग-२/सूरज ढल ना जाए
१९५६	प्रवचन डायरी, भाग-३/संभल सयाने !
१९५७	प्रवचन डायरी, भाग-३/घर का रास्ता
१९५७	नवनिर्माण की पुकार
१९५८	ज्योति के कण
१९५९	जन-जन से
१९५९	अणुव्रती क्यो बनें ?
१९६०	नैतिक-संजीवन, भाग-१
१९६०	धवल समारोह
१९६०	नया मोड़
१९६५	क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?
१९६५	बूद-बूद से घट भरे भाग-१,२/प्रवचन पाथेय, भाग-१,२
१९६५	जागो ! निद्रा त्यागो !!
१९६६	धर्म-सहिष्णुता
१९६६	आगे की सुधि लेइ
१९६७	मेरा धर्म : केंद्र और परिधि
१९६९	अतीत का अनावरण

१-२. इनमे कुछ लेख नए एवं बाद के भी है।

३. कुछ लेख एवं प्रवचन इसमें १९८१ के भी है।

१९८९	कुहासे में उगता सूरज
१९८९	मुखड़ा क्या देखे दरपन मे
१९८९	जब जागे, तभी सवेरा
१९८९	लघुता से प्रभुता मिले
१९८९	दीया जले अगम का
१९८९	मनहंसा मोती चुगे
१९८९	प्रज्ञापर्व
१९९१	जीवन की सार्थक दिशाए
१९९१	सफर : आधी शताब्दी का
१९९२	बैसाखियां विश्वास की
१९९२	तेरापंथ और मूर्तिपूजा
१९९४	अर्हत् वदना

पद्य एव संस्कृत साहित्य

(इस पुस्तक मे हमने आचार्य तुलसी के गद्य सा।ि॰ एवं पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया है। किंतु आचार्य तुलसी ७८ ही नही, मधुर संगायक भी है। चरित काव्य एव गीति क इस शताब्दी के कवियो मे उनका नाम शीर्ष पर रखा विभिन्न प्रसंगो पर आशुकवित्व के रूप मे नि.सृत हुए अप्रकाशित ही पडे है। यहा हम पाठको की जानकारी हेत कृतियो एवं संस्कृत-भाषा मे लिखित ग्रथो का नामोल्लेख ।।

पद्य-साहित्य

अग्नि परीक्षा	नदन निकुज[1]
अणुव्रत गीत	पानी मे मीन
अतिमुक्तक आख्यान (अप्रकाशित)	भरत मुक्ति
आचार बोध	मगन चरित्र
कालूयशोविलास	मा वदना
चंदन की चुटकी भली	माणक ' ८ '
चदनबाला आख्यान (अप्रकाशित)	योगक्षेम वर्ष
जागरण (सकलित)	शासन सगीत
डालिम चरित्र	श्रद्धेय के प्रति
तेरापथ प्रबोध	श्री कालू उ' दे
थावच्चापुत्र आख्यान (अप्रकाशित)	सस्कार बोध
सेवाभावी	सोमरस[2]

संस्कृत साहित्य

कर्त्तव्य षटत्रिंशिका	ि.क्षु॰. ५क
कालूकल्याणमन्दिर	मनोनुशासनम्
जैन सिद्धान्त दीपिका	शिक्षापण्णवति
पचसूत्रम्	सघषट्त्रिंशिका

---

१. श्री कालू उपदेश वाटिका का परिवर्धित एवं परिष्कृत

२. 'श्रद्धेय के प्रति' का परिवर्धित एवं परिष्कृत संस्करण।